मगरमच्छ

(अपने युग का एक श्रेष्ठतम उपन्यास)

श्री शंभूदयाल सक्सेना

●

नवयुग ग्रंथ कुटीर

बीकानेर

प्रकाशक :
वीरेन्द्रकुमार सकसेना बी० ए०
नवयुग ग्रंथ कुटीर
बीकानेर

छ रुपया
प्रथम संस्करण १६५५

मुद्रक :
शेखरचन्द्र सकसेना, साहित्यरत्न
एजूकेशनल प्रेस
बीकानेर

प्राक्कथन

घटनाओ, दुर्घटनाओ और अघटनाओ का सकलन है यह उपन्यास। कैसा है, क्या है, क्यो है ? पढकर देखिये और इसका उत्तर अपने हृदय में टटोलिये। सच और झूठ, तथ्य और अतथ्य के भीतर से समाज तथा जीवन की विडंबना अपने सहज़ रूप में झाक पा रही है या नही, इसी निर्णय पर इसकी सफलता और विफलता आधारित है।

— श० द० सकसेना

लेखक के अन्य उपन्यास

बहूरानी	२)
भाभी	२)
सजला	३)
प्रीति की रीति	२॥)

सुख लुटाकर दुखों का ही प्रतिदान जिसने पाया है
उस
अपनी राजरानी को

म
ग
र
म
च्छ

स क से ना

म ग र म च्छ

•

भूली भूली सी याद है उस दिन की, एक धुँधला-सा आभास भर मिलता है। सही हो शायद न भी हो।—पर जो बातें जब तब सुनता आया हूँ उनसे वह सूत्र संबद्ध है। इसलिए कह सकता हूँ या मान सकता हूं कि उस धुँधली स्मृति में भी सचाई का अंश है।— छुट्टी का दिन है कि नहीं, नहीं कह सकता। पर पिताजी घर पर हैं, उनके एक हाथ में हुक्के की निगाली है, दूसरे हाथ से एक बालक को पकड़े हैं। उनके चेहरे पर वात्सल्य की कोमलता नहीं है। एक खीझ है, एक दुख भरी झुँझलाहट है। बालक के लिए इतना ही बहुत है। वह भय से काँप उठा है। पिता की यह मूर्ति उसकी कोमल वय के लिए अपरिचित भी है और असह्य भी। वह काँपता है, और थर-थराता है। वह मुँह से कुछ नहीं कहता, पर अन्तःकरण से अपने आपको धिक्कारता है। इस ओर पिता का ध्यान नहीं है। वे कुपित हैं। बालक को सुधारने की ओर तत्पर हैं।—यद्यपि मैं अब बालक नहीं हूँ परन्तु सुदूर बचपन की यह घटना कभी कभी याद आ ही जाती है।

आज पचीस साल बाद भी वह सब कुछ कठोर सत्य की तरह स्मृति की शिला पर जैसे उभरा हुआ है। उँगलियों के स्पर्श से सहज जाना जा

सकता है। वह बालक अब कई बच्चों के पिता की उम्र का हो गया है। आदर, सम्मान और बड़प्पन ने उसके जीवन को ढक लिया है। वह बहुत दूर निकल आया है बहुत दूर।—उस बचपन से बहुत दूर।

कछुए के अंडे, कहाँ और कैसे मिले? अब तक याद नहीं है कि उनका रंग कैसा था? कितने बड़े बड़े थे? घर के पास जो ताल था और उसके किनारे जो बूढ़ा जर्जर डाल-पात विहीन पीपल का पेड़ था, उसी की जड़ में कहीं मिट्टी की तह के नीचे वे अंडे छिपे पड़े थे।—शायद कछुई अपने शरीर के नीचे दबाये उन्हें सेती थी। उसे हटा कर कैसे उन्हें फोड़ा गया, सो तो याद नहीं। शायद बहिन ने पिताजी से चुगली खाई होगी।

हुक्के की निगाली की मार, कछुए के अंडे और केदार का संग—ये तीन बातें हैं। उनकी मीमांसा करता हूँ तो कुछ निर्णय नहीं कर पाता। मैं मातृहीन था, तो केदार पितृहीन। हम दोनों की जोड़ी विधाता ने ही बना दी थी, पर किसी को भी यह साथ पसंद न था। अच्छा या बुरा कोई भी काम हम दोनों मिलकर करते वही सबको नापसन्द होता। कछुए के अंडों की घटना में केदार का हाथ था या नहीं, याद नहीं। पर उसकी भी साजिश मानी गई। मुझे समझा दिया गया। केदार का संपर्क अवांछित भी है और अनुचित भी।

सुनसान दुपहरी। मैं आदेश के सीकचों में बन्द। केदार आकर खड़ा हो गया। मेरी जबान पर बेबसी थी, उसके होठों पर प्रश्न।

"क्यों, क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"तो आओ न। यहाँ क्या कर रहे हो?"

"कर तो कुछ नहीं रहा हूँ।"

"फिर?"

"पिताजी—।"

" पिताजी घर पर हैं ? "

" नहीं। "

" फिर ? "

"पिताजी बकेंगे।"–'मारेंगे' कहने में केदार के सामने हेठी जो होती। इसलिए 'बकेंगे' कहना ही ठीक समझा। केदार ने शब्द से अधिक अर्थ को ग्रहण किया। बोला–नहीं बकेंगे। आओ, आज बड़ा तमाशा है देखो इधर।

केदार ने डोर का एक गुल्ला हथेली पर रखकर हिला दिया। बड़ा-सा नारंगी के बराबर।

" अरे! इतनी सारी डोर! "

" हाँ, और नहीं तो क्या? चलो, पतंग उड़ेगी। "

मैं सब कुछ भूल गया। केदार के पीछे हो लिया। हम दोनों वैशाख की दोपहरी की परवाह किये बिना ही छायाहीन खंडहर की शून्यता में गायब हो गये।

आगे का प्रसंग याद नहीं पड़ता। बहुत से स्मृति के लेख धुँधले पड़ गये हैं। शायद दोनों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि खाली डोर से क्या होगा? पतंग भी तो चाहिए। उस दिन जलेबियाँ न खाकर मैंने दोनों पैसों की पतंग उड़ा डाली। उड़ा भी कहाँ डाली? मैं तो पतंग उड़ाना नहीं जानता। केदार ने उड़ाई और मैंने उसका आनन्द लिया। उस दिन दुपहरी कितनी जल्दी बीत गई। पता तब चला, जब गाँठ-गठीली डोर को तोड़ कर पतंग आकाश में उड़ गई और सामनेवाली हवेली ने देखते देखते उसे निगल लिया। केदार 'धत्तेरे की' कहकर रह गया और मैं रुआसा-रुआसा सा हो कर दीवाल के सहारे खड़ा रहा।

मैं घर लौट आया। आहत-सा, पीड़ित-सा। घर पर इतना तहलका मचा होगा, यह मैं जानता तो केदार के आश्वासन सुनने में व्यर्थ समय न गँवाया होता।—आते ही जीजी ने हल्ला मचाया—रह आ गया।

भाभी, रमेश यह आ गया ! फिर मेरे पास आकर पूछने लगी— अरे कहाँ गया था रमेश ?

एक एक करके सबने यही प्रश्न किया। मैं भौचक रह गया। आखिर ऐसी क्या बात हुई जो मेरी तलाश, इस तरह सशंक होकर करने की आवश्यकता पड़ी ? जीजी अपनी सहेलियों में घंटों बिता आती है। भाभी का दरबार सुबह से शुरू होकर तीसरे पहर समाप्त होता है। फिर क्या कारण है कि मैं ही व्यक्ति के मौलिक स्वत्व से वंचित किया जाऊँ ? मैंने उत्तर न देना ही मुनासिब समझा। किसी को कुछ नहीं कहा। अपने में ही गुमसुम हो रहा।

शाम हुई। बड़े भैया के सामने पेशी हुई। वहाँ भी मैं गरदन झुकाए खड़ा रहा, बोला नहीं। जीजी पेशकार का काम कर रही थीं। बोलीं —भैया रमेश के पास पैसे थे। उनका भी पता नहीं क्या कर आया ?

मैं बच गया।—छोटा बच्चा है। पैसे गिर गये होंगे—भैया का यह फैसला सुनकर मैं फूट पड़ा। सिसक-सिसक कर रोने लगा।

जल्लाद का काम करनेवाली जीजी भी रोने लगी। शायद उसे याद आ गई कि मेरा छोटा भैया है। प्यार करने वाली माँ रही नहीं है। कहाँ जाता है ? कहाँ फिरता है ? कौन खबर रक्खे ?

दो की जगह भैया से मैंने चार पैसे पाये। जीजी की गोद में पड़कर मीठी-मीठी थपकियाँ पाईं। जब बहाव बह गया तो जीजी ने मुझे फुसला लिया। मैंने सब कुछ कह दिया—आवेग में सब बातें बता दीं। जीजी बोलीं—तुम बड़े राजा भैया हो लेकिन अब कभी मत जाना। पिताजी सुनेंगे कि तुम केदार के साथ गये थे तो वे बहुत नाराज होंगे।

मैंने मौन रहकर स्वीकृति दी। लेकिन हृदय में एक शंका समाधान चाह रही थी—केदार बुरा तो नहीं है। उसमें क्या बुराई है ? उसके पिता मर गए हैं। माँ गरीब है, तो इससे क्या ? वह उसे पैसे नहीं दे सकती है'।

जीजी ने शायद मेरे मन की बात परख ली, बोलीं—केदार छोटे बच्चों को बहकाकर उनके पैसे ले लेता है। देखो, तुम्हारे पैसे लेकर पतङ्ग उड़ा डाली।—अबकी बार मिठाई खा जायगा।

इस उपदेश से समाधान नहीं हुआ। मौका मिलते ही मैंने केदार को मिठाई खाने के लिए पैसे दे दिए। आप भूखा फिरता रहा। यह सोचने पर भी नहीं सोच पाया कि इसी से केदार बुरा लड़का है, इसीसे मैं भी उसकी बुराई सीख रहा हूँ।

मैं बीमारी से उठा था। पूरे चार आने लेकर घर से बाहर निकला था। मैं भी अब कुछ कुछ मान गया था कि केदार धूर्त है। उसे पैसे नहीं देने चाहिए। पर केदार जैसे मेरी ही ताक में था। झट आगया। आज उसके पास नये खेल का संदेश था। सुन्दर लट्टू और एक लम्बा डोरा। बस, मैं उसके साथ था। मेरे पैसे उसकी जेब में थे। लट्टू आये। बुखार की कमजोरी भूलकर मैं उनके घुमाने में व्यस्त होगया पर लट्टू मेरे हाथ से घूमना न चाहते थे। वे भी केदार के हाथों से प्रेम करते थे। उसकी उँगलियों में कमाल था। मैं उसकी प्रवीणता पर मंत्रमुग्ध था।

अब मेरे ऊपर सख्त पहरा होगया। राजनैतिक बन्दियों की तरह हर घड़ी मेरी निगरानी की जाती। पैसे न मिलते। घर से बाहर निकलने की मुमानियत। जब कभी दो चार मिनट के लिए भी अकेला होता, तो उसी दरम्यान केदार मुझे अपनी दिनचर्या बताकर मेरे शान्त हृदय को आन्दोलित कर जाता। प्रायः नित्य ही कोई न कोई योजना लेकर वह आया करता।

मेरा विचार है, मेरे पैसों का स्रोत बन्द हो जाने से केदार को नई नई योजनाएँ सोचनी पड़ीं। एक दिन सुना, उसने खुद पतङ्ग बनाना शुरू किया है। छपे हुए कागजों का रजिस्टर घर में पड़ा था। उसी के कुछ पन्ने लेकर उसने कार्य आरम्भ किया। परिश्रम किया। सफल हुआ। मैंने भी उसकी उन पतङ्गों को देखा।

और एक दिन नगाड़ोंवाली गाड़ी बनाई। डोरा हाथ में लेकर खींचते ही गाड़ी पर रखा हुआ नगाड़ा बजने लगता था। साधारण चीज थी पर मुझे वह कितनी प्यारी लगी—अपने केदार के हाथों की वह कला-कृति।

और एक दिन मिट्टी के खिलौने—हाथी, घोड़े, ऊँट, बन्दर, रथ, बहल, आदमी, औरतें, और न जाने क्या-क्या ?

और एक दिन हरे हरे नरकुल की बाँसुरी। ढेर की ढेर। मेले में लेजाकर सुना पांच आने नगद उसने बचा लिए।

और एक दिन कागज की फिरकी बनी। रंगबिरंगी। अब तक मैं आह भर कर रह जाता था। आज नहीं रहा गया। एक फिरकी माँग बैठा। एक फिरकी दो पैसे में बिकती थी। लेकिन केदार ने मेरे लिए मना नहीं किया। चुपचाप एक देदी—बिना पैसा लिए ही। मैं गद्‌गद् हो गया और कुंठित भी।

कौन कहता है केदार बुरा लड़का है ? कौन कहता है वह धूर्त है, ठग है ? कौन कहता है वह दूसरों के पैसे लेकर उड़ा डालता है ? कौन कहता है कि वह दूसरे लड़कों को बुद्धू बनाता है ? वह यदि लेना जानता है तो देना भी जानता है। वह लालची है तो उदार भी। वह आवारा है तो कलाकुशल भी। माँ चक्की पीसकर इतने पैसे कहाँ से लाये जो केदार यह सब न करे ? करना ही पड़ता है। ऐसे कामों में जी भी लगता है, पैसा भी पैदा हो जाता है।

केदार एक आंधी है जो मन के शून्य मरुस्थल में एक हलचल पैदा कर देता है। वह एक ऐसा ज्वार है जो हृदय के सागर को विलोड़ित कर डालता है। मैं जब इस प्रकार उससे जीवन और प्रेरणा पाता हू, तब संसार उसमें कुछ भी स्पृहणीय नहीं देखता। उसकी दृष्टि में सब कुछ नगण्य, सब कुछ हेय और उपेक्ष्य है। एक मिट्टी के ढेले को उससे अधिक काम का मानने में बहुतों को इन्कार नहीं है।

तब मैं यह बात इस प्रकार नहीं सोच पाया था कि एक अबला की विवशता के सिवा केदार के पीछे कोई बल नहीं था। और यह तथ्य है कि बहुधा यहाँ बल ही गुण कहकर पूजित होता है। पिता के अभाव में, धन के अभाव में, अभिभावक के अभाव में गुणों का भी अभाव लोगों को दिखाई पड़ता था। यदि माँ-बाप का कोई भाग्यशाली बेटा इतनी कला-कुशलता दिखा सकता तो उसमें चार चाँद लगे बिना न रहते।

केदार ने मुझे यह सूचना दी कि मैंने दो हंस बनाए हैं। उन्हें तालाब में आज तैराऊँगा, ठीक शाम को चार बजे।

इस समाचार से मैं चंचल हो उठा। तीन बजे ही मैं तमाम बंधनों की उपेक्षा करके घर से निकल भागा। जाकर तालाब के किनारे बैठ गया। भाभी की अठन्नी जीजी ने मेरे कुरते की जेब में डाल दी थी। उसीसे मैं खेलने लगा।

थोड़ी देर में केदार आ पहुंचा। उसके हाथो में दो हंस थे। लगता था कि अभी पंख खोलकर उड़ जायेंगे। रुई से बने हुए वे दोनों पक्षी उसने पानी की सतह पर छोड़ दिये। हवा से उठती हुए लहरें तुरन्त ही उन्हें बहा ले चलीं। मैं चिल्ला उठा—वे तैर रहे हैं।

"हाँ, तैर रहे है।"

मैंने अठन्नी उसके ऊपर फेंककर कहा—ये हंस तो मैं लूँगा।

तुम पागल हो। तुम इनका क्या करोगे?

"मैं भी इन्हें तैराऊँगा।"

"तुम्हें मैं और बना दूँगा।"

"मैं तो यही लूँगा।"

केदार से छीना-झपटी में मैं तालाब के पानी मे जा पड़ा। कपड़े मिट्टी और पानी से सन गये। केदार शंकित हो उठा। हंस मुझे दे दिए। मैं उन्हें गोद में दबाकर घर ले आया।

भाभी की खोई हुई अठन्नी का इन हंसों से संबंध जोड़कर घर में

जो कांड मचा वह दिल दहला देनेवाला था। इस बार बात घर के भीतर तक ही सीमित न रही। केदार की माँ तक पहुच गई। माँ बेटे को मालूम हो गया कि उनका अपराध साधारण नहीं है। अठन्नी उन्हें लाकर वापस देनी पड़ी। हंस जुर्माने के रूप में जब्त कर लिए गये। न माँ ने आह निकाली, न बेटे ने। इस सचाई पर किसी को विश्वास नहीं हुआ कि अठन्नी कहीं तालाब में ही गिर गई थी और इस सौदे में केदार को घाटा ही घाटा पल्ले पड़ा। हंस गये, घर की अठन्नी गई और सब से अधिक जो जा सकता था वह मां-बेटे का मान गया। पास-पड़ोस में घर घर जो चरचा चल पड़ी उसने उनके मुँह को स्याह कर दिया। यह तो अच्छा था कि उस दशा को छिपाकर रख छोड़ने लायक साज-सामान का उनके पास सर्वथा अभाव था, नहीं तो वे कई दिनों तक किसी को अपना मुँह भी न दिखा सकते। वह शाम किसी तरह कटी और—और सवेरा होते ही पीसने के लिए पांच सेर गेहूं लाने माँ ने बेटे को बटुकदत्त गुसाईं के घर भेजा। आप सकटू तेली की दूकान पर जाकर पैसे का तेल उधार ले आईं।

मुझे भी उन हंसों की खासी कीमत चुकानी पड़ी। पैसा जो पिताजी देते थे वह कितने ही दिन तक मैं खा न सका। जीजी के सख्त पहरे में भी इतना सुयोग मैं निकाल लेता था कि बिना खाये ही किसी चीज़ को लेकर खा लेने का बहाना चल जाता था और शाम को किसी समय वह पैसा कभी केदार के आगन में, कभी दालान में, कभी द्वार के भीतर डाल आता था। मुझे पता नहीं कि मेरे डाले हुए पैसो में से कितने उसके हाथ पड़े और कितने धूल-मिट्टी मे रल गये या किसी दूसरे को मिल गये। यह क्रम तभी बन्द हुआ जब मैं कुछ दिनों के लिए अचानक बिस्तर पर पड़ गया। मुझे होश न रह गया कि मैं कहां हूँ ?

जीजी कहती है कि मैं बहुत बीमार हो गया था। अचानक बुखार बढ़कर सन्निपात हो गया। मैं बकता और उस हालत मे भी केदार को पुकार बैठता था। कभी-कभी उसी का नाम लेकर देरतक घबराता था।

हालत खराब थी। पिताजी सब कुछ भूल गये थे। न कहीं आते थे, न जाते थे। मुझे गोद में लेकर बैठे रहते थे।

यूनानी हकीम का इलाज था। पिताजी ने हकीम साहेब से पूछा—हकीमजी, यह अपने एक साथी का नाम ले-लेकर बहुत पुकारता है। उसे इसके पास बुला देने में कोई हर्ज तो नहीं है?

हकीमजी ने कहा—कोई हर्ज नहीं। आप उसे बुला सकते हैं, लेकिन आप छिप कर नोट करते रहें कि उसके रहने तक हालत कैसी रहती है?

इसके बाद कहते हैं केदार घर से बुलाया गया।—परन्तु एक समस्या और खड़ी हो गई। केदार की मां ने इनकार कर दिया। जीजी ही तो बुलाने गई थीं। उससे केदार की माँ ने बड़ी दृढ़ निर्भीकता से मना कर दिया। बड़े अभिमान के साथ उसने कहा—मेरा लड़का तुम्हारे यहां नहीं जायगा।

जीजी निरुत्तर लौट आईं। पिताजी सुनकर चुप रहे। केवल इतना कहा—नहीं आता है, न सही।

लेकिन भाभी को यह उत्तर उचित नहीं लगा। वे उबल पड़ीं। घर के द्वार पर खड़ी होकर उस दुखिया के आत्मगौरव के प्रतिकूल एक लंबा भाषण दे डाला। अपने बड़प्पन की झोंक में न जाने और क्या क्या कह गईं?

सब कुछ सह लिया गया परन्तु एक 'कलमुँही' का विशेषण सहन न हुआ। अनेक अपशब्दो का आदान-प्रदान प्रारंभ हो गया और अच्छा खासा दंगल हो जाता, यदि पिताजी घर के भीतर न होते। केदार की माँ आज जिस बल के सहारे अबला नहीं है, उसी विशेष बल का प्रयोग करने से वह परास्त नही हो सकी। भाभी हार कर घर के भीतर चली आईं।

केदार को इसका पता न लगा हो सो बात नहीं, परन्तु वह आने से रुका नहीं। संध्या समय आया। इस समय मेरा जी शांत था, तो भी पिताजी केदार को मेरे कमरे में ले आये। मैंने उसे देखा—देखता ही रहा। इसलिए नहीं कि उसे मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता था

बल्कि इसलिए कि आज उसका और मेरा मिलन पिताजी की उपस्थिति में और उनकी इच्छा से हो रहा था। आज कोई भय नहीं था। मुझे प्रतीत हुआ कि केदार भी इस बात को समझ रहा था।

पिताजी ने एक कुर्सी लेली। उस पर बैठ गये। केदार मेरी चारपाई पर एक किनारे आ बैठा, पूछा—रम्मू क्यों कैसा जी है?

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी ओर देखता भर रहा।

उसने फिर कहा—इतने बीमार हो गये और मुझे खबर ही न दी!

उसका यह उपालम्भ वाजिब था, पर मैं क्या उत्तर देता? मेरा जी भीतर से गद्गद् हो गया।

वह बोला—मैंने तुम्हारे लिए खरगोश बना कर रक्खे हैं। अभी ले आता पर थोड़ी कसर रह गई है। कल तुम्हारा जी ठीक हो जायगा, तब तक ठीक करके ले आऊँगा।

मैंने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति जता दी। परन्तु मुझे निकला मोतीझरा का ज्वर। चारपाई पर मैं पड़ा ही रह गया। दो महीने से पहले इस काबिल नहीं हुआ कि अपने दोस्त से खरगोश की माँग करता। और वह ऐसा बेमुरव्वत निकला कि उस दिन के बाद लौट कर झाँका भी नहीं। शायद माँ-बेटे में कुछ तकरार हो गई हो, शायद उसे कोई अच्छा खरीदार मिल गया हो, शायद वह भूल ही गया हो, पर मैं यह सब कैसे सोच सकता? मैं न मालूम क्यों उसके और उसकी हर एक चीज के ऊपर अपना विशेष अधिकार समझता था। इस अधिकार में, उसके न आने से जो ठेस लगी उससे मैं और कठोर हो गया—उस केदार के प्रति जिसने चाहे संसार के कण कण से दुष्टता की हो पर मेरे प्रति सहज कोमल भाव ही रक्खा, अत तक।

पिताजी ने प्यार से पूछा—भैया, केदार को बुला दें? खेलोगे?

मैं निरुत्तर करवट फेर कर लेट गया।

बहिन आई। टेबिल पर लैंप जलाकर रख दिया। उसका प्रकाश फैल गया। पिताजी के चेहरे पर व्यग्रता और बेचैनी के भाव में पर

सका। मेरे करवट बदलकर पड़ रहने से उनकी मनोदशा में यह परिवर्तन हुआ, यह जानकर भी मैं विचलित न हुआ। उसी तरह पड़ा रहा।

बहिन ने पूछा—रम्मू भैया, कैसा जी है? उठोगे नहीं? देखो, पिताजी तुम्हारे लिए बाजार से क्या क्या चीजें लाये हैं?

मेरे जी में जरा भी सिर उठाकर देखने की इच्छा न हुई। मैं जानता था, आज प्रातःकाल मैंने ही तो कितनी चीजों की सूची पिताजी को बनवा दी थी। वे अवश्य उनमें से कई ले आये होंगे। बच्चों की बीमारी में पिताजी विशेष रूप से मृदु हो जाते हैं। उस समय उनकी हर तरह की माँग वे पूरी करने का ख्याल रखते हैं। उनका विचार है कि इससे बहुत अच्छा असर पड़ता है।

वह रात पिताजी ने बड़े कष्ट से बिताई। बारबार मेरे ज्वर और मेरी नाड़ी की परीक्षा की। सुबह तक शायद ही आँख लगाई हो।—आज इतने दिनों बाद मुझे अपनी कई नादानियाँ बुरी तरह चुभती हैं, तब इस घटना की भी याद आ ही जाती है।

मैं नीरोग हुआ। घर से बाहर निकला, तब देखा केदार के घर में ताला पड़ा है। मालूम हुआ, वह अपनी मा के साथ कहीं दूर चला गया है। कुछ बुरा लगा। सब ओर खाली-खाली-सा रहा, पर धीरे धीरे वह अभाव जैसे आप ही भर गया। मैं केदार को भूल गया।

जीवन एक बहती धारा है। जो कुछ प्रवाह मे आ पड़ता है वही परिचित हो जाता है। उसी से राग-द्वेष होता है। प्रवाह से विलग होने पर उसकी स्मृति धुँधली पड़ती जाती है। नई दुनियां आती है। नये फूल खिलते हैं, पर नये शीघ्र ही पुराने हो जाते हैं। वर्तमान अतीत बन जाता है। इस प्रकार जीवन-प्रवाह तो सतत प्रवहमान है। किसे मनुष्य प्यार करे? किसे सहेजे, और किसे विस्मृत हो जाने दे?

दो

मेरी सखी बिट्टो। यह उसका नाम नहीं, प्यार का संबोधन था। मां बाप इसी नाम से पुकारते थे। सुननेवालों को कितना ही कठोर जँचे परन्तु मुझे तो उसके इसी नाम में मिसरी का स्वाद आया।

तड़ित-सी चचल, तरग-सी चपल, बड़े बड़े मोतिया का हार गले में पहने वह एकाएक मेरे जीवन के आगन में आकर खड़ी हो गई। मैंने कब उसे देखा? कब पहचाना? कब प्यार किया? कब गलबहियां देकर खेला? यह सब इतना अचानक और अनायास हुआ कि मुझे ही विश्वास नहीं होता।

जीजी का ब्याह होगया। वे अपने घर चली गईं। भाभी प्लेग का शिकार हो गईं। मुझे और बड़े भैया को लेकर पिताजी रातों-रात चलकर बुआ के घर पहुच गये।—और प्रातःकाल उस गाव में पहले पहल जागकर मैंने जिसे देखा वह थी बिट्टो। किवाड़ों को थोड़ा सा खोलकर खड़ी मेरे जागने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने आखें खोलीं और उसने द्वार से बाहर आकर कहा—तुम तीरथ करके आये हो?

मैंने मत्रमुग्ध भाव से कह दिया—हां।

"सच!"

जैसे उसे विश्वास न हुआ हो। उसका अविश्वास ही सच भी था। पीछे मुझे पता चला कि पिताजी ने जानबूझ कर तीर्थ वाली बात का प्रचार कर रक्खा था। प्लेग के कारण शहर छोड़कर हम लोग भागे हैं

इसका पता लग जाने पर गांव में लोग तहलका मचा देते।

बिट्टो ने पीठ पर लोटती हुई कबरी को उछाल कहा—तुम मेरे साथ बाग में चलोगे। वहां घांस के झुरमुट में एक अजगर रहता है।

" अजगर तुमने देखा है ? "

" तुमने जो तीरथ देखा है। "

" कैसा तीरथ ? "

" कैसा तीरथ, ओ, वड़े आये, ये तीरथ नहीं जानते हैं। "

" तुम तो बुरा मान जाती हो। "

" तो अच्छा कैसे मान जाऊँ ? मैं क्या तुम्हारा तीरथ छीने लेती हूं। "

" अच्छा-अच्छा, पर तुम्हारा अजगर कहां है ? "

" है, कहीं है। "

" कहां, कौन से बाग में ? "

" मैं नहीं बताती। "

" नहीं बताओगी ? "

" नहीं। "

" मुझे वहां नहीं ले चलोगी। "

" नहीं। "

" तो जाओ यहां से। "

" क्यों जाऊँ ? नहीं जाती। "

बिट्टो तनकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसका श्यामल चेहरा और भी सुन्दर दिखने लगा। मैंने कहा—मैं जानता हूँ।

" क्या ? "

" कि अजगर कहां रहता है। "

" अच्छा बताओ कहां रहता है ? "

" बाग में। "

अचरज में आकर बोली—बाग में किस जगह ?

दो

मेरी सखी बिट्टो। यह उसका नाम नहीं, प्यार का संबोधन था। मा बाप इसी नाम से पुकारते थे। सुननेवालों को कितना ही कठोर जँचे परन्तु मुझे तो उसके इसी नाम में मिसरी का स्वाद आया।

तड़ित-सी चचल, तरग-सी चपल, बड़े बड़े मोतिया का हार गले में पहने वह एकाएक मेरे जीवन के आंगन में आकर खड़ी हो गई। मैंने कब उसे देखा? कब पहचाना? कब प्यार किया? कब गलबहियां देकर खेला? यह सब इतना अचानक और अनायास हुआ कि मुझे ही विश्वास नहीं होता।

जीजी का व्याह होगया। वे अपने घर चली गईं। भाभी प्लेग का शिकार हो गईं। मुझे और बड़े भैया को लेकर पिताजी रातों-रात चलकर बुआ के घर पहुच गये।—और प्रात.काल उस गांव में पहले पहल जागकर मैंने जिसे देखा वह थी बिट्टो। किवाड़ों को थोड़ा सा खोलकर खड़ी मेरे जागने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने आंखें खोलीं और उसने द्वार से बाहर आकर कहा—तुम तीरथ करके आये हो?

मैंने मंत्रमुग्ध भाव से कह दिया—हां।

"सच!"

जैसे उसे विश्वास न हुआ हो। उसका अविश्वास ही सच भी था। पीछे मुझे पता चला कि पिताजी ने जानबूझ कर तीर्थ वाली बात का प्रचार कर रक्खा था। प्लेग के कारण शहर छोड़कर हम लोग भागे हैं

इसका पता लग जाने पर गांव में लोग तहलका मचा देते।

बिट्टो ने पीठ पर लोटती हुई कमरी को उछाल कहा—तुम मेरे साथ बाग में चलोगे। वहां बांस के झुरमुट में एक अजगर रहता है।

"अजगर तुमने देखा है?"

"तुमने जो तीरथ देखा है।"

"कैसा तीरथ?"

"कैसा तीरथ, ओ, बड़े आये, ये तीरथ नहीं जानते हैं।"

"तुम तो बुरा मान जाती हो।"

"तो अच्छा कैसे मान जाऊँ? मैं क्या तुम्हारा तीरथ छीने लेती हूं।"

"अच्छा-अच्छा, पर तुम्हारा अजगर कहां है?"

"है, कहीं है।"

"कहां, कौन से बाग में?"

"मैं नहीं बताती।"

"नहीं बताओगी?"

"नहीं।"

"मुझे वहां नहीं ले चलोगी।"

"नहीं।"

"तो जाओ यहां से।"

"क्यों जाऊँ? नहीं जाती।"

बिट्टो तनकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसका श्यामल चेहरा और भी सुन्दर दिखने लगा। मैंने कहा—मैं जानता हूँ।

"क्या?"

"कि अजगर कहां रहता है।"

"अच्छा बताओ कहां रहता है?"

"बाग में।"

अचरज में आकर बोली—बाग में किस जगह?

" घांस के झुरमुट में।"

आम की फांक की तरह अपनी बड़ी बड़ी आंखों को मेरे चेहरे पर गड़ाये वह स्तब्ध खड़ी रह गई। उसे विश्वास हो गया कि मैं सब कुछ जानता हूं।

क्रोध वह भूल गई। उसने मुझ से सुलह कर ली। वह मुझे अपने साथ-साथ ले गई। अपना घर दिखाया। कहां वह सोती है। कहां उसकी गुड़ियां रक्खी हैं। कहां खिलौने पड़े हैं। कहां उसकी माता बैठकर ठाकुरजी की पूजा करती हैं। कहां उसकी बुढ़िया दादी मरी थी, यह सब उसने एक एक कर मुझे दिखाया। अपनी बूढ़ी दादी की बात कहते कहते वह रो पड़ी। बड़े बड़े आंसू उसके गालों पर ढुलक पड़े। मैंने बड़े स्नेह से अपने कुरते के कोने से उसके आंसू पोंछ दिये और उसे धीरज दिलाते हुए कहा—तुम दादी के लिए रोती हो बिट्टो। दादी तो सब की ही मर जाती है। मेरी दादी भी तो मर गई।

" सच ?"

" और नहीं तो।"

" तुम्हारी दादी, तुम्हारी दादी मर गई !"

" हां।"

" तुम्हारी दादी तुम्हें प्यार करती थी ?"

" बहुत।"

" तुम्हें खिलौने देती थी ?"

" रोज।"

" मिठाई भी देती थी ?"

" मिठाई देती थी। कहानियां सुनाती थी। मुझे अपना गोद में सुलाती थी।"

" भला इतने बड़े लड़के को गोद में कैसे सुलाती होगी ?"

" तब मैं इतना बड़ा थोड़े ही था।"

" तब तुम छोटे थे ?"

" हां बहुत छोटा, तुम से भी छोटा।"

" तभी तुम्हारी दादी मर गई ?"

" हां, और उसके थोड़े ही दिन बाद अम्मा भी।"

" अम्मा भी क्या ?"

" अम्मा भी मर गई।"

" ऐं, तुम्हारी अम्मा भी मर गई ?"

" वही तो।"

" तुम्हारी अम्मा मर गई। लोग उन्हें उठकर ले गये ? लकड़ियों पर रख कर जला दिया ?"

" हां।"

" कब ?"

" कितने ही दिन हो गये।"

इतनी सारी बातें मैं सहज भाव में कह गया। मुझे किसी तरह का कोई आवेग प्रतीत नहीं हुआ। मां को मरे समय हो चुका था। वह बात अब नई न रह गई थी। याद भी धुँधली पड़ चली थी। लेकिन बिट्टो ने यह कह कर उस सोई हुई वेदना को फिर से जगा दिया—राम राम, तुम्हारी अम्मा मर गई! और तुम रोते भी नहीं ?

" मैं रोता हूं, बिट्टो!"

" रोते हो ?"

" हां रोता हूँ, जब याद आती है तब रोता हूँ।"

" किस बात की याद ?"

" अम्मा की याद।"

" अभी तुम्हें याद नहीं आ रही ?"

" क्यों नहीं ?"

" पर तुम रोते तो नहीं ?"

" मैं लड़का जो हूं।"

" इससे क्या ?"

" लड़के किसी के सामने नहीं रोते। वे अकेले में रोते हैं। मैं भी अकेले में रोता हूं। रात में जब कोई नहीं देखता तब रोता हूं। मैं चुपचाप रो लेता हूँ।"

मालूम पड़ता था मेरी सखी को मेरी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है। बड़े बड़े अचरज में पड़ी थी। वह सोच रही थी—यह भी लड़कों की क्या आदत कि छिपाकर रोते हैं। कोई देख न ले, इसलिए आंखों में आंसू बंद किये रहते हैं, दिल में आह दबाये रहते हैं।

खैर, मेरे इस परिचय ने बिट्टो को और अधिक मेरे निकट ला दिया। उसने जैसे मेरे जीवन के अभाव को समझ लिया और जानबूझ कर मेरे लिए मृदुता की मात्रा अधिक सहेज कर रखने लगी।

सवेरा होते ही वह घर के बाहर नीम की छाया में बैठकर मेरी राह देखती। मैं भी बुआ के अनुरोधों और आदेशों से जान बचाकर अपनी सहचरी से जा मिलता। रोज नये नये उपक्रम होते। नये नये स्वांग रचे जाते। बातें हम लोग इतनी करते कि कभी खत्म ही न होतीं।

चाहे बूढ़ा हो चाहे बच्चा, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, हर कोई अपने अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाना चाहता है। साथ ही यह भी चाहता है कि हमारी अधिकार-सीमा में किसी अन्य का दखल न हो। इसके परिणाम स्वरूप समवयस्कों में ही नहीं, कभी कभी बूढ़ों और बच्चों के बीच भी संघर्ष खड़ा हो जाता है।

मेरी बुआ ने बड़े जोर से पिताजी से आग्रह किया था। कहा था—भैया, भाभी रमेश को मुझे सौंप गई थीं। उनकी उस धरोहर को मेरे ही पास रहने दो। मैं जानती हूँ बच्चे से अलग रहने में तुम्हें कम कष्ट न होगा, पर यही जानकर कि मैं उसे किसी तरह दुखी न रहने दूँगी तुम उसे मेरे पास छोड़ जाओ।

बुआ के इस अनुरोध से ही पिताजी मुझे उनके पास छोड़ गये, यह मैं नहीं मान सकता। उनका मेरे प्रति जो स्नेह मैं देख पाया हूं वह इसका

साक्षी है कि अपने हृदय को मसोसकर बहुत बेबसी की हालत में उन्होंने यह किया। कुछ यह सोचकर कि वे आदमी हैं। हर समय घर रहकर मेरी देखरेख न कर सकेंगे। नियंत्रण न रहने से मैं बिगड जाऊँगा। –कुछ मेरी लंबी बीमारी से परेशान होकर। इस तरह मैं उन बुआ की छाया में रह गया जो मेरे ऊपर प्राण निछावर करती थीं, मुझे हृदय से चाहती थीं।

बुआ के कोई सन्तान न थी। दूसरे मेरी माँ ने उन्हें बचपन से लाड लड़ाया थी। जीजी की तरह ही बडे प्यार से उन्हें पाला था। उन्हें खिलाकर खाती थीं, उन्हे पिलाकर पीती थीं। इस प्रकार मुझे पालपोस कर बुआ मेरी माँ के ऋण से उऋण होना चाहती थीं।

जीजी अपनी ससुराल चली गईं थीं। बडे भैया नई भाभी को ब्याह लाये थे। मैं बुआ के पास आ गया था। बुआ का मेरे ऊपर पूरा अधिकार था। यह मुझे मालूम न हो सो बात नहीं, मैं अच्छी तरह जानता था, लेकिन फिर भी अपनी सखी के अनुरोध को मुझसे टाला न जाता था। बुआ और बिट्टो में इस प्रकार खींचातानी आरंभ हुई।

मैं जानता था बुआ जब जब मुझे रोकतीं तो उनकी दृष्टि मेरे हित की ओर होती थी और मेरी सखी जब मुझे बुलाती तो मेरी सूनी घड़ियों को रसमय करने के लिए। यों मैं बुआ के आँखों के इशारे पर चलता था, पर बिट्टो के संकेत के साथ सब कुछ भूल जाता था।

एक दिन साँझ को बिट्टो के घर आँखमिचौनी की सलाह ठहरी। मैं खा-पीकर जा पहुँचा और भी कई सखा-सहेली इकट्ठे हुए। चाँदनी रात थी। सुहावनी ऋतु। हम लोग देर तक खेल में लगे रहे। घर की चिन्ता ने किसी को व्याकुल न किया। आखिर घरवालों को ही हम सबकी तलाश करनी पड़ी।

किसी का बाप, किसी का चाचा, किसी का भाई, किसी की मौसी, किसी की माँ इसतरह सभी अपने अपने बच्चों को खोजने निकल पडे। मछियारे जिस तरह मछलियों के लिए सारे तालाब को मथ डालते हैं उसी तरह गांव में एक छोर से दूसरे छोर तक बच्चों की खोज में घर घर छान मारा गया।

मेरी बुआ की बचपन की एक सहेली अचानक आ पहुंची थीं। वे उन्हीं की आवभगत में शाम से लगी थीं। उन्हें मेरा ध्यान न रहा था। उनका ख्याल था कि मैं भीतर अपनी चारपाई पर पढ़कर सो गया हूँ। नौ-साढ़े नौ बजे के आसपास अपनी सहेली को विदा करके वे निश्चिंत हुईं। इसके बाद ही उन्हें मेरा ध्यान आया कि मैं भूखा ही सो गया हूँ।

मेरे अकृत्रिम स्नेहाधिक्य के कारण बुआ मेरी बड़ी चिन्ता रखती थीं। झट मुझे जगाने दौड़ीं। मुझे बिस्तर पर न पाकर इधर उधर खोज की। घर के सब कमरे छान डाले, जब मैं न मिला तो बाहर पुकार हुई।

यह जानकर कि मैं शाम से ही बिट्टो के घर खेल रहा था, बुआ को मेरे पर कम क्रोध न आया होगा। परन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं। केवल एक बार कड़ी नज़र से मुझे देख कर भीतर चली गईं। मेरे लिए यही बहुत काफी था। मैं बुआ की आँखों से जितना डरता था, उतना कोई किसान पुलिस के दरोगा से क्या डरेगा? मैं सहम कर रह गया। मेरे पैर मन मन भर के भारी हो गये।

बुआ ने मेरे सामने थाली परोस कर रख दी। मैंने खाया पर मुझे स्वाद न आया। आज मुझे मिठाई रोज से अधिक ही मिली, पर मैं उसे खा न सका। बुआ ने यह लक्ष्य कर पूछा—अरे रमेश, आज तुझे हो क्या गया है?

"कुछ भी तो नहीं।"

"तो खाता क्यों नहीं?"

"खा तो रहा हूँ।"

"खा रहा है! क्या खा रहा है? सब तो यों ही पड़ा है।—क्या तू रूठ तो नहीं गया है?"

"नहीं तो, रूठ क्यो जाऊँगा?"

"हाँ बेटा, कोई बुआ से नाराज नहीं होता। बुआ जो कुछ कहती है तुम्हारे भले के लिए।"

मैंने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

" हाँ, भैया। देखो, तुम किसी तरह बुरा मत मानना। अच्छे लडके घर से बाहर बिना पूछे नहीं जाया करते। रात को इतनी देर तक घर से बाहर रहना ठीक नहीं। यदि मैं इस तरह तुम्हें फिरने दूँ, तो भैया मुझसे क्या कहेंगे? वे यहीं न कहेंगे कि मैंने लडके की चिन्ता नहीं की। उसे आवारा बना दिया। बताओ तब मैं क्या जवाब दूँगी?"

"तो मैं न जाया करूँगा।"

"हाँ तुम बहुत अच्छे लड़के हो। तुम अपनी बुआ की बात मानते हो।"

इसके बाद मेरा जी कुछ हल्का हो गया। बुआ के अनुरोध से मैंने थोड़ा भोजन भी और किया। निश्चित होकर जब सोने के लिए जाने लगा तो बुआ मुझे अपनी गोद में बिठाकर समझाने लगीं—राजा बेटा रमेश, आ तुझे एक बात और बताऊँ। बिट्टो बडी नटखट है। माँ-बाप की इकलौती लडकी है। दिन भर खेलकूद व ऊधम में लगी रहती है। कोई कुछ कहता है नहीं। दिन दिन बिगडी जा रही है। नहीं तो लड़कियाँ कहीं लड़कों में मारी मारी फिरती हैं? तुम उसके साथ ज्यादा न खेला करो।"

मैंने सिर हिला कर स्वीकृति भरी। मैं यह भी समझा कि यह बिट्टो के साथ न खेलने का उपदेश है। यह विचार मेरे जी में आते ही मेरा मन पलट गया। अभी तक वह बुआ की ओर से मृदु हो रहा था अब कुछ कठोर रुख धारण करने लगा। यद्यपि मैंने प्रकट कुछ भी नहीं कहा परन्तु जी में दुहराया—बिट्टो मेरी अभिन्न हृदया है। वह मेरी अनन्य सखी है। और जिसे कहो मैं छोड दूँगा पर उसे किसी तरह न छोड सकूँगा।"

बुआ ने पता नहीं क्या ख्याल किया? मैंने तो निश्चय कर लिया कि मैं सवेरा होते ही दौडकर उसके पास जाऊँगा—जाऊँगा, न मानूँगा।

मैं सोने के लिए चला गया।

गाँवों का नया बन्दोबस्त हो रहा था। मेरे फूफा के हलके में छः सात गाँव थे। वे अकसर घर से बाहर ही रहते थे। कभी हलके के किसी न किसी गांव में या फिर तहसील में। तहसील घर से छः मील की दूरी पर

थी। पटवारी का कोई सुख का जीवन नहीं है। फिर सैकड़ों की बुराई ऊपर से।

आधी रात को तीन अहीरों को लेकर फूफा हलके से आ पहुँचे बिल्कुल अकस्मात। बुआ को रात को भी जागना पड़ा और सबेरे उठीं तो घर के कामकाज में लग गईं। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का सुअवसर मिल गया। बिस्तर छोड़ते ही मैं अपनी सखी के लिए चल पड़ा। उसे जैसे मेरे निश्चय की सूचना पहले ही मिल चुकी थी। वह जैसे पहले से ही द्वार पर मेरी बाट जोह रही थी। मेरे जाते ही बोली—मैं कब से तुम्हारे लिए खड़ी हूँ।

"मेरे लिए?"

"और नही तो।"

"पर मैंने तो नहीं कहा था कि मैं इस समय आऊँगा।"

"न कहने से क्या होता है?"

"तो तुम जानती थीं मैं इस समय आऊँगा।"

"हाँ।"

"सो कैसे?"

"मैं जानती थी, बस—"

"मैं जानती थी—बिना कारण जानती थी। यह कैसे हो सकता है?"

"तुम नहीं जानते रमेश। मैंने सपना देखा था। मैंने देखा था कि तुम रात देर तक हमारे यहाँ खेलते रहे। इस पर तुम्हारी बुआ ने तुम्हें निकाल दिया। तुम मेरे पास आ गये हो।"

बिट्टो की इस बात से मेरा कंठ सूख गया। मेरे चेहरे का रंग उड़ गया। मुझसे कुछ उत्तर देते न बन पड़ा।

कुछ ठहर कर वह खुद ही बोली—कहीं यह सपना सच हो जाता?

मैं—हाँ, कहीं यह सपना सच हो जाता?

बिट्टो—तो मैं माँ से कहकर तुम्हें अपने पास रख लेती।

"सच ?"

"हाँ, सच।"

"तो लो, मैं आ गया। तुम्हारा सपना सच हो गया बिट्टो।"

"धत्, कहीं सपना भी सच होता है। माँ ने कहा है कि कहीं सपना भी सच होता है ?"

"माँ ने कहा है ?"

"हाँ, मैंने माँ को बताया था कि मैंने रात में ऐसा सपना देखा है।"

"बिट्टो तुम निरी पगली हो।"

"यही तो माँ कहती हैं।"

"माँ बिलकुल ठीक कहती है।"

"किस तरह ?"

"इसी तरह कि तुम सपने की बातों पर भी विश्वास कर लेती हो ?"

"अब तो मैं नहीं करती।"

"अच्छा, अगर वह सच हो जाता तो तुम क्या करतीं ? मेरा अचार रख लेतीं ?"

"ओह, खूब मजे रहते। हम दोनों बाग में चल कर उस बड़े बिल में बाँस डाल कर अजगर को निकालते। चाचा कहते हैं कि वह एक बड़े भारी हिरन को निगल कर बिल मे जा बैठा है। कई दिन बाद जब भूख लगेगी तभी बाहर आयेगा। इससे पहले वह निकलेगा ही नहीं, वहीं पड़ा रहेगा। बोलो, क्या ठीक है ?"

बिट्टो का अजगर पहले दिन से ही मेरे कौतूहल की वस्तु था। कैसा होगा वह ? कितना लंबा, कितना मोटा ? कैसे रेंगता होगा ? कैसे शिकार करता होगा ? नेडार के मुंह से अजगरों के बड़े लंबे-चौड़े क़िस्से सुन चुका था। अभी तक तस्वीरों को छोड़ कर कभी अजगर देखा न था। मेरी उत्सुकता को बिट्टो की बातों ने और जगा दिया। मैंने पूछा— तुम्हारा अजगर हिरन का शिकार करता है ?

"वही तो।"

"तो वह बहुत बड़ा होगा।"

"हाँ, बहुत बड़ा। कहते हैं जब चलता है तो आगन जितने बीच में पसर जाता है। हिरन को खड़ा ही गटक लेता है।"

"सच ?"

"हाँ जी।"

"तो अपन चल कर जरूर उसे निकालेंगे। देखेंगे कितना भारी है।"

"कब चलोगे रमेश ?"

"अभी चलो न, मैंने तो तुम्हारा बाग भी नहीं देखा।"

"बाग मेरा नहीं है। वह बाग तो एक साधु का है। अपने मकान के पिछवाड़े से उसमें जाया जाता है। बाग का मालिक साधु तो न जाने कहाँ गया है। अम्मा कहती हैं वह तीरथ करने गया है। बाग के फाटक में ताला पड़ा है। तुमने देखा है न वह टीन का बड़ा फाटक ? वही तो उस बाग का फाटक है।"

"अच्छा, मे तो समझा था वह किसी का घर द्वार है।"

"हा, उसके भीतर घर भी है। घर साधु के रहने के लिए है। उसमें एक मदिर भी है। मदिर के पीछे बाग है। बहुत लबा, बहुत बड़ा।"

"तो भला बिट्टो, हम लोग बाग के भीतर कैसे पहुचेंगे ?"

"मैं ले चलूगी तुम्हें।"

"कैसे ले चलोगी ? तुम्हारे पास चाबी है ?"

"नहीं जी, मेरे मकान के पिछवाड़े नरकुल की जो झाड़ी है उसके दूसरी तरफ कटीले झाड़ खड़े हैं। वहीं कहीं पर घास से ढका हुआ एक नाला है। उस नाले से हम बाग में घुस चलेंगे। चाचा कहते हैं बरगद और पीपल के बीच मे एक बड़ा-सा बिल है उसी में वह पड़ा रहता है।"

बिट्टो ने आखिरी बात कहते हुए ऐसा चेहरा बनाया जिसमे भय और विस्मय दोनों भाव भरे थे। मेरे बाल-हृदय में भी उनका उद्रेक हुए बिना न रहा। एक हल्के रोमाच से शरीर सिहर उठा।

दोनों जब चलने को तैयार हुए तो प्रश्न हुआ कि बिल में डालने

को बांस कहां से आवे ? यदि घर मे किसी से मागेंगे तो वह न तो बांस देगा, न फिर बाग में जाने दिया जायगा। प्रोग्राम को सर्वथा नष्ट करने की अपेक्षा तो बिना बांस के ही जाना ठीक समझा गया। मैंने कहा—क्या जरूरत है बांस की ? अपन बिल के बाहर से ही झांक कर देख लेंगे। बाँस कहीं बेचारे के चुभ जाय ?

बिट्टो ने बड़ी गभीरता से मेरी बात का समर्थन किया।

हम दोनों थोड़ी दूर गये होंगे कि देखा पीछे बिट्टो की सहेली नारायनी दौड़ी आ रही है। हम लोग ठहर गये। उसने बिट्टो के कंधे पर हाथ रख कर पूछा—कहां जा रहे हो ?

बिट्टो—चुप चुप, अभागी !

नारायनी कान के पास मुंह करके धीरे से बोली—बता तो सही।

बिट्टो—हम जा रहे हैं अजगर को देखने। उसने एक जिन्दा हिरन निगल लिया है।

"बापरे बाप, जिन्दा हिरन ! कितना बड़ा मुंह है उसका ?"

"हलवाई की भट्टी बराबर।"

मैं बोला—उससे भी बड़ा कहो।

नारायनी मैं तो न जाऊँगी भैया ! कहीं मुझे ही गटक जाय ! मेरी नानी तो रो रो कर जान दे देगी।

बिट्टो—हाँ हाँ तू मत जा। हम तुझे ले भी न जायंगे।

नारायनी को वहीं छोड़ हम दोनो गली मे मुड़ गये।

कितना भयानक बाग है—पूरा वन। बरसो से कभी सफाई नहीं हुई है। घास फूस और जंगली लताओं से ढक गई है चहारदीवारी जिसकी। कहीं से भी जिसमे जाने का रास्ता नहीं है। जिसकी दीवार के सहारे सहारे दूर तक गोलाकार भरा है तालाब का गहरा नीला जल। किनारे से जिसमें झांकते ही डर लगता है। मुझे नही मालूम था कि बिट्टो ऐसे दुर्गम और डरावने स्थान पर जाने का साहस करेगी ? मैंने उसके मुंह की ओर ताका पर काहे को डरती थी—वह निडर लड़की !

मैंने कोई उत्तर न दिया। उन्होंने साग्रह पूछा—बोलो, क्या कहते हो रमेश ? जाओगे न ? बुलाऊँ बिट्टो को ?

नहीं—मैंने सिर हिला कर बतलाया। उसी समय बिट्टो कमरे में आई और मुझे पता चल गया कि वह सहीसलामत है। यही मैं जानना चाहता था।

बिट्टो मुझे होश में आया देख कर खुश हुई। चाचा से बोली—चाचा, यह गुलाबजल वापस रख आऊँ ?

चाचा—हाँ, अब इसकी जरूरत नहीं है।

पीछे बिट्टो से मुझे पता लगा कि नारायनी से हम दोनों के बाग में जाने की बात सुनते ही ये तालाब की ओर दौड़ आये थे। भाग्यवश वे उसी समय वहाँ पहुँचे जब मैं अचेत होकर गिर रहा था। उन्होंने ही मुझे पानी में गिरने से बचा लिया। अचेतावस्था में ही वे मुझे घर ले आये।

× × × ×

हँस कर मैंने कहा—बिट्टो, बकरी न आ जाती तो क्या होता ?

बिट्टो—तुम तो कहते थे मौत बकरी बनकर आई है ?

मैं—और आई थी मगरमच्छ बनकर।

बिट्टो—बेचारी बकरी . . .

मैं—हम-तुम दोनों को बचा गई।

बिट्टो सोच में पड़ गई। बकरी के दुर्भाग्य पर उसकी आखों से दो आँसू निकल कर उसके गालों पर ढुलक पड़े। मैंने अपनी कमीज से उसके आँसू पोंछे और समझाया—बड़ा पाजी है तुम्हारा वह अजगर। अब कभी उसे देखने न चलेंगे।

बिट्टो कुछ देर सोच में पड़ी रहकर बोली—वह कैसे अकेला रहता होगा वहाँ ?

मैं—कौन ?

बिट्टो—वही।

"वही कौन ?"

"अपना अजगर—।"

"क्यों उसे कौन वहां खाता है ?"

"क्या मगरमच्छ उसे नहीं पकड ले जा सकता ?"

"मगरमच्छ उसे क्या पकडेगा ? वह तो उसका काका है ।"

"काका है, सच !"

"सच नहीं तो क्या ?"

विस्फारित नेत्रो से वह मेरी ओर देखती रह गई। मगरमच्छ और अजगर के सम्बन्ध पर उसे न जाने क्यो इस कदर विस्मय हो रहा था।

अब मेरे ऊपर बुआ का पहरा कुछ सख्त हो गया। फूफा जब तक हल्के पर रहते या तहसील चले जाते तो उन्हें और क्या काम था ? इन दिनो तो मेरी पूरी पूरी कैद हो जाती। हा, सवेरे शाम जब वे रसोई पानी में लगी रहती तो मैं बिट्टो से मिल आता या वह खुद आ पहुंचती। लेकिन फूफा दो-एक दिन से अधिक बाहर न लगाते। वे आते ही जाते रहते। उनके घर रहने पर मै करीब करीब स्वतन्त्र रहता। तब हम दोनों की जोडी जहां-तहां मनमाना डोलती और मनमाने खेल करती।

एक दिन रात को फूफा लौटे तो बडे चिंतित दिखाई देते थे। इतनी परेशानी मैंने उनके चेहरे पर कभी न देखी थी। उनका मुझसे बहुत थोडा सपर्क था। उन्हें बच्चों से विशेष वास्ता न रहता था। इसीसे मेरे साथ भी साधारण बोलचाल के अलावा बुआ जैसी घनिष्टता न थी। तो भी उनकी परेशानी मेरी नजर से छिपी न रही। मैं सोच रहा था, क्या कारण हो सकता है ?

बुआ का इस ओर ध्यान न था। वे घर में दिया-बत्ती करके अब व्यालू की तैयारी में थीं।

फूफा ने उन्हें बुलाया—सुनती हो जी।

बुआ ने रसोई घर के भीतर से ही उत्तर दिया—हां, बोलो।

"महेशपुर में ताऊन शुरू हो गया है।"

"क्या बहूजी ?"—वह बोली।

"चौधरी रामपाल के घर में चूहे मर रहे हैं।"

"सच ?"

"हाँ-हाँ।"

"तो क्या करोगी ?"

"क्या करूँगी चाची ? रमेश तो मना करते करते वहीं जा पहुँचा था। अभी आया है। बताओ क्या करूँ ? मेरी तो समझ में नहीं आता।"

"ताऊन बड़ी बुरी बीमारी है बहूजी। तुम इसके कपड़े उतरवा कर नहला दो। कपड़े कोई छूना मत। पीछे खौलते पानी में डाल देना।"

बुढ़िया के आदेशानुसार मुझे पूरा प्रायश्चित करना पड़ा। तब कहीं जाकर छुट्टी मिली। मैं बैठा उसे कोस ही रहा था कि फूफा आ पहुचे। आते ही बोले—जवाहर काछी का लड़का मर गया।

चाची—ऐं, क्या कहते हो ?

"सच। बेचारे को गिल्टी निकल आई थी। सबने समझा, ऐसे ही कुछ है। कोई दौड़धूप भी न कर सके और चल बसा।"

"तो अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? गाँव में कई बीमार हैं। ताऊन फैल गया है। घर घर चूहे मर रहे हैं।"

"हा, भगवन् क्या होगा।"

"होगा क्या ? यहाँ तो अब खैर नहीं है।"

"तो कहाँ चलेंगे ? भैया को लिख भेजो।"

"तुम भी पागल हुई हो। अब भैया को लिखने का समय है ?"

"तब ?"

"तब क्या ? मैं कह आया हू देवी की बगिया में अपनी झोंपड़ी तैयार हो रही है। रातों-रात बन जायेगी और सबेरे हमलोग उसमे पहुँचे रहेंगे।

"इस सुनसान जगल में ?"

"तो क्या हुआ ?"

"नहीं, मैं वहां कैसे रह सकूँगी अकेली ?"

"अकेली क्यों ? और भी दो तीन झोपड़ियां वहाँ बन रही हैं। अब यहाँ एक दिन भी ठहरना ठीक नहीं है।"

"देख लो।"

"देख लिया। चलो, उठो। जरूरी सामान इकट्ठा कर लो।"

"मेरे तो हाथ-पैर जवाब दे रहे है।"

"ऐसे काम न चलेगा। फुर्ती करो।"

इसी समय मैंने देखा एक चूहा धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ बिल से निकला। मैंने उसकी आकृति से ही पहचान लिया कि वह बीमार है। मैंने बुआ को बताया—यह चूहा मर रहा है ! यह चूहा मर रहा है !

फूफा और बुआ दोनों दौड़ आये। देखा तो सचमुच वह अपनी अन्तिम सासें ले रहा था। फूफा ने मुझ से कहा—उठ रमेश खाट पर से उतर आ। यह कमरा छोड़ दे। जब तक रहना है छत के कमरे में रहें और फिर चल दें यहाँ से।

हम सब ऊपर के कमरे में जा बैठे। बुआ और फूफा ने जरूरी बरतन, कपड़े और दूसरा सामान बाँधा। मैंने भी भरसक दौड़ दौड़ कर चीजें इकट्ठी कीं। थक जाने पर मेरी पलकें भारी होने लगीं और मैं वहीं सो गया। प्रातःकाल हम अपनी कुटिया में पहुँच गये।— गाँव से बाहर, सुनसान मैदान में। एकान्त होने पर भी नई जगह होने से मेरा जी वहाँ खूब लगा। हृदय में एक अपूर्व गुदगुदी पैदा हुई। नसों में एक नई स्फूर्ति लहराने लगी। मैं इधर उधर घूमकर प्रकृति की शोभा को परखने लगा। इस आनन्द को भोगते समय मेरे मन में एक ही बात आती थी, विद्रो न हुई नहीं तो यह आनन्द कितने गुना बढ़ जाता ?

तीन

पिताजी को समाचार मिल चुका था। वे सोहनपुर आ पहुचे, पर हम लोग तो उससे पहले ही घर छोड चुके थे। इसलिए उन्हें वहाँ कोई न मिला। गाँव में मरी पड रही थी। एक स्मशान जाता था, दूसरा दम तोड़ता था। तीसरे को बुखार चढ़ता था। सब ओर त्राहि त्राहि मच रही थी। पिताजी को कोई यह बताने वाला भी नहीं मिला कि हम लोग कहाँ गये हैं। वे जहाँ तहाँ भटककर अपने तांगे पर चढ़कर गाँव के बाहर चले गये। गाँव में रहना कुछ भयप्रद समझ पड़ा। इसीसे जाकर गाँव से दूर सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे ताँगा खुलवा दिया और एक कपड़ा बिछाकर आराम करने लगे। दोपहरी में कहाँ जाते? भूखे प्यासे वहीं लेट रहे। सोचा, शाम को धूप ढलने पर चलेंगे।

सयोग की बात, वे लेटे ही थे कि मुलुआ उधर से आ निकला। उसने पेड़ के नीचे ताँगा खड़ा देखा तो समझा कोई अफसर आया है। शायद गाँव में गश्त करे और इस तरह बीमारों को कोई डाक्टरी सहायता मिल जाय। उसका यह अनुमान तो व्यर्थ ही जाना था। अफसरों को क्या अपने प्राणों का मोह नहीं होता जो ऐसे सकट के क्षेत्र में अपने को ले जायँ? उन्हें तो और फूँक फूँक कर चलना होता है और अपने कीमती प्राणों की रक्षा करनी होती है। खैर, मुलुआ पिताजी को पाकर प्रसन्न ही हुआ। उसने उन्हें हमारा पता ही नहीं बताया बल्कि साथ ले आया। वे संध्या से पहले ही आ पहुचे। निर्जन में रहते कई दिन बीत चुके थे।

हम सब ऊब गये थे। पिताजी के आजाने से नई रौनक हो गई। उस दिन संध्या का समय हमारे लिए कितना सुहावना था! कई दिन बाद पिताजी से मिलना हुआ था और उस समय जबकि हम किसी से भी मिलने को तरस रहे थे। मेरा जी उत्फुल्ल हो गया। मेरी बुआ भी इतने संकट के बीच में से निकलकर अपने भाई से मिल पाईं, अत. उनकी भी आँखें सजल थीं और कण्ठ अवरुद्ध।

पिता जी ने उलाहना दिया—चंपा तुम्हें तो घर चली आना था। भला इस जंगल में रहने की सलाह किसने दी ?

बुआ बोलीं—मैंने तो यही कहा था भैया, पर मेरी बात यहाँ सुनता कौन है ?

पिता जी ने फूफा की ओर अर्थभरी दृष्टि से ताका। उस दृष्टि का आशय भली-भांति समझ कर फूफा बोले—आने का समय होता तो हम सीधे वहीं आते। सकोच तो कुछ था नहीं। मैं तहसील गया था, तब तक कोई खास बात ही न थी। दो दिन में ही हालत बदल गई। आया तो कुछ सूझ ही नहीं पडा। जल्दी जल्दी में यह प्रबन्ध कर लिया।

"यह तो ठीक ही किया"—पिता जी ने स्वीकार किया, साथ ही कहा—"अब क्या हुआ है ? अब चलो कल यहा से चल पड़ें।"

फूफा—अब तो जम पाये हैं। अब फिर उलट पुलट करना क्या ठीक होगा ?

पिता जी—ठीक क्यो नहीं होगा ? दो गाडी बुलाने की बात है। सामान भरवा दो। आदमी सब तांगे में चल सकेंगे।

फूफा—अच्छा, देखा जायगा। आप थके होंगे। चलो, खा-पीकर आराम करें।

पिता जी ने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—रमेश, गाँव में जी लग गया ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति जताई। फिर उन्होने पूछा—तू बुआ की बात तो मानता है ? उन्हें परेशान तो नहीं करता ?

मैंने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बुआ ने स्वयं मेरी ओर से कहा—बुआ को परेशान क्यों करेगा ? बुआ क्या परेशान किये जाने के लिए होती है ? रमेश तो बड़ा भला लड़का है। बुआ से पूछे बिना वह कोई काम नहीं करता।

यही तो अच्छे लड़कों के काम हैं—पिता जी ने कहा।

कुछ याद करके बुआ बोली—अगली एकादशी को रमेश नौ साल का हो जायगा, दशवीं शुरू होगी। अब बच्चा नहीं है। सयाना हो गया है। मास्टर ने कहा था नाम लिख लेंगे तब तक यह बाधा खड़ी होगई।

पिता जी—घर जैसे पढ़ता है पढ़ता रहे। अभी यही काफी है।

फूफा अब तक मुलुआ से कुछ पूछताछ कर रहे थे। वे आकर बोले—तुमने कुछ सुना है ?

बुआ ने माथे के पल्लू को थोड़ा ठीक करते हुए जिज्ञासा की—क्या ?

"चौधरी चल बसे।"

चौधरी ?—बुआ ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"चौधरी रामपाल।"

"रामपाल !—तुम क्या करते हो ? वे तो उसी दिन गाव छोड़े जा रहे थे ?"

"जा तो रहे थे पर मुलुआ कह रहा है।—"

"मुलुआ क्या कह रहा है ?"—बुआ ने कहा।

मुलुआ भीतर आ गया, बोला—बहूजी, मैं ठीक कह रहा हूँ। चौधरी आज सबेरे खतम हो गये। चौधराइन खटिया पर पड़ी घड़ियाँ गिन रही हैं।

'पर वे तो गाँव छोड़कर जा रहे थे ?"

बिल्कुल जाने को तैयार थे। गाड़ी मे सामान लाद दिया गया था। अचानक बगल मे कुछ दर्द मालूम पड़ा। थोड़ी देर के लिए गाड़ी को रोक दिया, बैलों को खुलवा दिया। दर्द के साथ ज्वर हुआ, फिर वे न उठ सके। उनके भैया शहर से डॉक्टर लेने गये हैं। वे अभी तक लौट कर

भी नहीं आ पाये है।—आशा चौधराइन की भी नहीं है। वेचारी छोटी-सी लड़की, क्या नाम है उसका बिट्टोरानी, वह भूखी-प्यासी धूल में लोट रही है।"

"राम-राम !"—कहती हुई बुआ के आँखों से गंगा-जमुना की धारा फूट पड़ी।

मुलुआ—बहुजी, सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि उनकी लाश को उठाने के लिए गांव में आदमी नहीं मिल रहे हैं। बैलगाड़ी भी नहीं मिल पाती हैं।

रोते-रोते बुआ बोलीं—ऐसी बुरी हालत हो गई है! हाय, उन चौधरी की लाश उठाने को आदमी नहीं जुट रहे, जिनकी आँख के इशारे पर गाँव का गाँव झुक पड़ता था! भगवान्, उस भोली बच्ची के भाग से उसकी माँ को तो बख्श दो!

मैं नहीं जानता यह सब सुनकर मैं कैसा हो गया था? मेरे हाथ-पांव जड़ हो गये। अपनी सखी की विपद् का अनुमान करके मैं कातर हो उठा था। उसके विशाल शरीर वाले पिता के अन्त की बात मुझे किसी तरह सच नहीं मालूम हो रही थी। न मैं यही सोच पा रहा था कि बिट्टो की मधुरभाषिणी माता, जिसे मैं चलते समय हँस-हँसकर बातें करते छोड़ आया था, मृत्यु-शय्या पर पड़ी होगी। एक बार मेरी आंखों के सामने छटपटाते हुए चूहे आते और एक बार बिट्टो के पिता-माता। उनके लिए एक-सी यंत्रणा की कल्पना करते भी मुझसे नहीं बन पड़ता।

मैं नहीं जानता संसार में सत्य क्या है, जीवन या मरण? न मैं जानना ही चाहता हू। जिसका एक सिरा जीवन.के हाथ में हो और दूसरा मरण के, उस सत्य की उपलब्धि के लिए मैं वितर्क करने नहीं बैठता! मुझे अपनी उस सहेली के लिए दो आसू गिराने ही हैं जो जीवन की देहरी पर पैर रखते ही दुर्भाग्य के पंजे मे दबोच ली गई।

मैं भी तो अभागा ही था। जीवन की परम निधि माता को मैं खो चुका था। उसके स्नेह की कोमल छाया से मैं वञ्चित था; अतः मुझे ही

सच्चा अधिकार था कि मैं अपनी सखी के लिए सहानुभूति के गर्म गर्म आँसू गिराऊँ। उसके कठोर पथ को सजल मृदुल करूँ, उसकी अनजान में ही सही।

आगे सुनने और जानने की मुझे इच्छा ही नहीं रही। मैं जाकर लेट गया और ओढ़ने की चादर से मुँह को बन्द करके रोने लगा।

आँसू चुक गये थे, ऐसा तो नहीं कह सकते। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि उमड़ा प्रवाह बहजाने पर कुछ शाति हुई। रात काफी हो गई थी। पिताजी मेरे पास ही आकर लेटे, तभी मेरी मनोदशा स्वस्थ हो पायी।

अपने को बटोरकर मैंने पिता जी से पूछा—जीजी कब आयेंगी, बाबूजी?

"मैं यहाँ से जाते ही बुला भेजूँगा, उसका पत्र आया था। तुम्हें याद किया था। पूछा था, रमेश बुआ के साथ हिलमिल तो गया है?"

"जीजी आयें तो—"

"तो तुम्हें वहीं बुला लेंगे। जीजी के साथ कुछ दिन रह लेना।"

अनिर्वच आनन्द से मेरा हृदय भर गया। मैंने कहा—"हाँ।"

इसके बाद नई भाभी और भैया की बात चली। भैया की तरक्की हो गई है। सभव है वे दूसरे जिले में बदल दिये जाँय तब भाभी को उनके साथ जाना होगा। हाल फिलहाल न भी जाँय तो कुछ दिन बाद जाँयगी। निश्चय ही जांयगी। भैया को छोड़कर सदा के लिए घर कैसे रह सकती हैं? आखिर भैया को भी तो रोटी पानी की सुविधा तभी हो सकेगी।—यह सब बातें पिता जी ने मुझे कहीं।

मैं सुनता रहा। मैंने देखा, इतना सब कहकर भी पिताजी ने अपने लिए कुछ नहीं कहा। उनके न कहने पर भी उनके चारो ओर जो अभाव की निस्पन्द परिधि घिरी हुई थी वह मेरे बाल-मन में जागे बिना न रही। पिता जी की अवस्था क्या होगी? यही कोई पैंतालीस के लगभग। इस अवस्था मे, और इसके बाद, जब सगी की आवश्यकता बढ़ती जाती है, और उसके बिना एक क्षण भी कटना कष्ट कर होता है, तभी वे संगीहीन

एकाकी जीवन बिता रहे थे। वे अदृष्ट के निष्ठुर परिहास के पात्र होकर भीतर ही भीतर रिक्त हुए जा रहे थे। सब तरह से सम्पन्न परिवार के स्वामी होते हुए भी वे अपने जीवन में एक खँडहर की प्रतिच्छाया का का आभास पा रहे थे। वे किसी से इसकी शिकायत नहीं करना चाहते थे। किसी पर अपना बोझ भी नहीं डालना चाहते थे। जैसी भी हों, परिस्थितियों से वे लड़ने को तैयार थे। इसीलिए अपनी चर्चा चलाये बिना निःसंग भाव से वे सारी बातें मुझे कह गये। भला मुझ बालक का क्या मूल्य था? मैं उस समय समझता ही क्या था? पर उन्होंने मुझे इसके योग्य समझा कि मुझे समस्त परिस्थिति से अवगत कर दें।

इसी तरह विचार करते करते कब मुझे नींद आगई, नहीं कह सकता। सबेरे तड़के मेरी आंख खुली। आज रोज जैसी निर्जनता का वातावरण न था। कुछ नई रौनक-सी लग रही थी। कुछ चहलपहल भी ज्यादा थी। कुटिया से बाहर आने पर, मालूम हुआ कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो तीन कुटियां और खड़ी हो रही हैं। लोग उन्हें खड़ी करने में लगे हैं। आज ही उनमें रहने के लिए गांव के और कई लोग आ रहे हैं। मैंने बड़े उत्साह से फिर फिर कर सब कुटियों को देखा।

पिता जी दस बजते बजते चले गये। जाते समय मेरे सिर पर बड़े प्यार से हाथ फेरा। बुआ का आज्ञाकारी रहने के लिए कहा, जो मैंने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया।

नई कुटियों में से एक में डाकखाने के बाबू आकर रहे। दूसरी में ठाकुर चतुरसिंह। ठाकुर चतुरसिंह सोहनपुर के पास ही दूसरे गाँव के रहनेवाले हैं। उनके गांव दौलतपुर में स्कूल है। सोहनपुर के लड़के वहीं पढ़ने जाते हैं। तीसरी कुटिया को पंडित दीनानाथ ने सपरिवार आबाद किया है। दीनानाथ सोहनपुर के ही नहीं आसपास के कई गाँव के पुरोहित हैं। तुलसीकृत रामायण में उनकी अबाध गति है। सत्यनारायण जी की कथा कहने में बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके कथावाचन में यह विशेषता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। उन्हें कितने पुराण याद हैं, कितनी स्मृतियाँ

कण्ठ हैं, इसकी थाह पाना कठिन है। दूर दूर तक उनका पांडित्य प्रशंसा प्राप्त कर चुका है परन्तु बड़े दुख की बात है कि उनका पुत्र उनकी विद्या से सर्वथा ही वञ्चित रहा है। उनका इकलौता राधावल्लभ साधारण अक्षर ज्ञान से अधिक कभी आगे नहीं बढ़ पाया। पंडित दीनानाथ इसका श्रेय अपनी सुलक्षणा गृहिणी को ही देते हैं। उसने ही लाड़ प्यार की नदी बहाकर राधावल्लभ को डुबा दिया है। पंडिताइन जी को इसका विरोध करने की जरूरत नहीं होती। अपने स्वामी के आरोपों को वे सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं। लेकिन लोगों का ख्याल है कि राधावल्लभ के निर्माण में पंडित जी का भी उतना ही हाथ है। इन्होंने भी उसे उतनी ही छूट दी है। उसी तरह प्यार किया है। नियन्त्रण के अंकुश में कभी बाधने की चेष्टा नहीं की। जो भी हो उनका राधावल्लभ एक उद्दंड और निरकुश किशोर है। पंडित जी का घर गाँव के दूसरे सिरे पर होने के कारण मेरा राधावल्लभ से परिचय नहीं हुआ था। अब जब हमारे चार छ परिवार इस प्रकार एकत्र हुए तो राधावल्लभ स्वभावत मेरे निकट आया।

उस लड़के में मैंने गजब का साहस पाया। वह किसी बात में डरता तो था ही नहीं। एकदम निश्शक और निडर। भागते हुए घोड़े की नंगी पीठ पर फलाग कर इतनी सरलता से जा बैठता था जैसे आराम कुर्सी पर आराम कर रहा हो। वृक्षों की डालियों पर बन्दर की तरह फुदकता था। अँधेरी काली रात में स्मशान में जाकर घण्टों साधना करता। कण्ठ इतना मधुर जैसे सधी हुई वीणा। गाता तो प्राणों में जादू कर देता। जिस गिरोह में शामिल हो जाता तुरन्त उसका नेतृत्व करने लगता। किसी बात को कभी सीधे ढँग से, चली आती परम्परा के अनुसार, न सोचता। नए ही दृष्टिकोण से हरएक विषय को देखता। हर समय नये उपद्रव को खड़ा करता। नई शरारत में शामिल होता। कभी चुपचाप न बैठता। कोई न कोई काम करता ही रहता।

इसके विपरीत डाक बाबू का छोटा भाई रामचरण एकदम बछिया का ताऊ था। न रग में न रूप में। न चतुराई में न शरारत में। बोदा,

कायर और भीरु। किताबों का कीडा। धान-पान सा शरीर। पढ़ता था मिडिल में, पर बात बात में दूसरों का मुँह ताकता था। राधावल्लभ की एक भी चपेट सह नहीं पाता था। उसे नित्य ही वह घोडा बनाकर उस पर चढ़ता था। यदि रामचरण आनाकानी करता तो राधावल्लभ उसे खींच कर गिरा देता और उसकी पीठ पर चढ़ बैठता। बेचारा विवश हो जाता। कभी इनकार करता तो वह दो चार घूंसे देकर कहता—चला है बडा सभ्य बनने। ब्राह्मण के पैर से बढ़कर भी कोई पवित्र चीज दुनियाँ में है? वही मैं तुझे दे रहा हूँ और तू भाग रहा है। ले इन्हें ले, ये मेरे चरण ही तुझे मोक्ष देने वाले हैं।

इस तरह पाद-प्रहार करके वह उसे अपनी बात मानने को मजबूर करता था। रामचरण उससे दूर दूर रहना चाहता पर राधावल्लभ खदेड़ लाता। गाँव में होता तो राधावल्लभ को भी शायद उसकी जरूरत न पड़ती परन्तु यहाँ और था ही कौन। इसलिए वह रामचरण को छोड़ नहीं सकता था। फिर रामचरण में एक विशेषता भी थी। वह बड़ी मीठी मजाक कर लेता था। उसकी चुटकी बडी गजब की होती थी। राधावल्लभ उसकी फबतियों पर जी-जान से निछावर था। यदि यह गुण इसमें न होता तो शायद राधावल्लभ उसकी हड्डी-पसली तोड़ डालने में कसर न करता।

हम तीन लड़कों की मंडली में चौथी थी चतुरसिंह की बेटी सुचेता। वह भी खूब थी। सुन्दर, सुडौल, भरा शरीर, पुष्ट अंग। मुझे वह अपनी दया का पात्र समझती थी। राधावल्लभ को प्रतिद्वन्दी। रामचरन के प्रति वह कभी कोमल और कभी कठोर दिखाई देती।

कितनी चंचल थी वह लड़की! मेरी बुआ तो उसे देखते ही कहतीं—आगई बिजलीरानी? भला, तुम कभी घर में भी टिकती हो? तुम्हारी माँ कुछ नहीं कहतीं?

सुचेता—माँ क्या कहेंगी? माँ की बात सुनता कौन है? बहुत बकेंगी तो उनकी जीभ को लकवा मार जायगा, इस बात को वे जान गई हैं।

अब वह मानेगा तो नहीं।

हमने देखा, सचमुच ही एक आदमी भगा चला आता था। कभी कभी एक क्षण को रुककर दो चार गालियाँ देता और फिर दौड़ने लगता था। अभी भी वह करीब ढाई-तीन फरलांग की दूरी पर होगा।

मैंने घबड़ाकर कहा—तो भागो न, यहाँ अब क्या करते हो ?

मालूम पड़ता था रामचरन तैयार है। पर जब उसने देखा कि सुचेता उसी तरह बैठी अमरूद खा रही है तो वह ढीला पड़ गया। मैंने दौड़कर राधावल्लभ की बाँह पकड़ी और कहा—चल राधे भैया भाग। नहीं तो हम सब पकड़े गये।

उसने झटके से मुझे दूर ढकेल दिया। कहा—कायर, डरता क्यों है ? अमरूद खाकर अब भागना चाहता है !

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ अब क्या करूँ ? तब तक वह आँधी मेरे ही सिर पर आ पहुँची। लाल लाल आँखों में रोष की ज्वाला भरे दोहरी देह के एक प्रौढ़ दढ़ियल ने झपट कर मेरे एक हाथ जमाना चाहा परन्तु मैं कुछ इस तरह मुड़ गया कि उसका वार खाली गया। उसने राधावल्लभ का पीछा किया। राधावल्लभ ने बाँस इस तरह फेंका कि वह उसी में उलझकर गिरा। इतने में वह तो रफूचक्कर हुआ। उसने फुर्ती से उठकर राधावल्लभ को पकड़ना चाहा पर व्यर्थ। तब गालियों की बौछार करता वह दूसरी ओर मुड़ा। उसका लक्ष्य इस बार थी सुचेता, जो निडर भाव से बैठी अमरूद खा रही थी।

मौला को अपनी तरफ आते देखकर सुचेता ने डपट कर कहा—बूढ़े इतना बकता क्यो है ?

बूढ़ा नहीं रुका। निश्चय था कि वह वार करता, रामचरन झपट कर उसके बीच में आगया, बोला—खबरदार, जो उधर कदम बढ़ाया।

मौला रुक गया। मैंने देखा, रामचरण का मुँह लाल हो रहा था। मौला ने पैंतरा बदल कर कहा—तुमने यह बाग कैसे उजाड़ा ?

रामचरन—तुम लड़की पर हाथ कैसे उठाते हो ?

इस पर बूढ़े मौला के जी में जो आया वह उसने बका, परन्तु रामचरण अडिग खडा रहा। उसने कहा—तुम्हारे अमरूदों का नुकसान हुआ वह तुम ले सकते हो, लेकिन तुम एक लडकी पर हाथ नहीं चला सकते।

गालियों की वर्षा करते हुए मौला ने कहा—साहूकार के बेटे बनते हो और इस तरह बागों में चोरी करते फिरते हो। बड़े चले वहां से। अभी थाने में पहुँचाऊँगा तो सब हेकडी भूल जाओगे।

सुचेता, रानी की तरह आज्ञा के स्वर में बोली—बस, बहुत हो चुका बुड्ढे! अब जबान को बन्द कर।

मौला—सुअर की बच्ची हरामजादी—

वह कुछ और कहने जा रहा था कि रामचरन ने कसकर एक तमाचा उस बुड्ढे के गाल पर इस तरह मारा कि वह हक्का बक्का रह गया। मैं भी विस्मित हो रहा।

सुचेता ने झट रामचरन को हटा लिया। उस समय न जाने क्या दुर्घटना होजाती। वह बच गई। तब तक कई लोग आ पहुंचे। बुड्ढे मौला को जब्त करनी पडी। हम तीनों में से किसी ने एक भी अमरूद नहीं तोड़ा था। हम तो अमरूद खरीदने आये थे। अमरूद तोडनेवाले को मौला पकड नहीं सका। वह तो उसके देखते देखते भाग गया। हमने जो दो-दो अमरूद खाये थे। उनके पैसे हम दे सकते थे। अगर हम लोगों की शरारत होती तो जब मौला दूर से चिल्लाता दौडा आरहा था। तभी हम लोग भाग जाते। —बात इस तरह बनजाने पर लोगों ने फैसला हमारे पक्ष में दिया। बूढ़े मौला को कायल किया। सुचेता का लडकी होना भी हमारे पक्ष में गया। उसके प्रति मौला ने जो असद् व्यवहार किया था। उसके लिए उसे भर्त्सना मिली। रामचरन का एक थप्पड़ खाया वह ऊपर से। वह किसी ने गिना भी नहीं। बेचारा बुड्ढा लोहू का घूँट पीकर रह गया। मामला पंचो के हाथ में चला गया था। क्या करता? मामला भी कैसा? बुड्ढे और लडकों के बीच का। लोग

हँसते तो मौला पर, झिड़कते तो मौला को।

आखिर हम विजयी होकर बाग से निकले। खेतों से होते हुए अपने घर की ओर चले। कुछ दूर गये होंगे कि अरहर के एक घने खेत से निकलकर राधावल्लभ हमारे सामने आ खड़ा हुआ। वह हँस रहा था पर उसका चेहरा फीका पड़ गया था। आज वह पराजित था। कायरता का इस तरह प्रदर्शन करने के बाद अब उसमें यह साहस नहीं था कि हमारे सामने मुँह कर सके। जब उसका यह हाल था तो दुबले पतले रामचरन का चेहरा गम्भीरता से उद्दीप्त था। उसने आज पुरुष के योग्य काम किया था। एक नारी के सम्मान की रक्षा की थी। उसकी छाया में खड़ी सुचेता इसका परिचय दे रही थी। वह बिना बोले ही बता रही थी कि हममें से रामचरन ही उसके अधिक योग्य है।

कुछ क्षण इसी प्रकार खड़े रहे। मैंने कहा—अब यहाँ क्या काम है? चलते क्यो नहीं हो?

सब लोग चल पड़े, मौन और विचारमग्न।

× × × ×

उस दिन से सुचेता में मैंने एक परिवर्तन देखा, नारी सुलभ लज्जा का उदय। वह चंचल थी, उद्दंड थी, मुखर थी। हमारे साथ बराबर खेलती थी पर जैसे अपनी विशेषता का भान उसे हो गया था। उसकी अब हरएक चेष्टा में इस विशेषता का आवरण पड़ा रहता था।

यह लालित्य मेरी आँखों ने ही देखा हो सो बात नहीं। राधावल्लभ से भी वह अदेखा न रहा। यह तो स्वाभाविक ही था। वह मुझसे अवस्था में बड़ा था। आश्चर्य तो मुझे अपने लिए होता है, मैं किस तरह उसे लक्ष्य कर पाया। एक दिन राधावल्लभ ने मुझसे कहा—आजकल सुचेता बड़ी घमंडी हो गई है।

मैं—क्यों क्या किया है उसने?

राधावल्लभ—क्या किया है? देखते नहीं हो, हम लोगों से मिलती कहाँ है?

मैं—अभी तो तुम्हारे साथ ही खेल रही थी ।

राधावल्लभ—सिर्फ दिखाने के लिए ।

मैं—सो कैसे ?

राधावल्लभ—तुम क्या जानो ? देखते नहीं हो, उस रामचरन को । दिन भर उसी के गले पड़ी रहती है ।

मैं—उसने उसे बचाया था ।

राधावल्लभ—मेरी ओर घूर कर धीरे धीरे गुनगुनाया—बचाया था, हूँ ।

मैं—तुम तो भाग गये थे । रामचरन न होता तो मौला उसकी बुरी हालत कर डालता ।

राधावल्लभ—अच्छा होता । वह बेटी इसी लायक है ।

मैं—इसीसे वह रामचरन पर भरोसा करती है ।

राधावल्लभ—रामचरन बदमाश है । मैं उसे इतना पीटूँगा कि बच्चा याद करेगा ।

मैं—तुम व्यर्थ बात करते हो ?

राधावल्लभ—मैं फिजूल बात करता हूँ ? तू भी ऐसा कहता है ?

मैं—नहीं तो क्या कहूं ? भला, तुम रामचरन को क्यों पीटोगे ? क्या इसीलिए कि उसने सुचेता की रक्षा की थी ?

राधावल्लभ—चल-चल, चुप रह । बहुत बातें न कर । नहीं तो—

मैं—आवेश में आगया । मैंने कहा—नहीं तो क्या मुझे भी पीटोगे ?

राधावल्लभ—हाँ, पीटूँगा ही नहीं हलुआ बना डालूँगा ।

मैं— अच्छा बना डालना । देख लेंगे ।

मेरे इस तरह तन जाने से राधावल्लभ कुछ धीमा पड़ा । बोला—तू कुछ नहीं समझता । फिजूल दूसरों की लड़ाई लड़ता है ।

मैं— मैंने क्या किया ?

राधावल्लभ—बस रहने दे । चुपकर ।

मैं—मैं कब किसी के मुँह लगता हूँ ?

राधावल्लभ—हाँ, मेरी तेरी तो कोई लड़ाई नहीं है।

मैं चुप रहा। कोई उत्तर नहीं दिया। वह यह देखकर बोला—रामचरन कैसा लड़का है। अगर तू यह जानता होता तो कभी उसकी तरफदारी न करता।

"मैं—तरफदारी कब कर रहा हूँ?"

"मैं तुझे बताऊँ—वह कैसा है?"

"नहीं।"

"सुनेगा ही नहीं?"

"मैं किसी की बुराई नहीं सुनता।"

"लेकिन मैं तो कहूँगा। तू अपने कान बन्द कर ले।—डाकबाबू का भाई रामचरन एक बदनाम लड़का है। उसने स्कूल के कितने ही लड़के और लड़कियों को बिगाड़ दिया है। वह –"

"लो, मैं जाता हूँ।"—कहकर मैं चलने लगा।

राधावल्लभ ने मेरा हाथ पकड़ लिया। कहा तू बिना सुने नहीं जा सकता। सुन, तू बहुत उसके साथ मत रह। वह तुझे भी बिगाड़ देगा।

मैंने अपना हाथ झटक कर छुड़ा लिया और कहा -रहने दे, रहने दे। अपने उपदेश अपने पास ही रहने दे।

मैं राधावल्लभ को वहीं छोड़कर भाग आया।

थोड़ी देर बाद ही बाँस के झाड़ की आड़ से झाँककर मैंने देखा कि राधावल्लभ, सुचेता और रामचरन तीनों ढाक के वृक्षों की छाया में बैठे हँस हँसकर बातें कर रहे हैं। राधावल्लभ ने कोई ऐसी बात कह डाली है जिससे सुचेता लोट-पोट हुई जा रही है और रामचरन ईषत् क्रोध से उन दोनों की ओर देख रहा है।

इस तरह रामचरन की नजर बदली देखकर सुचेता ने उँगली से मना करते हुए कहा—देखो, रो मत देना।

रामचरन—मैं क्यों रोने लगा?

राधावल्लभ रोने की आदत जो है।

रामचरन बिगड़कर—मेरी रोने की आदत है ! मैं कायर नहीं हूं ।

राधावल्लभ निष्प्रभ होकर—नहीं नहीं तुम बड़े बहादुर हो। इसे कौन नहीं जानता। आओ, जरा देखें तो तुम्हारी बहादुरी।

राधावल्लभ ने रामचरन का हाथ पकड़ना चाहा। रामचरन पीछे हट गया। राधावल्लभ ने और आगे बढ़कर उसे पकड़ ही तो लिया। दोनों में गुत्थमगुत्था होने लगा।

सुचेता ने राधावल्लभ को रोककर कहा बस बस, रहने दो। छोड़ो। रामचरन कुछ चिढ़ा हुआ था। वह बोला—तुम्हें बीच में कौन डालता है ?

सुचेता—तो मैं बीचबिचाव भी न करूँ ?

रामचरन—नहीं।

सुचेता—मुझसे इस कदर नाराज हो गये ?

राधावल्लभ रामचरन को छोड़ कर अलग खड़ा होगया था। वह हँसता हुआ कह उठा—अब मुझे जोर आजमाने की जरूरत नहीं है। अब तुम दोनों आपस में ही निपट लो।

मैं अब तक देख ही रहा था। अब मैं भी जा पहुँचा। मैंने पूछा—यह सब क्या हो रहा है ?

मेरे आगमन से राधावल्लभ को जरूर कुछ झिझक हुई होगी। वह बातों को इधर-उधर करने लगा। सुचेता ने मेरे प्रश्न का उत्तर देने की शिष्टता दिखाई, बोली—रमेश, तुम फैसला करो। अगर दो आदमी लड़ते हों तो तीसरा क्या करे ?

मैं—उनकी कुश्ती को इतमीनान से बैठकर देखे। जरूरत समझे उसे बढ़ावा दे। जरूरत समझे उसे दांव-पेंच बताये।

सुचेता को इस उत्तर की आशा न थी। उसने सहास्य कहा—तब मैं जरूर दोषी हूं।

मैं—लेकिन तुम्हारे चेहरे से यह नहीं मालूम पड़ता कि तुम अपने दोष को मान रही हो। उससे तो ऐसा लगता है कि आज तुमने किसी

पर बड़ी विजय पायी है या कुछ ऐसा तुम्हें मिल गया है जिसके पाने की कोई आशा न थी।

रामचरन मेरी ओर कुछ जिज्ञासा भरी दृष्टि से देख रहा था। राधावल्लभ एक ढेला उठाकर सामने पेड़ पर बैठी हुई गिलहरी पर निशाना ताक रहा था।

सुचेता—अरे रमेश, मैं तो तुम्हें छोटा ही समझती थी। तुम तो मेरे मन की बात भी जान लेते हो। इतनी विद्या है तुम में ?

मैं—मैंने जो कहा है उसे कहने के लिए किसी विद्या की जरूरत नहीं पड़ती। अगर तुम सचमुच अपनी गलती समझतीं तो इतनी प्रसन्न न होतीं। तुम्हारी यह शरारत भरी हँसी तुम्हारी बात के विरुद्ध है।

सुचेता—बात यह है कि—अच्छा जाने दो।

मैं—तो भी कहो न।

सुचेता—आज पुल पार जाने की बात थी। मैंने इनसे (रामचरन) से कहा था, मैं पुल के पास ही पहुंची रहूगी। वहीं सब को लेकर आजाना। ये बेचारे धूप में वहाँ तक हो आये। इधर मैंने देखा राधावल्लभ पेड़ पर चढ़े गा रहे हैं। मैं यहाँ आगई। इन्होंने मुझे देख नहीं पाया। मैं छिपकर गाना सुनती रही। मैं ऐसी भूली कि मुझे तो फिर याद भी नहीं रहा।—मेरी भूल हुई जो मैंने राधावल्लभ को नहीं पुकारा। नहीं तो हम सब भी वहाँ पहुच गये होते।

रामचरन गुमसुम एक तरफ बैठ गया था। सुचेता ने ढाक के फूलों का एक गुच्छा लेकर रामचरन के मुँह पर निशाना मारा। उससे भी वह विचलित न हुआ। मैंने कहा—तुम्हारा अपराध छोटा नहीं है। तुम बाकायदा माफी माँगो।

सुचेता—कैसे माँगूँ ?

मैं—इस तरह दोनों हाथ बाँधकर घुटनों के बल बैठ जाओ और सात बार सिर जमीन पर रक्खो और उठाओ।

सुचेता—यह तो राधावल्लभ करे। वह न गाता न मैं रुकती।

इस प्रकार मैंने बहुत प्रयत्न किया। सुचेता ने भी मनाया पर रामचरन न माना। वह निष्ठुर उसे आँखों में आँसू भरे ही छोड़कर चला गया। उसके चले जाने के बाद राधावल्लभ ने सुचेता को मनाते हुए कहा—वह तो इस तरह गुमान करता है और तू पैरों पड़ी जाती है। जाने क्यों नहीं देती उसे ? वह बड़ा घमंडी है।

उसने मेरी ओर देखकर इस तरह यह सब कहा जैसे यह बता रहा हो कि देख लिया भाई ! मैंने पहले ही कहा था न।

मैंने तो कोई उत्तर न दिया। उस दिन जो घूमने का निश्चय था वह रह गया। सभा बिखर गई। राधावल्लभ को छोड़कर किसी में उत्साह न रहा।

चार

प्लेग तो चली गई है, लेकिन गांव उजड़ गया है। आदमी, औरतें और बच्चे सभी को बिना भेदभाव के वह अपने साथ ले गई। जैसे सावन भादों में नदी में एकाएक बाढ़ आ जाने से पार्श्व देश वीरान हो जाता है उसी तरह बीमारी की बाढ़ तो चली गई थी पर उसके पैरों से कुचली और विध्वंस हुई बस्तियाँ आदमी को काटने को दौड़ती थीं। अभी कुछ ही दिन पहले यही सोहनपुर कितना गुलजार और मुखरित गांव था। अब सब ओर सुनसान हो गया है। वे ही घर जिनमें बच्चे हँसते किलकते, रोते-गाते रहते थे, नीरव आँसू बहा रहे हैं। जिन घरों में सबेरे छाछ

बिलोई जाती थी, दोपहर को चक्की चलती थी, सध्या समय लोरियाँ गाई जाती थीं उनमें बैठकर कोई दिया-बत्ती करने वाला नहीं है। इतनी जल्दी सब अपने अपने रास्ते चले गये। जो समझते थे कि यह घर मेरा है, यह धन मैंने हाड़फोड़ मेहनत करके पैदा किया है, इसे हमारे सिवा कोई न बिलस पाये, वे सब धुएँ की भाँति आकाश में मिल गये। अपना-पराया सब यहीं छूट गया। जिनके लिए लड़ाई-झगड़े किये थे, मामले मुकदमें चलाये थे, वे अधिकार किसी के साथ नहीं जा सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाडाल सब एक ही रास्ते आये थे, और एक ही रास्ते गये। मृत्यु ने ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, छूत-अछूत किसी का विचार नहीं किया। सबको एक ही सेज पर सुलाया और एक ही चिता पर भस्म कर दिया।

हम अब घर लौट आये हैं, जनहीन नीरव गाँव में। दिन में ही जहाँ साँय-साँय होती है। एक तिहाई आदमियों की बलि देकर सोहनपुर काल देवता से मुक्त हो पाया है। ऐसे चार छः परिवार ही बचे हैं जिन पर इस विभीषिका ने कोप नहीं किया। उनमें एक हमारा घर और दूसरा राधावल्लभ का। डाकबाबू भी मुक्त रहे हैं पर वे गाँव के कदीमी बाशिंदा नहीं हैं।

गाँव में पैर रखते ही क्यों कई दिन पहले से मेरा चित्त उचट कर अपनी पुरानी सखी की खोजखबर लेने को आतुर हो रहा था। पितृहीना थिट्टो को दो सहानुभूति के शब्द कहने का अवसर मिल पायेगा, इसी एक बात से मेरे निकट इस नवीन परिवर्तन का महत्व कम नहीं था। नये साथियों की साहसिक मंडली में कम आकर्षण नहीं था। रोज कोई न कोई नई घटना हम लोगों के जीवन से मेल-मिलाप करने को तैयार खड़ी रहती थी। वह सब छूट जाना था। गाँव में जाकर तो राधावल्लभ और रामचरन से हर समय का मिलना नहीं हो सकता था। और सुचेता, जो हमारी मंडली की प्राण थी, वह तो अपने गाँव चली जायगी। उससे फिर न जाने कब मिलना हो? इन दुश्चिंताओ के होते हुए भी मैं घर लौट आने में दुखी नहीं था। एक तरह का उत्साह मुझे भीतर से प्रेरित करता था। इसीसे मैं घर पहुँचते ही थिट्टो की प्रतीक्षा में इधर उधर झाँकने

लगा। आशा थी, वह अवश्य मेरे लिए कहीं सड़क पर या गली के कोने पर या दीवार के सहारे या और कहीं ऐसी जगह खड़ी होगी जहाँ से मैं उसे सहज ही देख पाऊँगा और हम दोनों दो-चार बातें कर लेंगे। परन्तु यह सब कहाँ हुआ ? बिट्टो की छाया तक नजर न आई।

जहाँ जहाँ संभावना थी मैंने उसे देख डाला। तब वह कहां गई ? क्या वह भी बीमारी का शिकार तो नहीं हो गई ? दुश्चिन्ता से मेरा हृदय विकंपित हो उठा। परन्तु ऐसा होता तो खबर जरूर मिलती। उसके पिता का समाचार कितने लोगों ने जा जाकर सुनाया था। माँ बीमार हुई थी और मौत के मुँह में जाकर भी लौट आई, यह भी मालूम हो चुका था। तब, तब क्या बिट्टो की बीमारी का हाल भी न मिलता ? नारायनी आदि हमारे दूसरे साथी संगी में से वहाँ कोई मौजूद न था जिससे पूछता। बिट्टो की माताजी के पास जाऊँ, पर वे इतना बड़ा दुख उठा चुकी हैं। उनसे कुछ जाकर पूछना मेरे लिए संभव न था। मन नहीं होता था कि मैं ऐसा करूँ, लेकिन बिट्टो—उसकी तलाश तो करनी ही होगी।

मैं इधर-उधर सब ओर से अपने को बचाता हुआ साहस करके उसके दरवाजे पर जा पहुँचा। भुल्ला, बिट्टो का बूढ़ा नौकर, सामने घास का ढेर रखकर बड़े इतमीनान से चिलम पी रहा था। मुझे देखकर कहने लगा—आगये भैया, हमारे चौधरी साहेब तो घर छोड़ते ही रह गये। बिचारे धोखे में ही चले गये। घर सूना हो गया।

मैं बड़े दुख से उसकी बातें सुनता रहा। चिलम पीकर उसने जमीन पर उलट दी और जोर जोर से खाँसने लगा तब मैंने धीरे से पूछा—भुल्ला, और सब तो ठीक हैं ?

'हाँ, भैया और सब ठीक हैं। ठीक तो क्या मालकिन बिचारी तो मौत के मुँह में से कढ़ आई हैं। बिटियारानी रोते-रोते आधी रह गई हैं। अभी अभी तो इसमें गई हैं।"—कहकर उसने हाथ के इशारे से उस बड़े कमरे को बताया जिसमें अक्सर बिट्टो के पिता बैठते और लोगों से मिलते थे।

मैंने सदेह मिटाने को पूछा—"इसमें ?"

"हाँ-हाँ, चले जाओ न। तुमसे मिलने से कुछ तो उनका जी बहलेगा।"

मैंने किवाड़ को धीरे से सरकाकर भीतर प्रवेश किया। देखा तो कमरे के एक कोने मे बिट्टो मुँह छिपाये एक गठरी की तरह पड़ी है। मेरा जी उमड़ आया। मैंने आगे बढ़कर उसके कधे पर हाथ फेरकर कहा—बिट्टो !

बिट्टो दुख से भरी थी। मेरे हाथ रखते ही वह चली। बुरी तरह सिसक सिसक कर रोने लगी।

मैंने उसे उठाकर छाती से चिपका लिया। कितनी देर तक हम दोनों इस तरह रहे मैं नहीं कह सकता। जब उसका हृदय खाली हो गया और आँखें सूख गई तो मैंने उसे लेकर पास पड़ी हुई खाट पर बिठा दिया और कुछ समझाने की चेष्टा करने लगा। मुझसे कोशिश करने पर भी उस समय कुछ कहते न बन पड़ा। वह भी कुछ न बोली। बोलती भी क्या ? जो कुछ कहना था वह तो उसके आँसुओं ने चुपचाप ही कह डाला। इस मूक भाषा में कही गई मन की व्यथा को मैं उसकी वाणी से भी अधिक स्पष्टता से समझ पाया। फिर और जरूरत भी क्या थी ?

बिट्टो पर इतना बड़ा दुख पड़ गया था। फिर भी मेरी मूर्खता देखिये मैं यह आशा कर रहा था कि वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। अब मुझे स्वत. मालूम हो गया कि मैं कितने अहमकपन की बात सोच रहा था। वह छोटी सी लड़की और पहाड़ सा यह दुख। मेरे लिए तो यह आवश्यक था कि पहले ही उसके घर आकर उसे कुछ धीरज दिलाता।

मैंने देखा, मेरी सखी का सिर्फ मुँह ही मुँह रह गया है। वह कितनी फीकी पड़ गई है ! उसमें न वह रग है न चाचल्य। शरीर दुबला हो गया है। आँखें बड़ी बड़ी हो गई हैं। वह अब कबूतर की तरह 'गुटरगूँ' नहीं करती। शात, गभीर और विचारमग्न सी बनी रहती है। इन थोड़े से दिनो मे ही उसे दुनियाँ के सुख दुख का बहुत-सा अनुभव हो गया है।

मैंने धीरे से पूछा— अम्मा, अच्छी हैं ?

"हाँ, हैं।"

"चलो, देख आयें अम्माँ को।"

"नहीं, वे मिलेंगी नहीं।"

"क्या घर नहीं है ?"

"हैं, पर कोठरी में। वे कोठरी से बाहर नहीं निकलती हैं। किसी से मिलती नहीं हैं।"

"दिनरात बन्द रहती हैं ?"

"हाँ।"

बिट्टो फिर रोने लगी। आसुओं की बूँदें मोती की तरह उसकी पलकों पर से ढुलकने लगीं।

मैंने धीरे धीरे उसकी आंखें पोंछ दीं और दूसरी दूसरी बातें करने लगा।

हम दोनो को पता नहीं था कि बिट्टो की अम्मा हमारे इतनी समीप खडी है। वे कब आ गई थीं मालूम नहीं ? यह निश्चय था कि उन्होंने हम दोनो का संवाद सुन लिया होगा। हमें चकित करते हुए वे बोलीं—अरे रमेश, भैया तू कब आया ? हम तो लुट गई बेटा, इस प्लेग में !

इतना कहकर वे रुक गईं। उनकी आँखें सजल हो गईं। मेरे जैसे बच्चे के सामने इन दो चार शब्दों में ही उन्होंने अपने हृदय की अथाह वेदना को प्रकट कर दिया। मुझे लगा, मेरी जैसी असहाय और अबोध दशा से भी वे अपने आपको असहाय समझ रही हैं। नहीं तो किस प्रकार वे मेरे सामने उमड़ पड़तीं। मैंने बहुत साहस करके कुछ कहने की चेष्टा की लेकिन मैं निश्चय ही नहीं कर पाया कि ऐसे समय में उन्हें किन शब्दों में सान्त्वना दूँ ?

वे ही फिर बोलीं—बेटा रमेश, बिट्टो तो उस दिन से बदहवाश होगई है—मेरी बच्ची। उसे कौन संभाले, कौन समझाए ? मैं तो अपने ही दुख में पड़ी हूँ। तुमने देखा इसे कैसी हो गई है ?

मैं—देखा है।

"इसे थोड़ा समझाओ बेटा।"

"आप फिक्र न करें। यह ठीक हो जायगी।"

"मैं तुम्हारा बड़ा एहसान मानूँगी भैया।"

"आप अपनी चिंता करें। मुझे तो आपको पहचानने में ही मुश्किल होती है। आप तो इतने ही दिन में जैसे बदल गई है, जैसे एक दम बूढ़ी हो गई हैं।"

मेरी जैसी अभागी अगर बूढ़ी भी न दिखे तो उसके लिए मर जाना ही अच्छा है। इतना बड़ा दुख देखकर भी मैं जिन्दा हू। अब न जाने और क्या क्या देखूँगी ? यह जिन्दगी भी कैसी है। आनन्द और अभाव, दुख और सुख, जो आजाये उसे सहती है। फिर भी बनी रहती है।"

बिट्टो अभी तक दूर खड़ी थी। उसे पकड़कर उन्होंने अपने शरीर से सटा लिया और कहने लगीं—लल्ली, तू इतनी मलीन क्यों होती है ? मैं हूं। तेरे काका हैं। तुझे किस बात की चिन्ता है। खेलना है तो अपने भैया रमेश के साथ खेल।

बिट्टो को दो एक बार प्यार करके वे चली गईं। तब मैं उसे खींचकर बाहर लेगया।

उस दिन से मैं इस घर से विशेष रूप से सबद्ध हो गया। ऐसा लगा जैसे मैंने जो अपनी बुआ में नहीं पाया था, वह बिट्टो की माँ में पा लिया। यों तो बुआ की पड़ोसिन होने से वे मेरी बुआ के ही स्थान पर थीं पर न जाने कैसे और कब से मैं उन्हें अम्मा ही कहने लगा। वे भी मुझे बेटा कहकर ही पुकारतीं। अब वे केवल बिट्टो की ही माँ न रहीं मेरी भी हो गईं। उनके कोई लड़का न था। मुझे यों अपना कर उन्होंने उस रिक्तता को पूरा कर लिया और मैं उनके स्नेह की छाया में पहुच कर पा गया माँ का अकृत्रिम प्रेम। जिससे विधाता ने बहुत पहले ही मुझे वचित कर दिया था।

मैं रहता था अपनी बुआ के घर, तो भी मैं उससे अधिक अधिकार समझता था इस घर पर। बिट्टो कभी कभी मुझसे लड़ पड़ती। वह

कहती—अम्मा तो मेरी है। तुम्हारी नहीं हैं, फिर तुम उन्हें अम्मा क्यों कहते हो रमेश ?

"वाह मेरी क्यों नहीं है ?"

"चलकर अम्माँ से पूछ लो।"

"हाँ चलो, पूछ लो।"

हम दोनों जाते। अपनी अपनी शिकायत सुनाते तो वे सरल हँसी होठों पर बिखेर कर कहतीं—यह लड़की नहीं है यह तो पीपल पर की चुड़ैल है जो कहती है कि मैं अपने लड़के की अम्मा नहीं हूं। भला, यह भी कहीं हो सकता है ?

बिट्टो कहती—अगर यही बात है तो तुम अपने बेटे को अपने ही घर क्यो नहीं रखतीं ? उस घर में जाने क्यों देती हो ?

"वह मेरे तय करने की बात है। मैं अपने बेटे को जहाँ चाहूं रहने दूँ। इसमें तेरा क्या अगता जाता है ?"

"यही तो बात है।"

"हाँ, यही तो बात है। मैं नहीं चाहती कि तू मेरे बेटे को हर समय बरगलाती रहे। अगर वह सब समय तेरे ही साथ रहे तो तू और न जाने क्या कर बैठे ? उसे क्या से क्या समझा दे ?

"यह झूठ है।"

"होने दे झूठ। मुझे क्या किसी को दिखाना है कि रमेश मेरा बेटा है।"

इस पर मैं विजय गर्व से फूल कर कहता—अब तो सुन लिया ? क्या अब भी वही बात कहेगी ?

बिट्टो—मैं क्या कहूंगी। सभी जानते हैं।

अम्मा इस पर बिगड़ उठतीं और कहतीं—सभी क्या जानते हैं, बता ?

"यही जानते हैं।—यही जानते हैं कि तुम मेरी अम्मा हो, रमेश की नहीं।"

"वे झूठे हैं। वे तुझे बहकाते हैं। मैं साफ साफ कहती हूं कि मैं

तो रमेश की ही माँ हूं। तू चाहे उसीसे पुछवा दूँ। बोल, तब क्या करेगी ?"

"अच्छा, मुल्ला से पुछवा दो।"

"मुल्ला कह देगा, तब तो मान लेगी।"

"हाँ मान लूँगी।"

इस पर मुल्ला बुलाया गया। बूढ़े मुल्ला ने भी जब तमाम जानकारी की दुहाई देते हुए मेरे पक्ष में ही गवाही दी, बोला,—जहाँ तक मुझे याद है रमेश बाबू ही तो बहूजी के बेटा हैं। इसमें सदेह कौन करता है ?—इस पर थिट्टो को उस बूढ़े पर बहुत क्रोध आया। जिस पर उसने विश्वास कर रक्खा था, वह भी इस तरह फिर गया तो वह क्रुद्ध उठी। वह बड़ी बेरहमी से मुल्ला को जली-कटी सुनाने लगी। उसने कहा—यह मुल्ला बड़ा चापलूस है। देखता है, अम्मा नाराज हो जायँगी तो वैसी बातें बना देता है। अभी थोड़ी देर बाद मेरी खुशामद करेगा। कहेगा, कि मैंने तो हँसी में बहूजी को खुश करने को कह दिया है। मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ।

मुल्ला हँसता रहता और कहता—बिटियारानी, रूस गई हो तो जो कहो मैं वही कह दूँ।

"जो सच हो वह कह दो न।"

"सच कहलाती हो तो मैंने जो कहा है वही ठीक है।"

"तुम कहते हो कि अम्मा रमेश की है ?"

"हाँ।"

"तो फिर मेरी अम्मा कहाँ है ?"

"यह मैं क्या जानूँ ?"

"मैं भला कहा से आई ?"

"तुम आईं सड़क पर से। मैं ही तो तुम्हें लाया था बिटियारानी !" बूढ़ा मुल्ला अपनी उक्तियों पर मन ही मन प्रसन्न होता। मूँछों में मुस्कराता हुआ उसका चेहरा बड़ा भला दिखता। थिट्टो की भौंहें तन जातीं, वह कहती—जाओ जाओ, मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहती।

इस तरह थोड़े ही दिनों में मैं इन सब के निकट से निकटतर पहुंच गया था।

पाँच

कल से मैं दौलतपुर के मदरसे में पढ़ने जाया करूँगा। फूफा जी पंडित जी से मिल आये हैं। सब ठीक हो गया है। कल से मैं वहाँ चला जाऊँगा, और बस।

स्कूल, स्कूल के लड़के, मास्टर। सबेरे वहाँ जाना और शाम को लौट आना। इसमें कोई बड़ी आकर्षण की चीज न थी। फिर भी एक नई दुनियाँ होगी। नया जीवन होगा। यही क्या कम था? मेरे लिए नया आनन्द और नई उत्सुकता का वातावरण पैदा हो गया। बार बार मेरा मन दौलतपुर दौड़ जाता था। वही तो दौलतपुर, जहाँ सुचेता का घर है। वैसे तो वह मुझे अब क्यों मिलती, लेकिन अब तो मैं उसी के गाँव में पढ़ने जाया करूँगा। उसका घर ढूँढना क्या कठिन होगा? लड़के उसे जानते ही होंगे।

बिट्टो को उसके घर भेज कर मैं यहाँ आ बैठा हूँ। मेरे दिमाग में चारों ओर से वही दौलतपुर, वही स्कूल के साथी, जिनसे मैं अभी मिला भी नहीं हूं, आ जा रहे हैं। जी आज किसी खेलकूद से नहीं लग रहा है।

बाहर बुआ के पास मुलुआ की माँ आई बैठी है। बुआ से उसकी

बातें चल रही हैं। गाँव में मौत की विभीषिका कैसे खुलकर नाची थी, आदमी और औरतें कैसे कुत्तों की मौत मरे, यह सब उसने अपनी आँखों देखा था। हिन्दू और मुसलमान, धोबी और धानुक, काछी और किसान, बढ़ई और लुहार, भंगी और चमार कैसे देखते ही देखते विला गये। जिन्होंने सारे जीवन भर शरीर का खून पानी एक करके, आधे पेट खाकर, फटे पुराने पहनकर, जाड़ों में सिसियाते रहकर पैसा पैसा करके जोड़ा था। धर्म अधर्म की परवाह न की थी। केवल पैसा कमाने में ही सारा जीवन लगा दिया था। जिन्होंने नहीं जाना था जूता कैसा होता है ? जिनके डेढ़ डेढ़ हाथ के लँबे पैर यह बताने के लिए काफी थे कि वे बचपन से मुक्त धूल में विचरे हैं, पृथ्वी की गोद में ही पले हैं, कभी किसी तरह के कृत्रिम नियंत्रण को नहीं माना है। वे राममोहन और उनके कुटुम्बी यों ही उठ गये। उनके धन का लोगों ने खूब दधिकांदो खेला। उसकी ऐसी लूट हुई और वह भी उनकी स्त्री और बहन के जीते जी जिसका कोई हिसाब नहीं। उनकी स्त्री और बहन रोटी के एक एक कौर को तरसती थीं, पानी के एक एक बूँद को चिल्लाती थीं, कपड़े की एक धज्जी भी उनके शरीर पर न रह गई थी, सब पड़ोसियों ने ले लिया था उनके देखते देखते। ये दोनों सारी बीमारी को पार कर के बच गई थीं पर जब तक ये बच पाई थीं तब तक उनका घर साफ कर दिया गया था।

यह सुनकर बुआ ने उससे अनुरोध करते हुए कहा—चाची, जरा शुरू से बताओ न। कैसे हुआ ?

मुलुआ की माँ ने बताया—तुम जिस दिन यहाँ से निकल कर गई थीं उसी के दूसरे दिन राममोहन साँझ को फेरी लगाकर लौटे तो माँ से कहा, अम्मा आज तो मेरा शरीर चूर चूर हो रहा है। मैं वहीं बुढ़िया के पास बैठी थी। बुढ़िया ने कहा, थक गये होगे बेटा। तुम भी कैसे हो आराम तो कभी जानते ही नहीं। रात दिन कमाई के पीछे पड़े रहते हो। इतना कमाकर क्या करोगे ?

इस पर बेटा बोला—तुम्हें कमाई की पड़ी है अम्मा ! मैं तो मरा

जा रहा हूँ। न जाने कितनी मुश्किल से घर आ पाया हूँ।

इतना कहकर वह भीतर घुसा। मैंने देखा उसका चेहरा तमतमा रहा था। मैंने बुढ़िया से कहा, अम्मा राममोहन को बुखार मालूम पड़ता है। चेहरा लाल हो रहा है।

बुढ़िया ने मेरी बात सुनी, बोली—होगा, जरूर बुखार ही होगा। आजकल घर घर बुखार हो रहा है। फिर यह तो बुखार-सुखार की परवाह भी नहीं करता। इतना बड़ा हो गया है। सारी जिन्दगी रुपया कमाते बीती है पैरों में कभी एक आठ आने का जूता भी नहीं डाला। तन पर कभी नया कुरता नहीं पहना। सिर पर चार पैसे की टोपी नहीं धरी। मैं कहती हूँ यह कमाई किसलिए है? तब हँस देता है, कहता है अम्माँ मैं क्या कमाता हूँ भला। यह भी कोई कमाना है। अगर बाबू बनने लगूँ तो जो कमाया है चार दिन में खत्म हो जाय और फिर तुम्हारे लल्लू रामकिशन की तरह परदेश की खाक छाननी पड़े। बोलो तुम्हें मेरा परदेश जाना रुचता है? यह जानता है कि इसके लिए मैं कभी तैयार न होऊँगी। रामकिशन ही मुझसे पूछ कर जाता तो क्या मैं उसे जाने देती? वह तो रातों रात उठकर भाग गया था। महीनों चलकर बंबई पहुंचा। मैं यहाँ उसकी फिक्र में रो-रोकर मर रही थी। अब भी जब उसकी चिट्ठी कभी चार छः महीने में आ जाती है तो मेरा जी उमड़ पड़ता है। जब नहीं आती है तो पापी मन न जाने कैसी बुरी बुरी बातें सोच-सोचकर दुखी हुआ करता है। अबकी उसने लिखा है कि हो सका तो होली में एक महीने की छुट्टी लेकर आऊँगा। मैं तो कहती हूं अगर एक बार वह यहां आ जाय तो मैं उसे फिर कभी न जाने दूँ। मुझे रुपया नहीं चाहिये। मुझे तो चाहिए अपना बच्चा! सो यह राममोहन भी जानता है और इसीसे यह मेरी बात को यों कहकर उड़ा देता है।

राममोहन जाकर लेट रहा था। वहीं से लेटे लेटे बोला, अम्मा जाड़ा बहुत लग रहा है। भारती जिज्जी कहाँ गई हैं?

बुढ़िया ने खाँस कर पुकारा—दुलहिन, दुलहिन, ओ बहू जरा भीतर

आकर राममोहन पर रजाई तो डाल दो। देखो, उसे बुखार चढ़ गया मालूम होता है।

इस पर बहू उठकर बाहर से आई। बुढ़िया उसे देखकर कहने लगी—हमारी बहू तो लक्ष्मी है। जब से ब्याह कर आई है घर में राम की दया से सभी कुछ हो गया है। लेकिन मैं इससे चाहे जितना कहूँ यह पति से बढ़कर खाने पहनने को कभी तैयार नहीं होती। वह तो फेरी से छुट्टी नहीं पाता है, यह भी अपने भजन-पूजन, व्रत उपवास में लगी रहती है। मैं कहती हूँ तुम्हारी उमर हँसने-खेलने की है। व्रत उपवास मैं करूँ। मैं बूढ़ी हूँ। भारती भजन पूजन करे। उसका सौभाग्य भगवान ने छीन लिया है। तुम काहे को उसमें लगो। गंगा मैया तुम्हें जुग जुग सौभाग्यवती रक्खें। लेकिन मेरी बात सुनता कौन है ?

बहू ने जाकर राममोहन को उढ़ा दिया था और शायद अब उसके लिए पानी गरम करने जा रही थी। हमारे पास से निकली तो बुढ़िया ने पूछा—बुखार है क्या ? देखा था ?

देखा तो नहीं, पर बुखार तो है ही शायद—कहकर वह जाने लगी

बुढ़िया कुछ चिढ़ गई, बोली—देखा क्यों नहीं ? क्या वह तुझे खा लेता ? मैं कहती हूँ अब इतनी शर्म की क्या जरूरत है ? तुम गौने र आई नहीं हो आज। दस बारह वर्ष ब्याह को हो गये। ईश्वर चाहता र चार पाँच बच्चों की माँ हो जातीं।

बहू ठिठककर खड़ी हो गई थी। बुढ़िया ने कहा—जाओ जाओ, तु क्या मेरी बात मानोगी ? मैं मर जाऊँगी तब तुम्हारा घूँघट आपही आ न उतर जाय तो देख लेना।

बहू चली गई। मैंने कहा—अम्मा, तुम इतनी चिल्लाती क्यों हो बहू-बेटियों में तो लाज-शर्म अच्छी ही लगती है। यही तो कायदा है

बुढ़िया—हाँ कायदा है सही, पर इतनी भी क्या ? इतने दिन ब्या को हुए हैं मैंने तो नहीं देखा कि यह कभी उससे दो बातें करती हो यह उससे बोले-चाले, कहे-सुने तो क्या वह रात-दिन फेरी लगाता रहे

यह समझाए कि अपनी एक दूकान खोल लो। यह फेरी का काम छोड़ दो। घर पर रहो। तो क्या वह न माने?

मैंने कहा—अभी तो अम्मा तुम ऐसा कहती हो, फिर अगर वह यह सब करने लगे तो तुम्हीं कहोगी कि अभी से बड़ी-बूढ़ी बनती है। अपना हुकुम चलाती है।

बुढ़िया—हाँ, यह तो है। हम बूढ़ों को तो किसी चाल में संतोष नहीं होता। यह भी हो जाय वह भी हो जाय, यही सोचा करती हैं। जरा भी कोई बात मन माफिक न हुई कि बकने झकने लगती हैं। लेकिन इतना तो मानोगी कि मैं थोड़े दिन की हूं। मैं जो कहती हूं अभी से यह समझलें तो पीछे पछताना नहीं पड़ेगा। लाज को थोड़ी थोड़ी हटादें, घूँघट को थोड़ा थोड़ा कम करदें। एक दूसरे को समझ लें, एक दूसरे को परख लें। अपनी घर गृहस्थी को सँभालने लायक हो जाँय।

इस सब की कमी तो उसमें मैं देखती नहीं हूँ अम्माँ। तुम चाहे जितना कहो। बहू तो तुम्हारी हजारों में एक है। देखने में, सुनने में, काम में, सलीके में ऐसी बहुएँ बड़े भाग्य से मिलती हैं।

यह क्या मैं नहीं मानती? इससे मैंने कभी इनकार भी तो नहीं किया है। मेरी बेटी भी, भाग्य तो उसका भगवान ने फोड़ दिया है, शील स्वभाव में, गुण चतुराव में किसी से कम नहीं है। मैं तो यही सोचती हूं कि मैंने और उसने पूर्वजन्म मे ऐसे कौन से पाप किये थे जिनका हमें यह फल मिला है? कभी सोचती हूं कि पूर्वजन्म की बात तो सिर्फ मन समझाने के लिए है। ऐसी गुणवती और ऐसी सुशील लड़की, यदि कोई जन्मजन्मान्तर हो भी, तो क्या कभी किसी तरह का पाप कर सकती है? जो कभी भूलकर भी किसी के हृदय को दुखाने की बात नहीं करती, जो दुनियाँ के हित और सेवा की बातें ही सोचती रहती है, जिसने बचपन से कभी भलाई बुराई मे पड़ने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई, जिसे पाप छू भी नहीं गया वह अगर भरी जवानी में विधवा हुई है तो या तो सारे शास्त्र झूठे हैं या पापपुण्य, लोक परलोक, कुछ नहीं हैं। सिर्फ समाज की व्यवस्था ही

ऐसी है। उसी का यह दोष है कि एकबार जो हो गया फिर वह बदला नहीं जा सकता।

बुढ़िया को यह सब कहने में इतना कष्ट हुआ कि उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। मैं भी उसकी इन बातों से प्रभावित होगई। मेरी भी आँखें सजल होगईं।

बुआ ने कहा—हाँ, बात भी ठीक थी। भारती जैसी लड़की क्या कहीं सहज में देखने में आती है? एक साधारण गाँव के घर में ऐसी गुणवती सुशीला को कौन कल्पना कर सकता है? मैंने तो पहले पहल जब उसे देखा था तो विश्वास नहीं हुआ था कि वह सचमुच इसी गाँव की रहनेवाली होगी। बाद में तो मेरी जान पहचान बढ़ती ही गई। स्वभाव कैसा मृदुल। बोलती तो मुँह से फूल झड़ते थे। हाय भगवान ऐसों को ही दुनियाँ से उठा लेते हैं और रखते हैं तो सदा कष्ट में ही रखते हैं। ऐसी सुन्दर सुशीला के भाग्य में विधाता ने कितने और कैसे कैसे दुख लिख रखे थे!

हाँ बहूजी—मुलुआ की माँ ने कहा, यही तो बात है। दुनियाँ में यही तो दिखाई पड़ता है।

मैं भी धीरे से जाकर बुआ के पीछे बैठ गया। मुलुआ की माँ ने साँस लेकर फिर कहना शुरू किया—इसके बाद मैं तो चली आई उस रात को। फिर दो दिन जाने का मौका न मिला। घर घर बीमारी और भगदड़ पड़ी थी। जाती भी कैसे? तीसरे दिन सवेरे ही सुना राममोहन ने गंगा नहाई। मैं जैसे जड़ होके रह गई।

मेरे बहू-बेटे ने बहुत मना किया लेकिन मैं न मानी। मैं तो उनके घर गई ही। जाते समय कह गई—अगर मुझे कुछ होने लगे तो तुम मेरे पास मत आना।

जाकर देखा तो राममोहन का पचहथा शरीर खाट पर रक्खा था। एक खादी का कपड़ा पैरों से सिर तक पड़ा था। घर में कोई दिखता न था। मैंने कहा—"अम्मा, अम्मा" लेकिन कोई न बोला। तनिक और

बढ़कर मैंने अँधेरे में देखा बहू कोने में सिर छिपाये पड़ी थी। मैंने कहा— "बहू ! और सब कहाँ है ?"

मुझे देखकर वह फफक फफककर रोने लगी। मैंने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—राम राम, तेरा यह हाल ! अम्मा कहाँ हैं ? भारती कहाँ हैं ?

बहू ने संकेत से बताया, वे उधर उस कोठरी में बुखार में पड़ी हैं। मैंने राममोहन के मृत शरीर की ओर देखकर कहा—और इसे किसी ने धरती पर भी नहीं लिया ?

"कौन ले अम्मा धरती पर ? मैं अकेले क्या करूँ ? मेरे तो हाथ पाँव ही नहीं चलते हैं ?"

"तुमने रामरूप के घर नहीं कहलाया ? वे तो तुम्हारे अपने हैं। यहीं से बैठे बैठे पुकार देतीं। उनके घर आदमियों की क्या कमी है ? छः छः जवान भाई हैं। अभी हाथ के हाथ सब कर देते।"

"क्या कहती हो ? वे हाथ लगाने को तैयार नहीं हैं। बहुत कहने सुनने पर अपनी छतपर आये थे। शराब की बोतलें मँगाने के लिए मुझ से दस रुपया ले गये हैं। कह रहे थे भंगी को बुला रहे हैं। उसे शराब पिलायेंगे तब वह आकर उठायेगा।—अम्मा, जो दिन में तीन बार नहाये बिना न रहते थे उनके शरीर को आज भंगी छुयेगा ! हाय, मैं ऐसी अभागी हूं। न जाने मैंने कौन से पाप किये थे ?"

मैंने समझाया, यह सकट काल है बहू। इस समय कोई किसी का मददगार नहीं है। इस समय जो हो जाय वही ठीक। मेरे से जो हो जाय वह तुम्हारे लिए करने को तैयार हूं। कहो तो मैं अपने घर ही न जाऊँ ?

इसके बाद मैं कोठरी में गई। बुढ़िया बेहोश पड़ी थी। बुखार से उसका शरीर तप रहा था। भारती का चेहरा भी लाल हो रहा था। वह बुखार की तेजी में बक रही थी। मालूम पड़ता था सन्निपात में थी। इतनी बूढ़ी होकर भी मैंने कभी ऐसा दृश्य न देखा था। मेरा हृदय काँप उठा।

मैंने भारती को पुकारा। उसने आँखें खोल दीं। क्षणभर मेरी ओर देखा पर वह होश में नहीं थी, बकने लगी—तुम इतनी जल्दी जा रहे हो ? मुझे अकेली छोड़कर तुम चले जाओगे ? अगर मैं ऐसा जानती ? तुम कैसे आदमी हो ? अभी तो मेरे हाथों की मेंहदी भी नहीं छूटी है। मेरी आँखों से मेरी लाज तो पोंछते जाओ।—अम्मा अम्मा, अरे तुमने यह क्या किया ? मुझे इतने बड़े घर में लाकर तुमने क्यों छोड़ दिया ? तुम जानती हो धन में गाड़ देने से मैं सुखी रहूगी। नहीं अम्मा, मैं तो गरीब की बेटी हू। मुझे तो गरीब के वर देना था। चलो जो हुआ सो हुआ। मैं एक बड़े घर की मालकिन बनीं। मेरा गौरव, मेरा गौरव तो देखो माँ, लेकिन हाय ! यह क्या वह घर तो गिर रहा है। वह महल तो डगमगा रहा है। मैं दब जाऊँगी इसमें। मुझे निकालो अम्मा। मुझे ले चलो यहाँ से।—भैया रामू मैं आ गई। तुम्हारी बहिन, तुम्हारी जीजी। मेरी आँखों से आँसू पोंछ दो भैया मेरे। मैं अपने साथ यह इतना सारा धन लाई हू। इसे तुम ले लो। दिन रात की मजूरी छोड़ दो। मेहनत में शरीर न गलाओ।—नहीं तुम इसे नहीं छुओगे। यह पाप की माया। तुम तो मेहनत की पवित्र रोटी खाओगे। वही करो। वही करो। अपनी बहिन के आशीर्वाद के साथ तुम वही करो।—अरे, यह बीमारी। यह महामारी कहाँ से आ गई ? भैया राममोहन, तुम्हें यह हो क्या गया है ? क्या तुम अब आँखें न खोलोगे ?—अम्माँ, तुम देखो तो सही।

वह जाने क्या क्या बड़बड़ाती रही। मैंने बहू से कहा, ये होश में नहीं है। बुखार है। तुम इनकी खोज खबर लेती रहना। अब जो होना था वह तो हो ही गया है।

बहू बेचारी खड़े खड़े आँसू बहाती रही। निरुपाय नारी, क्या करती वह ? उसके चारों ओर न कोई सहायक था, न हितैषी।

इच्छा थी किसी तरह मैं इस घर से निकल भागूँ। तभी रामरूप ने अपनी छतपर खड़े होकर कहा—भौजी, किवाड़ खोल दो। कलुआ आ गया है। जा रे जा कलुआ। देखता क्या है रे। तुझे खुश करा देंगे।

किवाड़ खुले ही थे। कलुआ अपने साथियों को लिए घर में घुस आया। शराब इतनी पी रक्खी थी सबों ने कि सीधे पैर नहीं पढते थे। इधर उधर गिरते पडते वे आगे बढ़े। उन्हें देखते मुझे डर लगता था। कोई राक्षसी चेहरा जैसे उन सब ने लगा लिया हो। अगर दिन न होता और रात में मैं उन्हें देख लेती तो शायद प्राण निकल जाते। बहू से यह सब न देखा गया वह मेरी छाती से इस तरह सट गई जैसे बाज की झपेटी हुई कबूतरी। मैंने उसे सान्त्वना दी। कहा—धीरज रक्खो बहू। अपना घर-बार देखो। किसी पर विश्वास न करो। इस समय तुम अकेली हो। तुम्हारी सास और ननद को होश नहीं है। ये लोग भीतर जायँगे वहाँ कोई चीज हटाने की हो तो हटालो जाकर।

बहू—हाय, क्या उन्हें अपने आदमियों का कंधा भी नसीब न होगा?

"जो मौके पर मिल जांय वही अपने आदमी हैं। ये बेचारे काम तो आरहे हैं इस समय।"

"उन्हें आग देने वाला भी तो कोई नहीं है। आग तो मुझे ही देनी होगी। क्या मैं जाऊँगी? लेकिन मैं अकेली उनके साथ कैसे जा सकूँगी?"

"तुम पागल न बनो बहू! तुम कहीं नहीं जाओगी। जो उठाकर ले जायँगे, वही आग भी लगा सकेंगे। अब तो वह मिट्टी है। उनसे तुम्हारा संबंध कभी का टूट गया।"

"सच, तुम सच कह रही हो क्या?"

"हाँ, मैं ठीक कहती हू। तुम घर पर रह कर अपनी चीज-वस्तु की सँभाल करो। तुम्हारे सामने बहुत बड़ा जीवन पड़ा है। उसे काटने के लिए तुम्हें हर चीज की जरूरत पड़ेगी। जो घर में दो पैसे हों, वे सहेज लो। देखो इधर उधर न हो जायँ। तुम धीरज छोड़ दोगी तो कुछ न बचेगा। अपनी सास और ननद को भी इस तरह तुम गँवा दोगी।"

मालूम पड़ा मेरी बातों ने असर किया। वह माथा झुकाकर बैठ गई।

भंगियों ने राममोहन का शव खाट सहित निकाला और उसी तरह ले गये। बहू पत्थर की तरह बैठी रही। मेरी आँखों में दो आँसू छलछला आये। उन्हें जल्दी से पोंछकर मैंने कहा—अब बैठो मत। पानी लो और घर को धो डालो। चूल्हा जलाकर कुछ पथ्य तैयार कर लो। जो होना था वह हो गया। भगवान पर भरोसा करो।

इसी समय कलुआ लौट आया, बोला—लकडी के लिए पैसे तो दिये नहीं, हम फूँकेंगे कैसे?

मैंने बहू से रुपये देने को कहा। वह रुपये लेने कोठरी में पैर धरते ही चीख पडी—अरे अरे, यह अम्मा को क्या हो रहा है? ये कैसी हो रही हैं? इनकी आँखें कैसी घूम रही हैं? हिचकियाँ कैसी ले रही हैं?

मैंने दौड़कर देखा, बुढ़िया की वह अंतिम हिचकी थी। मैंने कहा—होगया। काम पूरा होगया।

बहू ने रहे सहे आँसू गिराकर रोने की रस्म पूरी करदी। मैंने कलुआ से हाथ जोड़कर कहा—डोकरी को भी साथ ही लेते जाओ भैया। माँ और बेटे में बड़ा प्रेम था। एक ही चिता पर दोनों को रख देना आखिर समय तक विछोह तो न होगा।

कलुआ ने कहा, यह तो ठीक ही हुआ। एक साथ बहुत सहूलियत हो जाती है। मैं तो अपने घर से कल एक साथ चार ले गया था। मेरा बड़ा भाई, भौजाई, मेरी घरवाली और लड़की। घर की किलकिल चली गई। शांति हो गई। अब कोई बखेड़ा नहीं रहा। हम बाप बेटे रह गये हैं। मजे से बैठकर शराब पीते हैं और मौज करते हैं। न ऊधो का लेना न माधो का देना। उठो निकालने दो हमें बुढ्ढी अम्मा को। उनसे कहदें कि अब जी भर कर प्यार करो आकर अपने बेटे को।

बुढ़िया भी चली गई। बेटा भी चला गया। हम दोनों उदास बैठी थीं। रामरूप दरवाजे को ठेलकर भीतर आया, आकर बोला—अम्मा को भी भेज दिया भौजी?

बहू ने तो कोई जवाब नहीं दिया। मैं बोली – अम्मा भी चली गईं

साथ ही मेरे मन ने कहा, अभी तक यह आदमी घर में पैर नहीं रख रहा था। मुर्दे को उठाने के लिए तो क्या छूने के लिए आते इसे इतना डर लगता था कि छतपर खडे होकर भंगी को बुलाने का समाचार सुनाया था। अब घर खाली हो जाने पर कैसे आ गया। शायद अबला असहाय को सहायता देने के लिए। आखिर संबंधी ही है। लेकिन इसके चेहरे पर तो वैसा कोई भाव नहीं।

मैंने सशंक मन से एकबार उसे ऊपर से नीचे तक देखा। वह भी शायद मेरे मन की बात ताड़ गया इसलिए वहाँ से हटकर एक तरफ खडा हो गया। मैंने बहू से धीरे से कहा—यह सब कोठरियां खुली मत रक्खो। उनमें ताले डाल दो और तुम आकर अपनी ननद के पास बैठो।

रामरूप इधर उधर कोठरियों में झांक रहा था। बाहर निकल आया। मैंने बहू से घर में ताले डलवा दिये। अब उसके लिये वहां ठहरना कठिन हो गया। वह बिना बात किये ही घर से निकल गया। मैंने बहू से कहा–तुम अपने मायके में और देवर को तार दिला दो। इस रामरूप से तुम कोई आशा न करना। इसका रंगढंग मुझे ठीक नहीं लगता है। तुम्हारी ननद होशहवाश में न आये तब तक बहुत सावधान रहने की जरूरत है। मैं अब जा रही हूँ इसलिए तुम्हें कहे जाती हूं।

मेरी बात सुनकर बहू ने मेरे पैर पकड लिए। बोली—मेरी तो अब तुम्हीं हो अम्मा। तुम्हारे सिवा इस विपद में मुझे और कोई नहीं दिखता। यह जानते हुए भी कि इस घर की हर एक चीज छूने लायक नहीं है। छू जाने से बीमारी का डर है तुम आईं। तुमने अपने प्राणों का ख्याल नहीं किया। तुम न आतीं तो मेरा कोई जोर नहीं था। तुम मेरी सजातीय नहीं हो, संबंधी नहीं हो, फिर भी तुमने उनसे बढकर किया। तुम्हारा उपकार, तुम्हारा एहसान, ऐसे नहीं हैं कि एक दफे उसकी चर्चा कर देने से उसकी कीमत चुक जाय। जन्मजन्मान्तर तक उसका बदला चुकाना मेरे लिए कठिन लगता है। मुझे कहते शर्म लगती है अम्मा कि हो सके तो फिर सुध ले लेना। तुम्हें अपनी जानकर ही तुमसे मेरा यह अनुरोध

है। मेरा जी घबड़ाता है। शायद मुझे भी कुछ हो जाय। हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या होगा? हमारा अब इस जीवन से मोह ही क्या रह गया है?

मैंने कहा—तुम निराश मत हो। मैं तो पास ही हूं। जब तब आती रहूँगी।

"मैं क्या करूँ? अपने स्वार्थ के लिए तुम्हें मौत के घर में बुलाती हूँ। जब सब अपने पराये हो गये हैं तब मैं और किसकी शरण जाऊँ। तुम जाओ अम्मा, तुमने बड़ी मदद की। तुमने एक दुखिया को बड़ा सहारा दिया है।" मैं चली आई। लड़के और बहू ने मेरे परोपकार को जी भरकर कोसा। घर में घुसने से पहले मैंने नहाया। सब कपड़े गर्म पानी में धोये। फिर भी सब मुझे छूने से डरते थे। इसलिए मैंने घर से बाहर नीम की छाया में ही अपना बिस्तर लगाया। वहीं आग जलाकर तापती रही। सारा दिन और सारी रात वहीं बिता दी।

इस घरेलू झगड़े से मुझे अगले दो दिन उधर जाने की फुरसत न मिली। तीसरे दिन सुना कि भारती भी अपनी माँ और भाई के पीछे पीछे चली गई। दूसरे दिन उसने भी प्राण छोड़ दिये।

मैं जाती। मैं जाने को तैयार थी, लेकिन मेरी बहू ने कहा—अम्मा, मैं जानती हूँ तुम वहाँ क्यों जाती हो? भारती जीजी के पास जो सोना-चादी है उसे तुम ले आओगी। पर यह सुन लेना कि मैं अपने घर में उस हत्यारी माया की एक कौड़ी न लाने दूँगी। मुझे अपने मर्द और बच्चों की जान ज्यादा प्यारी है। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।

इस अपवाद की तो बात भी मैंने न सोची थी, फिर अपनी ही बहू के मुँह से। मैं तो सन्न रह गई। उसके मुँह की ओर देर तक देखते रहकर मैंने धीरे से पूछा—रमुआँ की माँ, क्या तू सच कहती है मैं इसीलिए वहाँ जाती हू?

"वहाँ और फिर क्या मीठा है? बिना कुछ आशा के मौत की भट्ठी में घुसने कोई क्यों जायगा? घर घर ही तो आदमी मर रहे हैं। तुम्हें

परोपकार ही करना है, सेवा ही करनी है, तो दूसरों की भी कर सकती हो ? वहाँ न जाने से क्या काम न बनेगा ?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। इसका उत्तर कुछ हो भी न सकता था। उसका कहना असंगत नहीं था। मनुष्य का हृदय जैसा ही पापी होता है वैसा ही शंकाशील भी होता है।

मैंने अपना इरादा बदल दिया। मैं नहीं गई। लेकिन एक दारुण व्यथा के भार से सारे दिन दबी रही। न खा सकी, न सो सकी। बारबार यही विचार मेरे मन में उठता था कि यह सब आदमी कैसे सोच सकता है ? जीवन में पवित्र क्षणों की कल्पना क्या कभी किसी को आती ही नहीं ? क्या मृत्यु के वातावरण में भी आदमी राक्षस ही बना रहता है ? मृत्यु जिससे अपनी क्षुधा शांत करती है उसी की निरीहता से उसका भाई दूसरा मानव लाभ उठाकर अपने को सम्पन्न बनाता है !

इस तरह दो दिन और बीत गये। चौथे दिन मुझे एक पड़ोसिन ने बताया—राममोहन की बहू बदहवाश नंगी मादरजात बजार में रोटी के टुकड़े माँग रही है।

मुझे उसकी बातो पर विश्वास नहीं हुआ। मैं बिना किसी को कहे सुने उधर दौड़ गई। घर के दरवाजे पर पहुची तो रामरूप राममोहन के दरवाजे का कुण्डा बाहर से लगा रहा था। मैंने घबड़ाये स्वर से पूछा—क्या बात है भैया ?

रामरूप—है क्या, बादी में आ गई है। घर से निकल निकल भागती है ! किसी तरह खींच कर भीतर कर पाया हूँ।

मैंने कहा—उस दिन तो मैं ठीक छोड़ गई थी। इतनी जल्दी ऐसा कैसे हो गया ?

रामरूप—बुखार हो गया था। तेज बुखार। उसी में सरसाम हो गया। कपड़े सब फाड डाले हैं। बिल्कुल होश में नहीं है।

ऊपर छत की ओर देखा तो लाठी लिए शिवसरूप, हरसरूप, किशनसरूप, बिशनसरूप सभी खड़े थे। शिवसरूप कह रहा था भैया

जल्दी वन्द कर दो। नहीं तो वह इधर ही आ रही है।

रामरूप—मैंने वन्द कर दिया है। तुममें से एक आदमी एक ताला ले आओ। इसमें डाल दूँ। बाकी सब लोग अपने घर उतर चलो। छत पर न रहो, नहीं तो वह चुपेगी नहीं। हल्ला मचाती रहेगी।

घर के भीतर पैरों की आहट सुनाई दी, फिर किवाड़ो पर थपकी लगी। मुझसे न रहा गया। मैं आगे बढ़ गई। किवाड़ की दराज से मैंने झाँका एक विकृत उघारी नारीमूर्ति बेबस खड़ी थी। घर में से एक फटा कपड़ा उठा लाई थी उससे गोप्य अग और छाती को ढकने की चेष्टा कर रही थी। मैंने कहा—अभी इसमें लाज ढँकने की बुद्धि तो बाकी है।

मुझे बोलते सुनकर उसने भीतर से कहा—द्वार खोल दो। अरे, किसने बंद कर दिये हैं ?

रामरूप ने हाथ के इशारे से मुझे मना कर दिया। मैंने बाहर से ही कहा—बहू, अरे तुम्हें क्या हो गया है ?

मुझे पहचान कर वह बोली—अम्मा, तुम हो। तुमने मुझे बन्द कर दिया है क्या ? मैं पागल नहीं हू। मैं भूखी हूँ, सात दिन से भूखी हूँ। मेरे घर में कुछ नहीं है। एक रोटी का टुकड़ा नहीं दोगी मुझे, अम्मा !

मैं—तुम्हारी यह हालत कैसे हुई ?

मैं भूखी हू। मेरा गला सूख रहा है। जीभ नहीं खुलती है। एक रोटी के टुकड़े से मैं जी जाऊँगी।"

"मेरी रोटी तुम कैसे खाओगी बहू। मैं तो कहार हूँ। तुम्हारे घर में तो सभी कुछ है। आग जला कर कुछ बना न लो।"

"नहीं अम्मा, मेरे हाथ नहीं चलते। मेरे घर में अब कुछ नहीं रहा। मेरा सारा घर लुट गया।—मेरा सब कुछ चला गया।"—कह कर अपने कपाल पर दोनों हाथ पटक कर वह रोने लगी।

मैंने कहा—तुम रोओ नहीं। मुझसे कहो मैं तुम्हारी मदद करूँगी।

मैंने कुंडी खोलने की चेष्टा की। रामरूप झिड़ककर बोला—खोलना मत बुढ़िया।

"क्यों ?"

"वह पागल है। तुम्हारा सर फोड देगी।"

"तुम इसकी चिन्ता मत करो।"

"मेरे सिवा फिर चिन्ता कौन करेगा ?"

"तुम करोगे ? तुम उसकी चिन्ता करोगे रामरूप ? अब तुम्हें आज उसकी जरूरत मालूम पडी है ? उस दिन तुमने चिन्ता नहीं की थी जब भंगी को बुलाकर राममोहन के शरीर को उठवा दिया था। एक कदम भी तो भैया को पहुँचाते।"

"चुप रह अभागी। तेरी इतनी मजाल। जात की कहारिन, इतना सिर चढ़ रही है।"

मुझे भी क्रोध आगया। मैंने कहा—हट वे कुलीन के पुतले। तू समझ रहा है कि तू इस तरह एक अबला को मार डालेगा। उसके घरबार का मालिक बन जायगा।

मैंने झटके से कुंडी खोल दी और किवाड ठेल कर भीतर घुस पड़ी। मैं नहीं कह सकती रामरूप क्यों मेरी फटकार से अप्रतिभ होगया ? उसने बलपूर्वक मुझे रोकने की चेष्टा की होती तो शायद मैं चुप कर जाती। मैं एक क्षण में बहू के सामने जा खड़ी हुई। मैंने देखा, उसका मुँह सूज गया था। देह सूख गई थी। आंखें धँस गईं थीं। भूखा पेट, तन पर कपड़े का एक धागा नहीं। एक गंदा चिथड़ा उठा कर वह अपनी लाज छिपाने की कोशिश कर रही थी।

शिथिल जर्जर पड़ी उस दुखिया से इशारे से मैंने पूछा—पानी पिलाऊँ ?

संकेत किया, ले आओ। लेकिन पानी लाने को वहाँ बर्तन कहाँ था ? सचमुच ही सारा घर जैसे लुट चुका था। बर्तन, कपडे, अनाज कुछ भी तो नहीं दिखता था। एक हफ्ता भी तो नहीं बीता जब सारा घर भरा पूरा था। मैंने उससे मालूम करना चाहा—यह सब कौन ले गया है ? तुम्हारे घर में तो अब कुछ नहीं है, एक लोटा भी नहीं।

"एक रोटी का टुकड़ा। श्राह, मेरा पेट भूख से जल रहा है।—ये सब ले गये। जीजी, तुम्हारा सब ले गये। हमारा सब ले गये।"

"क्या बकती हो?" मैंने जोर से पुकारकर पूछा।

"मेरे रुपये, गहने। जीजी की मोहरें, उनका सोना, उनके कपड़े, सब लेगये। ले जाओ, ले जाओ।" कह, शिथिल परिश्रान्त हो वह गिर गई।

मैं सोच रही थी रामरूप खड़ा सुन रहा होगा लेकिन वह पहले ही भाग गया था। मैंने हाथ में पानी लाकर उसके मुँह पर छींटे दिये। उससे कुछ होश में आई। मेरी ओर देखकर पहचानने की चेष्टा की।

मैंने कहा—तुम्हारे घर का सामान कहाँ गया?

"सब ले गये।" कहकर रामरूप के घर की ओर इशारा किया।

"रामरूप?"

फिर उसी तरह हाथ उठाकर जताया। मैंने कहा—तुमने रोका नहीं?

कोई उत्तर नहीं मिला!

"तुम बीमार थीं?" उठ या रोक न सकती थीं?"

"यही बात थी।" उसने इशारे से माना।

उसके शरीर में इतनी शक्ति न थी जो बहुत बातचीत करे। बारबार अपना हाथ उठाकर मुँह की ओर ले जाती थी। मेरे जी ने कहा, उसे कुछ ला कर दूँ। भूखी है। इसे अब कोई रोग नहीं है। पेट में थोड़ा अन्न जाय तो बच जायगी दुखियारी!

शिवसरूप ताला लेकर आ पहुचा था। वह घर में ताला डालेगा। मैंने उससे कहा— इसे कुछ खाने को लाकर दो। यह बीमार नहीं है। भूखी है। यही इसका रोग है।

"यह भैया से कहो। ये जाने। मैं तो ताला बंद करने आया हूँ।"

"किधर है री! ले यह ले।" कहता हुआ चतुरी चमार कटोरी भर भात लिये आया। इसे देखकर सकपका गया।

मैंने पूछा, "क्या बात है?"

"कुछ नहीं," कहकर वह जाने लगा। मैंने रोककर कहा, "अरे, ले आ भाई! लौटा क्यों जाता है? अब उसकी कोई जाँतपाँत नहीं रह गई है। जान बच जाय तो ही बहुत है।"

मेरी बात सुनकर वह ठहर गया। सफाई देता हुआ बोला—इस जिन्दगी में मैंने तो बहुत दुख देखे हैं मुन्ना की माँ, लेकिन ऐसा कभी नहीं देखा। अभी थोड़ी देर पहले जब इसने जाकर मेरे सामने हाथ पसार दिया था—एक कौर रोटी के लिए, तो मेरा माथा झुक गया था। मेरे पास खाने को तो वहाँ कुछ था नहीं। दौड़कर झुनियाँ की माँ के पास गया और यह थोड़ा-सा भात ले आया हूँ। तुम्हारी सौगन्द मुन्ना की माँ मुझे यह कोई अच्छी बात नहीं मालूम होती कि मैं अपना छुआ अन्न इसके मुँह में देकर इसे बेजात करूँ, लेकिन भूखों मरते भी तो कैसे देखा जाय?

मैंने उसके संकोच को दूर करने की चेष्टा करते हुए कहा—नहीं भाई, इसमें बुरा क्या है? आदमी आदमी की सहायता न करे तो कौन करेगा? जातपाँत तो ईश्वर ने गढ़ी नहीं है। वह तो हमने बना ली है। बड़ा और भला काम करने ही से तो किसी की जात बड़ी हुई थी। अब जब बड़े ओछे काम करने लगे हैं, तो क्या हम तुम जो छोटे कहलाते रहे हैं भलाई करके बड़प्पन को गौरवान्वित न करें? तुम खड़े क्यों हो? रख दो न कटोरी इसके आगे।

चतुरी ने आगे बढ़कर कटोरी उसके पास रख दी। मैंने शिवसरूप से से कहा—बाबू तुम नाहक खड़े हो? इसे कोई रोग नहीं है। भगवान् चाहेंगे तो यह भात इसे अमृत बन जायगा।

शिवसरूप—अच्छी बात, तो मैं जाता हूं। भैया से कह दूँगा।

"हाँ, अभी मैं इसे खिलाती हूं।—अरे ले बहू खा, यह रोटी खा ले।"

उसके मुँह में थोड़ा भात डालकर मैंने पानी पिलाना चाहा पर उसका

जो कौर उसके मुँह में दिया वह ऐसा लगा कि गले में ही फँस जायगा, वह उलटवा देना पड़ा। आखिर मैंने थोड़े से चावल पानी में घोलकर उसके गले में पहुंचाये।

चतुरी भात न लाता और मैं ही घर से रोटी लाई होती तो शायद उसके प्राण ही चले जाते। इसलिए मैंने मन ही मन अपनी बुद्धि पर तरस खाया।

मैं उसके पास थोड़ा और बैठती पर मुन्ना मुझे खोजते खोजते आ पहुँचा, बोला—अम्मा, तुम यहाँ डाक्टर बनी हो उधर गैया के फाँसी लग गई।

"सच!"

"और नहीं तो। न जाने किसने उसके गले में सरकफुन्दी लगा दी।"

"मैंने ही तो बाँधी थी। मैं तो ठीक गाँठ दे आई थी।"

"दे आई होगी। वह मर चुकी।"

सचमुच ही घर जाकर देखा, कमला मरी पड़ी थी। गला घुट जाने से आँखें बाहर निकल आई थीं। मुल्ला की बहू घर के भीतर चीख रही थी। बछड़ी एक तरफ बाँ-बाँ कर रही थी। मैंने अच्छी तरह गाँठ लगाई थी। मैंने अपना सिर पीट लिया।

मेरी बहू ने आकर ताना दिया—अच्छा पुण्य कमाने गई थीं अम्मा। देख लिया अपने पुण्य का फल। भगवान् ने जिन पर क्रोध किया है वह क्या यों ही किया है? क्या उनके पापों का ही यह सब फल नहीं है? आप भी जाँय और दूसरों को भी ले डूबें।

मेरे लिए यह प्रतिवाद का अवसर नहीं था। सब सुन लिया। सब सह लिया।

उसके दूसरे दिन राममोहन की स्त्री के मरने का समाचार भी सुन लिया, और यह भी सुन लिया कि मृत के घर-मकान पर रामरूप ने कब्जा कर लिया है। सबधी कहिए तो, घरवाले कहिए तो उसके और थे कौन?

इधर उधर बहुत सी कानाफूसी भी सुनी, राममोहन और भारती की कई हजार की नकदी और गहने उन्हें मिले। लोगों को इतने धन का स्वप्न में भी ख्याल न था। इस प्रलयकांड में उसकी बन आई।

कोई इसपर ईर्ष्या क्यों करे? जिसे देता है भगवान् इसी तरह देता है। परन्तु एक बात है, ऐसा पैसा ठहरता कम ही है। जिस रामरूप के घर सदा चूहे डंड पेलते थे। उसके घर में आजकल रोज नाच रंग होता है। शराब की नदी बहती है। कहते है पिछले डेढ़ महीने में हजार रुपया खर्च कर डाला है। मेरे लिए वह बुरा यह हुआ है कि वह हमसे खार खाता है। न जाने किस दिन क्या कर डाले? हाँ, रामकिशन दो दिन हुए आ गया है। जाने कैसे उसे भाई-भौजाई के मरने की खबर मिल गई। बेचारा बाहर खाली दूकान में एक चटाई बिछाये पड़ा है। सुनते हैं, रामरूप ने उससे कहा है कि मृतों की बीमारी और मौत में उसे दो तीन सौ रुपये खर्च करने पड़े हैं, उन रुपयों के बदले वह पसन्द करे तो उन्हें अपना मकान दे जा सकता है। उपाय ही क्या है? देना होगा बेचारे को।

बुआ ने कहा—"सच!"

"फिर और करेगा क्या?"

"राम-राम।"

"सारे गाँव मे कोई कुछ न कहेगा?"

"कौन कहे? किसे अपनी इज्जत प्यारी नहीं है? किसके प्राण फालतू हैं? कौन अपनी बहू-बेटियों को सरे बजार गालियाँ दी जाते सुनना चाहेगा। रामरूप से सभी डरते हैं। नंगे आदमी से बिगाड़ना कोई नहीं चाहता।"

"यह तो बहुत बुरी बात है।"

"जो भी हो।"

इतनी देर तक मैं बैठा मुलुआ की माँ की बातें सुन रहा था। अब जब वह चली गई है तो भी मेरी आँखों के आगे वे ही सब दृश्य घूम रहे हैं। जीवन में नित्य नई घटनेवाली घटनाओं ने थोड़ी अवस्था में ही मुझे

वह दृष्टि दे दी है जिससे मैं बड़े-बूढ़ों की तरह उनमें एकाग्र हो जाता हूँ। उनका चिन्तन करता हूँ। अपने भाव-प्रवण हृदय में उन्हें अनजाने ही सुरक्षित कर लेता हूं।

उस दिन रात के लिए मेरे सामने एक ही समस्या थी, और थी भी वह सुखद। कल दौलतपुर के स्कूल में जाना होगा। जीवन के नये प्रवाह में उतरूँगा। कम से कम घर के सड़े-गले और एकरस जीवन से तो छुटकारा मिलेगा। घर में बुआ का वही शासन वही घरेलू चर्चा, वही खाना और खेलना। अब वह पहले जैसा आनंददायक नहीं है। यदि बिट्टो मेरे जीवन से लगी न हो तब तो अबतक वहाँ का रहना दूभर ही हो जाता। मुलुआ की माँ ने बुआ के सामने राममोहन के परिवार की करुण कथा सुनाकर एक नई चीज मुझे दे दी। यह इतनी हृदयस्पर्शी थी, कि मैं उसी में उलझ गया।

राममोहन का घर दो ही महीने में खँडहर हो गया है। उसके वे टूटे किवाड़ भी आज नहीं हैं जिन्हें पहले पहल यहा आने पर मैंने देखा था। और भी भीतर जहाँ-तहाँ चौखटे और किवाड़ थे वे उतर गये हैं। जब घर में कोई रहने ही वाला नहीं है तो उनकी जरूरत भी क्या थी? आजकल उस घर में गाँव के कुत्तों, धोबी के गधों और भूले-भटके पशुओं का अबाध प्रवेश है। वे जब चाहते हैं आदमी के बनाये हुए इस सुख निवास में आतिथ्य ग्रहण करलेते हैं हम सब भी, जितने लड़के लड़कियाँ हैं, बड़े-बूढ़ों की कुदृष्टि से दूर अपनी दुनियाँ रचने की जब सोचते हैं, तो ऐसे ही स्थानों की खोज करते हैं। इधर जब से मैं लौटकर गाँव में आया हू तीन चार दफे सबके सब राममोहन के इस शून्य घर में घंटों खेले कूदे हैं। कभी हमारे जी में यह ख्याल नहीं हुआ कि इस घर के निवासी कैसी कैसी अतृप्त अभिलाषाओं को अपने हृदय में दबाये चले गये हैं। किस तरह उन्होंने जीवन की कठिनाइयों से लड़कर इस घर के वैभव का निर्माण किया था। वह सब यहीं छूट गया। कुछ भी तो उनके साथ नहीं जा सका।

हम लोगों के लिए न सही पर जो इन प्राणियों से हिलेमिले थे उनके लिए तो उस घर के कण कण में उन लोगों की स्मृतियाँ सिसकती जान पड़ रही होंगी। रामकिशन जब परदेश से लौटकर आया है तो उसने क्यों नहीं घर के भीतर अपना प्रबंध किया? इतना लंबा चौड़ा घर। थोड़े से प्रयत्न से ही सुरक्षित हो सकता था। द्वार पर एक जोड़ी किवाड़ चढ़ा देने से ही पुरखों की इस भूमि मे वह सानन्द रह सकता था, लेकिन उसने वैसा न करके दूकान की खुली कोठरी मे एक चटाई डाल रक्खी है। उसी पर हम उसे कभी बैठा, कभी लेटा और कभी सोया देखते है। उसमें इतना साहस नहीं मालूम पड़ता कि वह उस घर में घुसे जहाँ हम बालक और पशु भावनाविहीन स्वच्छन्द विचरण करते है। यदि वह साहस करके उसके भीतर जाय तो क्या आप समझते है कि वह इस प्रकार शून्य दृष्टि से आकाश को ताक सकेगा? क्या इस प्रकार तटस्थ भाव से अपनी माँ बहिन या भाई भौजाई की चर्चा चला सकेगा? वह जानता है कि घर से बाहर जो शक्ति उसमें है वह भीतर जाने पर न रहेगी। उसमें पैर रखते ही कण कण अपनी कहानी कहने लगेगा। वह आदमी के व्यंग्य को सह सकता है, क्योंकि उसकी सहृदयता का उसे परिचय है, पर मिट्टी की दीवारों की, तुलसी के पौधे की, पानी के खाली घड़ों की, फूस के टूटे छप्पर की शिकायत का उत्तर देने की क्षमता उसमें नहीं है। वहाँ तटस्थ और शून्य भाव से वह अपनी दार्शनिकता का ढोंग न रच सकेगा। उनके सामने उसे स्वीकार करना पड़ेगा कि एक रक्तमांस का होकर भी उसने अपने जनों का उतना भी साथ नहीं दिया जितना उन सबने दिया है। आज जब वे नहीं रहे है तब उनकी कब्र पर स्मृति-दीप जलाने का उसका शोक, शौक ही हो सकता है, आडम्बर ही हो सकता है, सहज उद्‌गार नहीं। इस तरह के आडम्बर और शौक की क़द्र भी सिर्फ मनुष्य-समाज में ही होती है। इसके बाद वे कहेंगे वह मर्म कहानी जिस तरह अनाथ और असहायों की भांति उसके घरवाले तड़प-तड़पकर मरे हैं। पानी की दो बूँदें डालनेवाला भी उस समय उन्हें नहीं जुड़ा।

अत. इस प्रकार घर से बाहर रहकर रामकिशन ने दुर्बुद्धि से काम नहीं लिया है। धीरे धीरे समय की दूरी स्मृतियों को धुँधला कर देगी। जीवन का संघर्ष चित्तवृत्ति को अपने धंधे में लीन कर लेगा, तब वह सहज भाव से दुनियाँदारी की परम्परा का पालन कर सकेगा।

रामचरण हमारा साथी है। उसके साथ साथ मैं स्कूल चला। आज पहला दिन जो है। पहले दिन किसी का सहारा तो चाहिए।

आम का बाग, बांस के झाड़, अरहर के खेत, ढाक का वन। कैसा आकर्षक है दौलतपुर का रास्ता। तिस पर मित्र का साथ, ऐसे मित्र का जो मुझे अपने स्नेह का अधिकारी समझता है।

गाँव के करीब एक दर्द भरी चीख सुनकर मैं रुक गया,—सुनो!—मैं चिल्लाया।

रामचरन ने उँगली से एक कच्चे बड़े मकान की ओर उँगली दिखाकर कहा—यह गाँव के मेहतर का मकान है। उसके घर में व्याह हो रहा है—।

फिर वही चीख।

मैंने कहा—मैं व्याह की बात नहीं कहता। क्या तुम यह चीख नहीं सुनते? यह क्या है?

रामचरन—ये बरात के लिए सुअर काट रहे हैं। वही चिंघाड़ रहा है।

सुअर काट रहे हैं।—मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ! तुम्हें मालूम नहीं सुअर कैसे मारते हैं?"

"नहीं।"

रामचरन ने बताया—बकरे की तरह ये सुअर का सिर नहीं काटते। सुअर इतना शक्तिशाली जानवर है कि उसका सिर कटने से भी धड़ देर तक काबू में न आये। इसलिए ये लोहे की बड़ी बडी सलाखें तपाकर लाल कर लेते हैं। सुअर के पैर बांधकर उसे गिराते हैं। और दो-चार आदमी उसे दबाकर बैठते हैं। एक तपी हुई सलाख लेकर उसके पुट्ठे के नीचे मुलायम जगह से उसके पेट में घुसेड देता है। इस तरह कई सलाखें लगातार घुसेड़ी जाने से सुअर मर जाता है। वे सलाखें घुसेड़ रहे होंगे तभी तो वह चिङ्घाड़ रहा है।—इस तरह उसे मारने के बाद वे उसका माँस भून लेते हैं।

मैं नहीं जानता रामचरन ने यह सब ठीक ही कहा होगा। मुझे तो यह सुनकर बड़ा अचरज हुआ। एक दिन मेहतर को मैं जीवित चूहा जलाते देख ही चुका था। इसलिए इस पर भी विश्वास कर लिया।

रामचरन ने कहा—चलो तुम्हें दिखालायें।

मैंने इनकार कर दिया—मैं न देख सकूँगा।

हम लोग धीरे धीरे दूर होते जा रहे थे। सुअर की चीख भी वैसे ही वैसे धीमी पडती जाती थी। मैंने मन ही मन कहा—ये लोग भी कैसे होते हैं? क्या इनके हृदय नहीं होता? ये निष्ठुर से निष्ठुर काम कैसे कर डालते हैं? इनके सामने प्राणियों की यन्त्रणा का कोई मूल्य नहीं। दूसरों की कठोर से कठोर तकलीफ भी इनके मन पर असर नहीं डालती। आरंभ से इसी तरह के काम करते करते ये अभ्यस्त हो जाते हैं। इनकी आत्मा मर जाती है। इनके लिए जीवित प्राणियों का शरीर पेड मे लगे फल से भिन्न नहीं होता। जैसे हम लोग अप्रयास फल को तोड़कर खा जाते हैं, उस समय यह नहीं सोचते कि फल को तोडने से पेड़ को कितनी यंत्रणा होती है, उसी तरह इनके कान भी अपनी शिकार की चीख-पुकार के प्रति

बहरे हो जाते हैं। हम बड़े बड़े लोग भी तो इन गरीबों के श्रम-फल वं खाकर डकार तक नहीं लेते—इनकी आह-कराह भी तो हमारे कानों ं नहीं पहुचती। यही तो दुनियाँ का कायदा है। यही तो सदा से होत आया है।

कुछ दूर जाने पर जब हम एक छोटी तलैया के किनारे पहुँचे तं रामचरन ने बताया—आओ तुम्हें सुचेता का घर बतायें। वह रहा, वह

'जिसमें वह पेड़ खड़ा है?"

'हाँ वह अनार का पेड है। सुचेता के घर खूब अनार फलते हैं।"

"सुचेता वहाँ होगी?"

"नहीं, वह अभी वहाँ नहीं होगी। वह स्कूल पहुंच गई होगी।"

"तो क्या वह भी पढ़ने आती है?"

"हाँ, कई दिन से आने लगी है। और भी कई लड़कियाँ आती हैं सरकार ने जोर दिया है कि छोटे स्कूलों में लड़कों के साथ लड़कियाँ भं पढ़ाई जायँ। मास्टर इसके लिए कोशिश करें। माँ बापों को समझाएँ इसी के फल स्वरूप लड़कियाँ आने लगी हैं।"

"तब तो सुचेता हमें वहीं मिलेगी? मैंने तो उसे तब से नहीं देख है जबसे—"

"इन्स्पेक्टर साहब स्कूल का मुआयना करने आने वाले हैं। पंडित जी चाहते हैं तब तक कुछ लड़कियाँ और दर्ज हो जाँय लेकिन लोग भेजे तब न। यहाँ लोग लड़कों को पढ़ाते ही नहीं हैं लड़कियों को कौन भेजेगा?"

"इसमें नुकसान क्या है? पढ़-लिख जाँयगी तो क्या बुरा होगा?"

"गरीबों के पास भरपेट खाने का तो ठीक नहीं है। लड़के-लड़कियाँ, माँ-बाप सब दिनरात मेहनत करते हैं तब मुश्किल से पेट भरता है। उस पर सरकार कहती है कि लड़के-लड़कियों को पढ़ाओ। सरकार चौदह वर्ष तक शिक्षा अनिवार्य करना चाहती है।"

"लोग क्या कहते ?"

"लोग कहते हैं। लड़के-लड़कियों को ले जाओ, पढ़ाओ-लिखाओ पर साथ ही खाने कपड़े भी दो।"

"यह क्या हो सकता है ?"

" तो शिक्षा भी अनिवार्य कैसे होगी ? भूखे पेट कहीं पढ़ाई होती है ? सरकार के सब काम लँगड़े होते हैं। सुनते हैं एक खेती का महकमा भी खुल गया है। एक दिन पंडित जी के पास महेशपुर का चौधरी आया था वह बता रहा था कि खेती सुधारने के लिए एक साहब गाँव में आये थे। उन्होंने किसानों को इकट्ठा किया। उन्हें बहुत से उपदेश दिये। कहा, बाप दादों के जमाने के हल छोड़ दो, नई किस्म के भारी भारी हल मँगाओ। उससे पैदावार बढ़ेगी। फिर कहा, अच्छी किस्म की खाद डालो। सिंचाई के साधन ठीक करो। हरी फसलों को कीड़ों और चिड़ियों से बचाओ अनेक उपाय बताये पर धन कहां से आये, किसानों की मदद कौन करे, यह नहीं बताया। सामने ही एक जुआर का खेत खड़ा था। उसके भुट्टों से चिड़ियां दाने चुगे जा रही थीं। उधर जब आपकी नजर गई तो कहा, इसका सहज उपाय यही है कि जालीदार हल्के कपड़े के टुकड़े लेकर भुट्टों पर लपेटते जाओ। इससे हवा और धूप भी न रुकेगी और चिड़ियाँ चोंच भी न मार सकेंगी। इस पर एक बुड्ढे किसान ने पूछ लिया लेकिन साहब, कपड़ा तो हमारे पास पहनने को भी नहीं है। अगर हो भी तो एक भुट्टे की रक्षा में जितने का कपड़ा लग जायगा उतनी तो उसमें ज्वार भी न होगी।"

"साहब ने क्या उत्तर दिया होगा ?"

"उत्तर क्या देंगे ? वे तो किताबों की रटीरटाई बातें कह देते हैं। व्यावहारिक ज्ञान की बातें करें तो सरकार को कितना खर्च उठाना पड़े। उसके लिए अभी सरकार तैयार नहीं है।"

इसी समय किसी ने पीछे से आकर मेरी आँखें मूँद लीं पर इस मूँदने में हाथ हिल जाने से कलाई की चूड़ियाँ जो खनक उठीं तो मेरे मुँह से अचानक निकल गया—सुचेता !

और सुचेता हमारे सामने हँसती हुई खड़ी थी। दो सहेलियाँ भी उसके साथ खड़ी मुस्करा रही थीं।

तुम भी पढ़ने आये हो रमेश ?—सुचेता ने पूछा।

"हाँ, तुम्हें क्या ? स्कूल तुम्हारे घर के तो पास ही है।"

"पास होना क्या अच्छा होता है ?"

"क्या बुरा होता है ?"—रामचरन ने कहा।

"और नहीं तो, थोड़ी भी देर हो जाय तो पंडित जी दो हरकारे भेज देते हैं। जैसे हमने कोई अपराध किया हो और दो जवान गिरफ्तार करने आये हों।"

सुचेता की बात पर सभी लोग हँस पड़े। इसी समय दो छात्र एक अपने से बड़ी उम्र के लड़के को घसीटते हुए पास के मकान से निकले। लड़का जोर जोर से चिल्ला रहा था। वह कह रहा था—मुझे छोड़ दो। मुझे छोड़ दो। मैं चला चलूँगा। दुहाई बप्पा की मैं अब चला चलूँगा।

दोनों लड़के उसकी प्रार्थना पर ध्यान दिये बिना ही उसे खींचते जा रहे थे। सुचेता ने बताया – यह रोज इसी तरह पाठशाला ले जाया जाता है।

तब तक लड़के की माँ छत पर चढ़ आई और कहने लगी—इसे छोड़ना मत, भैया। इसे ऐसे ही ले जाओ। जाने कैसा अभागा लड़का है। लाख कहती हू पाठशाला में क्या डर, पर नहीं मानता। पढ़ाई के नाम से भागता है। तुम ले जाओ इसे।

लड़के ने हाथ जोड़कर कातर कंठ से कहा—अम्मा, तेरे पैरो पड़ता हूँ, आज मुझे रहने दे। फिर कभी न रहूँगा। रोज बिना कहे चला जाया करूँगा। अम्मा, मेरी अम्मा !

माँ के ऊपर इस गुहार का तिलभर भी असर न पड़ा। वह और सख्त हो गई। उसने डाँटकर कहा–अभागे, तू रोज ऐसे ही बहाने करता है।

"तेरी सौगन्द अब कभी नहीं करूँगा अम्मा, आज मुझे छुट्टी दे। बस, आज।—"

"नहीं, छोड़ना मत भाई।"

लड़को ने फिर जोर लगाकर कुछ कदम उसे घसीटा। माँ नीचे चली गई। लड़का असहाय हो गया। हम सब उसके चारों ओर घिर गये। सुचेता की सखी चाँदकुँवरि ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—देवीसिंह, रोता क्यों है? देख हम सब भी तो चल रहे हैं। तू तो मर्द है फिर इतना बड़ा! हम लडकियो से भी ज्यादा डरपोक है तू!

"चाँदा बहन तू मुझे छुड़ादे। मैं भागूँगा नहीं।"

"अच्छा, छोड़ दो भाई"—चाँदकुँवरि ने कहा।

लडकों ने कहा—यह अभी भाग जायगा।

देवीसिंह—मैं न भागूँगा। बप्पा की सौगन्द जो मैं भागूँ। अब भी नहीं मानोगे?

सुचेता—अब क्या भागेगा यह? बाप की सौगन्द खा रहा है।

चाँदकुँवरि—छोड़दो बेचारे को। अब क्यों पकड़े हो?

लडकों ने देवीसिंह को छोड दिया। वह शरीर की धूल झाड़कर उठ [illegible]ा हुआ और आँखो के आंसू पोंछकर बड़ी शान्ति से हम लोगों के साथ [illegible]ने लगा। सबने समझा अब सब ठीक हो गया। चाँदकुँवरि देवीसिंह समझाते समझाते उसके साथ साथ चलने लगी।—वह बोली—तुम्हें [illegible]शाला में अच्छा नहीं लगता देवीसिंह? हम लोग तो खूब खेलते हैं। हम सब में हिल-मिलकर रहा करो। आज चलो हम तुम्हें अपने साथ रक्खेंगे।

देवीसिंह किसी बात का उत्तर नहीं दे रहा था। गुमसुम हमारे साथ [illegible] रहा था। चाँदकुँवरि को भी उपदेश देने की आदत थी। वह कहे[illegible]ी जा रही थी—तुम्हें मालूम पड़ता है नये पंडित जी ने मारा है? उन्हीं के पास तो पढ़ते हो? वे नये आदमी हैं। नये आदमी पढ़ाना [illegible] जानते हैं, मारना अधिक। हम पंडित जी से कहेंगे।

चाँदकुँवरि का उपदेश खत्म भी नहीं हुआ कि मोड आते ही देवीसिंह

वह कहाँ हाथ आता था। थोड़ी दूर तक उसका पीछा करके वे हाँफते हुए लौट आये। बोले—भाग गया। हमने कहा था न, भाग जायगा। बड़ा बदमाश है। कल बब्बा को बतायेंगे। पण्डित जी को कहकर कल ऐसे कोड़े पड़वायेंगे कि छठी का दूध याद आजायगा।

हम सबके सब पछताते हुए पाठशाला पहुँचे। सब लड़के अपनी अपनी कक्षा में चले गये। मैं पंडित जी से पूछकर दूसरे दर्जे में जा बैठा।

पहले दिन ही मुझे उस रहस्य का पता चल गया जिससे भयभीत होकर देवीसिंह और उसी जैसे दूसरे लड़के स्कूल से विद्रोही हो उठते थे। सरकार की ओर से पढ़ाई का समय जो नियत था वह मास्टरों को सुविधाजनक न होता था। इसलिए उन्होंने मनमाना समय रख छोड़ा था। यह तो मुझे बाद में उस समय मालूम हुआ जब एक दिन अचानक इन्सपेक्टर साहब आ पहुचे। वैसे हम लोग सबेरे सात, साढ़े सात बजे से आकर शाम को सात बजे छूटते थे। दोपहरी में एक घंटे की छुट्टी अलग मनाते थे। इन्सपेक्टर साहब के आने की सूचना छ बजे मिली। उसी समय पंडित जी ने हर एक कक्षा में कह दिया—सब लड़के चुपचाप धीरे धीरे बिना शोरगुल किये भाग जायें। कोई अपने साथ किताबें, पट्टी या बस्ते न ले जायें।

यह सुनते ही छत्ते में से मक्खियों की तरह लड़के निकल भागे। बहुत सी मक्खियाँ जब एक साथ उड़ती हैं तो कितनी ही शान्ति रहने पर भी भनभनाहट हुए बिना नहीं रहती। इसी तरह लड़के चुपचाप भागने की चेष्टा कर के भी शाति की मर्यादा के बिल्कुल ही भीतर न रह सके। थोड़ा बहुत शोर तो हुआ ही। उधर इन्सपेक्टर साहब का घोड़ा तो अहाते में आ पहुँचा। अब तक पंडित जी लड़कों की पाटियों, पुस्तकों और बस्तो को जल्दी जल्दी बटोर कर भीतर डलवा चुके थे, झट बाहर आये। साहब को सलाम किया। नायब ने भी हेड का अनुकरण किया। इन्सपेक्टर साहब की त्योरियाँ खिंची हुई थीं। उन्होंने घोड़े की रास चपरासी के हाथ में देते हुए पूछा—इस वक्त तक पढ़ाई चला करती है?

हेड पंडित ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—कहाँ ? अब तो छः का वक्त है। स्कूल तो चार—

नायब मुदर्रिस ने सहारा लगाते हुए कहा—साढ़े चार पर बन्द हो जाता है।

इन्सपेक्टर—तो मेरी आँखें धोखा देरही होंगी।

पंडित जी—नहीं हुजूर !

इन्सपेक्टर—इसके क्या मानी ? आप लोग सरकारी कानून कायदे के पावन्द होना नहीं चाहते। जब दस से चार तक का स्कूल का समय रक्खा हुआ है तब आप छः बजे तक लड़कों को क्यों रोकते हैं ?—स्कूल सवेरे कितने बजे लगता है ?

हेड पंडित—दस बजे।

"ठीक दस बजे ?"

"जी हुजूर !"

"खैर, पर इस वक्त तक आज स्कूल क्यों खुला है ?"

"कहाँ, खुला है ? यो तो स्कूल खुला ही रहता है सरकार ! मैं स्कूल में ही रहता हू। ये नायब टीचर भी यहीं रहते हैं। हम लोगो का गाँव यहाँ से छः मील है। इसलिए स्कूल खुला है।"

"पर लड़के क्या अभी आपने नहीं छोड़े ?"

"नहीं साहब।"

" ये जो इतने लड़के भागे जा रहे है ? क्या ये स्कूल के लडके नहीं हैं ?"

" जी हाँ, कुछ तो स्कूल के लडके जरूर है, बाकी गाँव के दूसरे लड़के हैं। ये लोग यहां मैदान मे खेलने आ जाते हैं। हम लोग उन्हें खेलने देते हैं, ताकि स्कूल उनके लिए अपरिचित न रहे। वे स्कूल को अपना ही घर समझें।"

इन्सपेक्टर साहब सव्यंग्य मुस्कराकर बोले—अच्छा, यह बात है। यह तो बहुत अच्छा उपाय है, लेकिन लड़के किताबें और बस्ते क्यों लिये

जा रहे हैं ?

उँगली के इशारे से उन्होंने कुछ लड़कों को बताया। सचमुच ही कुछ लड़के जो पंडित जी के आदेश का आशय न समझे थे अपने अपने बस्ते साथ लेकर जा रहे थे। पंडित जी कहाँ पिटने वाले थे ? झट स्वीकार किया, बोले—जी हाँ, ये स्कूल के लड़के हैं।

"फिर ?"

"उन्होंने पाठ याद न किया था अत. ये स्कूल के बाद रोक लिये गये थे ? वरना देखिये लड़के तो इतने हैं, और किसी के पास तो बस्ते नहीं हैं।"

साहब ने सिर हिलाया। वे सब समझ रहे थे पर पंडित जी एक उस्ताद थे वे 'तुम डाल डाल तो हम पात पात' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे थे।

इन्सपेक्टर साहब ने और अधिक प्रश्नोत्तर न किया। कुछ देर ठहर कर कहने लगे—हम स्कूल का मुआइना करेंगे।

पंडित जी—अभी ?

"अभी। इसी समय।"

हेड ने नायब को इशारा किया। वह वहाँ से हट गया, फिर उन्होंने साहब से कहा—गरीब परवर, आप थक गये होंगे। अब आराम करिये सबेरे मुआयना कर लीजियेगा।

साहब—मैं अभी मुआयना करना चाहता हूँ। इसी वक्त। आप जल्दी करिये। मैं अभी चला जाऊँगा। मैं सलेमपुर आज पहुच जाना चाहता हू।

पंडित जी तो आइये। पधारिये।

पंडित जी साहब को ले गये। नायब ने बहुत होशियारी की थी। उसने जाकर लड़कों के बस्तों के ढेर को अपने और हेड के बिस्तरों से अच्छी तरह छिपा दिया था। एक गलती जरूर रह गई थी कि वह पंडित जी के मौलाबख्श नामक प्रसिद्ध अढ़ाई फुटे दंड को कहीं छिपा न

पाया था और रस्सी का मोटा कोड़ा दरवाजे की कुंडी के सहारे उसी तरह झूल रहा था जिस तरह सदा झूलता रहता है और लड़कों को आतंकित करता रहता है। साहब की नजर पड़ते ही उन्होंने पूछा—यह किसलिए है पंडित जी ?

पंडित जी कितने ही साहबो को घास चरा चुके थे। तुरन्त बोले—हुजूर, कुत्तो के लिए। इस गांव मे इस कदर कुत्ते हैं कि रास्ता निकलना मुहाल है।

साहब ने हाजिर जवाबी की कद्र करते हुए मुस्करा दिया। फिर कहा—मुझे तो एक भी नहीं मिला।

पंडित जी—हुजूर का इकबाल ! ये कुत्ते भी अफसरों को पहचानते हैं।

साहब—जरूर, लेकिन पंडित जी यह कोड़ा किसलिए है ? क्या आप इससे लडकों की मरम्मत नहीं करते ? जबकि शारीरिक दंड की मनाई है। असल बात यह है कि आप लोग शिक्षा के उद्देश्यों को नहीं समझते। आप तो उसी बाबा आदम की दुनियो में रह रहे हैं। आज की शिक्षा में डंडे को कोई स्थान नहीं रह गया है, यह आपको अच्छी तरह जानना चाहिए।

पंडित जी—हुजूर, बन्दा यह बखूबी जानता है।

साहब—तो यह कोड़ा किसलिए रख छोडा है ?

पंडित जी—यह न पूछिये साहब।

साहब—यह तो बताना ही पड़ेगा।

पंडित जी—लड़कों को डराने के लिए।

साहब—डराने के लिए ? अच्छा, इसका सबूत ?

पंडित जी—इसका सबूत तो खुद यही कोड़ा है। यह जहां झूल रहा है वहाँ यह कदापि न होता अगर इसका वही उद्देश्य न होता जो मैंने आपसे बयान किया है। तब यह जरूर हमारे नायब साहब की टेबिल पर होता।

साहब इस आखिरी बात पर अपनी हँसी को न रोक सके। खूब

"अच्छा, कहाँ तक गये थे वे ?"

"डाकबन के उस किनारे तक। साहब ने उनसे बहुत सी बातें कीं।"

"क्या बातें की ?" उत्सुकता से पडित जी ने पूछा।

"पूछा कहाँ पढ़ते हो ? स्कूल में कैसी पढ़ाई होती है ? कौन मास्टर तुम्हें पढ़ाता है ? सबसे अच्छा पढ़ानेवाला कौन मास्टर है ? तुम लोग किस मास्टर को ज्यादा पसन्द करते हो और क्यों ?"

"सच ?"

"हाँ, साहेब।"

"तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"देवीसिंह से।"

"फिर उसने क्या बताया ?"

"यही सब बताया।"

"जैसे, क्या—?"

एक लड़के ने साहस करके कह दिया—यही कहता था कि पढ़ाई भी होती है, धुनाई भी होती है।

"ऐं !"—पडित जी सिटपिटाये।

लड़के ने कहा—और उसने मौलाबख्श का भी जिक्र किया था।

पडित जी—सच !

लड़का—जी हाँ।

पडित जी—यह देवीसिंह बड़ा पाजी लड़का है। कल सुअर की खाल उधेड़ेंगे। इन्हें किसने साहब के साथ जाने को कहा था ?

लड़का—साहब खुद ही बुला ले गया था।

साहब की इनसे दोस्ती रही होगी—पंडित जी गुर्राये।

लड़का—लेकिन साहब इनकी बात समझे नहीं। उन्होंने समझा मौलाबख्श कोई आदमी है।

"मौलाबख्श आदमी है ऐसा समझे ! मौलाबख्श डंडा ही है यह तो नहीं समझे, न ?"

"जी नहीं ।"

"तब कोई बात नहीं । पर ये लड़के उल्लू के पट्ठे हैं । इनको जरा भी तमीज नहीं है ।"

"स्कूल कितने बजे खुलता है और कितने बजे बन्द होता है, यह भी पूछा था, पर ये कोई इसका ठीक उत्तर न दे पाये । इन्होंने बताया ग्यारह बजे खुलता है पाँच बजे बन्द होता है । बीच में घण्टे भर की छुट्टी होती है ।"

"तब तो उसने समझ लिया होगा ये उल्लू ही हैं ।"

"जी हाँ ।"

इसके बाद लड़कों को छुट्टी देकर पंडित जी निश्चिंत हो रहे, पर इस मुआयने की चर्चा काफी दिन तक चलती रही । इस घटना को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो जाने पर कभी कभी अपनी मित्रमंडली में पंडित जी इसका बड़ी सरसता से वर्णन करके सुनाते थे ।

मेरे समय में एक और दिलचस्प मुआयना हुआ था । वह घटना भी बड़े मजे की है । जाड़े का मौसम था । करीब दो बजे होंगे । पंडित जी अपनी कुर्सी पर बैठे बैठे थक गये थे । इसलिए उठकर अहाते में चले गये थे । हम सब लड़के सवाल कर रहे थे । उसी समय सड़क पर 'घरर-घरर' की आवाज आई । दो चार लड़के बाहर निकल गये और चिल्लाने लगे—हवागाड़ी, हवागाड़ी !

उस समय गाँव में मोटर बिरले ही पहुँचती थी । पहुंच जाती तो एक मेला लग जाता था और लोग उसे हवागाड़ी कहते थे । हवागाड़ी का हल्ला सुनकर सब उधर ही दौड़ने लगे । दो चार लड़के भी किसी न किसी बहाने जाकर उसे देख आये । मालूम हुआ, जन्ट साहब की गाड़ी है । ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट को हम सब जन्ट साहब ही कहते थे । गाड़ी में कुछ खराबी हो गई थी । ड्राइवर को उसे ठीक करने में समय लगेगा यह जानकर जन्ट साहब गाड़ी में से उतर आये ।

बाइस तेइस की उम्र होगी । अभी लड़के ही थे जन्ट साहब । गाड़ी

दोपहरी की छुट्टी का हम यही सदुपयोग करते थे। यहाँ हम चार की गोष्ठी थी। रामचरन, मैं, सुचेता और चाँदकुँवरि। चाँदकुँवरि की अवस्था सुचेता से छोटी थी परन्तु उसमें नैतिक बुद्धि का प्राबल्य था। वह क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए इस पर अधिक ध्यान दिया करती थी।

एक बात और बता देनी आवश्यक है कि रामचरन हमारे स्कूल का विद्यार्थी नहीं था। वह तो शहर में पढ़ रहा था। वहाँ से अपने भाई के पास आकर रहने लगा था। वह स्कूल में केवल एक-आध विषय में सहायता लेने आता था। पंडित जी ने बदले में उससे कुछ काम भी लेना शुरू कर दिया था। वह छोटी कक्षाओं में डिक्टेशन बोलता, हिसाब पूछता और पहाड़े पढ़वाता था। मतलब यह कि वह आधा मास्टर और आधा विद्यार्थी था। वह पंडित जी की भतीजी दुलारी का ट्यूटर भी था। वह शरीर से तगड़ा न था। कद भी मझोला था। इसलिए हम छोटे विद्यार्थियों में वह अच्छी तरह खप जाता था।

सुचेता का घर बहुत लंबा चौड़ा था। घर में कितने ही बड़े बड़े कमरे और दालान थे। उसके पिता ज्यादातर खेतों पर रहते या अपनी जमींदारी में चले जाते। उसकी माँ हम लोगों से विशेष संबंध न रखती। हम जहाँ चाहते बैठते, जहाँ चाहते खेलते। कोई रोकने वाला न था। इस प्रकार हमारी घनिष्ठता अबाधरूप से बढ़ती जा रही थी।

एक दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि राधावल्लभ भी हमारे स्कूल में आ पहुँचा है। इतना बड़ा लड़का हमारे बीच में कैसे पढ़ेगा यह पंडित जी का एतराज चल नहीं सका। लोगों के अनुरोध को वे टाल न सके। इस प्रकार हमारे एक और पूर्वपरिचित का हमारी गोष्ठी में अनायास प्रवेश हो गया।

रामचरन का अब तक सुचेता के ऊपर जो पूर्णाधिकार था उसे राधावल्लभ छीन लेना चाहता था। इसलिए अब बात बात में प्रतिद्वन्दिता खड़ी हो जाती थी। जहाँ पहले हर काम शांत ढंग से हो जाते थे वहा अब

झगड़े होते। राधावल्लभ को अपनी शारीरिक शक्ति का अभिमान था। रामचरन को अपनी बुद्धि और संयत वाणी का। सुचेता को कभी इस और कभी उसका खतरा लेकर दूसरे के प्रति अनुराग दिखाना पड़ता था। इस बात को वह समझ रही थी, परन्तु अन्तिम निर्णय नहीं कर पा रही थी।

इस दशा में मेरा संपर्क चाँदकुँवरि से बढ़ना स्वाभाविक था। सबके साथ साथ रहते हुए भी मैं चाँदकुँवरि के बहुत समीप पहुँच गया। चाँदकुँवरि के माँ-बाप नहीं हैं। उसकी दादी उसे पाल रही है। उसके घर की हालत अच्छी नहीं है। आदमी घर में एक भी नहीं है। बाप-दादे की जमींदारी से जो थोड़ी सी आय होती है वही दादी और पोती की जीविका का आधार है। चाँदकुँवरि पढ़ने में बहुत तेज है। पंडित जी ने डिप्टी साहब से सिफारिश करके उसे एक रुपया महीने का वजीफा दिला दिया है। वह उसकी पढ़ाई जारी रखने के लिए काफी है।

ये बातें मुझे चाँदकुँवरि ने ही बताई हैं; नहीं तो वह जैसे साफ-सुथरे कपड़े पहिनकर आती है उससे मैं उसे अच्छी स्थिति का ही समझता था। अब तो कभी कभी मैं उसके घर भी हो आता हूँ।

एक दिन दोपहर की छुट्टी होते ही चाँदकुँवरि ने कहा—मैं तो जाती हूँ रमेश। बाग में से चार आँवले लेकर दादी को दे आऊँ चटनी के लिए।

मैं—तो मैं भी चल रहा हूँ।

चाँदकुँवरि—तुम सुचेता के घर नहीं जा रहे हो?

मैं—नहीं।

चाँदकुँवरि—तो आओ।

बस हम दोनों साथ साथ बाग मे गये। ढेला मारकर आँवले तोड़े और लेकर चल दिये। चाँदकुँवरि ने पूछा—तुम उनके साथ क्यों नहीं गये रमेश?

मैं—यों ही नहीं गया।

चाँदकुँवरि—मैं तो रामचरन को ठीक समझती थी, पर वे दोनों

अच्छे आदमी नहीं हैं।

चाँदकुँवरि का निर्णय क्यों किया गया है यह मुझे भी पता था तो भी मैंने पूछा—क्यों ?

चाँदकुँवरि—वे दोनों ही उसे छेड़ते हैं यह ठीक नहीं है।

मैं—सुचेता उन्हें मना कर दे तो वे क्यों छेड़ें।

चाँदकुँवरि—सुचेता भी कोई भली नहीं है।

मैं—तब फिर उन्हें दोष क्यों देती हो ?

चाँदकुँवरि—दोष तो देना ही होगा।—लेकिन यह अच्छा है कि सुचेता का जल्दी ही ब्याह हो रहा है।

मैं—सच, कब ?

चाँदकुँवरि—यही, इसी साल तो सुन रही हू।

मैं—तुम्हें किसने कहा ?

चाँदकुँवरि—सुचेता ने ही कहा है।

मैं—कहाँ है उसकी ससुराल ?

चाँदकुँवरि—बड़ी दूर, फैजाबाद।

मैं—यह बात और किसी को मालूम है ?

चाँदकुँवरि—शायद नहीं।

चाँदकुँवरि आँवले अपनी दादी को दे आई और हम दोनों सुचेता के घर की ओर चले। जाकर देखा तो राधावल्लभ और रामचरन आपस में लड़ चुके थे। राधावल्लभ की आँखें लाल हो रही थीं और बाहें ऊपर चढ़ी थीं। रामचरन के बालों में धूल लग गई थी। कपड़ों पर दीवार की रगड़ के चिह्न थे। सुचेता राधावल्लभ को डाँटकर कह रही थी-राधावल्लभ, तुम चले जाओ मेरे घर से।

राधावल्लभ—मैं चला जाऊँ ? अच्छी बात है, लो जाता हूं।

राधावल्लभ तड़ाक से निकल कर चला गया पर दो मिनट में ही फिर लौट आया और बोला—यों न जाऊँगा सुचेता। तुम्हें भी मजा चखाकर ही जाऊँगा।

उसने पत्थर का एक टुकड़ा सुचेता को लक्ष्य करके फेंका। वह सुचेता के तो लगा नहीं, लगा चाँदकुँवरि के माथे में और टपटप करके खून चूने लगा उससे। हम सब घबड़ा गये। राधवल्लभ तो बिना उधर देखे ही भागा। हम सबने चाँदकुँवरि को थाम लिया। उसके घाव को पोंछा। कत्था और चूना जो सहज ही मिल सकता था लाकर लेप दिया और एक बड़ा मकड़ी का सफेद जाला उस पर चिपका दिया। ज्यों त्यों करके खून बन्द किया।—इस तरह की आकस्मिक चिकित्सा हम लोगों में खूब प्रचलित थी।

राधावल्लभ सुचेता के घर से ही नहीं भागा। स्कूल से ही भाग गया। फिर लौट कर उसने सूरत न दिखाई। आंवला तोड़ने को जो पत्थर मारा था वही पलटकर माथे में लग गया, ऐसा कह देने से ही घटना के असली रूप को छिपाया जा सका। किसी ने उसमें किसी तरह का संदेह नहीं किया। परन्तु इस घटना से हम सबको ही बुरा लगा। इसका फल यह हुआ कि कई दिन तक हमारी मंडली फिर इकट्ठी नहीं हो पाई।

अचानक एक दिन मालूम हुआ कि रामचरन जा रहा है। उसके भाई की बदली हो जाने से वह कैसे रह सकेगा? उसे तो जाना ही पड़ेगा। यह सुनकर मुझे और सुचेता दोनों ही को दुख हुआ। सिर्फ चाँदकुँवरि को सतोष हुआ। उसने कहा— यहाँ पढ़ाई भी ठीक ठीक नहीं हो रही थी। वहाँ इससे तो अच्छा ही होगा।

रामचरन ने हँसकर कहा—पर यह साथ कहाँ मिलेगा?—कम से कम सुचेता तुम्हारी याद—

चाँदकुँवरि—न भूलेगी, यही तो कहना चाहते हो? अच्छी बात है हम सब को मत याद करना।

रामचरन—यह नहीं। मैं तो कह रहा था सुचेता के साथ उसके अनारों की याद क्या कभी भूली जा सकेगी?

मैं—भई, मैं तो सब कुछ भूल सकूँगा। सिर्फ मौला के बाग के उन अमरूदों की याद को छोड़कर।

इस पर सुचेता और रामचरन हँस पड़े और तब मैंने चाँदकुँवरि को उस दिन की सारी कथा कह सुनाई। सब कुछ कह चुकने के बाद सुचेता अपनी आँखों की सजलता को छिपा रही है ऐसा लक्षित हुआ।

रामचरन के विदा होने से पहले चाँदकुँवरि ने यह शुभ समाचार भी सुना दिया कि सुचेता का ब्याह पक्का हो गया है। अगले महीने ही बरात आ रही है।

रामचरन ने हँसकर अपनी शुभकामना प्रकट की। उस समय उसका चेहरा कुछ कुछ फीका हो रहा था। सुचेता उसकी ओर भर नजर देख भी न सकी। शायद वह भी बीती हुई कुछ बातों को सोच रही थी।

रामचरन चला गया। सुचेता का ब्याह हो गया। वह ससुराल चली गई। चाँदकुँवरि की दादी को आँखों से कम सूझ पड़ने लगा। उसने भी स्कूल आना बन्द-सा ही कर दिया है। इसलिए मेरी दिनचर्या भी बदल गई। स्कूल में मेरा कोई साथी न रह गया। घर में बिट्टो से ज्यों की त्यों पट रही थी। सचमुच यदि वह न होती तो मित्रों के इस अभाव को सहना मेरे लिए कठिन हो जाता। वह मेरे लिए नित्य नई सामग्री तैयार रखती थी। मैं स्कूल से लौटते ही उसमें तन्मय हो जाता था।

समय एकसा नहीं जाता। धीरे धीरे पण्डित जी की भतीजी दुलारी से मेरा परिचय बढ़ा। वह यों हुआ कि डिप्टी साहब जब परीक्षा लेने आये तो पंडित जी ने दुलारी को मेरे पास बिठाया। मुझे एक के स्थान पर दो कापियाँ करने को दी गईं। जब मैं अपने सवाल कर चुका तो दूसरी कापी पर भी उन्हें उतार दिया। दूसरी दुलारी के नाम की कापी थी। डिप्टी साहब ने देखा। प्रसन्न हुए। दुलारी को उन्होंने पुरस्कार दिया। पंडित जी की भतीजी होने के कारण मैं उससे कुछ सकुचता था। अब वह संकोच दूर हो गया। परीक्षा के बाद मुझे धन्यवाद देते हुए उसने कहा—रमेश, यह पुरस्कार तो तुम्हारा ही है भैया।

"क्यों"

"क्योंकि सवाल तो सारे तुम्हीं ने किये।"

"इससे क्या होता है ?"

"होता क्यों नहीं है। यदि मैं करती तो जानते हो क्या मिलता ?"

"बताओ।"

"अंडा।"

"ऐसा तो न होता।"

"ऐसा ही होता।"

"तो भी क्या बात है ?"

"बात यही है कि यह पुरस्कार तो मैं न लूँगी।"

"तुम चाहती हो मैं इसे ले लूँ ?"

"हाँ।"

"अच्छा लाओ।"

दुलारी ने पुरस्कार में मिली दोनों पुस्तकें मुझे दे दीं। उन्हें लेकर मैंने इधर उधर लौटाया। देखा, वे दोनों ऐसी पुस्तकें हैं जो लड़कियों के ही काम आ सकती हैं। मैंने कहा—बस, अब तो तुम खुश हुई ?

दुलारी ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

मैंने कहा—परन्तु ये मेरे हैं किस काम की ? तुम इन्हें मेरी तरफ से अपने पास रखलो।

मैं पुस्तकें उसकी गोद में फेंककर चला आया। दुलारी चिल्लाती रही, नहीं रमेश यह न होगा।

उसके बाद दो दिन मैं स्कूल गया नहीं। पिताजी का पत्र आया था। उसमें एक दुखद समाचार था। मेरी मौसी का इकलौता जवान बेटा मर गया था। मुझे वह सदा बड़े हित-प्यार से खिलाया करता था। जब जब मैं मौसी के घर गया था, भैया रामनाथ का मैंने अतिशय दुलार पाया था। यद्यपि वह सब घरवालों यहाँ तक कि अपनी माँ और स्त्री तक की अकृपा का ही पात्र था। घर की संपत्ति का बहुत बड़ा भाग उसने दुराचार और दुर्व्यसनों में गँवा दिया था और इसीसे सबसे झगड़ता रहता था परन्तु मुझे देखते ही गद्‌गद् हो उठता। अच्छे अच्छे खेलखिलौने देता।

मिठाई खिलाता। कहानियाँ सुनाता।—दो दिन उसी की मृत्यु से मैं दुखित हो रहा था। इसलिए पाठशाला नहीं जा सका। तीसरे दिन गया तो दुलारी ने पूछा—कहाँ थे दो दिन ?

अब तक किसी तरह मैं भैया रामनाथ की मृत्यु को भुला पाया था। दुलारी ने फिर याद दिलादी। मैंने मन की व्यथा मन ही में दबाकर कह दिया—योंही ?

दुलारी ने अनुरोधपूर्वक पूछा—सच बताओ।

मैं—क्या करोगी जानकर ?

मेरी दुखित आकृति देखकर उसे कुछ संदेह हुआ, बोली—तुम्हें कुछ तकलीफ है ? इस तरह क्यो हो रहे हो रमेश ?

सहानुभूति के इन शब्दों ने मेरे हृदय के स्रोत को खोल दिया। अनजाने ही छलछल करके मेरी आँखों से आँसू चूने लगे। मैंने अपने आपको सँभालने की चेष्टा की पर सँभाल न पाया। दुलारी इस अचानक अश्रुप्रवाह से डर गई, बोली—रमेश, रोते क्यों हो भाई ? क्या मैंने तुम्हें कुछ कष्ट पहुँचाया है ?

मैंने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

दुलारी—तो क्या बात है ? क्या मुझे न बताओगे ?

मैंने उसे सारी बात बताडी। उसकी आँखें भी सजल हो आईं। कहने लगी—भाई, अब रोने ने क्या होगा ?

मैं—हाँ, रोने से क्या होगा, यह तो जानता हूँ।

दुलारी—तो धीरज धरो।

इस तरह दुलारी मेरे सुख-दुख में शामिल होने लगी। हम दोनों इसी तरह की घटनाओं से बहुत समीप आगये।

× × × ×

इधर तृतीय अध्यापक की बदली हो गई। उसके स्थान पर आये एक नवयुवक। नाम था ज्वालाप्रसाद। जाति के ब्राह्मण। हृष्टपुष्ट, सुडौल, सुन्दर। सख्त इतने कि डर से छात्र कांपते थे। कोई साहस के साथ

उनके सामने खड़े होने की हिम्मत न रखता था।

ऊपर से इतने सख्त होते हुए भी ज्वालाप्रसाद हृदय के बड़े रसिक थे। दुलारी की ओर जब देखते तो मालूम पड़ता था उसे आँखो में पी जायँगे। दुलारी भी उनकी ओर आकर्षित हो रही थी। जवानी से भरी देह वस्त्रों के बाहर उमडी पडती थी। हम सब छात्रों के साथ रहकर उसमें किसी प्रकार का कोई विकार न आया था। छोटे बडे सभी अवस्थाओं के विद्यार्थी थे पर हम सब के लिए तो मानो लडकी थी ही नहीं, यदि थी भी तो वैसे ही जैसे अपनी बहिनें होती है। ज्वालाप्रसाद की गारुडी विद्या ने उसे विह्वल कर दिया। अचानक ही उसके लिए दुनियाँ में वसन्त आ गया। जब देखो तब मालूम पड़ता था आखो में नशा छाया हुआ है। होठों पर रंगीन हँसी धरी है। ज्वालाप्रसाद अपनी दृष्टि के मंत्र बराबर उस पर फेंक रहे थे।

कई दिनो तक कोई पढ़ाई नहीं हो सकी। यही लीला चलती रही। बूढ़े पंडित जी को कुछ भी पता न था। वे सदा की भाँति अपने काम में लगे रहते थे।

दुलारी का मेरे प्रति वैसा ही स्नेह भाव था। छोटे भाई की तरह वह मुझ पर कृपा रखती थी। जब कोई काम न होता तो वह अपने घर की अनेक बातें मुझे बताया करती थी। वह अपने पिता की पहली पत्नी की लडकी थी। नई अम्मा की अकृपा के कारण ही वह ताऊजी के साथ रहती है। वे शनिवार को घर जाते हैं और सोमवार को लौट आते हैं। दुलारी भी हफ्ते में एक दिन घर रह आती है। वह दिन भी उसका घर मे अच्छी तरह नहीं कटता। कोई न कोई बखेड़ा हो ही जाता है। उसका जीवन सुखी नहीं है।

एक दिन मैंने अचानक उससे पूछ लिया—तुम्हारा ब्याह कब होगा?

मैंने देखा वह एक बार संकुचित हो उठी फिर कहा—ब्याह से क्या होगा?

"सुख से रहोगी।"

"अभी क्या दुखी हूँ रमेश ?"

"दुखी ही हो। माँ के कारण तुम घर रह नहीं सकती हो।"

"घर न सही स्कूल तो है। मेरा तो स्कूल ही घर हो गया है। ये इतने सारे लड़के लड़कियाँ तो मेरे भाई-बहिन की तरह ही हैं!

"फिर भी।"

"फिर भी क्या मैं स्कूल में सुखी नहीं हू ? तुम मुझे दुखी पाते हो ?"

"मैं चाहता हूं तुम्हारा ब्याह हो जाता।"

"तुम चाहते हो, मैं यहाँ से चली जाती, क्यों ?"

"हाँ।"

यह उत्तर बिल्कुल अयाचित था। वह मेरे मुँह की ओर ताकती रह गई। बोली—किसलिए, क्या मैं जान सकती हूँ ?

"यह न बताऊँगा।"

"मुझे न बताओगे रमेश ? तुम यहाँ मुझे क्यों नहीं चाहते ?"

"यह कौन नहीं चाहता कि तुम यहाँ रहो।"

"तुम्हीं तो चाहते हो कि मैं चली जाऊँ।"

"हाँ चली जाओ तभी ठीक हो। मैं तुम्हारी बदनामी नहीं सुन सकता हू।

"मेरी बदनामी।"

"हाँ। सारे लड़के ही तो कहते हैं।"

दुलारी का चेहरा फक हो गया तो भी उसने साहस करके पूछा—लेकिन क्या कहते हैं ?

"यह मैं तुमसे नहीं कह सकता।"

"अच्छा, कौन कहते हैं ? उनके नाम तो बताओगे ?"

"सभी तो कहते हैं।'

"तो क्या उनके कहने से ही मैं स्कूल छोड़ दूँ ?"

"क्या हर्ज है।"

"लेकिन वे मेरे सामने क्यों नहीं कहते ?"

"सामने नहीं कहना चाहते। पंडित जी की भतीजी हो न, इसीसे।"

"तो भाई रमेश, उन्हें कहने दो। पीठ पीछे तो लोग सभी को बुरा भला कहते हैं।"

"मैं चाहता था वे न कहने पायें।"

"उन्हें कैसे रोका जा सकता है?"

"किसी तरह नहीं।"

"तो मैं उनकी परवाह भी नहीं करती।"

"अच्छी बात है।"—कहकर मैं उठकर चला गया। दो दिन मेरी और दुलारी की कोई बातचीत न हुई। हम दोनों ही जानबूझ कर एक दूसरे से बचते रहे।

एक दिन उसने स्वयं ही मुझसे कहा—रमेश, नाराज हो गये क्या?

"नहीं तो।"

"तब फिर बोलते क्यों नहीं?"

"कब नहीं बोलता? बोल तो रहा हूं।"

"यों नहीं।"

"फिर किस तरह?" मैंने हँसकर पूछा।

"उसी तरह। तुम मुझे बताओ भाई मैं क्या करूँ? तुम मेरी हालत जानते हो। घर में मेरे लिए आशा नहीं है। ताऊजी के पास ही मेरे लिए थोड़ी सी जगह है। उसे मैं छोड़ दूँ तो कहाँ जाऊं? मेरा ठौर-ठिकाना कहाँ है? मैं दो दिन से बराबर सोच रही हूं पर कुछ तय नहीं कर पाती। मैं भी समझती हूँ यहाँ का वातावरण बदल गया है। यहाँ रहकर मैं उससे बची रह सकूँगी इस पर मुझे संदेह होने लगा है। हँसी-खेल समझ कर जिधर मैं बढ़ गई हूं वह अब वैसा नहीं रह गया है। मुझे लगता है कि मैं अपने को संभाल नहीं पा रही हूं। मेरे निकट यहाँ ऐसा कोई नहीं है जिससे मैं यह सब बातें कहूं। ताऊ जी से तो कह ही कैसे सकती हूँ? इसलिए भाई रमेश, तुम मुझे मत छोड़ना। तुम्हें अपने मन की बातें बताकर मैं अपने को बहुत हल्का प्रतीत करने लगती हूं। जब

उसी तरह वे एक दूसरे को छोड़ कर अलग हो गये। मेरे शरीर में काटो तो खून नहीं। क्षण भर किंकर्तव्यविमूढ़ रहने के बाद खाने पीने की बात छोड़कर मैं अपनी कक्षा में भाग आया। मेरा सारा शरीर कॉंप रहा था। मैंने भीषण अपराध कर डाला था, इसका क्या परिणाम होगा, यही सोचकर मैं सन्न बैठा रहा। न जाने कितनी देर तक।

ज्वालाप्रसाद भी कमरे से निकल भागे थे। वे बाहर बरामदे में अपनी कुर्सी पर औंधे मुँह बैठे थे। दुलारी अब तक उसी अंधेरी कोठरी में थी। उसे बाहर आने का साहस न हो रहा था। आधा घंटे बाद जब ज्वालाप्रसाद प्रकृतिस्थ हुए होंगे, तो उन्होंने मुझे बुलाया—रमेश, रमेश। इधर आओ।

मैं अपराधी की भाँति उनके सामने नीची नजर किये जा खड़ा हुआ। उन्होंने कुछ देर तक अपने को सँभालने की चेष्टा करके कहा—रमेश। तुम किसी से कुछ कहोगे नहीं।

मैंने सिर हिलाकर उन्हें अपनी सहमति जता दी। तो भी उन्होंने जरा जोर से दुहरा देना उचित समझा—अगर एक भी शब्द मुँह से निकाल दिया तो ठीक न होगा। जानते हो।

मैंने सिर हिला दिया, परन्तु मन ही मन कहा—आपकी इस डाँट के कारण नहीं बल्कि दुलारी के कारण मैं इसे गोपनीय रखने को विवश हूं। आज इतने दिन बाद प्रसंगवश उस घटना को लिखकर मैं उसकी गोपनीयता को भग करने का अपराध कर रहा हूँ। तब उन्होंने कहा—तो अब, जा सकते हो। मैं चुपचाप चला आया। दोपहरी की छुट्टी समाप्त हो गई। लड़के आ पहुंचे। स्कूल चहलपहल से भर गया, पर दुलारी उसी कमरे में पड़ी थी। वह न निकली, न निकली। शाम को छुट्टी होने से पहले पंडित जी लौट आये। द्वितीय अध्यापक राजेश्वर शर्मा भी आगये थे। हेड पंडित ने पूछा, लल्ली नहीं दिखती ?

ज्वालाप्रसाद ने बता दिया, सिर में कुछ दर्द बताती थी। शायद लेट गई हो।

पंडित जी बेटी को देखने के लिए भीतर गये। छुट्टी होगई, हम लोग

अपने अपने घर चले गये।

दूसरे दिन शनिवार था। उस दिन दुलारी को मैंने देखा तो, पर वह मेरी ओर ताक न सकी। दिन भर अपनी आँखों को मुझसे बचाये रही। शाम को ताऊजी के साथ वह घर चली गई। हरिवख्श से जाते जाते कह गई—रमेश से कह देना उसकी किताब मेज की दराज में रक्खी है ले ले।

मैंने अपनी किताब जाकर निकाल ली। उसमें से एक कागज गिर पड़ा। उसे मैंने उठा लिया। उसमें लिखा था—रमेश, भाई तुमने मुझे बचा लिया। मेरी कृतज्ञता जीवन में तुम्हारे साथ हो।

मैंने वह परचा फाड़कर फेंक दिया और मौन हो रहा।

पंडित जी सोमवार को लौट आये पर दुलारी फिर न आई। एक महीने बाद सुना उसका ब्याह हो गया। नौ दस महीने बाद सुना वह एक बच्चे की माँ भी हो गई, पर मुझे फिर कभी देखने को न मिली वह।

यहाँ पंडित ज्वालाप्रसाद का बुरा हाल हो गया। उनका दिमाग इतना बेकाबू हो गया कि पूछिये मत। लड़कों को बेतहाशा पीटते और इस बुरी तरह कि मरहमपट्टी की नौबत आ जाती। घर घर से उनकी शिकायत हेड पंडित के पास आती। मजबूरन पंडित जी की रिपोर्ट पर उन्हें अपना तबादला कराना पड़ा। आगे सुनने में आया वहाँ से भी वे पृथक कर दिये गये। कहीं दूसरे स्कूल में गये और वहाँ भी नहीं टिक सके। आखिर नौकरी से ही जाते रहे।

आठ

स्कूल के अपने साथियों में मैं ही छोटा था, इसलिए सबकी दया का पात्र था। वे सदा ही मुझे इसी दृष्टि से देखते थे लेकिन घर पर ऐसी बात न

और उनके दो अन्य भाई सम्पतलाल और मनीराम थे। तीनों अलग अलग घरों मे रहते थे। बाबूराम और उनके भाइयों में मेलजोल था। सपतलाल बीमार और दुर्बल थे। पिछली प्लेग में उनकी गृहिणी का अन्त होगया था। इसलिए उनकी हालत अच्छी न थी। घर में कोई दिया जलानेवाला भी न था। बाई लच्छी को वे खींच-खींचकर अपने पास रखते थे, पर वह उनके अकेले घर में जाते भय खाती थी।

पैसेवाले होते हुए भी तीनों भाई सूमशिरोमणि थे। सारा काम अपने हाथों करते थे। खाने-पीने, पहनने ओढ़ने में भी फूँक-फूँककर चलते थे। हाँ, यह बात जरूर थी कि उनकी लड़कियाँ और स्त्रियाँ गहनों के भार को मुश्किल से ही सँभाल पाती थीं। इस विषय को उनके घर का हर एक व्यक्ति गौरव और मर्यादा की बात समझता था। धन-संपत्ति को ही वे बड़प्पन की चीज समझते थे। जिसके पास धन नहीं, जायदाद नहीं; वह उनके निकट किसी तरह के मान-सम्मान का अधिकारी नहीं था। लेकिन हम लड़कों में यह बात नहीं थी। हम सब आपस में समान थे। बिट्टो, नारायणी, लच्छी, तोता, चदन और मैं कभी किसी को बड़ा छोटा न समझते थे। हम सब का एक स्तर था। चदन को अकड़ यहाँ न चलती थी। तोता की विद्या से उसे ऊँचा आसन न मिलता था। नारायणी के गहनों का कोई प्रभाव न था। बिट्टो के बाप का चौधरीपन यहाँ गिना न जाता था।

सावन की बहार थी। गाँव में जगह जगह झूले पड़े थे। हम लोगों ने भी बिट्टो के द्वार पर के नीम में झूला डाला था और हिलमिलकर झूल रहे थे। गाते भी थे, लड़ते भी थे और झूलते भी थे। नारायणी नई चूनरी पहन कर आई थी। लच्छी ने गहनों का साज सजाया था। हाथों में दोनों ने गहरी मेंहदी रचाई थी। मैं और बिट्टो साथ साथ झूल रहे थे। चदन झोंके दे रहा था। तोता तालियाँ पीट रहा था और कह रहा था, और जोर से—हाँ, और जोर से।

सामने चौपाल में दो-तीन आदमी जोर जोर से आल्हखंड बाँच रहे

थे। जिन्हें कारबार से फुरसत थी ऐसे लोग इकट्ठे होकर बड़े ध्यान से आल्हखंड सुन रहे थे। किवाड़ों की ओट में खड़ी होकर आसपास के घरों की स्त्रियां भी उस करुण-वीर काव्य का रस ले रही थीं।

मेरा और बिट्टो का जी अभी झूले से भरा नहीं था। उधर लच्छी झूलने के लिए अधीर हो रही थी, वह हर नये झोंके के समय उछलकर झूले की रस्सी पकड़ने की चेष्टा करती और चिल्लाती—अब मैं झूलूँगी, अब मैं झूलूँगी।

नारायणी उसे रोक लेती थी और कहती जाती थी—ठहर तो जरा। अधीर क्यों होती है?

जब सचमुच ही लच्छी की आँखों में आँसू ढुलक आये तो मैंने चिल्लाकर चंदन से कहा—बस-बस, रोक दो।

चंदन क्यों मानने लगा? उसे तो झुलाने की धुन सवार थी। झोंके दिये ही चला जा रहा था। मैं और जोर से चिल्लाया पर वह दुष्ट न माना। झोंके पर झोंके और जोर से, और जोर से। बिट्टो डर कर मेरे गले से सट गई थी और मैं उसे गला फाड़-फाड़कर डाँट रहा था पर सब व्यर्थ। वह और भी उद्दण्ड हो रहा था।

उधर लच्छी मचल रही थी। उससे चिढ़कर नारायणी ने उसे धक्का दे दिया और इधर से दिया चंदन ने झोंका। हम दोनों जा टकराये लच्छी से। धक्का खाकर वह दूर जा गिरी। हम दोनों के भी चोट लगी पर उतनी नहीं जितनी लच्छी के। गिरने से उसकी नई चूनरी मसक गई। घाघरा मिट्टी में लथपथ हो गया। दो-एक जगह शरीर की खाल छिल गई। खून छलक आया। हम सब ने खूब यत्न किया पर वह न चुपी। रोती-चीखती भागी गई।

मैं और बिट्टो दोनों ने झूला छोड़ दिया। चंदन ने तोता और नारायणी से कहा—अब तुम्हारी बारी है। आओ बैठो।

मैंने पूछा—झुलायेगा कौन?

चंदन ने उत्तर दिया—मैं।

बस नारायणी और तोता झूले पर चढ़ गये नारायणी ने कहा—देखो, चंदन । ठीक से झुलाओगे तो मैं झूलूँगी । नहीं तो कहे देती हूँ झूले पर से कूद पड़ूँगी ।

चंदन—हां हां, बैठो तो सही । डरो नहीं ।

इतने आश्वासन के उपरान्त भी दो-एक झोकों के बाद ही वह उत्तेजित हो उठा । जोर जोर से झोंके देने लगा । नारायणी ने डर कर कहा—यह क्या करते हो चंदन ?

चंदन ने दुष्टता की हंसी हंसकर कहा—करता हूं उसे देखती जाओ ।

तोता जमकर झूले की पटली पर बैठा था । वह हंसता हुआ बोला—शाबाश चंदन ! तुम बहादुर हो । तुम जरूर कुछ करके खाओगे । एक बार अकबर बादशाह के दरबार में भी इसी तरह झूला पड़ा था । बीरबल झूल रहे थे । बादशाह झोंके दे रहे थे । तानसेन बैठे मलार गा रहे थे । बाहर से आ पहुँचे रहीम खानखाना ।

इस कहानी में चंदन का जी ऐसा लगा कि झोंके देना ही भूल गया । बोला—तब तो बड़ा मजा रहा होगा । हां, फिर आगे क्या हुआ ?

तोता कुछ जवाब देना ही चाहता था कि पीछे से आ गये नारायणी के चचा मनीराम । उन्होंने कुछ कहा न सुना तोता का कान पकड़कर झूले से नीचे पटक दिया । नारायनी को डाटकर बोले—बड़ी अच्छी है तू । तेली-तमोलियों के साथ खेल खेल कर नाम कमा रही है ।

तोता हतप्रभ होगया, नारायनी भयभीत । वैसे वह इतना वाचाल था कि उस पर कोई हाथ तो रख लेता, लेकिन जिस तरह मनीराम ने बात कही थी वह एक ऐसा सत्य था जिसे छोटी जाति माने जानेवाले लोग, हजारों सालों के सस्कारो के कारण, स्वय हीनता का परिचायक समझते हैं, और उसका विरोध करने का उन्हें साहस नहीं होता । तोता को लगा जैसे उसने नारायनी के साथ झूलकर सचमुच ही एक बड़ा अनर्थ कर डाला हो ।

मुझसे नहीं देखा गया । मैंने कुछ तेजी से उत्तर दिया—कोई बुलाने तो नहीं गया था आपकी लड़की को ।

मनीराम ने क्रोध से मेरी ओर ताका और डपट कर कहा—खबरदार !

इस पर चंदन टेढ़ा हो उठा—अच्छा अच्छा जाओ बहुत हो चुका।

मनीराम—क्या कहा ?

चदन और भी टेढ़ा होकर बोला—बस कह दिया चले जाओ, नहीं तो—

चंदन के लिए जो कुछ उसने कहा, वह बहुत ही शिष्ट और सभ्य भाषा का प्रकार था, लेकिन मनीराम को वह कुछ अच्छा नहीं लगा। मैंने जो कुछ कहा था और जिस पर वे बिगड़ उठे थे उससे तो यह कहीं अधिक अविनय पूर्ण था और कहा भी अधिक उजड्डता के साथ कहा गया था। इससे चदन का दोष नहीं। उसके लिए तो यह सचमुच ही बहुत नम्र वक्तव्य था।

मनीराम से सहन नहीं हुआ। उन्होंने एक बहुत ही भद्दी ग्रामीण गाली से आरम्भ करके चदन को डपट दिखलाई। सोचा था, लड़का है भाग जायगा। पर चदन उन लड़कों में न था। उसने जीभ खोली तो बेलगाम न जाने क्या क्या न बक गया।

मनीराम क्रोध से कांपते हुए इधर उधर किसी ऐसी चीज की तलाश करने लगे जिसे पा जाने पर वे इस दुर्विनीत बालक की उद्दंडता को झाड़ देंगे। लेकिन वहा ऐसी कोई चीज उन्हें नजर न आई, तब आगे बढ़ कर उन्होंने हाथ से ही उसे दुरुस्त करने का इरादा किया। वे दो कदम आगे बढ़े कि चंदन ने डपट कर कहा खबरदार, आगे पैर बढ़ाया तो सिर फोड़ दूँगा।

मनीराम ने इस चेतावनी को अनसुना कर दि ा और हाथ बढ़ा कर उसके सिर को पकड़ने की चेष्टा की। चदन ने अपने वचन का प्रतिपालन करने के लिये झूले की पटली खींच कर उनके कपाल पर दे मारी।

असभावित चोट खाकर वे लड़खड़ा कर गिरे। उनका गिरना था कि चंदन रफूचक्कर हो गया। वह सिर पर पैर रखकर ऐसा भागा कि पीछे फिर कर न देखा।

नारायनी तो यह देखकर रोने लगी। मैं और तोता हक्के बक्के रह

गये। बिट्टो सहम गई। उधर से हल्ला सुनकर कई लोग जो आल्हखंड सुन रहे थे दौड़ आये। मनीराम का इशारा पाकर दो आदमी चदन को पकड़ लाने को दौड़े। बहुत दूर तक उन्होंने उसका पीछा किया परन्तु निराश ही लौटना पड़ा।

इस पर मनीराम ने चदन के बाप ख्यालीराम और भाई अगने से जाकर फरियाद की। उस समय उनके साथ खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। वृद्ध ख्यालीराम ने इतनी बड़ी भीड़ के साथ मनीराम को अपनी दुकान के सामने आया देख अपना टूटा चश्मा नाक पर रखकर जितने ही गौर से उनकी ओर ताका उतने ही ध्यान से उनकी बात भी सुनी, परन्तु ज्योंही उन्होंने अपने आरोप को स्थापित करने की चेष्टा की त्योंही अंगने ने बड़ी बड़ी आँखें निकाल कर गुर्राते हुए कहा—जाओ जाओ, महाराज। अपने घर बैठो।

मनीराम चकराये, बोले—ऐं!

"ऐं-वें नहीं जानते हम।"

"हम तुमसे बात नहीं करते।"

इस पर ख्यालीराम ने भी त्योरी बदली और कहा—तो तुम्हें न्योता कौन देने गया था महाराज? अपना रस्ता नापो यहा से। नहीं तो धन्ना सेठी दो मिन्ट में झाड़ देंगे।

'आये थे नमाज को और रोजे गले पड़े' वाली कहावत सामने आती देखकर मनीराम हक्के बक्के हो गये।

इस पर अगने ने फिर ललकार कर कहा—कह दिया यहां भीड़ न लगाओ। यह कोई दादा का दरबार नहीं है।

मनीराम— तो फिर हमें दोष मत देना। हम उस बदजात का खून न पीलें तो कहना असल बाम्हन के बेटा नहीं।

मनीराम इतना कहकर चल पड़े। इधर अगने पीतल की फुँकनी लेकर उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया—खून पीनेवाले कभी के मर गये।

मनीराम के थोड़ी दूर जाने पर फिर आवाज देकर कहा—भागा कहां

जा रहा है हरामजादे ? मैं तेरा बाप यहां खड़ा हूं। अगर हिम्मत हो तो आ खून पी कर देख।

मनीराम इन तीखे वाक्यबाणों से विचलित होकर पलटने लगे पर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया और समझा बुझाकर लौट जाने के लिए विवश किया।

ख्यालीराम ने ललकारकर कहा—आ क्यों नहीं जाने देते ? हम इसे अच्छी तरह यहां रंग दें। लड़के को पीटने का मजा निकल जाय।

अच्छा ही हुआ किसी ने ख्यालीराम की ललकार पर ध्यान नहीं दिया। मनीराम को लोग पकड़ कर खींच लेगये। एक अप्रिय कांड होते होते बच गया। मनीराम को लोगों ने समझा दिया—आप भी किनके मुंह लगते हैं। ये लोग भी कोई आदमी हैं। जानवर से भी गये बीते हैं।

उस दिन से नारायनी और लच्छी हमारी खेल की साथिन न रह सकीं। बाद में फिर नारायनी को वधूवेश में ही देख पाया। इन लोगों में लड़कियों का ब्याह छोटी उम्र में ही कर देने की जो पुरानी चाल है उसे यह पीढ़ियों से बाहर रह कर भी नहीं छोड़ पाये हैं। बेचारी नारायनी वधू जीवन के आनन्द को कुछ वर्ष भी भोग नहीं पायी। उसका स्वस्थ शरीर क्षीण, दुर्बल और रोग ग्रस्त हो गया और आनेवाला कोई वर्ष उसे इस पृथ्वी से उठा भी ले गया। इतना ही सुनने में आया। विस्तार से ये सब बातें जान सकने के साधन तब तक हमारे पास न रह गये थे। हां, इतना तो मालूम ही है कि नारायनी की मृत्यु के थोड़े दिन बाद ही लच्छी, जो अभी बच्ची ही थी, नारायनी के विधुर पति के गले मढ़ दी गई और उन्हें कई साल तक अपनी प्रिया को लाड़ प्यार से पालपोस कर जीवन संगिनी बनने लायक करना पड़ा था। मैंने बहुत बाद से फिर एक बार जब लच्छी को देखा था, तो दुनिया ही बदल चुकी थी। उसका पति चालीस के ऊपर पहुंच चुका था और वह चौदहवीं साल में जवानी की अंगड़ाइयां ले रही थी। उन बातों की चर्चा का अवसर आगे आयेगा। अभी तो एक बहुत जरूरी बात यह बतानी है कि इसी समय मुझे कुछ काल के लिए सोहनपुर

छोड़ना पड़ा था।

बड़े भैया की बदली हो गई थी। वे भाभी को लेकर चले गये थे। घर में पिताजी अकेले रह गये थे। तब कुछ दिन के लिये वे जीजी को बुला लाये थे और फूफा जी को लिखा था कि मुझे भी वहां पहुँचा दें। पिताजी जब आये थे तो बुआ से पूछा था, रमेश को मैं कुछ दिन के लिये ले जाऊँ ?

उस समय बुआ ने कहा था —भैया आप चिंता न करें। रमेश यहां वहां से अच्छी तरह ही रहता है।

इस पर पिताजी चुप रह गये थे। इधर कुछ दिनो से एक नई बात हो गई है। एक जटाधारी साधु भमूत रमाये सोहनपुर आये और हमारे घर के पास ही धूनी रमाई। उनकी सेवा हमारे बुआ और फूफा ने मिलकर खूबकी। हृष्ट पुष्ट और प्रभावशाली साधु का आशीर्वाद भी उन्हें मिला। फूफाजी के मुँह से ही मैने सुना था कि उन्हें साधु के आशिर्वाद से भी बड़ी आशाएँ हैं। बुआ के अब तक कोई संतान न थी। उसे पाने के लिये बुआ और फूफा कितने लालायित रहते थे। यह जब तब उनकी बातों से प्रकट हो जाता था। एक चुहिया भी हमारी बुआ जन सकती तो फूफाजी तीन लोक की सम्पदा पा जाते, पर यह दुर्भाग्य ही था कि ऐसा हो न सका। आखिर साधु महात्मा के आशीर्वाद से कुछ आशा के चिन्ह प्रकट हुए,शायद इसलिए बुआ मुझे पिताजी के पास भेज देने को सहमत हो सकीं। खैर, किसी तरह मैं सोहनपुर से चल कर पिताजी के पास आगया।

इतने दिनों में मेरे लिये शहर में बहुत परिवर्तन हो चुका था। पिताजी के एक पुराने दोस्त जलालदीन, जो बहुत सालों से बाहर कहीं नौकरी पर थे, आ पहुँचे। जवानी के दिनों में वे पिताजी के साथी थे वे हमारे ही मोहल्ले में रहते थे। उनकी अनुपस्थिति मे उनके परिवार के सभी लोग कालकवलित हो चुके थे। आधा मकान बेमरम्मत होकर गिर पड़ा था। वे जब आये तो आधे भाग में, जो कुछ कामलायक था, रहने लगे थे। जलालदीन के आने पर लोगों ने समझा था वहुत रुपया लाये होंगे। कारण

भी था। उनके साफ सुथरे कपड़े थे। पीछे मालूम हुआ कि वह चमक दमक नकली थी। वे ऐसा कुछ न लाये थे जिस पर समाज में उन्हें कोई ऊँचा दर्जा दिया जाता। एक बात जरूर थी कि इस चमक दमक का फल अच्छा हुआ। उन्हें शीघ्र ही एक मेहनती और कमाऊ बीबी मिल गई। बेवा सखीना अपनी दो लड़कियाँ हसीना और नगीना को लेकर उनके घर आ बैठी और पूरी गृहस्थी को सँभाल लिया। मियां जलालदीन इतने दिन दिल्ली रहकर एक विद्या साथ ले आये थे। वे चौअन्नी भर अफीम रोजाना खाने लगे थे। उसके बग़ैर उनसे रहा न जाता था।

आने के साथ ही बीबी बच्चों के भाग्य से उन्हें एक गोरे अधविलायती साहेब के यहां खानसामा की अच्छी जगह मिल गई। लेकिन जब वह साहब शहर छोड़ कर चले गये तो वे बेकार हो गये। पिताजी से उन्होंने सलाह की और तय पाया कि पिताजी आम के बाग की एक फसल खरीद लें। जलालदीन उसकी रखवाली कर लेंगे। बीबी सकीना और उनकी दोनों लड़कियों की मुस्तैदी से उसमें अच्छा मुनाफा रहेगा। कोई घाटा न होगा। एक मित्र के परिवार का पालन भी हो जायगा। मेरे सोहनपुर से आने के पहले ही यह व्यवस्था हो चुकी थी। एक बाग ले लिया गया था। हसीना और नगीना के जब तब हमारे घर दौड़े होते थे और उनसे यह मालूम होता था कि आमों की फसल अच्छी है। गदराये हुए दो चार आम भी वे चटनी के लिये साथ लेती आती थीं।

मैं और जीजी बड़ी प्रसन्नता से उन्हें लेते थे। अपने बाग के आम खट्टे भी मीठे लगते थे। आमों के साथ हसीना की बातों में भी कम माधुर्य न था। वह रोज ही अपने अफीमची पिता के किसी न किसी करतब का बखान इस अंदाज से करती थी कि हम सब उसके प्रवाह में बह जाते थे। किसी दिन जलालदीन ने एक चोर को, जो रात में आम चुराने आया था, गुफनी का निशाना बनाया, केवल उसके पैरों की आहट सुनकर। किसी दिन उन्होंने गुफनी के ढेले से एक जंगली सुअर को लगड़ा कर दिया। किसी दिन एक ही निशाने में तीन चार चिड़ियों को लोट-पोट कर दिया। ये काफी

दिलचस्प दास्तान हुआ करते थे ।

इसके अलावा वह अपने अब्बाजान से सुनी हुई अनेक ऐसी चंडूखाने को गप्पें भी सुनाती थीं जो असम्भव तो थी ही पर इतनी लच्छेदार थीं कि उन्हें अनसुनी करने को जी नहीं चाहता था। सचमुच हसीना ने मुझे सोहनपुर के काकभुसुंडो, अपने मित्र, तोता के अभाव को महसूस न होने दिया। एक दिन उसने सुनाया कि किस प्रकार एक अफीमची को पीनक लग गई और उसने लोटे के पानी को हलवाई के यहा से लाया दूध और उसमे जा गिरी अपनी दुपल्लू टोपी को दूध की मलाई समझ लिया था।

जीजी हसीना को बहुधा बिठा लेती थीं और उसकी बातो में ऐसी डूब जाती थीं कि घर का काम काज भी बिसर जाता था। इस तरह हसीना हम दोनों के बहुत निकट आती जाती थी। नगीना उम्र में छोटी थी। उससे हमारी विशेष घनिष्ठता न थी।

हसीना और नगीना जब मेरे घर आतीं तो उस मर्यादा का ध्यान रखती थीं जो हिंदू परिवारों में आने पर उन्हे रखनी होती है। हमारे अनुरोध करने पर भी वे उस मर्यादा को न छोड़तीं। वे बरोठे में ही बैठ जातीं और हम भीतर की देहली पर बैठकर उनकी बातें सुनते।

एक दिन पिताजी कुछ अस्वस्थ से थे। वे भीतर लेट रहे थे। जीजी उनकी सुश्रूषा में लगी थीं। मैं ही हसीना के पास बैठा था। उस दिन नगीना भी न आई थी। इधर उधर की अनेक प्रकार की, बातें सुनते कहते हम बड़ी देर तक बठे रह गये। काफी रात चली गई। बातों में हम इतने उलझ गये थे कि आज अनजाने ही उस मर्यादा का उल्लघन हो गया। धीरे धीरे हम दोनों इतने समीप पहुँच गये कि बात करती हुई हसीना का कपोल कभी कभी मेरे कधे से छू जाता था। स्पर्श की कोमलता मुझे प्रतीत न हुई हो सो बात नहीं, पर मैं स्वभावत. ही कुछ और तरह का था। अवस्था का भी तकाजा था कि मैं उससे अप्रभावित रहता। यह बात मैं अपने मन की कह रहा हूँ। मुझे पता नहीं हसीना के दिल में क्या था।

अब इतने दिन बाद जो उस लड़की की याद करता हूँ तो उसकी

हसरत भरी दृष्टि मेरी आँखों के सामने खड़ी हो जाती है। बारबार वह मुझसे अपनी चोटी की गांठ खोल देने का अनुरोध करती थी। और न जाने क्या क्या वह कहती थी। खैर, उस रात को जब वह जाने लगी तो मुझे अपने साथ ले गई,-कहा—रमेश, मुझे डर लगता है। उस गली के पास तक तुम मेरे साथ चलोगे ?

मैं उसके साथ चला। गली तक पहुँचने पर बोली— कुछ और आगे न चलोगे भाई ?

मैं और आगे चला। अंधेरे में उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा— मुझसे सटकर चलो रमेश ?

मैंने कोई विरोध नहीं किया। हम दोनों हाथ मे हाथ डालकर चले। थोड़ा आगे चल कर उसने कहा—रमेश तुम मुझे उठा सकते हो कि नहीं ?

मैं—शायद उठा भी सकूँ ? तुम बहुत भारी हो क्या ?

मैं तो तुम्हें अच्छी तरह उठा सकती हूँ।—कहकर उसने मुझे अपनी बाहों में भर लिया और जोर से कसकर उठा लिया। कई क्षण तक इसी तरह रखकर उसने अपने हाथ ढीले कर दिये और मैंने उनसे अपने को मुक्त कर लिया।

एक तरह की सिहरन के साथ मेरी आँखें भर गईं। उनके सामने दुलारी और ज्वालाप्रसाद का कुछ दिन पहले का दृश्य उपस्थित हो गया। मेरे इस आचरण से हसीना को काठ मार गया। वह भी कुछ कह न सकी। लजा कर मुझे वहीं अंधेरे में छोड़ कर भाग गई। मैं खोया खोया सा घर लौट आया।

कई दिन हसीना हमारे घर नहीं आई। छः सात दिन बाद जीजी से सुना कि वह तो कहीं गुम हो गई।

मैंने पूछा—गुम हो गई ?

" हाँ। "

" गुम कहाँ हो सकती है ?"

"यही तो बात, कहाँ गुम हो गई ? शायद कोई पकड़ ले गया है।"

" कोई पकड़ क्यो ले जायगा ?"

" शायद, यही तो पता नहीं। "

मैंने डर से दरवाजे की कुंडी लगा ली। हम दोनों बहन-भाइयो के मन में यही चिन्ता बनी रही कि आखिर वह जा कहां सकती है ? पिताजी से हमने जाकर कहा---आपने सुना ? हसीना गुम हो गई ?

पिताजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके गंभीर मौन से भयभीत हो कर हम भाग आये।

इसके बाद जो भी आया उससे हमने यही प्रश्न किया कि हसीना कहा गुम हो गई है। क्या किसी ने सुना है ?

किसी ने हमारी बात को सुना, किसी ने नहीं सुना। किसी ने अपनी अज्ञानता बताई, कोई मुस्करा दिया, किसी ने आश्चर्य प्रकट करके छुट्टी लेली, पर हम दोनो भाई बहनों के लिये यह बात सिर्फ इस तरह टला देने की न थी। नगीना या सखीना ने भी आकर कोई खबर न दी।

दो तीन दिन बीत गये जब शाम को नगीना आम लेकर आई। मैं और जीजी उसकी आवाज सुनते ही दौड़ गये। आम पीछे लिये पहले पूछा-हसीना कहाँ है री नगीना।

"घर।"

"सच ?"

' हाँ जी।"

"नहीं, तुझे मेरी सौगन्ध। ठीक बता।"

"मैं ठीक कह रही हूँ। हसीना घर पर है।"

"और हमने सुना था वह तो गुम हो गई है।"

"अब आ गई है।"

"कहाँ से ? वह कहाँ चली गई थी ? कौन ले गया था उसे ?"

"चली गई थी।"

"कहाँ चली गई थी ?

"अब्बा के डर से जाकर छिप गई थी। उस खँडहर में दो रात और

एक दिन भर छिपी रही।"

"अब्बा ने मारा था उसे! अब्बा का इतना डर था उसे ?"

"उन्होंने गोश्त पकाने को कहा था उसे, जो उसने सारा जला दिया। इसीसे डर कर भागी थी।"

"दो रात भूखी-प्यासी छिपी रही खँडहर में! अकेली उसे डर नहीं लगा!"

"नहीं।"

"मालूम कैसे हुआ ?"

"अम्मा ने जाकर खोजा।"

"अम्मा को मालूम हो गया था खँडहर में है ?"

"नहीं, यों ही खोजती वहाँ चली गई थीं।"

"और वह वहां मिल गई।"

"हाँ जी, वहीं एक कोने में छिपी थी। अम्मा ने समझा कोई जानवर है। पीछे देखा तो हसीना।"

× × × ×

जीजी की एक सहेली ने आकर जीजी से कहा—लो मिल गई तुम्हारी हसीना।

"सुन चुकी हूं।"

"क्या सुन चुकी हो ?"

"बेचारी अब्बा के डर के मारे छिप गई थी।"

"कहाँ ?"

"खँडहर में; गोश्त आग पर चढ़ा कर भूल गई थी, वह जल गया। अब्बा मारते इसलिये डर के मारे भाग गई थी।—वह अब्बा है कि कसाई ? तुम्ही कहो।"

इस पर वह खिलखिला कर हँस पड़ी। जीजी ने पूछा—हँसती क्यों हो ?

"इसलिए कि हंसी आती है।"

"फिर!"

"फिर क्या, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं कि एक जवान लड़की इस तरह कहाँ जा सकती है ?"

"तो ?"

"तो वह गई थी अपने यार के पास।"

"हिश।"

"तेरी कसम।"

"किसने कही यह बात !"

"कहीं छिपी रहती।"

"झूठ है।"

"जरा भी नहीं।"

"अच्छा कौन है वह ?"

"वह है कोई।"

"नाम बताओ।"

"नाम नहीं बताती।"

"तो यह सब तेरी बनावट है।"

"बिलकुल नहीं।"

"तो नाम बताने में क्या हर्ज है ?"

"नहीं बता ही दूँ। वह है तुम्हारा केदार।"

"केदार—केदार ? असम्भव।"

"क्यों।"

"उसके साथ उसकी जान पहचान ही नहीं हो सकती। वह यहा सिवा मेरे घर के और कहीं आती जाती नहीं है।"

"पर मैंने जो कहा वह सच है।"

"मुझे विश्वास नहीं हो सकता।"

"विश्वास करो चाहे न करो। लेकिन मेरी बात है ठीक।"

जीजो ने विश्वास नहीं किया पर मैं कैसे अविश्वास कर सकता था। मेरे पास इस बात का प्रमाण था कि हसीना कुछ चाह रही थी। उसे किसी

चीज की जरूरत थी। आह बेचारी हसीना।

× × × ×

सखीना मुहल्ले भर में आज छुहारे बाँट गई हैं। हिंदू मुसलमान किसी को नहीं छोड़ा है। आज हसीना का निकाह जो हुआ है। नवेली हसीना आज से अधेड मौलवी की बीवी बन गई। आज से वह हरम में दाखिल हो गई। बुरके ने उसे सदा के लिए छिपा लिया। लेकिन उसकी वे हसरत भरी निगाहें कौन छिपा सकता है! उन्हें जिसने एक बार भी देख पाया है वह क्या कभी ता-उम्र भूल सकता है!

अब केदार के और मेरे पहले जैसे संबंध न रह गये थे। मिल जाते तो दो-चार बातें कर लेते,नहीं तो वह अपने घर भला मैं अपने घर। आज जब वह मुझे मिला तो ठहर गया, कहा—रमेश, तुम गांव में रहकर तो बिलकुल ही बदल गये?

"नहीं तो।"

"नहीं क्या, मैं तो कई दिन से देख रहा हूं। एक बार भी तो तुम घर न आये।"

"आ नहीं पाया। फिर तुमसे कई दफा मिल चुका हूं।"

"अब तो यहीं रहोगे?"

"यहां तो शायद ही रहना हो। स्कूल से छुट्टी लेकर आया हूं।"

इतनी बातचीत के बाद वह जाने लगा, फिर रुककर पूछा—और रमेश,उस हसीना का ब्याह तो हो गया न?

"सुना तो है।"

मुझे हसीना के उस अपवाद की याद आगई। मैंने पूछा—तुम उसे जानते हो?

"बहुत तो नहीं। यहीं तुम्हारे घर आते जाते देखता हूं। इतना ही जानता हूं कि लड़की बुरी नहीं है।"

"हां बुरी तो क्यों अच्छी है। बड़ी होशियार है।"

"कहाँ ब्याही है?"

को रस्म पूरी करने के लिए रोने का स्वांग रचती हो। वह उसकी कब्र पर फूल चढ़ाने और फातिहा पढ़ने की कामना भी क्यों करने लगी ? उसने तो नवाब तांगे वाले से पहले से ही दोस्ती कर रखी थी। अपने मियाँ के शरीर को घर से बाहर भेजकर वह भी घर छोड़ कर उसी के यहाँ जा बैठी है।

यह नवाब कौन बला है ? इससे मुझे मतलब ? मैं तो यह देखूंगा कि उसने बेचारी हसीना को बरबाद कर दिया परन्तु केदार को यह क्यों रुचेगा ? वह तो हसीना के यौवन की सार्थकता देखना चाहता था, और सार्थक असल में वह अब हो रहा था। मौलवी साहब के साथ रहकर उसका सामाजिक दर्जा ऊँचा हो सकता था, जीवन और यौवन की आहुति देकर।

यह बात उस समय मेरी समझ में नहीं आई थी।

नौ

जिस बात की संभावना थी वह पूरी नहीं हुई। महात्मा जी का आशीर्वाद विफल रहा। बुआ को सतति का मुख देखना बदा न था। मेरे पिताजी इस बात को नहीं जानते थे। पर मैं जानता हूँ कि मुझे ताकीद करके फिर सोहनपुर बुलाने का एक कारण यह भी था। अब मुझे अपने समीप रखकर बुआ और फूफा दोनों यह भूल जाना चाहते थे कि वे निस्सन्तान हैं। मानसिक अभाव जो वे प्रतिक्षण हृदय में लिये फिरते थे

उससे छुटकारा पाने के हेतु ही मुझे इस तरह वे खींच लाना चाहते थे। यह कोई बुरी बात नहीं थी पर न जाने क्यों इस बात से मुझे भीतर ही भीतर ग्लानि सी होती थी और मैं उन्हें घृणा करने लगा था। मैं यही सोचता था कि इनकी मनोकामना पूरी हो जाय तो क्या मुझे यह इस तरह हृदय से लगायेंगे ? वे जितना ही अपने प्रेम के आधिक्य को प्रकट करते थे उतना ही वह मेरे निकट कृत्रिम हो उठता था।

संसार के सन्मुख उनके वात्सल्य की बड़ी कीमत थी। नाई, धोबी, बारी, कुम्हार जो भी आता वह उसकी प्रशंसा करता। सभी कहते—धन्य हो तुम जो अपने भतीजे को इतना प्यार करती हो। सगे माँ-बाप भी तो ऐसा नहीं करते। भगवान् इस बच्चे को सद्‌बुद्धि देंगे। यह भी तुम्हारे लिए बेटे से बढ़कर होगा।

मेरी बुआ इस पर गद्‌गद् हो उठतीं और कहतीं—अपने पेट के लड़कों में और क्या विशेष बात होती है ? यदि किसी के बुढ़ापे में दुख बदा है तो सौ लड़के होने पर भी सुख नहीं मिलेगा। सौ के सौ नालायक निकल जायेंगे। इसके लिए दो-चार इधर उधर के उदाहरण भी देतीं। इसके बाद मेरी प्रशंसा करतीं। अपने प्यार की स्वाभाविकता भी कभी कभी बतातीं और बड़ी बड़ी आशाएं बाँधती थीं।

इन सब बातों से मेरे हृदय में उल्टी ही भावनाएँ जन्म लेतीं। मैं उनकी बातों पर चिढ़ता। मेरा मन इतना कलुषित हो उठता कि मैं कभी कभी अपने आपको बुरा भला कहता। मैं सोचा करता, मैं कितना अभागा हूँ जो जन्मते ही माँ से वंचित हो गया। कुछ बड़ा होने पर पिता से दूर आपड़ा।

बुआ जब मेरे प्रति कठोर हो उठतीं तो मैं प्रसन्न होता। मैं जानता था कि मेरे लिए स्वाभाविक स्थिति उनका प्रेम और वात्सल्य नहीं है। वह तो वे दया कर मेरी झोली में डालती हैं। मैं किसीकी दया पर जीवित नहीं रहना चाहता। उसको पाने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, ऐसा मैं समझता।

इसीलिए मैं बुआ से मिल नहीं पाता,—उनमें आत्मसात होना तो दूर की बात है। यह दशा इस बार कुछ विशेष रूप से हो रही है। पिछली बार मैं इस प्रकार नहीं सोचा करता था।

बुआ-फूफा से इतना विलग रहता हुआ भी मैं बिट्टो और उसकी माँ के ऊपर अपना विशेष अधिकार-सा मान बैठा था। आँखों की भाषा आँखें सहज ही पढ़ लेती हैं, हृदय की भाषा से हृदय भी उसी तरह परिचित हो जाता है, जबकि व्यक्त वाणी का तात्पर्य बहुधा गूढ़ ही रह जाता है। फलत मैं धीरे धीरे उनके घर का आदमी हो चला था। मैं बिट्टो से भाई की तरह झगड़ता था और उसकी माँ से बेटे की भाँति रूठ जाता था। बिलकुल घरेलू जैसे कलह और विवाद चलते थे। इसलिए सोहनपुर का जीवन आनंद का ही जीवन था।

इस बार सोहनपुर कुछ बदला हुआ है। रामकिशन अपना पैतृक मकान रामरूप के नाम लिखकर सदा के लिए चला गया है। और करता भी क्या? माँ, भाभी, भाई और बहन इन चार-चार आदमियों की बीमारी में जो खर्च हुआ था वह कैसे चुकाता? इसलिए अच्छा ही किया उसने, जो मकाम लिख दिया।

रामरूप ने अपने मकान के साथ उसे मिला लिया है, और आजकल पक्की ईंटें पथवाकर पुख्ता मकान बनवाया जा रहा है। सुदामा का भाग्य भी इतनी जल्दी न पलटा था जितनी जल्दी रामरूप का पलट गया। न कहीं जाना पड़ा, न कहीं याचना करनी पड़ी। अपने आपही लक्ष्मी घर आपहुँची। युगों की साध आज पूरी हुई। जिस सपत्ति को नगे पैर रह कर राममोहन ने जोड़ा था, उसे अपनी धरोहर की तरह प्राप्त करके रामरूप सुखी हो रहा है। सारा गांव ही उसके इस भाग्य परिवर्तन पर ईर्षा से जला जा रहा है पर कोई कर ही क्या सकता है? यह तो अपने अपने भाग्य की बात है।

बड़े जोरों से रामरूप का मकान बन रहा है। वह सेठ की तरह पलँग पर बैठ कर उसका निरीक्षण किया करता है। दूकान कई दिनों से

बन्द कर रक्खी है। पाँच पांडवों की तरह पांचों भाई जब एकत्र होते हैं तो सिर्फ द्रौपदी की कमी रह जाती है। पांडवों के लिए तो विधाता ने राजा द्रुपद की इकलौती कन्या का सृजन भी कर दिया था पर उसने इन पाँचों भाइयों को अभी तक कुँआरा ही रक्खा। एक वार तक कभी किसी ने इनमें से एक के भी व्याह की चरचा न चलाई। रामरूप की अवस्था लगभग अड़तीस साल की है। छोटे से छोटा भाई इस समय बीस साल का है। सभी चिरकुमार। घर में पहले माँ थीं और माँ मरने के बाद विधाता ने बहिन को विधवा कर दिया। इसलिए रोटी पानी का सदा ही सुप्रबंध रहा।

इधर जब से भाग्योदय हुआ है तब से रामरूप गृहलक्ष्मी की चिंता में विशेष रूप से निमग्न है। जहाँ तहाँ चर्चा चल रही है, लेकिन लोग न जाने क्यों झिझकते हैं। असल बात यह है कि ऐसा कोई आदमी मिलता नहीं है जो एक साथ पांच कन्याओं का दान कर सके। कोई एक आध लड़की का पैगाम आया भी है तो यह प्रश्न उठता है कि वह किसकी गृहिणी बनेगी ? रामरूप और उसके भाइयों की ओर से तो अवस्था आदि का विचार किया नहीं जा रहा है परन्तु लड़कीवाले नीचे से ही चलना पसन्द करते हैं। दूसरी सीढ़ी से ऊपर चढ़ना कोई नहीं चाहता। रामरूप के लिए यह बड़ी शर्म की बात है कि पहले सबसे छोटे भाई का व्याह करले। खुद अनव्याहा रह जाय। उसके लाख यत्न करने पर भी कोई ऊँट के गले में घंटी बाँधने को तैयार नहीं है।

इधर सात आठ दिन से कुछ मेहमान उसके घर आ गये हैं। उनकी खातिर बड़ी तत्परता से की जा रही है। आज बुआ के दरबार में यही विषय छिड़ा है। मुलुआ की माँ का कहना है कि मुश्किल से सौदा पटाया जा सका है। इतनी खातिर करने पर भी लड़की की मां तैयार नहीं हो रही थी। वह नकद पाँच सौ माँगती थी। बड़ी कोशिश के बाद कहीं तीन सौ पर बात तय पाई है। किशनसरूप को उसने पसन्द किया है। कल व्याह हो जायगा।

लड़की की उम्र क्या है ?—बुआ ने पूछा।

"आठ नौ से अधिक नहीं।"

"राम राम !"

"तुम राम राम करती हो ! उधर लड़की की माँ पर जोर डाला जा रहा है कि वह रामरूप को दमाद क्यों नहीं बनाती ? पर उसने भी साफ कह दिया है कि जहर खा लूँगी पर ऐसा तो न करूँगी। रम्मो के लिए किशनसरूप भी तो बड़ा ही है। अभी तो वह बच्ची है।"

"इतनी समझ है तो वह किशनसरूप के साथ ही क्यों करती है ?"

"पैसों के लिए। गरीबी सब कुछ करा रही है। लेकिन मैं तुमसे कहती हू कि यदि पहले न गिना लिए तो पीछे रुपये उसे मिलेंगे भी नहीं।"

उपरोक्त बातचीत वाले दिन जब मैं, बिट्टो और तोता कोई खेल खेलने की तैयारी कर रहे थे हमने एक नई लड़की को अपने बीच पाया। मैले फटे कपड़े पहने थी वह। दुबली पतली कमजोर लड़की ! सिर के बाल जिसके उलझे हुए थे। मालूम पड़ता था महीनो से कढ़ी नहीं की गई। सुडौल आकृति और गेहुआँ रँग के चेहरे पर सुग्गे सी नाक बुरी नहीं लगती थी। कुछ नाक के स्वर से बोलती थी। अपने माँ बाप की गरीब दशा से परिचित थी। खाने-पीने को सहूलियत मिली होती तो उसका शरीर इतना लचपचा न होता।

हम सब के बीच अनायास ही आगई वह। बिट्टो ने उसकी ओर ईर्षा भरी दृष्टि से ताका। मालूम पड़ता था उसकी उपस्थिति को वह सह नहीं पारही थी। बोली—तुम कौन हो ?

"रम्मो"—उसने नाक के स्वर में बताया।

"यहाँ क्यों आई हो ?"

"ऐसे ही।"

"तो भाग जाओ यहाँ से।"

इस आदेश को पाकर रम्मो बड़े विचार मे पड़ गई। उसने एक बार मेरी ओर फिर तोता की ओर देखा। मानो पूछ रही थी कि क्या हमारा

भी यही आदेश है ?

मैंने बिट्टो से कहा—उसे रहने दो। चलो हम लोग खेल शुरू करें।

"नहीं, पहले उसे भगा दो यहाँ से।"

"वह तुमसे कुछ माँगती है ?"

"न माँगती हो। मैं उसके साथ नहीं खेलूँगी।"

"मत खेलना। वह तो नहीं कहती कि मुझे खिलाओ।"

"थोड़ी देर में कहने लगेगी।"

"तुम इनकार कर देना।"

"नहीं, मैं उससे न बोलूँगी। उसकी सुग्गे-सी नाक मुझे नहीं भाती है।"

तोता तब तक चुप था। हम दोनों की बातचीत बड़े ध्यान से सुन रहा था। बोला—यह नहीं होगा बिट्टो। हम रम्मो को अपने साथ खिलायेंगे।

बिट्टो ने मेरी राय जानने के लिए मेरी ओर देखा। मेरी राय स्पष्ट थी। यदि रम्मो खेलना चाहे तो खेले। मेरी ओर से कोई इन्कार न था।

तोता ने रम्मो से पूछा—तुम आख-मिचौनी खेलोगी ?

"नहीं"—रम्मो ने बिट्टो की ओर कनखियों से देखते हुए कहा। शायद बिट्टो के अधिकार को वह समझती रही थी।

हम लोगों ने अपना खेल शुरू किया। देर तक खेल में हम भूल गये कि रम्मो एक कोने में खड़ी हमारे खेल को देख रही है। उसकी इच्छा होती है, पर साहस नहीं होता कि बिट्टो का विरोध करके वह खेल में शामिल हो जाय। हमने खेल समाप्त किया तब भी वह ललचाई किन्तु उदास खड़ी थी।

संध्या समय मैंने देखा बिट्टो और रम्मो ऐसी हिलमिल गई हैं जैसे बरसों की सहेलियाँ हों। मैंने बिट्टो को चिढ़ाने के ख्याल से कहा—रम्मो खेलेगी तो मैं न रहूँगा ?

"सो क्यों ?"

"मेरी इच्छा।"

"ऐसे आये ? इनके कहने से मैं अपनी रम्मो को छोड़ दूँगी ।"

"सुग्गे-सी नाक जो है इसकी।"

"पर नाक ही तो रम्मो नहीं है, क्यों रम्मो ?"

रम्मो ने हँस दिया।—तुम सबकी ही नाक कौन अच्छी है ? तुम मेरी नाक की बात कहोगे तो मैं भाग जाऊँगी।

इसके बाद मैंने रम्मो से पूछा—रम्मो, तुम्हारा घर कहाँ है ?

"काशीपुर ।"

"इतनी दूर ?" बिट्टो ने कहा।

"हाँ, बड़ी दूर है। हम लोग कितना चले हैं। तीन दिन बराबर चलने पर यहाँ पहुँच पाये हैं।

"तुम काशीपुर से यहाँ किसलिए आये हो ?" मैंने पूछा।

"पिता जी की दूकान उठ गई तो क्या करते हम ? वहाँ कोई काम तो न था। अम्मा ने कहा था कानपुर चलेंगे। वहाँ बहुत रोजगार हैं, नौकरी हैं।"

"कानपुर कब जाओगे तुम लोग ?"

"यह मैं क्या जानूँ ?"

"तुम्हें सोहनपुर अच्छा नहीं लगता ?"

"लगता है, पर अम्मा तो नहीं रहेंगी यहां ?"

"मैंने सुना है तुम्हारा ब्याह हो रहा है रम्मो ?"

मेरी बात सुनकर वह सकुचित हो लजा गई। अपना मुँह अपनी मैली ओढ़नी में छिपा लिया। बिट्टो ने बलपूर्वक उसकी ओढ़नी हाथ में से छुड़ा ली और मुँह उसका निरावरण करके पूछा—सच सच बता रम्मो तेरा ब्याह हो रहा है ?

"नहीं तो।" उसने अपना मुँह ढकने की चेष्टा करते हुए कहा।

"झूठी कहीं की। दुलहन बनेगी तू क्यों री ?" बिट्टो ने पूछा।

बिट्टो की अम्मा किसी कार्य से वहाँ आईं तो बिट्टो ने कहा—अम्मा, इस रम्मो का ब्याह हो रहा है तुमने सुना है क्या ?

वे बोलीं—मैं कैसे सुनती भला ? मैं तो तुम्हारी रम्मो को नहीं

जानती। आज ही तो उसे देख रही हूं।—किसकी बेटी हो तुम रम्मो ?

रम्मो ने बहुत धीरे से उत्तर दिया—अम्मा की।

"अम्मा की, सो तो ठीक। लेकिन मैं तुम्हारी अम्मा को भी तो नहीं जानती बेटी। तुम्हारी अम्मा कौन है वही बताओ न पहले।"

इस पर मैंने उन्हें सब बातें समझा दीं। सुनकर वे बोलीं—बड़ी अच्छी बात है! तो तुम अब यहीं रहोगी, इसी सोहनपुर में ? लेकिन रम्मो तुम्हारा ब्याह तो हो रहा है पर तुम्हारी अम्मा ने तुम्हारी चोटी तक तो की नहीं है ?

इसके बाद बिट्टो की अम्मा उसे साथ ले गई। अच्छी तरह उसके बाल ओंछे, तेल डाला और चोटी गूंथ कर माथे में एक लाल बिन्दी लगा दी। जब इस तरह बन-सँवर कर वह फिर हमारे बीच में आई तो उसका छोटा सा मुख गुलाब के फूल की तरह सुन्दर हो उठा था। हमारी छेड़खानियों का जब वह ठीक से उत्तर नहीं देने लगी तो उसके गर्व को हमने अनुचित नहीं समझा। बुरा भी नहीं माना।

अगले दिन रम्मो का ब्याह हो गया। वह मैले-कुचैले कपड़ों की जगह रंगीन वस्त्राभूषणों से लद गई। एक छोटी सजीव-सजी गुड़िया की तरह आकर्षक दिखाई पड़ती थी वह। परन्तु रंग में भंग तुरन्त ही आरंभ होगया जब तीन सौ के स्थान पर पचीस-पचास रुपये ही देकर उसके माँ-बाप को सोहनपुर से बाहर कर दिया गया। इस घटना ने और भयानक रूप तब धारण किया जब किशनसरूप ने अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राता से अनुनय की कि जो बातचीत हो चुकी थी उसका भंग उचित नहीं है।

इस पर रामरूप ने अपने भाई पर निर्मम दंड-प्रहार करके उसे घर से निकल जाने का नोटिस दे दिया। अपमान और व्यथा ने किशनसरूप को इतना दुखी कर दिया कि अपने भाई के आदेश को सिरमाथे रखकर वह उसी रात घर से निकल गया। कहाँ गया, इसका किसी को पता नहीं। बेचारी रम्मो अकेली रह गई। ब्याह की, गहनों-कपड़ों की खुशी उसके अन्तर को आन्दोलित कर रही थी वह एकाएक गायब हो गई। कई

रामरूप को ही दोष क्यों दिया जाय ? उसका तो यह एक अति लघु प्रयास था। पाप भी लघु और यश भी लघु।

कथा की परिसमाप्ति के साथ ही श्रोताओं में घोषणा कर दी गई थी कि अप्सरा-नृत्य की भी व्यवस्था है जो लोग देखना चाहें वे ठहर कर जायँ। इस घोषणा के बाद कठिनाई से कोई एक दो व्यक्ति चले जा सके। वे या तो मुहर्रमी तबियत के थे या वे थे जिन्हें अकारण सुधार का झंडा ऊँचा करके चलने का लाइलाज मर्ज होता है। बाकी सब लोग वहीं जमे रहे, बल्कि भूले भटके जो कथा से वंचित रह गये थे वे भी इस समय न रह सके। सब आ एकत्र हुए।

अर्धरात्रि पर्यन्त नाच गान का समा बँधा रहा। इसी समय रम्मो की ननँद यशोदा ने भैया रामरूप को घर के भीतर बुला कर कुछ समझाया। पंचामृत के साथ भैया सोमरस का पान कर चुके थे यह भी उनसे छिपा नहीं था तो भी ऐसी क्या सलाह देने की आवश्यकता पड़ गई थी यह वे ही जाने। लेकिन इसके तुरन्त बाद ही नशे में धुत् रामरूप ने रम्मो को सामने हाजिर करने की आज्ञा दी। उन्हें बताया गया कि अभी तो वह सो रही है। इस पर हुक्म हुआ कि जगाकर लाई जाय।

रम्मों आँखें मलती हुई जेठ जी के बाई ओर आकर खड़ी होगई। उसकी पलकों से अभी निद्रावस्था के स्वप्न भी विलग नहीं हुए थे। रामरूप ने उन्हें छिन्न भिन्न करते हुए गर्जना कर रहा--खबरदार जो कभी घर से पैर बाहर बढ़ाया। मेरा नाम रामरूप है। मैं तेरे पैरों के टुकड़े टुकड़े कर दूँगा।

उस छोटी बालिका के पास इसके सिवा और क्या उत्तर हो सकता था कि वह सिसक कर रो पड़े, परन्तु रामरूप को तो ऐसे उत्तर की दरकार न थी वह और भी खीझ उठा। दो चार अशिष्ट शब्दों को किसी तरह सबद्ध करके उसने यह बताने की चेष्टा की कि माँ बाप के सद्गुणों की यहाँ जरूरत नहीं है।

इस हाके ने संगीत का मजा किरकिरा कर दिया। सब उठ उठ कर

अपने घरों को चल दिये। घरेलू मामले में पड़कर कोई शांति के लिए प्रयत्न करने को तैयार न हुआ। केवल अनवरी गायिका और उसके साजिन्दे देर तक बैठे आदेश की प्रतीक्षा करते रहे।

जेठ जी ने कनिष्ट भ्राता की वधू को हाथ से स्पर्श न करके चरण के प्रहार से ही दूर फेंकना ठीक समझा। इस चेष्टा में रम्मो की दुर्बल काया पास पड़ी हुई खाट से जा टकराई और उसकी कमर का कूल्हा उतर गया और भी कई जगह चोटें लगीं। परन्तु चोट की असह्य वेदना को भी उसे चुपचाप ही सहना पड़ा। हल्लागुल्ला कर किसी को बताने की जरूरत न पड़ी। और ऐसा साहस वह कर भी कैसे सकती थी? जब उसे हर समय सागर में ही वास करना था तो मगर से वैर कैसे चल सकता था? यह वह अपनी इस कच्ची उम्र में भी भली भाँति समझती थी।

इस घटना के बाद से हमारा और रम्मो का साथ छूट गया। शासन की कड़ी सीमारेखा से उसे घेर दिया गया। कई महीने बाद एक दिन अचानक गंगास्नान के मेले में रम्मो से भेंट हो गई। घूंघट के आवरण के भीतर में तो उसे पहचान भी न पाया। उसी ने मेरी पीठ में एक उँगली चुभा कर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। मैंने विस्मित होकर और पलट कर उसे देखा। अचानक मेरे मुँह से निकल गया- रम्मो, तुम हो।

"हाँ, तुम तो जैसे मुझे भूल ही गये रमेश।"

"ऐसा तो नहीं है पर तुम्हें आज इतने दिन बाद जरूर देख पाया हूँ। चिट्ठी से मालूम होता रहा है कि तुम कैसी हो। लेकिन देखता हूँ कि तुम तो बिलकुल बदल गई हो।"

"और कौन कौन आया है जी?"

"बुआजी तो आई नहीं हैं। मैं और किसी के साथ आया हूँ।"

"तुम्हारे साथ कौन कौन है?"

"सभी तो है?"

"पर कोई दिखता नहीं?"

"सभी नहाने गये हैं। आते ही होंगे।"

शीघ्र ही उसकी ननद देवर जेठ सभी आये और सब के सब हड़बड़ाये हुए। आते ही 'चलो सँभालो, सामान ठीक करो' सुनाई दिया और सब समेटने में जुट गये। मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों किया जा रहा है ? परन्तु शीघ्र ही पता लग गया जब रम्मो 'अम्मा अम्मा' कह कर एक स्त्री के लिपट गई और रो पड़ी। इसके उपरांत ही उसके बाप भी दिखाई दिये। उन्होंने अपने दमाद का पत्र लाकर रामरूप के हाथ में रख दिया। शायद किशनसरूप ने लिखा था कि वह अपनी बेटी को ले आये।

रामरूप ने पत्र के दो टुकड़े करके फेंक दिये और डपट कर कहा—पत्र लिख देने से ही उसे अपनी औरत पर सब अधिकार नहीं मिल गये। उससे कह देना कि पहले वह हमारे सामने आये। मैंने उस बदजात का ब्याह किया है, उसे आदमी बनाया है। उसके पीछे खुद अनेक कष्ट उठाये हैं। अनेक तरह के खर्च किये हैं। सब बातों का आकर हिसाब समझ ले और मुझे भी समझा दे फिर वह ले जाये अपनी बहू को।

कहा-सुनी हुई परन्तु लड़की की माँ के बीच में पड़ने से बात आगे नहीं बढ़ी। रम्मो का पिता यह प्रण करके गया कि अगले पन्द्रह दिन के अन्दर अपने दमाद को लेकर सोहनपुर आ पहुँचेगा। रामरूप को इसकी क्या चिन्ता थी ?

दूध

बहुत सी बातें कहने को हो गई हैं। सब बताने बैठ जायें तो कब खत्म हों ? पाठक भी सुनते सुनते क्षमा-याचना करने लगें।—मैं चाहे पढ़ता एक

अक्षर भी न होऊँ पर स्कूल आये बिना निस्तार नहीं। मैं तो अपनी आदरणीया बुआ के आदेश-बंधन से बँधा हूं। जबतक उनकी प्रेरणात्मक प्रवृत्ति है तब तक मुझे स्कूल आना ही पड़ेगा। मैं लगातार आ रहा हूँ। जबकि इसी अरसे में देवीसिंह स्कूल से अलग होकर ठाकुर देवीसिंह बन गये हैं और कलम, दवात, स्याही, पुस्तक आदि की जगह सिर से एक फुट ऊँचा लट्ठ सँभाल लिया है।

मैं जब स्कूल जाया करता हूँ तो ठाकुर देवीसिंह से भेंट होती है। बड़े प्यार से, बड़ी कृपा से और बड़े सौजन्य से वे मिलते हैं। स्कूल में पढ़ने के कारण मैं जैसे परावलंबी और निरीह होऊँ और स्वाधीन होने के कारण जैसे वे अधिकार सम्पन्न हों, यह बात मुझे प्रतीत हुए बिना न रहती। फिर भी इधर रोज रोज की दो बार मुलाकात होने से उनके साथ मेरी आत्मीयता बढ़ती जा रही है। ठाकुर देवीसिंह के मन में एक ही इच्छा है कि वे कभी फौज में भरती होंगे और मोटर ड्राइवरी सीखेंगे। जैसे भी हो यह इच्छा उन्हें पूरी करनी है। मेरे ऊपर उनकी विशेष कृपा का कारण, जहाँ तक मैं अनुमान कर सका हूँ, मेरा शहर का निवासी होना है। उनका ख्याल है कि हम लोगों को नागरिक होने के नाते बहुत सुविधाएँ हैं, अफसरों से बहुत परिचय है और हम चाहें तो इस विषय में उनकी मदद भी कर सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से उनकी यह धारणा मेरे विषय में तो एक अंश भी सत्य नहीं है तो भी इस असत्य को नंगा करके कभी मैंने उनके निकट उपस्थित नहीं किया है। न जाने क्यों हृदय में एक तरह का संकोच होता है उसे प्रकट करते हुए। इसीलिए जो सत्य नहीं है, एकान्त मिथ्या है, उसी को उनके सम्मुख में धारण करने का उपक्रम करता रहता हूं। इस अभिनय में मेरा कोई दुष्ट इरादा हो सो बात भी नहीं। असल में मैं यह बात सहन नहीं कर सकता कि मेरे सत्यानुसरण से उनका स्वप्न टूट जाय और वे सभी नागरिकों के प्रति अपनी श्रद्धापूर्ण धारणा को बदलने पर बाध्य हों। संभव है मुझसे भिन्न, सचमुच में उनकी रुचि का कोई नागरिक मित्र उन्हें भाग्य से मिल

जाय, जो अशक्य नहीं है, तो फिर अभी से मैं क्यों दाल-भात में मूसलचन्द बन बैठूँ ?

यही सब विचार लिए मैं देवीसिंह से मिलता हूँ मेरी बातों से उन्हें आश्वासन प्राप्त होते हैं—उनके स्वप्न-मेघों को घिरने का अवकाश मिलता है। उनके आश्वस्त चेहरे पर चमक आ जाती है। अपनी लाठी ऊँची करके वे अनुरोध करते हैं—भाई रमेश, आज तो तुम्हें मटर की फलियाँ नहीं खिला पाऊँगा। हाँ, एक दो गाजर चखाऊँगा। मिश्री सी मीठी हैं। तुम खाना, तब कहना।

मैं कहता—नहीं जी देवीसिंह, मैं तुम्हारी गाजर-वाजर से बाज आया।

देवीसिंह—अरे वे गाजरें नहीं हैं जो तुम समझ रहे हो। एक बार मुँह में डालना तब इनकार करना।

इतना कह कर मेरे मना करते करते भी वे खेतों में गायब हो जाते हैं और मैं किसी पेड़ की छाया में या बाग की खाई पर बैठा रहता। भाग नहीं पाता उनके अनुरोध के बंधन को तुड़ा कर। थोड़ी देर में किसी काछी या किसान के खेत में से मुट्ठी भर चने के पेड उखाड़े हुए वे आ उपस्थित होते और सफाई देते हुए कहते हैं—अजी रमेश, ये लो होले खाओ तुम। गाजर मैं नहीं लाया। तुम्हें गाजर पसन्द नहीं होगी। शहर के आदमी जो ठहरे। भाई, ये चीजें तो हम गाँववालों को भाती हैं। फिर गाजर कुछ ठंढी होती है। कहीं तुम्हें नुकसान कर जाय। तब तुम तुम कहोगे कि देवीसिंह ने जबरदस्ती खिला कर बीमार कर डाला।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस सब सफाई का कारण केवल इतना ही है कि गाजरें उखाड़ने का सुयोग उन्हें नहीं मिल पाया है। खेत के मालिक-मालिकिन में से कोई जरूर इस समय वहां मौजूद है इसीलिए चने के पौधों से मेरा आतिथ्य किया जा रहा है। ऐसा तो सदा ही हुआ करता है। देवीसिंह मुझे यही दिखाना चाहता है कि वह एक बड़ा जमीन्दार है। गाँव के सारे खेत उसी के हैं। वह जो चीज जिस खेत में से चाहे बेखटके मेरे लिए ला सकता है। उसे पता नहीं है कि मैं यह भली भाँति समझता हूँ कि

वह जिन जिन चीजों से मेरी मनुहार करता है वे अधिकांश इधर उधर से खसोटी हुई होती हैं।

ऐसा करके उसका आशय मेरे मन पर आधिपत्य स्थापित करने के अलावा और क्या हो सकता है यह मैं नहीं जानता। परन्तु मेरा मन इस तरह वश करने से क्या सचमुच उसे लाभ होने की आशा हो सकती है? इस जिज्ञासा का उत्तर देना मेरा काम नहीं है।

उस दिन साँझ को छुट्टी होने पर देवीसिंह नित्य की भाँति मार्ग में प्रतीक्षा करता हुआ मिला। आज पहले से ही उसने दो गन्ने मेरे लिए ला रक्खे थे। दूर से ही देखकर बोला—रमेश, दौलतपुर की मिट्टी के ये गन्ने—

मेरा मन स्कूल में घटी एक दुर्घटना के कारण बिलकुल ही क्षुब्ध हो रहा था। कुछ रुष्ट होकर मैंने कहा—मैं नहीं खाता तुम्हारे गन्ने।

"क्यों, ये दौलतपुर के गन्ने मिलते ही कहाँ है? यहाँ ईख बोता ही कौन है?"

"तो रक्खो न उन्हें लेजाकर।"

"यह नहीं होगा रमेश। तुम्हें खाने पड़ेंगे।"

"मैं न खाऊँगा। छुऊँगा भी नहीं।"

"किसलिए? ऐसा किसलिए?"

"कह दिया, मैं नहीं खा सकता।"

"बिना कारण?"

"सच बात यह है कि मैं चोरी की चीज नहीं खाना चाहता। तुम समझते हो मैं जानता नहीं। मैं सब जानता हूँ कि तुम रोज रोज ये चीजें कैसे लाते हो?"

मेरी बातों से देवीसिंह के ऊपर वज्रपात हुआ। उसका चेहरा जलकर बुझ गया। उसकी सारी चमक, सारी तेजी, जाती रही। उसने कभी आशा न की थी वह मेरे मुँह से ये बातें सुनेगा। बड़ी कठिनाई से वह इतना कह पाया—तुम कहते हो मैं गन्ने चुरा कर लाया हूँ?

"कहता हूँ।—और यही ठीक है। देखो, देवीसिंह मुझसे सब बातें

न कहलाओ। दौलतपुर से सोहनपुर तक हर एक किसान, हर एक काछी और हर एक नबरदार तुम्हारे मुकाम से परिचित है। जमीन्दार के लड़के होकर जब तुम यह पेशा करने लगे तो गरीब कैसे रहेंगे? वे तुम्हें चोर कह कर पकड़ भी नहीं सकते। तुम क्या इसका ऐसा बेजा फायदा उठाओगे? गरीबों को बरबाद कर दोगे?"

मुझे ख्याल था देवीसिंह इस बार अपनी लाठी उठायेगा और मुझे द्वन्द युद्ध के लिए ललकारेगा परन्तु इसके बिल्कुल विपरीत उसने मेरे पैर पकड़ लिए और आखों में आसू भर कर बोला—माफ करो भाई रमेश। मुझे तुम माफ कर दो। मैं अपनी भूल के लिए बहुत दुखी हूँ। मैंने इस तरह कभी नहीं सोचा था।

मैं—इसकी जरूरत नहीं है देवीसिंह।

देवीसिंह—तो तुम मुझे माफ नहीं करोगे?

मैं—मैं क्या माफ करूँ? माफ तो तुम्हें वे करें जिनका तुम इस प्रकार नुकसान करते रहे हो। मैंने तो तुमसे कुछ लिया ही है। तुम्हारे अपराध से थोड़ा भाग मेरा भी रहा है। लेकिन मैं बहुत कमजोर हूँ। इतना बड़ा बोझा उठा नहीं सकता। इसीसे डर कर तुम्हें मना किया।

देवीसिंह—जो भी हो, मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि इससे किसी को नुकसान होता होगा। यह बात तुमने सुझाकर मेरा बड़ा उपकार किया। मैं अब किसी से क्षमा नहीं मांगूगा। सबसे कहूँगा मैंने तुम्हारा इतना नुकसान किया। तुम मुझे दंड दो। दंड पाकर ही मैं सुखी होऊँगा।

मैंने देखा, देवीसिंह का चेहरा चमक उठा।

संध्या निकट थी। मैं घर चला आया। देवीसिंह शायद दंड-याचना के लिए निकला। पड़ा बाद में मुझे यह सुनकर बड़ा दुख हुआ कि किसी ने भी उसके हृदय-परिवर्तन की महिमा को नहीं समझा। जहां जहां भी वह गया वहां लोगों ने उसे झिंझोड़ा ही। इस तरह उसे तंग किया जैसे वे उसे रँगे हाथों पकड़ सकने में समर्थ हुए हों। गाँवों की ऐसी ही चर्या है। वहाँ सबल की पूजा होती है। दुर्बल को सताया जाता है। परन्तु इससे क्या,

देवीसिंह के जीवन में तो एक नया पृष्ठ खुल गया। नया आदमी बनने का श्रीगणेश उसके जीवन में होगया।

दूसरे दिन अचानक चाँदकुवरि से भेंट हो गई। मैंने पूछा—तुम कब आगई ?

"मुझे तो आये दिन होगये।"

"लेकिन देखा तो नहीं।"

"दादी बीमार हो गई। इसी से उन्हें लेकर चला आना पड़ा।"

"अब कैसी हैं ?"

"वैसी ही हैं। अच्छी नहीं कह सकती।"

"तब तो तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी।"

"है, लेकिन दादी बच जाँय तो कुछ भी नहीं।"

"दवाई देती हो ?"

"तुलसी की पत्तियाँ देती हूँ। उन्हें दवा से भी ज्यादा इससे संतोष होता है।"

मैंने चाँदकुवरि के साथ जाकर आसन्न-मृत्यु उस बुढ़िया को देखा। लेकिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने रोगी की आँखों के सामने उसकी ओर मुँह किए एक युवक बैठा पाया। किशोरावस्था उसके बलवान शरीर को छोड़ रही थी और जवानी मलज्ज आनत मुख धीरे धीरे आ रही थी। मैंने बुढ़िया दादी के कंकाल शेष को देखकर यह समझ लिया कि संकटकाल समीप है। मैंने चाँदकुवरि से कहा—दादी तो हड्डियाँ भर रह गई है।

इसके बाद मुझे लगा कि जो युवक दादी के पास मेरी ओर पीठ किये बैठा है, वह अपनी आँखें पोछ रहा है। मैंने चाँदकुवरि से उँगली के इशारे से पूछा—कौन है ?

"तुम पहचान नहीं सके राधावल्लभ को ?"

"ऐं, राधावल्लभ !"

"वही तो है। ये न होते तो दादी कभी की सिधार गई होतीं। पाँच

दिन से रात-दिन बैठ कर सेवा की है। मैं कहती हूँ थोड़ा आराम कर लेना पर सुनते ही नहीं। परसों घन्टे भर के लिए बड़ी मुश्किल से घर भेज पाया था।"

उसकी चरचा हो रही है, शायद यह जानकर ही राधावल्लभ ने मेरी ओर देखा। कुछ कहा नहीं। मैंने ही पूछा—दादी कैसी लगती है तुम्हें?

"अब तो आशा हो रही है।"

चाँदकुँवरि ने आह भर कर कहा—भगवान् करे ऐसा ही हो। लेकिन अबतुम बाहर निकलो मैं थोड़ी देर दादी के पास बैठूँगी।

राधावल्लभ ने हाथ के इशारे से मना कर दिया। चाँदकुँवरि मुझसे बोली—हम लोग लौट कर आरहे थे। रास्ते में ही ये मिल गये। गाड़ी में दादी को बेहोश देखकर साथ ही चले आये।

मुझे तो जल्दी ही सोहनपुर आना था। मैं चला आया। राधावल्लभ ऐसे आवश्यक काम में लगा था कि उससे कोई विशेष बातें नहीं हो सकीं। तो भी उसके इस नये रूप को देखकर मुझे अपने निर्णय में बहुत कुछ संशोधन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। एक नई धारणा को लेकर मैं घर पहुँचा।

घर में पंडित दीनानाथ पचांग खोले कुछ गणना कर रहे थे। सामने दो जन्मपत्र पड़े थे। ग्रहों की स्थिति और घड़ी-पल का हिसाब कर पंडित जी ने बुआ को लक्ष्य करने पूछा – कुछ दिन पहले तुम्हें किसी बात की आशा हुई थी और बाद में निराश होना पड़ा था?

बुआ ने दबी हुई हल्की आह से स्वीकार किया। इसके बाद पंडितजी ने पूजा-व्रत अनुष्ठान की एक तालिका बनाकर दी। उसके अनुसार ही कुछ दिन जीवनचर्या रखने से इच्छापूर्ति का विश्वास दिलाया। इस प्रकार सौभाग्य का मार्ग निर्दिष्ट करके और दक्षिणा लेकर वे तो विदा होगये परन्तु बुआ को प्रकृतिस्थ होने में कुछ समय लगा। तब तक मुझे खाने-पीने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। काफी रात गये उस दिन उन्होंने मेरी सुधि ली, परन्तु इससे मुझे किसी प्रकार की वेदना नहीं हुई। असल में आज मेरे पास विचार करने के

लिए सामग्री थी और कुछ देर में अकेले रहकर उसमें डूब जाना चाहता था। मनुष्य के सामने जब उसकी संभावना के बिलकुल विपरीत घटनाएँ घटित हो उठती हैं तो वह उनकी अलौकिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। देवीसिंह और राधावल्लभ को लेकर कभी इस प्रकार मुझे श्रद्धा के फूल नहीं चढ़ाने पड़े थे। यद्यपि उनके आरंभिक परिचय के क्षण से ही उनमें अपनी अपनी विशेषताएँ मौजूद थीं। परन्तु देवीसिंह जिन बातों के कारण देवीसिंह था और राधावल्लभ राधावल्लभ, वे बातें ऐसी न थीं जिन पर मेरे जैसा अरसिक कोई रस ले सकता। प्रत्युत ऐसी ही अधिकांश बातें थीं जिनके कारण मैं इन दोनो को अपने विचारक्षेत्र से बाहर ही रखना पसन्द करता था। कौन कह सकता है कि हम जो चाहते है वही कर पाते हैं? चाहे कोई किसी तरह की जोर जबरदस्ती न भी हो परन्तु यह देखा गया है कि बहुत सी बातों पर आदमी का अधिकार नहीं है। मैंने कभी जिन्हें नहीं चाहा है वे ही मेरे जीवन में प्रविष्ट होकर कब्जा जमा बैठे हैं और जिन्हें मैंने हृदय के अन्तरतम से आत्मसात कर लेना चाहा है उनके हमारे बीच नदियों, पहाड़ों और समुद्रों का अन्तर पड गया है। और कौन कह सकता है कि जब उनकी आवश्यकता न रहेगी तो वे ही पथभ्रष्ट ग्रह-उपग्रहों की तरह मेरी जीवनपरिधि में आकर न समा जायँगे?

मैं खा-पीकर बैठा। आशा नहीं थी कि अब कहीं जाना पड़ेगा। बुआ को सन्तानगोपाल का पाठ जो करना है। वह पुस्तक इस गाँव में कहाँ मिलेगी इसका पता पंडित दीनानाथ जी दे गये है। इस प्रति का पाठ करके ही वृद्धा चौधराइन संतानवती होसकी हैं। इसलिए वही प्रति आज उनसे माँगकर लानी है मुझे। बुआजी की आवश्यकता को ध्यान में रख-कर मुझे तुरन्त ही जाना पड़ा। किसी चीज के माँगने का काम मुझे जितना दुष्कर लगता है इतना दुष्कर क्या और भी कोई काम हो सकता है, यह मैं आजतक निश्चय कर पाने में असमर्थ रहा हूँ। इसलिए इस कठिनाई को हल करने के लिए मुझे तोता को साथ लेलेना पड़ा। तोता का पांडित्य इस विषय में अगाध है। जहाँ आशा के विपरीत कोई संभावना

करनी हो वहां तोता विश्वास की गारन्टी करा सकता है।

छोटी सी चार-छः पत्रों की उस पोथी को प्राप्त करने में तोता को थोड़ी शक्ति नहीं लगानी पड़ी। अनेक प्रकार की अनुनय विनय से आरम्भ करके चौधरी और चौधराइन की सात पीढ़ियों की दानशीलता का गुण-गान और प्रशस्तिपाठ उच्च कंठ से करना पड़ा। अपने और अपने पुण्य-श्लोक पुरखों के जयोद्‌घोष से पुलकित और प्रफुल्लित चौधराइन ने हमें इस शर्त पर वह महाग्रन्थ देना स्वीकार किया कि उसका जीर्ण कलेवर किसी तरह शीर्ण न होने पावे। इतनी छोटी शर्त पर एक अलभ्य पुस्तक को दे देने की उदारता के लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद देते हुए हम दोनों लौट आये। उस दिन बुआ को उनकी वांछित वस्तु देते हुए मुझे कम विजयगर्व न हुआ।

इधर उधर की अनेक बातों में मैं अपने को भुलाने लगा पर एक बात मेरे मन में बारबार घूम फिर कर आजाती है और मैं सोचने लगता हूँ कि मैं इस वर में अवाछित हूँ। न जाने कहा से मेरे मन में यह चोर घुस गया है कि बुआ जो करने जा रही हैं वह मेरे लिए हितकर नहीं है पर क्यों, इसका उत्तर मैं नहीं दे पाता। बुआ का घर मेरा नहीं है। बुआ ने मुझे पुत्र के स्थान का उत्तराधिकारी भी नहीं बनाया है परन्तु भीतर ही भीतर घनीभूत हो रहे वातावरण में मेरे मन में यही सस्कार जड़ पकड़ गया है कि यदि बुआ की साधना सिद्धि के समीप पहुँच रही हो तो मेरा निस्तार नहीं। सकल्प विकल्प की इस दशा के कटकवन में मैं राह खोज रहा हूँ। कुछ समझ में नहीं आता। जी बारबार यही कहता है कि मुझे बुआ की सपत्ति की दरकार नहीं है? क्या मैं उसे किसी भी दशा में स्वीकार कर सकता हूँ? यदि यह सब सच है तो मुझे बुआ के प्रयत्न वाँछनीय क्यों नहीं लगते? अवश्य मेरे हृदय में पाप हैं। मैं उस पाप को निकाल फेंकने को शपथ लेता हूँ। मैं उसे अपने मन-मन्दिर को अपवित्र नहीं करने दूँगा।

अभी पूरा एक साल ही बीता होग। उस दिन काली अंधियारी

रात थी। उल्लू की 'घू-घू' सुनकर मेरा हृदय अस्थिर हो गया था। उसमें भयानक परिणामों की आशंका करके मेरे भय का अंत नहीं था। उसके बाद दूसरे दिन प्लेग फैल चली थी। सब भागने की तैयारी करने लगे थे। बुआजी चिन्तित थीं। क्या होगा, कहां भागना पड़ेगा? कैसे इस बला से बचा जायगा? इसी अस्थिरता के बीच फूफा जी मुझे अपने साथ घर के भीतर ले गये थे और कहा था – रमेश, मुझे और तुम्हारी बुआ को कुछ हो जाय तो यह स्थान मत भूलना। जो कुछ है सब यहीं है। किसी को बताना नहीं। यह सब तुम्हारा ही है बेटा।

फूफा जी की मेरे साथ विशेष घनिष्टता नहीं थी, न कभी रही थी। तिस पर भी उन्होंने सारे विश्वास और स्नेह का पात्र मुझे ही समझा, लेकिन क्यों? मैं उनकी बात का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाया। केवल स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर रह गया था और अनजान में ही मेरी आंखें छलछला आई थीं। आजतक वह बात मैंने कभी किसी को नहीं कही है। आज उसे याद करके सोचता हूं कि तभी से तो मुझे कहीं बुआ की संपत्ति पर लोभ नहीं होगया है? कहीं मैंने मन ही मन अपने को उनका वारिस तो नहीं समझ लिया है? ऐसी भ्रांत और अयुक्त धारणा को सब तरफ से खोद कर फेंक देना चाहता हूं। मेरा जीवन और चाहे जिसके लिए बना हो, अपने संबंधी और हितेच्छुओं के अर्जित वैभव को बैठकर सुख शांति से उपभोग करने को नहीं बना है। इस पर मुझे एकान्त आस्था है। अपनी उस आस्था को लेकर मैं सन्तुष्ट रहना चाहता हूं।

वर्षों के लंबे समय में जिस ज्ञान और अनुभूति को पाना कठिन होता है वह मुझे सहज मात्र से दिनों के भीतर प्राप्त कराने में भगवान् का कोई विशेष उद्देश्य होना चाहिए और वह निश्चय ही गतिहीन-रसहीन परिवर्तनहीन जीवन नहीं हो सकता। मुक्त प्रवाह बनकर उसे बहना है और उसी तरह बहते जाना है।

मेरी चिन्ताधारा को भंग करके बचपन की विनोदमयी घड़ियों में मुझे पहुँचा देने का काम किसने इस बिट्टो के सुपुर्द किया था यह तो मैं नहीं

जानता पर वह करती सदा से यही रही है। उससे मुझे राहत मिलती है। वह आज भी कुछ नया लाई है, यह उसकी सूरत देखते ही मैं जान गया। मैंने पूछा—क्या हुआ री ?

"तुम्हीं बताओ क्या हो सकता है ?"

"हो सकता है तुम्हारा सिर।"

'मेरा सिर हरगिज नहीं हो सकता है।"

"सिर नहीं हो सकता तो कान होंगे।"

"और –"

"कान भी न होंगे तो नाक होगी, पूँछ होगी। ऐसा ही कुछ होगा।"

"मैं क्या गिलहरी हूँ ?"

"नहीं तुम छिपकली हो।"

"मुझे छिपकली बनाओगे तो मैं बुआ से कह दूंगी।"

"बुआ तुम्हें नहीं मिल सकतीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वे छिपकलियों से बात नहीं करतीं।"

"मैं छिपकली नहीं हूँ। देखो, मैंने कह दिया।"

"मैं कैसे कह सकता हूँ कि नहीं हो ?"

"आँखों से देखकर।"

"आँखों से देखकर यह नहीं बताया जा सकता।"

"तो नाक से सूँघ कर देखलो।"

"मेरी नाक ऐसी फालतू नहीं है जो छिपकलियों को सूँघकर उसे खराब करता फिरूँ।"

"फिर वही बात। तुम मानोगे नहीं मैं बुआ से कहती हूँ जाकर।"

बिट्टो दौड़ कर बुआ के पास जाने लगी। मैंने उसे बुलाया—अच्छा, सुन तो जा।

"क्या सुन जाऊँ ?"

"एक बात।"

"कौन सी ?"

"वही जो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ।"

"अच्छा, बोलो।"

"मैं पूछता हूं, तुम क्या कहने आई थी ?"

"मैं कहने आई थी कि—"

"कहो कहो, रुकती क्यो हो ?"

"मैं कहती हूँ पर तुम किसी को बताओगे तो नहीं ?"

"नहीं।"

"सच, बताओगे नहीं ?"

"नहीं।"

"रम्मो तलैया मे डूबकर अपने प्राण दे देगी।"

"हिश् !"

"हिश् नहीं, मैं ठीक कहती हूँ।"

"तुमसे ऐसी बात किसने कही है ?"

"रम्मो ने।"

"क्या कहा है ?"

"कहा है कि वह तलैया में डूब मरेगी।"

"कौनसी तलैया में ?"

"अपने घर के पिछवाड़े वाली।"

"क्यों, वह ऐसा करेगी ?"

"वह कहती थी कि सब उसे सताते हैं। उससे अब सहा नहीं जाता।"

मैं जानता था कि बिट्टो जो सुन आई है वही कह रही है। उसे अच्छे बुरे का विशेष ज्ञान नहीं है। मैंने कहा—तुम जाकर रम्मो को मना कर आओ।

"क्या कहूँ जाकर ? वह क्या मानेगी ?"

"तुम उसे कह देना कि यह उसकी भूल है। मरना इतना सहज

जीभ न खुल सकी कि मैं उससे कुछ पूछता। आखिर उसी के मुँह से सुना—अरे, यह तो जिन्दा है ! कैसा राक्षस है। जो इतनी उँचाई से गिरकर और गाड़ी के नीचे दबा रहने पर भी जिन्दा बना है।

यह कह कर उसने मुझे छोड़ दिया। मैंने हाथ के इशारे से उससे थोड़ा पानी लाकर मेरे मुँह में डाल देने को कहा, जिसके उत्तर में वह बोली तेरे मुँह में पानी डालने से मुझे जो पुण्य होगा उससे उतना नहीं मिलेगा जितना तेरे मुंह सूख कर मर जाने मिलेगा। सूरज की गरमी आप ही थोड़ी देर में तेरा फैसला कर देगी।

यह कहकर वह हम लोगों के सामान की गठरी सिर पर रखकर वहाँ से चली गई। कैसी निर्मम थी उसकी आकृति ! एक बार भी उसने घूम-कर मेरी ओर नहीं देखा। मैंने निरुपाय आँखें बन्द करलीं और सिर जमीन पर टेक कर पड़ रहा। ईश्वर की लीला, बजाय जेठ महीने की धूप के आकाश में बादल उठे, ठंडी हवा लहराई और मैं यमलोक पहुँचने के स्थान पर इस काबिल हुआ कि उठ सकूँ। उठकर मैंने अपने साथी की सँभाल की। वह अबतक अचेत था पर मरा नहीं था। दोनों बैलों की गरदनें मुड़ गई थीं और गाड़ी का बोझ उनके ऊपर जा पड़ा था। मेरे लिए यह अशक्य था कि मैं गाड़ी को खिसका पाता। बैलों के मुँह से फेन निकल रहा था। मुझे एक उपाय सूझा। वही फेन लेकर कुछ तो मैंने अपने माथे पर और कुछ अपने गाड़ीवान के सिर और माथे पर लगाया। हवा के झोंको ने शीघ्र ही ठंडक ला दी। इससे मेरा साथी भी होश में आया। आँखें खोल दीं, परन्तु वह एक दम नंगा था। उसके सारे कपड़े वह दुष्टा खोल ले गई थी। मेरा गाड़ीवान यह न समझ पाया कि मामला क्या है ? सब कपड़े और सामान कहां गये ? मैंने अपनी धोती में से आधी फाड़कर उसे पहनने को देदी, और हाथ का सहारा देकर ऊपर लाया।

ऊपर आकर वह पुन: अशक्त हो गया। उसे समीप की छाया में लिटाकर मैं इधर उधर सहायता की खोज में चला। वहां कहीं बस्ती का निशान न था। उस वन बीहड़ में मैं अकेला चल पड़ा। बहुत दूर चलकर

एक नाले के पार सघन पेड़ों की ओट में कुछ काला-सा दीख पड़ा। उसी को लक्ष्य करके मैं चला। करीब आध घंटे में मैं एक फूस और पत्तों से छाई झोपड़ी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। मेरे वहाँ पहुँच जाने से मालूम होता था कि उस आश्रम की शांति भंग हो गई है। चिड़ियाँ वहां की चहचहा उठीं। गिलहरी चटचटा उठीं और छोटे मोटे जीव-जन्तु जिधर जिसके सींग समाये भाग चले। इस हलचल से मैंने अनुमान किया कि मैं व्यर्थ ही वहां आया। यदि वहाँ कभी हाल में कोई मानव रहा होता तो उस स्थान के पशु-पक्षी मुझे देखकर इतने भयभीत न हुए होते। मैं दो कदम और आगे बढ़कर कुटी में झाँकने के बजाय पीछे मुड़ जाना ही तय कर रहा था कि भीतर से कर्कश स्त्री कंठ की आवाज आई—ठहरो, अब लौटने से क्या होगा?

मैं ठिठक गया। कंठ स्वर वही था। जिससे अभी थोड़ी देर पहले मैं परिचित हो चुका था। इसके बाद मैंने एक दूसरे अवरुद्ध कंठ की धीमी आवाज सुनी। क्षणभर बाद एक स्त्री मेरे सामने थी। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो उसकी ओर ताक रहा था। भय और आशंका से मेरा आसन्न विक्षत शरीर अवसन्न हुआ जा रहा था। वह बोली—कोई बात नहीं है। तुम नहीं मर सके हो, न सही। मर जाते तो अच्छा होता। तुम्हारे कपड़े तुम्हारा सामान तुमसे सौगुनी आवश्यकता वाले एक मानव प्राणी के काम आ जाता। अच्छा, यह तो बताओ तुम्हारे साथी का क्या हुआ? वह तो अब जिन्दा नहीं है न?

मैंने सिर हिलाकर इनकार किया। वह बोली—वह भी नहीं मरा? रामराम! कैसे दुःख की बात है। इतने दिन बाद एक सुयोग देकर भी भगवान ने उसे व्यर्थ कर दिया!

उसके इस भगवान् के स्मरण पर मेरे शरीर में आग की उत्तप्त ज्वाला जग उठी। मन ने कहा—कैसे है इसके भगवान, मानव-मात्र की घृणा और गर्हा के पात्र!

मैंने सँभल कर सव्यंग्य कहा—मातेश्वरी, तुम्हें अपने भगवान का

इस प्रकार तिरस्कार करने की जरूरत नहीं। असल बात यह है कि हम लोगों का वे चाहने पर भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। तुम भले ही बिगाड़ सको—बल्कि तुम तो मुझे सर्वसमर्थ लग रही हो!

"छिः छि, ऐसा न कहो भाई। भगवान् के लिए ऐसे अपशब्द सुनाने वाले तुम पहले अदमी मेरे सामने आये हो। मैं कहती हूँ प्रभु के अभिशाप-कोप से बचने के लिए अपने शब्द वापस ले लो।"

मैं—शब्द वापस लेने की तो आकांक्षा नहीं है, प्रथा भी नहीं है और तब जबकि तुम भगवान् की ऐसी कुरूप मूर्ति स्थापित किये बैठी हो।

"परन्तु सामान लेने की है, यही न?"

"यदि आपकी अनुग्रह हो तो।"

"मेरी अनुग्रह कुछ नहीं, अनुग्रह भगवान् की। सामान तुम्हारा यह रहा। ज्यों का त्यों है। अच्छी तरह देख लो। तुम दोनों मर गये होते तो यह उनके काम आ जाता।"—इशारा उस नरककाल की ओर था जो कुटिया के भीतर मरणासन्न पड़ा था!

कुटिया के द्वार की टाटी उसने थोड़ी खिसका दी। मैंने आश्चर्य, करुणा, भय, जुगुप्सा और ग्लानि से भरकर एक ऐसी मानवकाया देखी जो जीवनभर कभी भूल नहीं सकूँगा। तारतार होरहे एक गले हुए गंदे वस्त्र से ढकी क्षीण दुर्बल ठठरियों की एक देह। सांस धीरे धीरे आ-जा रही थी अन्यथा मैं उसे कई दिन पूर्व की लाश समझ बैठता।

उस स्त्री ने कहा—इस शरीर को ढँकने के लिए तुम दोनों की अहित-चिंतना करके मैं यह सब ले आई थी। इसके लिए तुम मुझे चाहो दंड दो, चाहो शाप दो।

मैंने विक्षुब्ध होकर कहा—लेकिन मैं तो वापस मांगने का आग्रह नहीं कर रहा हूँ। जब ले आई हो तुम्हीं रख लो उन्हें।

उसने जीभ काटकर कहा—नहीं, यह नहीं। ऐसा नहीं।

मैं—तुम हम दोनों को मरा ही मान लो? खत्म करो।

"बस, जो मृत्यु के मुख में पैर दे चुका है। उसके लिए मैं दो जीवित

प्राणों की दुराशीष नहीं ले सकती। लेलो भाई, अपना सामान।"

फिर कहने लगी—चलो मैं ही उसे पहुंचा आऊँ। जब खुद ही लाई हूँ तो मुझे ही पहुँचाना चाहिए।

मेरे मना करते रहने पर भी उसने मेरा सामान उठाकर सिर पर रख लिया और चलने लगी। मैंने लपककर उसे पकड़ लिया और गठरी उतारकर जमीन पर डाल दी।

मैंने कहा—मैं कपड़े और सामान नहीं बल्कि सहायता लेने आया था। मेरा साथी अब तक अशक्त है। उसे अगली बस्ती तक पहुँचाने का यहाँ कोई प्रबंध हो सकेगा?

"परन्तु जब तुम दोनों जिन्दा हो तो मैं तुम्हारी चीजें नहीं रख सकती। खासकर उस हालत में जब अभी तुम और तुम्हारा साथी स्वस्थ नहीं हो-पाये हैं। यह तो अन्याय होगा।"

"न्याय अन्याय का ज्ञान तो मुझ को तुम्हारी बराबर नहीं है। मैं तो उसे भी अन्याय ही समझता था कि तुम मुझे मरने के लिए छोड़कर हमारा सामान उठा लाई। माँगने पर भी इस डर से एक बूँद जल नहीं दिया कि उसे पाकर शायद मैं जी उठूं और अपने सामान की माँग करूँ।"

"सचमुच यह अन्याय था भाई, पर यह अन्याय बता चुकी हूँ कि मैंने—"

"परोपकार के लिए किया था, यही न?" सव्यंग्य मैंने उसकी बात पूरी करनी चाही।"

"नहीं जी, परोपकार मैं क्या करूँगी—एक पापिष्ठा नारी। यह तो, वह तो मेरा परम स्वार्थ था, परम आवश्यकता थी।"

मैंने कहा—जाने दो इन बातों को। ऐसी जगह बता सको तो बताओ जहाँ से मैं थोड़ा जल ले जाकर अपने साथी का कंठ सींच सकूँ।

उत्तर मिला—तुम्हें आपत्ति और ग्लानि न हो तो इसी घृणित और गंदी कुटिया का आज रातभर आतिथ्य ग्रहण करो।

मैंने कोई उत्तर न दिया। तब वह बोली—सोच रहे हो कि अज्ञात

कुल-शील मुर्दों की सामग्री पर जीवित, न छूने लायक व्यक्ति के यहाँ कैसे रहोगे ?—समाज से दूर निर्जन में इस दयनीय दीन दशा में रहनेवाले हम दोनों प्राणी अछूत नहीं हैं यह मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ। कभी हम लोग भी समाज के ही एक अंग थे, कोई दस पन्द्रह साल पहले ही।

मैंने कहा—मातेश्वरी, मैं तुम्हारी बातचीत से ही समझ रहा हूँ कि तुम साधारण नारी नहीं हो। तो भी तुम्हारी जीवनचर्चा सुनने की अपेक्षा मुझे अपने साथी की चिन्ता अधिक हो रही है।

"अच्छी बात है। तुम यहीं ठहरो। मैं उसे लिए आती हूँ।" कहकर वह घने वृक्षों में अदृश्य हो गई।

हम दोनों रात भर वहीं रहे। हमने उस रुद्र-कराला नारी के भीतर सेवा की पवित्र देवी के दर्शन किये। अपना सब कुछ जीवन, यौवन, रूप और रस अपने रोगी दस्यु प्रियतम की परिचर्या में अर्पित करके वह वहाँ रह रही थी। स्वार्थ-लिप्सा से दूर परिस्थितियों की कठोरताओं से लड़ती हुई। हमारा आतिथ्य उसने बन के फल फूलों से किया परन्तु उसमें किसी तरह की त्रुटि नहीं रहने दी। दूसरे दिन विदा होते समय बड़ी कठिनाई से रोगी के हेतु मैं अपने कुछ कपड़े उसके पास छोड़ पाया और कोई चीज उसने स्वीकार न की। एक परम आत्मीया की भाँति अश्रुमोचन करते हुए उसने हमें विदा दी। हमें भी ऐसा लगा कि सचमुच ही अपने किसी सच्चे सुहृद बधु से वियुक्त होना पड़ रहा हो। हमारे चलते चलते उसने मेरे कान में फुसफुसा कर बताया—इनके सिर के लिए सरकार ने दस हजार का इनाम रख छोड़ा है?

मैंने आश्चर्य के भाव से उसकी ओर देखा परन्तु अविश्वास नहीं कर सका।

इसी प्रकार और भी कई अवसर आये जब दुष्टा और पतिता नारियों की आतरिक-झाँकी मुझे देखने को मिली और सदा ही वह बाह्य से एक दम भिन्न और आलोकपूर्ण थी। जीवन की इस संक्षिप्त कहानी में अवसर आया और विचारसूत्र छिन्न न हुआ, तो उनका उल्लेख हो सकेगा।

ग्यारह

रम्मो जैसी छोटी लड़की में नारी-सुलभ दर्प और आत्मनिर्णय की ऐसी अनोखी ओजस्विता होगी इसे मैं तब जान पाया जब सचमुच ही वह तलैया में कूद पड़ी परन्तु तलैया तो क्या वह आग में भी कूद पड़ती तो भी न मरती क्योंकि भगवान् को उसे जिन्दा रखना था और राधावल्लभ को उसे बचाने का श्रेय मिलना था।

रम्मो मर न सकी पर उससे उसके कष्टों का बहुत कुछ अंत होगया। वह फिर ऐसा न कर ले इसलिए घरेलू नियन्त्रण और कठोरताएं कम हो गईं। वह दूसरी समवयस्क लड़कियों की तरह घर से निकल सकती थी और खेल कूद में शामिल हो सकती थी। उसके प्रतिरोध की परिणति सुख और स्वातंत्र्य की प्राप्ति में हुई। कुछ यह बात भी थी कि किशनसरूप अब घर से भागा हुआ आवारा ही न था वह एक अच्छी जगह नौकर हो गया था। उससे घरवालों को आशाएँ हो गई थीं। अफीम और गाँजा के ठेके पर काम मिल जाना और वह भी मुनीम का कोई छोटी बात नहीं है। अभी कुछ दिन बड़े मुनीम के नीचे काम करना होगा, उसके बाद तरक्की मिल जायगी। तरक्की का मतलब है किसी छोटी दूकान का सर्वाधिकार।

यह चिट्ठी जब से रामरूप के पास आई है तभी से उसका रुख रम्मो के प्रति बदल गया है। भाई के अपराधों को भी उसने क्षमा कर दिया है। उसे पत्र लिख दिया है कि वह छुट्टी लेकर एक बार घर तो हो जाये। लेकिन किशनसरूप का यह विचार मालूम होता है कि वह नई दूकान पर

पदारूढ़ हो जाने पर ही छुट्टी लेगा। तब वह अपनी स्त्री को भी अपने साथ ले जा सकेगा।

यह सब रम्मो से जानकर मैंने उससे पूछा—तुम ये सारी बातें कैसे जानती हो ?

'मुझे ऐसा ही लगता है'—उसने उत्तर दिया।

मैंने पूछा—भला रम्मो, तुम्हें तलैया में कूदने की क्या जरूरत थी ?

रम्मो—तुम क्या जानो ?

मैं—इसीलिए तो पूछता हूँ।

रम्मो—मुझे लेकर बहुत से झगड़े हो चुके हैं और बहुत से हो सकते हैं। न जाने किसको मेरे कारण दुख उठाना पड़े। हम लड़कियाँ तो बस इसीलिए दुनियाँ में आती हैं।

"तुम तो बुढ़ियों जैसी बातें करती हो रम्मो।"

"तुम नहीं जानते रमेश, पहले जहाँ मेरे देने की बात थी वहाँ से पिता जी ने कुछ रुपये लिए थे। यहाँ भी उन्हें पूरे रुपये नहीं मिले। वे कर्ज कैसे चुकायेंगे ? उनके ऊपर बहुत कर्ज है।"

मेरे पास रुपये होते तो मैं उसे देता या नहीं यह तो बताना कठिन है पर मेरे ऊपर उस बात ने प्रभाव बहुत डाला। मैंने कहा—तुम्हें उसकी क्यों चिन्ता होती है ?

"न जाने क्यों होती है ?"

"तुम्हारे पास रुपये कभी हो जायें तो दे देना।"

"मेरे पास कब होंगे रुपये ?"

मैं भी सोचने लगा कि कब होंगे उसके पास रुपये ? और होंगे भी तो कहाँ से आयेंगे ?

इसी समय बिट्टो कहीं से भागती हुई आई और पूछ बैठी—तुम्हें किसने निकाला था रम्मो भाभी। राधावल्लभ ने ?

रम्मो—क्यों ?

बिट्टो—यह चन्दन नहीं मान रहा है!

मैं—क्या कहता है चन्दन ?

चन्दन भी आ पहुँचा और कहने लगा—मैंने तो सुना था कि वह कई दिन से घर से निकल गया है ? उसका कहीं पता नहीं है।

रम्मो—लेकिन उन्होंने तो निकाला था।

चन्दन—तुम उसको जानती हो ?

"नहीं।"

"फिर कैसे कहती हो ?"

"मुझे निकालकर घर खबर जो की थी उन्होंने।"

मैंने चन्दन से पूछा—तो राधावल्लभ गया कहाँ है ?

"कुछ पता नहीं। उसकी माँ को भी पता नहीं।"

मैंने कहा—मैं बता सकता हूँ।

तुम बता सकते हो ?—चन्दन ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ।"

"तो उसकी माँ से कह आओ, बेचारी बैठी रो रही है। उसके मुँह में दो तीन दिन से अन्न-जल नहीं गया है। तिस पर रात को कोई संदूक में से रुपये निकाल ले गया है।"

"शायद वही ले गया हो।"

"कौन ?"

"राधावल्लभ।"

"किसलिए ?"

"यह तो वही जाने।"

"राधावल्लभ अपनी माँ के रुपये लेगया, यह तो मैं नहीं मान सकता।"

"मत मानो। लेकिन वह गया कहाँ है और क्यों भागा है ?"

"गया कहाँ है यह तो शायद मैं बता सकूँ, पर क्यों भागा यह कौन जाने ?"

"तो जाओ उसके घर बता आओ न।"

"मैं तुम्हें ही बता देता हूँ। वह दौलतपुर गया होगा।"

"दौलतपुर ?"

"हाँ । चाँदकुँवरि की दादी शायद अभी तक बीमार है ।"

यह बात सुन कर राधावल्लभ की माँ ने मुझे बुला भेजा । मुझसे पूछा—भैया रमेश, तुम्हें पता है राधावल्लभ का ?

"हाँ, मैंने बताया था न चन्दन को । दौलतपुर में वे हो सकते हैं । चाँद कुंवरि की दादी बीमार हैं । मैं पढ़ने जा रहा हूँ । वहाँ होंगे तो भेजूँगा ।"

"जरूर भेजना बेटा । न हो तो मैं ही किसी को साथ करदूँ । पंडित जी हैं नहीं । होते तो भी वे कुछ न करते । उन्होने तो उसे इस तरह छोड़ दिया है कि जो चाहे करने देते हैं । मेरी बात वह सुनता नहीं है । मैं क्या करूँ ?"

"आप घबड़ाएँ नहीं । मैं जाकर भेजता हूँ ।"

मैं उन्हें सान्त्वना देकर चला आया । मेरा अनुमान सच बैठा । राधावल्लभ चाँदकुँवरि के द्वार पर ही मुझे मिला । इस बार वह प्रसन्न था । मैंने पूछा—दादी, ठीक है ?

"हां ठीक है भाई ! ठीक न होने से कैसी विपत्ति खड़ी हो जाती ।"

मैंने उसकी बात का समर्थन किया, सोचा—सचमुच ही दादी के न रहने से चांदकुँवरि का क्या होता ? वह किसके सहारे रहती ? यह सोचते समय मैं यह भूल ही गया कि इस दुनियां में सहारा है ही कहां ? सभी तो निराधार हैं ।

मैंने कहा—मैं तुम्हें यह कहने आया हूँ राधावल्लभ, कि पण्डित जी घर नहीं हैं । तुम्हारी माँ को तुम्हारी खोज-खबर नही है । वे पड़ी रो रही हैं । तुम्हें इसी दम यहाँ से चला जाना है ।

"और तुम—?" राधावल्लभ ने पूछा ।

"मैं पाठशाला जा रहा हूँ ।"

"वहा जाये बिना नहीं बन सकता है ?"

"न जाने का कोई कारण हो तो नहीं भी जाऊँ ।"

"तो भाई तुम यहा ठहरो । दो आदमी आनेवाले हैं । तुम उन्हें

दादी से मिला देना।"

"यह मैं कर दूँगा।"

इस प्रकार राधावल्लभ को मैंने वहाँ से भेज दिया। खुद बैठ गया। आज दादी राधावल्लभ के गीत गाते नहीं थकती थीं। उन्होंने एक एक करके उसके गुणों की गाथा सुना डाली।—कैसा दयालु है उसका हृदय, कैसी उदार है उसकी वृत्ति! अपने शरीर की चिन्ता तो उसे छू नहीं गई है। ब्राह्मण का बालक होकर जात-पाँत की मर्यादा से एक दम रहित। सबसे आत्मीय जैसा व्यवहार। भगवान् उसका भला करे।

रम्मो को तलैया से निकालने की जोखम उठाने के बाद यही राधावल्लभ की इतनी प्रशंसा मैंने सुन पाई। उसके खुद के मुँह से एक शब्द भी नहीं सुना था। यह वही राधावल्लभ था जिसने एक दिन अपने हृदय की ईर्षा को मेरे आगे व्यक्त किया था, यह वही राधावल्लभ था जिसने सुचेता के घर चाँदकुँवरि के माथे पर एक पत्थर दे मारा था। आज वह इतना बदल गया है! मनुष्य भी एक पहेली है। वह इस क्षण जिस रूप में है अगले क्षण बिलकुल ही भिन्न हो सकता है।

मैं कुछ अपने में, कुछ दादी की बातों में, खोया सा बैठा था। मुझे ख्याल भी न था कि कोई लोग आयेंगे और उन्हें मुझे दादी से मिलाने का भार सौंपा हुआ है। फिर कोई आया भी नहीं। इतने में चाँदकुँवरि ने घर में पैर रक्खा। उसे ख्याल भी न था कि राधावल्लभ की जगह मैं ले चुका हूँ। उसने आकर दादी के हाथ पर कुछ रुपये रख दिये। मुझसे बोली—तुम कब आये रमेश?

मैंने कहा—बहुत देर से बैठा हूँ। तुम कहाँ गई थी?

उत्तर दादी ने दिया, बताया—भैया पिछले छः महीने से वजीफा नहीं मिला था। सो मैंने कहा जाकर ले आओ। इस समय रुपये की कितनी तंगी थी हमें।

दादी की पिछली बात से चाँदकुँवरि को चोट-सी लगी। यह मैंने उसकी आकृति से जान लिया। वह एक बड़ी समझदार और सलीके

वाली लड़की थी। लेकिन दादी का इंजन तो गरम था। वे कब रुकने वाली थीं वे कहती गईं —मना करते करते भी राधावल्लभ इतने सारे रुपये डाल गया है। लेकिन जब वजीफे के रुपये आगये है तो ये कौन छुएगा ?

चाँदकुँवरि को बुढ़िया की बातें असह्य हो उठी थीं। वह बोली—तुम से यह सब पूछता कौन है ? और उनसे रुपये लिए ही क्यों गये ?

"बोलो बेटा, यह हमसे पूछती है किसलिए लिये ? कोई डाल कर चला जाये तो उसे क्या लेना कहते हैं ?"

मैंने सिर हिलाकर दादी की बात का समर्थन किया। उससे साहस पाकर वे बोलीं—उसे भी क्या दोष दिया जाय भैया रमेश। उसने देखा कि घर का काम नहीं चल रहा है इसीसे—रुपये हो जाते ही हम उसे लौटा देंगे। क्या रख लेंगे हम उसके रुपये ? यह ऐसी लड़की है। मर जाय किसी से मांगे नहीं।

अच्छा अच्छा, अब यह गुणगाथा रहने भी दो दादी।—चाँदकुँवरि ने कुछ कुछ रुष्ट होकर कहा।

दादी फिर भी न रुकी। कहने लगीं—भैया रमेश, तुमसे क्या छिपा है ? कोई गैर तो तुम हो नहीं। यह तुमसे भी कहना नहीं चाहती।

मैंने कहा—दादी, असल बात यह है कि चाँदकुँवरि जानती है कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं खुद ही दूसरे के घर पड़ा हूँ। इस प्रकार मेरा तो कुछ ठीकठिकाना नहीं। फिर यह मुझसे क्यों कहेगी ?

चाँदकुँवरि—यही सही।

इसी बीच बाहर से किसी ने आवाज दी। मैंने उठकर देखने की चेष्टा की। चाँदकुँवरि ने कहा—तुम बैठो न। मैं जानती हूँ वे कौन हैं। दादी, लाओ दे आऊँ रुपये, साहजी आये हैं।

दादी से रुपये ले जाकर चाँदकुँवरि ने बाहर ही चुका दिये। आकर बोली—दादी, वे राधावल्लभ के रुपये रमेश के हाथ ही भेज देने होंगे।

दादी—भेज दो, इससे वह दुख तो न मानेगा ?

चाँदकुंवरि—तो रहने दो।

इसके बाद चाँदकुँवरि से मेरी बातें होती रहीं। उसने बताया—सुचेता जल्दी ही आने वाली है। इस बार वह तीन चार महीने यहीं रहेगी। उसका पति उससे बहुत प्रसन्न नहीं है। दोनों में कई दिन से बातचीत बन्द है। सुचेता की मा बहुत चिन्ता कर रही है। एक और बात उसने बताई कि देवीसिंह की फौज में नौकरी लग गई है। उम्र तो उसकी थोड़ी है पर शरीर के आकार ने उसे काफी सहायता दी है।

इस प्रकार न जाने कौन-सा प्रसंग छिड़ा और चाँदकुँवरि ने उसका उत्तर देने के लिए माथे पर आपड़े केशों को हाथ से समेटा। मेरी दृष्टि उसके ललाट पर पड़ी। कई दिनों की बात याद हो आई।

मैंने कहा—राधावल्लभ ने तुम्हारे माथे पर जन्मभर के लिए छाप लगा दी है। क्या तुम्हें अपना मुँह काँच मे देखते समय उस दिन की बात याद नहीं आती है? लगता है जैसे अभी कल की ही बात हो पर उसे तो कई महीने हो गये है।

चाँदकुँवरि ने उत्तर दिया—हाँ ऐसा ही तो लगता है। इसके अलावा एक दूसरा चिन्ह अभी दादो की बीमारी में फिर लगाने का मौका उसने पा लिया है जो।

मैं—सच! कहाँ?

चाँदकुँवरि—सब जगह क्या खोल कर दिखाई जा सकती है? उस दिन का चिन्ह दुख और क्रोध का कारण बना था आज का श्रद्धा और भक्ति का।

"तो तुम राधावल्लभ की भक्त हो गई हो?"

"इसके सिवा और मैं क्या करती? बलात् मेरी चिरसंचित भावनाओं के विपरीत यह सब अचानक हो गया। कहा नहीं जा सकता आदमी में कहाँ तक और क्या अच्छा है? बुरे से बुरा समझ कर भी किसी को एकान्त घृणा का पात्र मान लेना जैसी भूल है वैसा ही अच्छे से अच्छा समझ कर देवता के स्थान पर आसीन कर लेना है।"

चाँदकुँवरि की इन बातों में मैंने सचाई का अनुभूत तथ्य प्राप्त किया। मुझे सदा ही इस अद्भुत लड़की के जीवन में अपने जीवन से एक

समानता का आभास मिलता रहा है। वह भी जीवन की प्रत्येक घटना को अपने चिन्तनक्षेत्र में लेजा कर उसका विश्लेषण करती है। मैं इस बंधु-बांधवो और मित्रो से भरे ससार में कभी कभी अपने को नितान्त एकाकी समझ बैठता हूँ उसी तरह वह भी अपने लिए विचार करती प्रतीत होती है। चलती दृष्टि से छोटी से छोटी बात को देखने का उसे अभ्यास नहीं है। मैंने उसकी बात का समर्थन करने के इरादे से कहा—तुम्हारी बात सच है।

इसके बाद इधर उधर की अनेक बातें हुई और हमें समय का पता ही न चला। जब चला तो जल्दी में मुझे छुट्टी लेकर भागना पड़ा।

बारह

लगता है अब बुआ हताश हो गई हैं। उनका कोई व्रत-अनुष्ठान फल नहीं लाया। इसीसे वे घूम फिर कर मेरे ऊपर केन्द्रित हो रही हैं। जब तक वे मुझे भूले थीं तब तक मुझे यह विस्मृत होगया था कि मैं कहाँ हूँ। अपने आप में मस्त और खोया मैं स्वतत्र विचरण करता था। कभी ध्यान भी न आता कि मुझे कहीं और भी जाना है और ससार में अपने जीवन का मार्ग निश्चित करना है। अब जब बुआ ने मुझे विशेष भाव से अपनाना आरंभ किया तो मेरा मन विद्रोह करने लगा। कुछ जी में ऐसा आने लगा कि इस सोहनपुर से मेरा कौन सा सम्बन्ध है? संकट काल के कुछ दिन यहाँ बिताने भाग्य में लिखे थे उन्हें बिता चुका हूँ। स्कूल से छुट्टी मिलने का भी समय

आगया है। परन्तु बुआ का घर छोड़ने में जैसा उत्साह मुझे हो रहा है वैसा दौलतपुर गाँव के छोटे से स्कूल को छोड़ने में नहीं हो रहा है। जीवन के सबसे मनोरंजक क्षण मैंने स्कूल के अपने साथियो के साथ रहकर बिताये हैं। वे क्या कभी धूमिल हो सकते है? स्कूल के कच्चे और फूस से छाये मकान के प्रति मेरे हृदय के मोह का अन्त नहीं है। फिर साथियो और सहेलियो को छोड़ते जी में हूक उठती है, परन्तु जो करना है करना ही होगा। न बिट्टो रोक पायेगी न रम्मो! नदी के बहते जल को किनारे इच्छा रखते हुए भी कब रोक पाये है?

बचपन की एक संध्या की याद आ रही है। मेरा दढ़ियल मित्र, पागल मदारी, मेरे हाथ से किरासिन तेल की डिब्बी लेकर घट घट करके पी गया था और उसके इनाम में गुड़ की एक डली जिसके भीतर नमक और कंकड़ के टुकड़े भरे हुए थे लेकर और मुँह में डालकर बेतहाशा भागा था। दक्षिण दिशा की ओर जिधर बीहड़, बंजर, मैदान और खेत पड़े हैं, उधर ही वह भागता चला गया था और फिर कभी नहीं लौटा। मैंने कितने दिन शाम को बैठ कर उसकी राह देखी थी पर मदारी का पता न चला। जिससे पूछा उसने इधर उधर कर दिया पर कोई यह न बता सका मेरा वह बाल्यबन्धु कहाँ अदृश्य हो गया था। मैं यो बड़ा सीधा और सुशील लड़का माना जाता रहा हूँ पर समझ नहीं पड़ता मदारी के प्रति मैं इतना नटखट क्यों था? क्यों मैं उसे बराबर तंग करता था। उसे जब तब नमक या मिट्टी की डली गुड़ मे लपेट कर देता था और वह भी तब जब वह किरासिन तेल पानी की भाँति पीकर दिखाये। अनेक बार उसने मेरी इस दुष्ट इच्छा को पूरा किया था। उसने न कभी मिट्टी का तेल पीने की शिकायत की थी न गुड़ में नमक या कंकड़ की। मैं सोचता हूँ, कि उस पागल मे कितनी अज्ञानता थी। मैं भी बुआ के घर से मदारी की ही तरह दक्षिण दिशा की ओर भाग जाना चाहता हूँ। यदि ऐसा मैं कर सका तो भी मेरे मन में यह जानने की इच्छा बनी ही रहेगी कि सोहनपुर में कहाँ क्या हो रहा होगा। लेकिन मदारी इन सब बातों से मुक्त था। उसने कभी

किसी मौसम में शरीर पर कपड़ा नहीं लपेटा था। सड़क की धूल और कंकड़ पत्थर उसके बिछौना थे। आसमान ओढ़ना। पेड़ की छाया की उसे परवाह न थी। वस्त्रों की उसे चिन्ता न थी।

मदारी की वह नग्न मूर्ति, उसके मुँह की वह दीन भावना, उसकी आंखों की वह उद्देश्यहीन वाचालता सुदूर बचपन से मेरे मन में समाई हैं। क्या जाने मेरे चले जाने पर किसी के हृदय में मेरे प्रति भी इसी प्रकार की स्मृतिरेखाएँ अवशिष्ट रहेगी या नहीं ?

मदारी निराट् अकेला ही नहीं जन्मा था। उसके गरीब माँ-बाप ने भरसक उसे सुखी बनाने के उपाय कर दिये थे। उसे पालपोस कर बड़ा किया था और एक लड़की को बहू बनाकर ले आये थे। ये बातें तब की हैं जब तक वह पागल नहीं हुआ था। माँ-बाप तो इतना करके परलोक सिधार गये। रह गये मदारी और उसकी बहू। बहू ने मदारी से अधिक उसके भतीजे को पसन्द किया। वह मदारी की न रही, यह बात उसे जब से मालूम हुई तभी से वह अपने आपको खो बैठा। मदारी को लोगों ने पागल होते ही देखा, यह नहीं देख पाये कि किस अभाव की पीड़ा ने उसके मानस को अस्तव्यस्त कर दिया। दुनियाँ बहुधा परिणाम को देखती है कारण की खोज नहीं करती। मदारी का भतीजा अपनी चाची के साथ कभी जिस ओर चला गया था, वही दक्षिण दिशा मदारी के लिए सदा से आकर्षण की वस्तु रही है। वह क्रोध, हर्ष या दुख में जब उत्तेजित होता था तो उसी ओर दौड़ जाया करता था। आवेग कम होने पर लौट आता था, अधिक से अधिक घटे आध घटे में। यह मैंने अनेक बार देखा था। मैं उसके आवेग को जान गया था। जब उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। आखें फैल जाती थीं। मुँह पर भावों की लहरें दौड़ती थीं। होंठ कापते थे और वह जल्दी जल्दी इधर उधर देखने लगता था, फिर जैसे कुछ याद आने पर भाग छूटता था—बेतहाशा, एकदम बेतहाशा। लेकिन उस दिन जो भागा तो भागा ही चला गया। उस दिन का उसका आवेग न जाने कहा शान्त हुआ होगा ?

बुआ ने मेरे मन के विद्रोह को भांप लिया। एक दिन बड़े प्यार से मुझे छोटे बच्चे की तरह गोद में ले लिया, बोलीं—भैया रमेश!

मैंने कहा—हूँ-ऊँ।

"एक बात बताओगे?"

"कौन-सी?"

'जो मैं पूछूँ।"

"हाँ।"

"बिट्टो कैसी लड़की है?"

"तुम नहीं जानतीं?"

"जानती हूँ। तभी तो पूछती हूं तुम्हें कैसी लगती है वह?"

"अच्छी भी है और बुरी भी।"

"यह कैसे हो सकता है भैया?"

"कभी कभी अच्छी हो जाती है और कभी कभी बुरी।"

इस उत्तर से बुआ हँस पड़ीं और बोलीं—मैं तुम्हारा ब्याह कर दूँ उससे तो कैसा हो?

"तो मैं उसे कच्चा ही खा जाऊँगा।"—कह कर मैं भी हँस पड़ा।

बुआ ने कहा—तू पागल है।

मैं बुआ की गोद में से अपने को मुक्त करके भाग निकला। लेकिन उन्होंने जो नई बात कानों में डाल दी थी वह मेरे भीतर चक्कर काटने लगी। बिट्टो से मेरा ब्याह हो जाय तो कैसा हो, यही मेरे मन में बारबार घूमने लगा। मैं अशान्त हो उठा।

कुछ देर बाद जब बिट्टो ने नटों की कलाबाजी की खबर दी तो मैंने उसे नीचे से ऊपर तक एक नई दृष्टि से देखा। मुझसे उत्तर न पाकर वह खीझ उठी—ऐसे क्या देखते हो? तमाशा शुरू हो गया है। बड़ा मजे का है।

"चलूँगा क्यों नहीं।"—मैंने उत्तर दिया।

"तो उठो, चलो।" उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा।

"रम्मो, जा रही है।"

"कहाँ, कब?"

"अभी, अपने पति के साथ। आज ही आये थे।"

"आज आये थे, और अभी लौट जा रहे हैं?"

"अभी, इसी वक्त। बड़े भाई से उनका झगड़ा है।"

बात ठीक निकली जब मैं और बिट्टो देखने गये तो गुड़िया की तरह कपड़ों में लिपटी रम्मो गाड़ी पर बैठने जा रही थी। सब भाई वहाँ मौजूद थे परन्तु किशनसरूप को या रम्मो को कोई किसी तरह की सहायता नहीं दे रहा था। साफ मालूम होता था कि किशनसरूप अपने हृदय को बरबस दबाये सामान को ठीक कर रहा है। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। अभी अभी वह अपने बड़े भाई से झगड़ कर अपने पैतृक घर से न जाने कब तक के लिए सबध तोड़े जा रहा था। बिट्टो भला क्यों मानने लगी। उसने बढ़कर रम्मो के घूँघट से मुँह सटा कर पूछ ही तो लिया—जा रही हो?

मुँह से नहीं, इशारे से उत्तर मिला—हाँ।

इसके बाद उन दोनो ने धीरे धीरे कुछ और बातें की जो मैं सुन नहीं पाया। आखिर में इतना सुन सका—तो कब लौट कर आओगी?

रम्मो ने वधू की मर्यादा की रक्षा करते हुए केवल हाथ हिला दिया। जिसका साफ अर्थ था कि उसे कुछ पता नहीं है।

बस, गाड़ी चल दी। मैं बिट्टो और अनेक लोग दूर तक उनको जाते देखते रहे। सध्या समय की यह विदा कोई अनहोनी घटना नहीं थी परन्तु तो भी उसमें कुछ ऐसा था जो बरबस हृदय के भीतर जाकर मथने लगा और वर्षों बाद आज भी उस घटना की स्मृति कोई सुखद वस्तु नहीं है।

उनके चले जाने के बाद बिट्टो के साथ मैं थोड़ी दूर गया। ऐसी जगह पर जहाँ सोहनपुर की सीमा थी। पास ही थोड़ी दूर पर दो ताड़ वृक्ष पास पास खड़े थे। ऐसा लगा जैसे वे दोनों अभी अभी घट चुकने वाली घटना की बातें कर रहे हों। कभी कभी दक्षिण-पूर्व की ओर दूर अधकार

में विलीन हो जा रही उस गाड़ी को लौट लौट कर देख लेते हों और फिर आपस में कुछ कहने लगते हों। मैंने बिट्टो से कहा—लो, गाड़ी हम लोगों की नजरों से तो ओझल हो गई पर ये ताड वृक्ष तब तक उसे देखते रहेंगे जब तक वह अंधेरे में मिल नहीं जाती।

ये इतने ऊँचे जो है—बिट्टो ने कहा। थोड़ी देर ठहरकर फिर बोली—मैं भी वृक्ष हुई होती तो उनकी गाड़ी को देर तक देख पाती।

"देखने से क्या होता?"

"वह रो रही थी बिचारी।"

"तुझे भी जाना होगा सोहनपुर से एक दिन। तब तू भी इसी तरह रोयेगी।"

"मुझे भी जाना होगा? मैं क्यों जाऊँगी, बताओ?"

"तू नहीं जायेगी?"

"नहीं।"

"सदा यहीं बनी रहेगी"

"तुम चाहते हो मैं चली जाऊँ? तो मैं एक जगह जाउँगी, बताऊँ?"

"बताओ।"

"मैं तीर्थ-दर्शन को जाऊँगी।"

"अच्छा, तीर्थ दर्शन को।"

"क्यों, तीर्थ जाने का तुम्हीं को अधिकार है?"

"यह मैंने कब कहा है?"

"फिर तुम मेरे तीर्थ जाने से चिढ़ते क्यों हो रमेश? तुम तीर्थ हो आये हो। तुम सोचते हो वहाँ और कोई न जाने पावे।"

"मैं कब हो आया हूँ? तू फालतू बातें क्यों करती है बिट्टो?"

"अच्छा तुमने नहीं कहा था कि तुम तीर्थ हो आये हो?"

"कब?"

"भूल गये? उस दिन—जब तुम पहले पहल सोहनपुर आये थे। मैंने तुम्हें देखा था, घर में—सबेरे।"

विरोध करने की प्रवृत्ति तबतक मेरे भीतर नहीं जगी थी। जब सारी दुनियाँ ने इस सबंध में एक धारणा बना ली है। अच्छे बुरे भोगों को पूर्वकृत कर्मों का परिणाम मान लिया है तब बुआ के मुँह से उस विषय की चर्चा सुनकर मैंने भी सहज ही स्वीकार कर लिया। न करता तो कहाँ जाता? निकट अतीत की घटनाएँ, इस सबको स्वीकार कर लेने के लिए मुझे बाध्य कर रही थीं। जिसने अपने पड़ोसी और सबधी परिवार के संकटकाल से लाभ उठाकर अपने भविष्य का निर्माण किया हो, जो इस जगत के कानूनों के सामने न सही न्यायबुद्धि के निकट अमानुषिक अतिचार करने के लिए पूर्णतया दोषी है, जिसने कल ही अपने छोटे भाई के साथ निर्मम बर्ताव करके सस्त्रीक घर से बाहर निकल जाने को बाध्य किया है उसे आज ही शय्या पर तड़पते देखकर भी क्या मैं बुआ की ज्ञानोद्‌बुद्ध बात को न मानता? तत्काल अपनी श्रद्धा को उनके सम्मुख प्रकट करके मैंने बता दिया कि वे जो कुछ कह रही हैं उसकी सत्यता में मुझे लेश मात्र सशय नहीं है।

इससे उत्साहित होकर बुआ ने रामरूप के सबध में चल रही अनेक चर्चाओं के संकेत दे देकर इस बात को और परिपुष्ट करने की कोशिश की कि उसके शारीरिक कष्ट ईश्वरीय कोप के परिणाम हैं। यह सब कहकर उन्होंने यह भी व्यक्त करना चाहा कि ऐसे नर-पशु के कष्टों के लिए किसी को तनिक भी परिताप नहीं है। उनका यह कथन अधिकाश में सत्य था। लोगों को उसके प्रति सहानुभूति अत्यन्त विरल थी।

मेरे कानों में रात की उसकी वेदना-विह्वल गुहार गूँज रही थी। मैं कम से कम इस बात में बुआ से अपने को सहमत नहीं कर पाया। मेरे मन में बारबार यही आने लगा कि क्या किसी भी हालत में एक पापी प्रेम और सहानुभूति का पात्र नहीं हो सकता? उसने भी तो यही पाप किया था कि जब किसी को निस्वार्थ सहयोग देना चाहिए था तब अपने स्वार्थों को प्रमुखता दी। यदि आज हम वही उसके साथ करें तो भले ही हम दुनियाँ के सामने एक दृष्टान्त रख दें, पर हम भी तो एक मानव के प्रति उसी अपराध के अपराधी होंगे? ये सब बातें न भी सोचें

तो भी उसकी दयनीय दशा का जिन्हें साक्षात्कार हुआ है वे द्रवित हुए बिना न रहेंगे।

मैं अपने को इस संबंध में हर तरह से असहाय पाता हूँ। इच्छा रहते भी उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता। कई रातें बीत गईं और वह चीख-चिल्लाकर ही रात बिता पाता है।

इधर दो चार दिन से ओझों और झाड़-फूँक वालों का दौर शुरू हो गया है। कोई ब्रह्मराक्षस का प्रभाव स्थिर करता है तो कोई शहीदों की चाल मानता है। कोई देवी के कोप का निर्णय देता है। किसी किसी ने खोटे ग्रहों की सूची तैयार की है। किसी किसी को शत्रु की घात का संदेह है। सबेरे से शाम तक सांई, पंडित, ज्योतिषी, मौलवी, मुल्ला और ओझों का आना जाना हो रहा है। कभी कभी कोई मारा-धारा वैद्य या हकीम भी आ जाता है पर उसे ये भाग्यवादी किसी तरह ठहरने नहीं देते। इधर बीमार को राहत नहीं। उसका कष्ट दिनदिन बढ़ता जा रहा है। यह अवश्य है कि कभी कभी क्षणिक आराम मिल जाता है। जिस गुणी के प्रयत्न-काल में विराम मिलता है वह थोड़ी देर के लिए अपनी विद्या को सफल समझ लेता है पर शीघ्र ही उसका विश्वास खंडित हो जाता है।

रामरूप जैसा सबल और सशक्त पुरुष इतनी जल्दी इस प्रकार लुंजपुंज हो सकता है यह किसी से कहते तो विश्वास न होता। वही आज सत्य दिखाई देता है। वह अपने बिस्तर से उठकर नीचे नहीं बैठ सकता। लंबी सुनसान रातों में उसकी चीत्कार सुनते सुनते मेरा तो जी भयभीत हो उठा है। क्या यही आनंदमय मानवजीवन इस प्रकार शून्य मरुस्थल हो उठता है? चारो ओर से घेरे रहनेवाले शुभैषियों की वह प्रचुर संख्या आज कितनी विरल हो गई है? वे सब इस समय कहाँ चले गये हैं?

सबेरे धूप में हाथ और पैरों के सहारे खिसक कर जब वह अपनी

केदार की मां ने अपने को संयत कर पिताजी के समीप मुँह करके जोर से कहा—लाला जी आखें तो खोलो जरा। देखो तुम्हारा रमेश आगया है। कल तक तो पूछ रहे थे कि मेरा रमेश नहीं आया ?

पिताजी ने न आखें खोली न कुछ बोले। बुआ ने कहा—चेत नहीं है।

केदार की मां ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। मुझसे न रहा गया। मेरी आंखों में आंसू उमड़ आये। उन्हें छिपाकर पोंछ डालने के लिए मैं वहां से भाग गया।

पूरे चौबीस घन्टे तक उसी तरह बेहोश रहकर अगले दिन पिता जी की जीवन लीला समाप्त हुई। हम सब लोगों ने उनके लिए विलाप-प्रलाप किया। परमात्मा से प्रार्थना की कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। इसके बाद मृतक-कर्म किये गये। पास-पड़ोसी और सम्बन्धी लोगों ने समय समय पर उपस्थित होकर हम सबको सात्वना दी। यह सब होगया। इसके बाद पिताजी की सम्पत्ति के बँटवारे का सवाल पैदा हुआ। कैसे हुआ ? यह तो पता नहीं। मुझे तो सम्पत्ति की लालसा नहीं और यदि मिल भी जाय तो मैं उसकी रक्षा कर सकूँगा, इसका मुझे होश नहीं। मैं स्वयं अभी असहाय असमर्थ बालक ठहरा। मैं तो दूसरों पर किसी न किसी तरह आश्रित हूँ। अभी से मैं अपना हिस्सा अलग करने की बात ही कैसे सोच सकता हूँ ? लेकिन इस संसार में सभी स्वार्थी नहीं होते। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो दूसरों के भविष्यचिन्तन में भी उतने ही सयत्न रहते हैं जितने अपने। ऐसे लोगों ने इस अति महत्त्वशाली प्रश्न को यों ही टल नहीं जाने दिया। भाई-भाई को अलग करने का अनुष्ठान सम्पूर्ण हुआ। मेरे हिस्से में मकान, कुछ माताजी के आभूषण और थोड़े से रुपये आये। मैंने इतना सुन लिया। मेरी ओर से किसने उन्हें ग्रहण किया, यह जानने की मुझे जरूरत न पड़ी।

इस बार केदार और उसकी मा दोनों की विशेष सहानुभूति मैंने पाई। मातृ-पितृहीन असहाय बालक के प्रति उनके हृदय कोमल हो उठे। यदि उनकी शक्ति में होता तो वे मेरे लिए कुछ करते। केदार ने मुझे

अकेले में पाकर कहा—रमेश, तू बुआ के साथ जायगा ?

क्या जानूँ ?—मैंने उत्तर दिया।

"बुआ तो यही कह रही थीं।"

"तब यही होगा।"

"पर वे यह भी तो कह रही थीं कि तुझे आगे पढ़ना है। वहाँ तो आगे पढ़ाई नहीं।"

"यह ठीक है। इसीसे शायद मुझे उनके साथ न जाना पड़े।"

"तो मत जाना तू भाई यहाँ पढ़ने-लिखने का सुभीता रहेगा।"

वह शायद कहना चाहता था कि मैं उसके घर में रह जाऊँगा। लेकिन वह यह कह न सका। मुँह पर आई हुई बात को दबा गया। केदार में यह विशेषता सदा से रही है कि वह अपने आपको बिल्कुल अनावरित कभी नहीं करता। कुछ न कुछ अवश्य रख लेता है।

मैंने कहा—लेकिन यहाँ मुझे कौन रहने देगा ?

मेरे इस उत्तर से वह मौन रह गया। इस कदर साहस वह न कर सका कि कह देता—कौन नहीं रहने देगा ? मैं उन सब से कह दूँगा।

वह यह जानता था कि एक दिन पूर्व ही तो रामचरन तिवारी को दुराचारों में प्रवृत्त करने का आरोप मोहल्ले की बड़ी बूढ़ी केदार के सिर मढ़ चुकी थीं। रामचरन तिवारी ने अभी जवानी में पैर रक्खा है। अवस्था बीस इक्कीस की होगी। पिता की संपत्ति का उत्तराधिकार हाथ में आते ही वे एक बार जवानी को सार्थक कर लेने के शुभ संकल्प से प्रेरित होकर केदार की शिष्य-परंपरा में दाखिल हो गये। उन्हें शीघ्र ही नगर की सौंदर्य हाट में केदार ने पहुचा दिया। इसके बाद बाप-दादों की पाप को पाप और पुण्य को पुण्य न मानकर अर्जन की हुई संपत्ति, पानी की भाँति बही। अनेकों ने बहतीगंगा में हाथ धोये। लोगों का विश्वास है कि केदार ने इस प्रसंग में अपने को पूर्णरूप से आत्मनिर्भर कर लिया है।

जो हो, केदार के लिए यह बड़े दुर्भाग्य की बात है वह सदा इसी प्रकार आक्षेपों का लक्ष्य होता रहा है। जिसे देखो वही उसकी प्रशंसा में ऐसे ऐसे

आरोप उपस्थित करता है जिसे सुनकर कोई भी समाज का सदस्य ग्लानि से गले बिना नहीं रह सकता। रात-दिन के इन उपाधिपत्रों को संचित करते करते केदार को भी उनके प्रति वैराग्य उत्पन्न होगया है। वह अब उन पर विशेष ध्यान नहीं देता। रामचरन तिवारी को बिगाड़ कर उनके कुलीन पुरखों को बदनाम और उनके सम्माननीय घर को बरबाद करने की बात को भी उसने सहज भाव से सह लिया है। यद्यपि यह बात कही जा सकती है कि रामचरन तिवारी कोई बच्चा नहीं हैं। केदार के समवयस्क हैं, उससे कुछ अधिक पढ़े-लिखे हैं और समझदार हैं, और इतने पर भी यदि वे केदार के प्रभाव में आ जाते हैं तो दोष उनका ही है। लेकिन उन्हें दोष दे कौन ? बड़े घर के लड़के को उन बातों का पता क्या ? कोई न कोई पथप्रदर्शक उसके लिए चाहिए ही और वह केदार से बढ़कर कहाँ मिल सकता है।

इतनी सारी बातों के बाद भी मैं केदार के संबध में मैं अपनी निजी धारणा किसी और ही तरह की रखता हूँ। उसकी एक सुकोमल आत्मीयता का मैंने बहुत पहले से अनुभव किया है। वह कभी एकान्त स्वार्थ के वशीभूत होकर मित्रता के व्यवहार को दूषित नहीं करता है। रामचरन तिवारी को पतन की ओर ले जाने में उसका कितना हाथ है यह भी अभी तक विश्वस्त ढग से निर्णीत नहीं हो पाया है।

मनुष्य को हीनतर अवस्था का प्राणी बना देने वाली इस परिस्थिति ने आखिरकार केदार के दृढ़ स्वाभाव पर भी असर डाला है। वह अपनी अवस्था का अनुभव करने लगा है। इसी से आज वह मुझसे खुल कर यह आग्रह नहीं कर सका कि मैं उसी के घर रह जाऊँ।

मैंने अपनी ओर से कहा—यहीं रहना होगा तब तो आप सब हैं ही।

मेरे कथन से उसके चेहरे पर स्वाभाविक रग लौट आया। उसने हँसकर कहा—हाँ, इसमें क्या बात है।

बुआ मुझे छोड़ देती तो शायद कुछ दिन उसका साथ करना ही पसंद करता पर वे न मानीं। मुझे एक बार फिर सोहनपुर की दुनियाँ में आना पड़ा।

इस बार सोहनपुर आते आते मेरे मन में यही विचार बारबार आता था कि क्या कभी मुझे यहाँ से छुटकारा भी मिलेगा ? क्या सोहनपुर के साथ मेरे जीवन का अटूट संबंध हो गया है ? क्या किसी प्रकार मैं यहाँ से निकल कर मुक्त वातावरण में विचरण कर सकूँगा ? अपने घर का जो बंधन मुझे पांव तक बांधे हुए था वह तो पिता जी के निधन से दूर हो गया पर सोहनपुर का बंधन तो दृढ़तर होता जा रहा है।

इस बार किसी तरह मेरा मन सोहनपुर में नहीं लग रहा है। गजेन्द्र-मोक्ष से पूर्व गज के मन में जैसी छटपटाहट थी उससे भी अधिक मैं व्याकुल हो रहा हूँ। भगवान् ने गज की गुहार सुन ली थी लेकिन मेरी सुनने की उन्हें फुरसत कब होगी ? इस बेचैनी के बीच मेरे लिए एक ही परितोष का विषय था—मेरी सखी बिट्टो का विमल हास्य। उसकी विनोदमयी मूर्ति के साथ मैं थोड़ी देर के लिए अपने हृदय की वेदना को भूल जाता था। वह भी इधर इस प्रयत्न में रहती थी कि मेरे लिए विनोद की अधिक से अधिक सामग्री जुटाये। शायद उसे मेरे भीतर उठ रहे बवंडर की पूर्वसूचना मिल चुकी थी। मुझे घर के भीतर एकान्त में बैठे रहने का वह मौका ही न छोड़ती थी। कोई न कोई बहाना लेकर आ उपस्थित होती और मुझे बाहर खींच ले जाती।

कल एक व्याह के घर में वह हो आई है वहाँ का समाचार मुझे देना है। इसलिए वह सीधी मेरे पास आ पहुँची। बिट्टो ने बताया—किस किस तरह वहाँ आगत स्त्रियाँ नाचीं। कैसे कैसे गीत गाये गये। उसके बाद किस प्रकार स्त्रियों ने नाटक किया।

मैंने सारी बातें सुनकर कहा—ऐसे कहने से तो कोई मतलब नहीं।

बिट्टो—तो क्या करूँ ?

मैं—करके दिखाओ तो पता पड़े।

बिट्टो - तो नाच कर बताऊँ ?

मैं—और क्या ?

बिट्टो— ओहो, बड़े आये।—उसने कुछ लज्जा के भाव से अपना मुँह

ढक लिया।

मैं—जो बात किसी की समझ में न आये उसे तो करके दिखाना ही पड़ेगा।

बिट्टो—सच, तुम्हारी समझ में नहीं आया रमेश, कि वे कैसे नाचीं थी ?

मैं—नहीं, कैसे आये ? मैंने तो उन्हें नाचते देखा नहीं। मैं किसी ब्याह के घर में गया भी नहीं यदि जाता भी तो क्या स्त्रियों में पहुँचता ? हाँ, मैंने मृत्यु के समय उन्हें कुहराम मचाते देखा है, अपने ही घर में।

मालूम पड़ता है मुझे अभागा ख्याल करके बिट्टो के हृदय में मेरे लिए ममता का अंकुर उग आया। उसने यत्नपूर्वक सीखी हुई नृत्यकला का प्रदर्शन कर दिखाने में कोई कसर न रक्खी। जब मेरे मुँह से 'वाह-वाह' की ध्वनि अनायास फूट पड़ी तो वह एक बार फिर लजा गई। नाचने के परिश्रम से आरक्त उसके गुलाबी गालों पर एक हल्का मीठा तमाचा जड़ते हुए मैंने कहा—बिट्टो, तुझे इतना सुन्दर नाचना आता है।

उसने भोले भाव से उत्तर दिया—तुम्हीं ने तो नचाया है।

उसके उत्तर से पुलकित होकर मैंने कहा—तू इसी तरह रहे तो क्या मैं सोहनपुर छोड़कर कहीं जाऊँ।

वैसे तुम कहाँ जाओगे ?—उसने पूछा।

"जहाँ जी चाहेगा।"

"फिर कब लौट कर आओगे ?"

"कभी नहीं।"

"कभी लौटोगे ही नहीं ?"

"नहीं।"

"यह भी कहीं हो सकता है ?"

"क्यों ?"

"तुम जहाँ जी चाहेगा जाओगे, और कभी लौटोगे नहीं।—यह भी कहीं हो सकता है ?"

"हाँ, यही होगा। मैं जल्दी ही जाऊँगा यहाँ से।"

मेरी बात से बिट्टो सोच में डूब गई। बड़ी देर तक उदास रहकर बोली—मैं तुम्हें बुलाऊँ तब भी नहीं आओगे?

"तुम्हें मेरा पता कैसे लगेगा?"

"पता मैं लगा लूँगी।"

"मैं ऐसी जगह जाऊँगा जिसका पता मुझे भी नहीं है। परन्तु यदि तुम्हें वहाँ का पता चल जाय और तुम बुलाओ तो मुझे आना ही पड़ेगा।"

मेरे उत्तर की अंतिम बात से उसे कुछ परितोष हुआ।

मैंने जो यह इतनी बात बिट्टो से की वह यों ही नहीं थी। बुआ के साथ बेबसी में सोहनपुर आकर भी मेरा जी यहाँ नहीं लग रहा था। हृदय में यही हो रहा था कि कब कहाँ के लिए चल दूँ। आगे पढ़ने की अब कोई व्यवस्था हो सकेगी इस ओर अब मैं विचार भी नहीं करता था। पिता जी रहते तो निश्चय ही मैं और कुछ बात नहीं सोचता। जाकर चुपचाप हाई स्कूल में भरती हो जाता। वह मार्ग तो एक तरह से बन्द ही हो गया था।

पिता जी की संपत्ति के बँटवारे के बाद भैया के ऊपर मेरा भार नैतिक दृष्टि से विशेष नहीं रह गया था। उन्हें मेरी चिन्ता न करनी चाहिए थी। लेकिन किस अनुरोध से वे इसे अपना कर्तव्य समझने लगे कि मुझे आगे पढ़ायें, मेरे जीवन के निर्माण मे यत्नशील हों? उनका एक पत्र बुआ के नाम आया। उसमें उन्होंने लिखा।—बुआजी, पिताजी की यह बड़ी इच्छा थी कि रमेश को वे किसी काबिल बना जाँय। उनकी वह चिन्ता पूरी न हो सकी। अब जब वे नहीं हैं तब हमारा और आपका यह काम है कि उनकी वह इच्छा पूरी करने का यत्न करें। आप कह रही थीं कि रमेश की इच्छा है कि आगे पढ़े, लेकिन सोहनपुर मे रह कर यह सुविधा मिलनी कठिन है। इसलिए मैंने यही सोचा है कि उसे यहाँ स्कूल में भरती करा दूँ। रमेश की भाभी की भी यही इच्छा है। आप कहें तो किसी दिन उसे लेने आ जाऊँ?

बुआ ने पत्र पढ़ा और निश्चल हो गईं। मैंने देखा उनकी आँखों में

मुझे नया जीवन मिला। रुपये भेजे थे। उन्होंने बहुत काम किया।—रामरूप ने कहा।

मुझे बहुत देर में लिखा। पहले लिख देते तो मैं कभी का आजाता।—किशनसरूप ने दुखी होकर कहा।

रामरूप—लिखना चाहा था मैंने, लेकिन—लेकिन—

"आपने समझा शायद—"

"हाँ, मैंने समझा—"

किशनसरूप की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। रामरूप ने उसे खींच कर छाती से लगा लिया। रुन्द्धकंठ से बोला—मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया था भाई। ओह, वह बात मुझे भूलती नहीं।—बहू को अकेली छोड़ आये? साथ ले आना था।

"हाँ ले आता, लेकिन—"

"उस बेचारी को भी मेरे से अन्याय ही मिला। कैसे आती फिर वह?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं थी इतनी जल्दी में चला हूँ कि नहीं ला सका उसे।"

"जल्दी ही लौट जाओगे?"

"पाँच छ दिन के भीतर।"

"हाँ-हाँ, मैं तो अब ठीक ही हूँ। तुम जल्दी ही लौट जाओ भाई। बहू वहाँ अकेली है।"

"मैं उसका प्रबंध कर आया हूँ। मेरे नीचे जो मुनीम काम करते हैं। उनकी स्त्री उसके साथ रह जायगी। मकान बहुत सुरक्षित है। किसी तरह का डर नहीं है। बिल्कुल सदर मे स्थान है।"

"तो भी भैया परदेश है।—फिर यहाँ काम भी तो कुछ नहीं है।"

"हाँ मैं तो वैसे ही जल्दी जाऊँगा।"

इस सारे वार्तालाप को चुपचाप खड़े खड़े सुन कर और दोनों भाइयों की मुद्रा का निरीक्षण कर के मुझे तो किशनसरूप में महान परिवर्तन दिखाई दिया। इतनी जल्दी उसमें इतना परिवर्तन हो गया। उसे देख

कर, उसकी बात-चीत सुनकर कौन कह सकता है कि यह वही किशनसरूप है ? अभी उस दिन की घटना है यही किशनसरूप अपनी स्त्री को लेकर चला गया था। बैलगाड़ी में बैठे बैठे उसने सबसे नमस्कार किया था तब उसकी आँखों में हलका जल झलमला रहा था। शून्य उदास मुख मुरझाया सा दिखता था। बेबसी में ही वह पत्नी को लिए जा रहा था। अब बात ही और है। पत्नी के साथ अकेले साधिकार जीवन बिताकर अब वह गृहस्थ बन गया है। उसकी बोली भी बदल गई है। सोहनपुर की घरेलू भाषा के स्थान पर वह खड़ीबोली बड़े लहजे से बोलने लगा है। जैसे परदेश के बाहर और भीतर दोनों को उसने चारों ओर लपेट लिया हो। गाँव की कोई चीज अपने साथ रक्खी है तो वह है अपनी मुखाकृति जिसे वह चाहने पर भी बदल नहीं सकता।

इसके बाद किशनसरूप का ध्यान मेरे पर गया। अपने बड़े भैया से पूछा—यह कौन है ? मैं पहचान नहीं पाया हूँ भैया।

रामरूप ने उत्तर दिया—अरे सच। तू इतनी जल्दी गाँव के लड़कों को भूल गया ?

किशनसरूप—देखा तो जरूर है पर याद नहीं पड़ता।

इस पर मुझे हँसी आ गई। वह मुझे हँसता देखकर अप्रतिभ हो गया, फिर फूफा जी का नाम लेकर पूछा—उनकी स्त्री का भतीजा है न ? नाम तो मुझे किसी तरह याद नहीं आ रहा है।

रामरूप और मैंने सम्मिलित स्वीकृति प्रदर्शित कर आगे के संकट से उसे उबार लिया।

अपने बड़प्पन को सहज भाव से दर्शाते हुए किशनसरूप ने मुझसे कहा—भाई, जरा यह बिस्तर भीतर रख आओगे ?

मेरे कुछ उत्तर देने से पूर्व ही रामरूप ने बाधा देकर कहा—यहीं रहने दो न अभी। पीछे पहुँच जायगा।

रामरूप की सहज कृतज्ञता और श्रद्धा की भावना जो मेरे प्रति होगई थी, इससे उसने इस बात का विचार न करके कि मैं अवस्था में कितना छोटा

मैं काम करनेवाला हूं।"

"पर आप तो बड़ी उमर के हैं, सब कुछ देखा है। काम का ज्ञान रखते हैं।"

"ज्ञान तुम भी तो रखते हो भाई।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"मानो चाहे न मानो। मुझे तो लगता है कि तुम किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं हो।"

"यह मान भी लें तो भी मुझे कौन काम पर लगायेगा?"

"यह मेरे जिम्मे रही। मैं तुम्हें काम पर लगवा देता हूं।"

"घर से बाहर जाना पड़ेगा?"

"और नहीं तो क्या? तुम क्या मटके में ही गुड़ फोड़ना चाहते हो?" यही तो गांव के हर आदमी में ऐब होता है। गृह-प्रेम के रोग से वह कभी अपने को मुक्त नहीं कर पाता।"

"मुझे कहाँ जाना होगा?"

"जहाँ भी जाना हो। घर से बाहर पैर रखते ही फिर चाहे दिल्ली हो चाहे कलकत्ता, कोई इस पर विचार करने नहीं बैठता।"

"अच्छी बात है। कभी देखा जायगा।"

"हाँ जब तुम्हारा जी चाहे तब भटिंडा याद रखना। पंजाब में यह एक स्थान है। रेलों का बड़ा केन्द्र है। वहां पहुंच कर मेरा पता आसानी से लग सकेगा।"

"अगर घर से निकल पड़ा तो पता लगाना क्या बड़ी बात है?"

"हाँ, कुछ भी नहीं। बड़ी बात तो घर से चल पड़ना ही है।"

"आप यहाँ कितने दिन तक हैं?"

"दो तीन दिन से अधिक नहीं।"

इतनी बातें करके हम दोनों पृथक हुए। उस समय न तो मुझे ध्यान था कि एक दिन सचमुच ही मैं भटिंडा जा पहुँचूँगा और न किशनसरूप ने ही यह सोचा होगा। बहुत सी बातें जीवन में अचानक आ उपस्थित हो

जाती हैं और आदमी उनसे अपना बचाव नहीं कर सकता। मैं तो अभी एक बालक ही हूं। न दुनियाँ देख पाई है, न उसका कोई विशेष अनुभव ही है।

हाँ, तो चलती बात में अगर यह बता दें कि मेरा जाना भटिंडा कैसे हुआ तो कोई प्रसंगान्तर न होगा। इतना तो जरूर होगा जैसा और भी कई जगह हो चुका है कि बहुत बाद की बात मैं पहले कह डालूँगा। खैर, जीवन में प्रवेश करने के बाद भी मैं बहुत वर्षों तक स्थिर नहीं हो पाया था। उद्देश्यविहीन, बिना पतवार की नौका की तरह मैं घटना रूपी लहरों के थपेड़ों से इधर उधर भटक रहा था। तभी एक बार प्रयाग से एक पैसेंजर गाड़ी के तीसरे दर्जे के डब्बे में बिना टिकट सवार हो लिया था। उस गाड़ी को दिल्ली जाना था, और मुझे कहाँ जाना था सो मुझे पता नहीं था। पता तब लगा जब टिकट चेकर ने आकर मेरा टिकट तलब किया। मैं भला उसे क्या उत्तर देता। उसके मुँह और अपने शरीर की ओर देखकर मैं चुप हो रहा लेकिन इस तरह तो छुटकारा संभव नहीं था। न मालूम परिणाम क्या होता यदि एक प्रौढ़ सज्जन यह न कहते—यह लीजिए टिकट।

टिकट चेकर—अच्छा, आपके साथ हैं ?

"जी।"

टिकट चेकर टिकट देखकर उतर गया और मेरे लिए यह लाजिमी कर गया कि मैं उन प्रौढ सज्जन के व्यवहार के लिए अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करता। मैंने बडी विनय के साथ कहा—महाशय इसके लिए आपको धन्यवाद।

"अजी वाह ! मेरे पास एक फाल्तू टिकट था। मेरे मित्र मेरे साथ दिल्ली चल रहे थे। उन्हें अचानक कानपुर में उतरना पड़ गया। उनका टिकट मेरे पास रह गया।—यह भी अच्छा ही हुआ खैर। आप जायँगे कहाँ ?"

"सच पूछिये तो मैं कहां जाऊँगा, यह सोचकर मैं गाड़ी पर बैठता तो टिकट भी मेरे पास होता। लेकिन मैं यह सब सोचकर निकला ही

में काम करनेवाला हूं।"

"पर आप तो बड़ी उमर के हैं, सब कुछ देखा है। काम का ज्ञान रखते हैं।"

"ज्ञान तुम भी तो रखते हो भाई।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"मानों चाहे न मानो। मुझे तो लगता है कि तुम किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं हो।"

"यह मान भी लें तो भी मुझे कौन काम पर लगायेगा?"

"यह मेरे जिम्मे रही। मैं तुम्हें काम पर लगवा देता हू।"

"घर से बाहर जाना पड़ेगा?"

"और नहीं तो क्या? तुम क्या मटके में ही गुड़ फोड़ना चाहते हो?" यही तो गांव के हर आदमी में ऐब होता है। गृह-प्रेम के रोग से वह कभी अपने को मुक्त नहीं कर पाता।"

"मुझे कहाँ जाना होगा?"

"जहाँ भी जाना हो। घर से बाहर पैर रखते ही फिर चाहे दिल्ली हो चाहे कलकत्ता, कोई इस पर विचार करने नहीं बैठता।"

"अच्छी बात है। कभी देखा जायगा।"

"हाँ जब तुम्हारा जी चाहे तब भटिंडा याद रखना। पंजाब में यह एक स्थान है। रेलों का बड़ा केन्द्र है। वहा पहुंच कर मेरा पता आसानी से लग सकेगा।"

"अगर घर से निकल पड़ा तो पता लगाना क्या बड़ी बात है?"

"हाँ, कुछ भी नहीं। बड़ी बात तो घर से चल पड़ना ही है।"

"आप यहाँ कितने दिन तक हैं?"

"दो तीन दिन से अधिक नहीं।"

इतनी बातें करके हम दोनों पृथक हुए। उस समय न तो मुझे ध्यान था कि एक दिन सचमुच ही मैं भटिंडा जा पहुँचूँगा और न किशनसरूप ने ही यह सोचा होगा। बहुत सी बातें जीवन में अचानक आ उपस्थित हो

जाती हैं और आदमी उनसे अपना बचाव नहीं कर सकता। मैं तो अभी एक बालक ही हूँ। न दुनियाँ देख पाई है, न उसका कोई विशेष अनुभव ही है।

हाँ, तो चलती बात में अगर यह बता दूँ कि मेरा जाना भटिंडा कैसे हुआ तो कोई प्रसंगान्तर न होगा। इतना तो जरूर होगा जैसा और भी कई जगह हो चुका है कि बहुत बाद की बात मैं पहले कह डालूँगा। खैर, जीवन में प्रवेश करने के बाद भी मैं बहुत वर्षों तक स्थिर नहीं हो पाया था। उद्देश्यविहीन, बिना पतवार की नौका की तरह मैं घटना रूपी लहरों के थपेड़ों से इधर उधर भटक रहा था। तभी एक बार प्रयाग से एक पैसेंजर गाड़ी के तीसरे दर्जे के डब्बे में बिना टिकट सवार हो लिया था। उस गाड़ी को दिल्ली जाना था, और मुझे कहाँ जाना था सो मुझे पता नहीं था। पता तब लगा जब टिकट चेकर ने आकर मेरा टिकट तलब किया। मैं भला उसे क्या उत्तर देता। उसके मुँह और अपने शरीर की ओर देखकर मैं चुप हो रहा लेकिन इस तरह तो छुटकारा संभव नहीं था। न मालूम परिणाम क्या होता यदि एक प्रौढ़ सज्जन यह न कहते—यह लीजिए टिकट।

टिकट चेकर—अच्छा, आपके साथ है?

"जी।"

टिकट चेकर टिकट देखकर उतर गया और मेरे लिए यह लाजिमी कर गया कि मैं उन प्रौढ़ सज्जन के व्यवहार के लिए अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करता। मैंने बड़ी विनय के साथ कहा—महाशय इसके लिए आपको धन्यवाद।

"अजी वाह! मेरे पास एक फालतू टिकट था। मेरे मित्र मेरे साथ दिल्ली चल रहे थे। उन्हें अचानक कानपुर में उतरना पड़ गया। उनका टिकट मेरे पास रह गया।—यह भी अच्छा ही हुआ खैर। आप जायँगे कहाँ?"

"सच पूछिये तो मैं कहां जाऊँगा, यह सोचकर मैं गाड़ी पर बैठता तो टिकट भी मेरे पास होता। लेकिन मैं यह सब सोचकर निकला ही

कब था ?"

"तो आप दिल्ली चलिये ।"

"आप दिल्ली में रहते हैं ?"

"हाँ जी ।"

"किस जगह ?"

"जहाँ चलकर आपको ठहरना होगा ।"

"आप वहाँ क्या काम करते हैं ?"

"मैं तो वहाँ मौज करता हूँ, और आप शायद विद्यार्थी है ?"

"विद्यर्थी तो हूँ पर ऐसा ही जो बिना टिकट सफर कर लेता है और उद्देश्य रहित चल पड़ता है ।"

"नौजवानों में इतना हौसला तो कोई बुरी चीज नहीं ।—तो आप मेरे मेहमान होंगे ?"

"सहर्ष ।"

गाड़ी दिल्ली पहुची और एक नौजवान एक जिन्दादिल मसखरे वृद्ध का मेहमान बना । दीनानाथ महाशय रिटायर्ड अफसर हैं । जीवन आनंद में गुजारा था । बुढ़ापे में पेंशन लेकर घर बैठे हैं । एक लड़का है । इजीनियरिंग में पढ़ता है । दो लड़कियो के ब्याह हो गये हैं । दो अविवाहित हैं जिनमें एक बिल्कुल ब्याहयोग्य है । उसी के लिए घर की तलाश में कई शहरों की खाक छानकर लौटे हैं । मुझे अपने साथ लेजाकर वृद्ध दीनानाथ ने एक एक करके घर के हर एक सदस्य से मेरा परिचय करा दिया । उस घर के हर एक प्राणी ने मुझे इस प्रकार स्वीकार किया जैसे सभी बहुत पहले से मुझे जानते हों ।

जनकदुलारी और जनकनन्दिनी दोनों बहनें मेरा परिचय प्राप्त कर चली गईं । तब दोनानाथ ने मुझ से कहा—देखिये रमेशबाबू, ये मेरी दो कन्यायें मेरे सिर पर दो भारी बोझ हैं । इनके भार से जिस दिन मैं हल्का हो जाऊँगा उस दिन मैं अपने को निश्चिंत समझूँगा ।

तब न कोई बंधन रह जायगा न बाधा । हरिद्वार, मथुरा और काशी

जहाँ जी चाहेगा वहाँ जाकर भगवद् भजन कर सकूँगा।

मैंने कहा --यह तो आपका विचार ठीक है। जितनी जल्दी हो सके यह कार्य कर डालिये।

दीनानाथ—पर भाई, इतना सरल यह काम दिखता नहीं है। उपयुक्त पात्र की खोज करना और उसमें सफल हो जाना सहज नहीं है।

मैंने पूछा—अभी तक आपको सफलता नहीं मिली ?

वे—मिल जाती तो क्या मैं अब तक बैठा रहता।

इसके बाद श्रीमती दीनानाथ आ पहुँचीं और बोलीं—आप इन्हें नहाने-धोने भी देंगे या यों ही बातों में लगाये रहेंगे ?

दीनानाथ सिटपिटाये। सफाई देते हुए बोले—अभी भेजता हूँ। मैं रमेशबाबू से दो चार काम की बातें कर रहा था।

श्रीमती ने बात काटकर कहा—काम की बातो के लिए बाद में समय की कमी न होगी।

मैं गया। स्नान-भोजन किया। जनकदुलारी ने हारमोनियम पर एक मीठा गीत गाया। सुना और उसके लोचदार मँजे हुए कंठ की सराहना की तो उनकी अम्मा ने कहा—भैया, गला तो इसका और भी मीठा है। दो तीन दिन से बल्कि उसमें कुछ खराबी आगई है। पड़ोस के घर में ब्याह था। वहां रातभर जागने से आवाज में भारीपन आगया है।

इसके बाद उन्होंने जनकनन्दिनी की प्रशंसा की कहा—नन्दो की तारीफ गाने में नहीं नाचने में है। अभी उस दिन नृत्य-प्रतियोगिता में उसे नगर भर की लड़कियों में पहला इनाम मिला है।

मैंने सिर हिलाकर अपनी अभिमति प्रदर्शित की। लेकिन इससे उन्हें सन्तोष कब होता था। कहने लगीं—आप मेरी बात पर विश्वास न करेंगे। लो मैं वह अखबार ही लिए आती हूं।

इतना कहकर वे गईं और एक दैनिक पत्र की प्रति उठा लाईं। मुझे दिया और बोलीं—देखिये यह रही नन्दो। तीन चार सौ लड़कियों में सबसे ऊँचा नम्बर रहा है इसका।

मैंने कहा—हाँ, यही तो छपा है न।

वे—तो आपने पढ़ा है?

मैं—हाँ अभी अभी पढ़ रहा हूं।

इस पर वे प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—आज इस समय तो नहीं शाम को नदो से कहूँगी, वह आपको अपना नाच दिखायेगी।

मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति देदी।

उस संध्या को तो मुझे नींद आगई। हाँ, दूसरे दिन संध्या समय नन्दो की नृत्य-प्रवीणता देखकर मेरा हृदय गद्‌गद होगया। भक्ति विह्वला मीरां के भावों को नाचकर उसने इस खूबी से दर्शाया कि मैं वैष्णवों की मंडली में कुछ काल के लिए पहुच गया।

यह सब सहज भाव से हुआ। मैं उन्मुक्त मन से जनकदुलारी और जनकनंदिनी का प्रशसक बन गया। उनके घर का वातावरण ही ऐसा था कि मैं यदि अपने को अलग अलग करने की चेष्टा करता तो वहाँ बुद्धू समझा जाता। बातचीत में, व्यवहार बर्ताव में, मैं खूब आगे रहा और यह बात उन लोगों में पसन्द की गई। मैं जानता हू मैं विद्या में उस परिवार के समकक्ष नहीं था परन्तु अपने तौर-तरीके से मैंने उस कमी को छिपा दिया। यह नहीं था कि इसके लिए मुझे प्रयत्न न करना पड़ा हो। काफी प्रयत्न के उपरान्त मैं इसमें सफल हो सका। बहुत कुछ मेरी सफलता का श्रेय वृद्ध दीनानाथ महाशय की विनोदशीलता को था और कुछ कुछ उनकी श्रीमतीजी के निष्कपट खुले बर्ताव को। फल यह हुआ कि महाशय दीनानाथ जी तथा उनकी श्रीमती दोनों ने मुझे जनकदुलारी के लिए मनोनीत कर लिया। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने साथ रखकर मेरी शिक्षा की कमी की सहज ही पूर्ति करा लेंगे। यह बात मुझे तब मालूम पड़ी जब संध्या-भोजन के लिए हम सब के बैठने पर दीनानाथ महाशय ने मुझसे कहा—रमेशबाबू, मैंने निश्चय किया है कि जनकदुलारी के विवाह में आप मुझे मदद करेंगे।

मैंने उत्तर दिया—मैं जिस मदद के योग्य हू उसके लिए सदा तैयार हूं।

श्रीमती जी ने हँसकर योग देते हुए कहा—जनकदुलारी कितनी सुयोग्य

लड़की है यह मैं बता चुकी हूँ। परमात्मा ने तुम्हें इस घर में जो भेजा है भैया, वह इसी उद्देश्य से कि एक सत्पात्र के हाथ में वह उसे सौंपना चाहता है। नहीं तो कहाँ तुम्हारा घर और कहाँ दिल्ली।

इस प्रस्ताव को इस तरह अचानक पेश किये जाते देख मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। सामने बैठी हुई जनकदुलारी के लजाये चेहरे पर एक नजर डालकर मैंने क्षण भर चुप्पी साध ली। उसके बाद बोला—आपका प्रस्ताव मेरे लिए हर एक दृष्टि से सौभाग्य का संदेश है।

दीनानाथ महाशय अपने आवेश को न रोक सके, उच्च स्वर से बोले—निश्चय ही रमेशबाबू आप नन्दो की माँ की बात को पसन्द करते हैं? यही होना चाहिए।

मैंने उनकी आशाओं पर ठंडा पानी छोड़ते हुए अपना वक्तव्य जारी रक्खा। मैंने कहा—किन्तु मैं इस संबंध में कोई फैसला करने को स्वतन्त्र नहीं हूँ।

श्रीमती दीनानाथ बोलीं—यह मैं कब कहती हूँ? तुम्हारे भैया-भाभी अगर स्वीकार कर लें तब तुम्हें स्वीकार होगा, मैं सिर्फ इतनी-सी बात जानना चाहती हूं?

दीनानाथ इस पर बिगड़ उठे—यह भी कोई पूछने की बात है? यह बात तो वे अभी अभी बता चुके हैं।

न तो आगे श्रीमती जी ने जिज्ञासा की और मैंने ही आपत्ति उठाई। एक प्रकार से मौन स्वीकृति के मधुर वातावरण में इस बात को यहीं छोड़ कर सब लोग भोजन में दत्तचित्त हुए। बाद में जब मैं उठकर आया तो मेरा हृदय अननुभूत स्पंदन को अनुभव कर रहा था।

मेरे जीवन में विवाह का प्रस्ताव यह एकदम नया तो न था पर नवीन ढंग से उपस्थित किया गया था अतः इसकी प्रतिक्रिया भी नवीन ढंग की ही हुई। प्रलोभनों का जाल बिछा था। धन-विद्या, शिक्षा और संस्कृति, उच्च वर्ग में प्रवेश सब अनायास ही मिल रहे थे। साथ ही एक सुसंस्कृत शिक्षिता पत्नी भी। किसी प्रकार के व्यवधान की आशंका न थी। कन्या के माता-

पिता दोनो के सम्मिलित प्रस्ताव बल्कि आवेदन ने बाधाओं की समस्त सभावनाओं को तिरोहित कर दिया था। मैं भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं में खोगया। मुझे अपनी विशेषताओं का आभास मिलने लगा और अपनी ओर आत्मविश्वास बढ़ चला।

जनकदुलारी के साथ जब उस दिन भी शतरज की बाजी बिछाने के लिए जनकनंदिनी मेरे सिर होगई तो मैंने कुछ सकुचित होते हुए कहा—आज नहीं।

"क्यों आज क्या हुआ ?"

"इच्छा नहीं है।"

"घर की याद आ रही है ?"

"हाँ।"

"किसे याद कर रहे हैं ?"

"भाभी को। मैं उनसे बिना कहे ही चल पड़ा था। बड़ी फिक्र कर रही होंगी।"

"—और रास्ते में मिल गये पिता जी। वे आपको यहाँ खींच लाये। इसका आपको बड़ा दुख होगा।"

"मुझे क्यों दुख होने लगा ?"

"तो आप यहाँ आने में प्रसन्न हैं ?"

"निश्चय।"

"मैं नहीं मान सकती।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यहाँ आपका जी नहीं लगता। घर की याद आती रहती है। भाभी फिक्र कर रही होंगी, यही सोच कर रहे हैं ?"

"यह सोचते हुए भी तो यहाँ जी लग सकता है।"

"यदि लग सकता होता तो अकारण शतरज जैसे खेल से आप यों विरक्त किस तरह होते ?"

"सदा के लिए तो विरक्ति की बात मैंने नहीं कही। मैं तो तुम्हारा कृतज्ञ

हूं, नन्दो, जो तुमने मुझ जैसे अरसिक को एक शौक लगा दिया।"

"मैंने तो नहीं आपसे सीखने को कहा था। जीजी के कहने से ही तो आप आकर शामिल हुए थे।"

"इसके लिए मैं तुम्हारे ऊपर कोई दोषारोपण नहीं कर रहा। उल्टे मैं तो कृतज्ञ हूँ, तुम दोनो बहिनो का जिनके सत्संग से मुझे एक ऐसा लाभ हुआ जिससे छुट्टी और बेकारी का थोडा सा समय मनोरंजन के साथ कट सकेगा। यह इतना लंबा और नीरस जीवन विस्तृत मरु-भूमि की तरह साँय साँय करने न पावे इसका एक अच्छा साधन हाथ आगया।"

"तो चलो बाजी बिछाओ। मैं जीजी को बुलाये लाती हूं।"

मेरी मौन स्वीकृति पाकर वह चली गई।

इसके बाद हम लोगो की बाजी बिछी—अंतिम बाजी। क्योंकि उसके बाद ही मैं घर के लिए चल पड़ा। फिर कभी लाला दीनानाथ और उनकी दोनों कन्याओ से मेरा साक्षात्कार न हुआ, न होने की आशा ही है। इतने पर भी उस दिन की शतरंज का खेल हृदय के कोने में एक मधुर कोमल स्मृति छोड़ गया है। अब भी कभी पुरवाई हवा के साथ साथ उसकी टीस होने लगती है और तब कुछ क्षणों के लिए मैं आत्मविभोर हो उठता हूं।

बाजी चल रही थी। हम दोनों, मैं और जनकदुलारी, यंत्रचालित की भाँति बिना समझे बूझे मोहरे चले जा रहे थे। कौन किससे पिटा जा रहा है, इसका विचार न था। बीच बीच से नन्दो कभी इधर से और कभी उधर से बोल उठती थी और हम दोनो की अदूरदर्शिता पर तरस खाती थी।

हम दोनों स्वप्नों में बह रहे थे! मेरे लिए तो यह बचाव का साधन था कि मैं नौसिखिया था पर जनकदुलारी के लिए यह भी नहीं था। वह क्या सफाई पेश करती? वह शतरंज के खेल में अपने पिता की बराबरी करती थी।

आखिर मैंने बाजी बीच ही में छोड़ कर कहा—नन्दो मैं तुम्हारे हस्तक्षेप से लाभ उठाना नहीं चाहता, जब कि तुम दोनों ओर एक सी सहानुभूति रख रही हो।

नन्दो—आप लोग आज खेल नहीं रहे हैं। मुझे चिढ़ा रहे हैं। मैं जानती हू। इसलिए मैं फिजूल यहाँ रहकर अपना सिर खपाना नहीं चाहती।

वह एक किताब उठाकर दूसरे कमरे में चली गई। अब रह गये हम दो—मैं और जनकदुलारी। मैंने बिना किसी को लक्ष्य किये कहा—सच मुच ही आज की बाजी व्यर्थ रही।

आप जानते हैं क्यों?—जनकदुलारी ने सहज भाव से कहा। परन्तु सिर उठाकर मेरी ओर ताका नहीं।

मैंने सिर हिलाकर जताया—नहीं।

"मुझे तो लग रहा है कि दोनों ओर कोई चोर है। अपना मैं निकाल कर फेंक देना चाहती हू रमेशबाबू।"

मैं स्तब्ध और चुप।

वह कहती गई—अम्मा ने जो बात कही है वह ठीक नहीं है। आप उसे कभी न मानेंगे यह मुझे लग रहा है, और मानना बेकार भी है। मेरा हृदय और शरीर दोनों किसी दूसरे के हो चुके हैं।

तुम्हारे पिता जी को पता है?—मैंने पूछा।

जनकदुलारी – नहीं। वे इस विषय में निर्दोष हैं। वे तो अम्मा की हाँ में हाँ भरना जानते हैं।

"अम्मा यह सब जानकर भी ऐसी बात क्यों करती हैं?"

"पिताजी मेरे चुनाव को न मानेंगे, यही आशंका इसका कारण हो सकती है।"

"पर यदि वे धैर्य के साथ उन्हें समझाएँ तब भी न मानेंगे?"

"धैर्य का समय नहीं है। शीघ्र ही सब कुछ प्रगट हो जाने का भय उपस्थित हो गया है इसीसे।"

मैं चुप निश्चल बैठा रह गया!

"बस मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया। आपको धोखे मे रखना मैं नहीं चाहती। अच्छा जी नमस्ते।" दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा

कर नमस्ते करके वह वहाँ से भाग गई। उसके जाते जाते मैंने भी प्रत्युत्तर में कहा—नमस्ते जी, सदा के लिए मैं भी आज जा रहा हूँ।

मालूम पड़ता है मेरी बात अनसुनी करके वह नहीं गई। क्योंकि थोड़ी ही देर में नौकर एक ताँगा ले आया और मुझसे कहा—बाबूजी, ताँगा आगया है।

उस समय घर में महाशय दीनानाथ और नन्दो दोनो ही नहीं थे। अम्माजी से मैंने हाथ जोड़कर विदा मांगी तो उन्होंने रुआसी होकर कहा—बेटा, भगवान् सब अच्छा करेंगे।—तुमने तार पढ़ तो लिया है अच्छी तरह ? पहुँचते ही लिखना। भाई के ठीक होते ही हम लोग आ पहुँचेंगे। अगले महीने तक सब काम निबटा लेना है।

मैं किङ्कर्तव्य विमूढ़ सा उनके चेहरे को देखता रहा, पर जब कमरे के भीतर निगाह गई तो सब कुछ समझ गया। यह सब जनकदुलारी का काम था। किस तरकीब से उसने मुझे इतने सहज में छुटकारा दिलवा दिया था।

हर एक बात में स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर और हाथ जोड़कर मैं ताँगे में जा बैठा। रास्ते भर मैं नाना प्रकार की चिन्ताधारा में डूबता उतराता रहा। मैंने अपने हृदय को जनकदुलारी के प्रभाव से अलग करके टटोला तो उसकी कुछ देर पहले कही हुई बात में सत्यांश का आभास पाया कि दोनों ही ओर कोई चोर है।

स्टेशन पहुँचकर ताँगा छोड़ देने के बाद मेरे सामने प्रश्न उठा कि कहाँ चलना होगा ?

इस बात का शीघ्र ही निर्णय भी होगया। एक दूसरे महाशय जो साथ ही ताँगे से उतरे थे और कुली से मजदूरी तय कर रहे थे, उनसे शीघ्र ही परिचय होगया। वे भटिंडा जा रहे थे। मैंने सोचा मैं भी क्यों न एक बार भटिंडा की सैर कर आऊँ। किशनस्वरूप और रम्मो तो भटिंडा में ही हैं। इतने दिन बाद भी क्या वे वहाँ हो सकते हैं, इस संभावना की चिन्ता में मैंने सिर दुखाना ठीक न समझा, चल पड़ा। दिन भर की लंबी यात्रा

रम्मो बीच में ही पूँछ उठी—कब से सोहनपुर नहीं गये ? बिट्टो की याद मुझे बराबर आया करती है। खास कर उस दिन की जब वह मुझे एकाएक अपने साथ खेलने न देना चाहती थी और तुम्हारे साथ भी झगड़ पड़ी थी। उस दिन के बाद फिर तो ऐसी मिली कि फिर साथ लिए बिना कहीं न जाती। अम्मा तो उनकी मेरे लिए जान देती थीं। मुझे जहाँ पाजातीं वहीं मेरी चोटी गूँथ देतीं, कपड़ा ठीक कर देतीं, हाथ मुँह धो देतीं। कितनी ममता थी उनमें !

भटिंडा में बैठे बैठे मुझे उसकी बातों ने क्षण भर को सोहनपुर की दुनियाँ में पहुँचा दिया। मुझे लगा कि जनकदुलारी ने दो तीन दिन पहले जिस चोर की मेरे भीतर कल्पना की थी वह सचमुच मिथ्या नहीं है, यहीं कहीं उसका निभृत निवास है।

किशनसरूप किसी काम से भीतर आये और नीचे से ही आवाज दी—दो मिनट के लिए इधर आ सकोगी ?

कुछ लजाई सी रम्मो ने कहा—क्या कहते हो ? और इसके बाद उठ कर चली गई।

मैं अकेला कल्याणी के पास बैठा रह गया। मेरे संकोच को कम करने की इच्छा से वह बोली—तुम्हें यहाँ कैसा लग रहा है ?

मैंने उत्तर दिया—अभी कुछ दिन पहले कुछ इसी तरह का प्रश्न जनकदुलारी ने किया था। क्या आप सब के पास पूछने को इसके सिवा कुछ नहीं होता ?

"यदि यही पूछें तो हर्ज क्या है ?"

"मैं हर्ज की बात नहीं करता। मैं आप सब के मर्ज की चर्चा करता हूँ।"

"यही सही। लेकिन मेरी बात का जवाब तो देना ही होगा।"

"तैयार हूँ।"

"तो बताओ। यहाँ जी तो लगता है ?"

"जी लगने का सामान जहाँ होगा वहाँ न लगने की सभावना ही कैसी ?"

नवस्थापित रिश्ते की याद करके मेरी बात पर कल्याणी का आनन दीप्त होकर खिल उठा। मैंने देखी उस श्यामा युवती की लावण्य-छटा। अपूर्व छवि का अनूठा वितान मेरी आँखों पर छा गया। भटिंडा-यात्रा का पूरा पुरस्कार प्राप्त हो चुकने में कुछ शेष न रहा।

"तो अब तुम्हें यहीं रहना होगा।"

"मैं जाता कहाँ हूँ?"

"जाने कौन देगा तुम्हें?"

"इसमें तो मेरा ही लाभ है।"

"और किसी का बिल्कुल नहीं?"

"यह मैं कैसे कहूँ?"

"अटकल लगाइये।" कह कर कल्याणी जोर से हँस रही थी कि एकाएक घूँघट खींचकर चुप हो रही। मैंने घूम कर देखा। एक अधेड़ आदमी मेरे पीछे खड़ा था और कुछ कुछ विस्मय से मेरी जानकारी हासिल कर रहा था। कल्याणी चुपचाप उसके आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। क्षण भर उसी तरह खड़े रहकर उसने कल्याणी से जानना चाहा—भोजन में आज इतने विलंब का कारण क्या हो सकता है?

कारण क्या हो सकता है, इसका उत्तर जब मैं मूर्तिमान मौजूद था और मुझे वह देख रहा था तो ऐसा प्रश्न करना कुछ ठीक नहीं था, यह बात उसे समझा देने के लिए वह उठ खड़ी हुई और इशारे से अपने आशय को व्यक्त कर देना चाहा।

पुरुष को नारी पर जो एकाधिकार प्राप्त है उससे वह कभी वंचित नहीं होना चाहता। अपने उस अधिकार की रक्षा के लिए उसने पुनः आग्रह किया; किन शब्दों में किया यह तो मुझे सुन नहीं पड़ा परन्तु कल्याणी के विकृत चेहरे से, जिसे उसने शीघ्र ही छिपा लिया, मुझे यह समझते देर न लगी कि अवश्य कुछ दाल में काला है और मेरी उपस्थिति कुछ विशेष वांछनीय नहीं है। अतः मैं बिना कुछ कहे सुने या किसी प्रकार की आहट किये उठकर चला आया। इसके बाद जो भयानक

कांड हुआ उसकी कल्पना भी तब मुझे नहीं थी।

संध्या समय रम्मो ने मुझे बताया कि कल्याणी का पति सुन्दरलाल कितना शकाशील आदमी है। कुछ बड़ी उम्र का होने से उसका विचार है कि उसकी नवोढ़ा पत्नी उसके प्रति स्त्री के कर्तव्य को पूरी तरह नहीं निभाती। वह यह सहन नहीं कर सकता कि उसकी स्त्री किसी युवक के साथ किसी प्रकार के वार्तालाप में रस ले।

मैंने इस पर कहा—तब उसे ऐसा न करना चाहिए। क्यों उसके संशय को बढ़ने का अवसर देती है?

तुम भी कहते हो ऐसा न करना चाहिए?—रम्मो ने पूछा।

"क्यों मैं और क्या कहूं? जिस बात से शक बढ़े वैसा करके घर में लड़ाई झगड़ा क्यों बुलाया जाय? इसे क्या तुम अच्छा समझती हो?"

"एक अधेड़ उम्र के आदमी को नवयुवती से व्याह करके क्या इतना उदार नहीं होना चाहिए कि वह पत्नी की भावना की कद्र कर सके? मेरी इनकी उम्र में भी तो कम अन्तर नहीं है, परन्तु इनका स्वभाव ऐसा है अविश्वास और सदेह जानते ही नहीं। कितनी बार मैं अकेली, पराये लोगों के बीच, रह जाती हूँ। मैं जो चाहूं करूँ, पर इससे क्या मैं बिगड़ गई? मैं कहती हूँ इस आदमी का उत्पीड़न कल्याणी को खो देगा। ऐसी गृहलक्मी इस राक्षस को फिर न मिलेगी।"

"यह सब अच्छी बातें हैं परन्तु एकतर्फा हैं। अब जरा उस अभागे की ओर से भी सोचो। वह कल्याणी के प्रति कितनी अनन्य भावना रखता है। जीवन के निर्जन में नारी-रत्न को उसने अनमोल वस्तु समझकर पाया है। उसे समग्र हृदय से घेर कर वह बैठ जाना चाहता है। जरा सा भी द्वार जहाँ से कोई प्रवेश कर सके वह रहने देना नहीं चाहता। तिस पर भी अवांछित और अयाचित लोग पहुँच जाँय तो उसके हृदय में कितना मनस्ताप होगा?"

यह सब कोरी हिमायत है तुम्हारी—रम्मो ने कहा, तभी उधर से कल्याणी ने घर में प्रवेश किया।

इस बार उसका चेहरा मलिन और उदास था। भीतर से कुछ भरी
[र]री सी वह आकर खड़ी होगई और बोली—जीजी, दो आने की एक
[पु]ड़िया मेरे लिए नहीं मँगा दे सकतीं ?

रम्मो—तू पगली हुई है कल्याणी। यह जीवन क्या इतनी सस्ती
[च]ीज़ है जो दो आने की पुडिया खाकर दे दिया जाय ?

इसके बाद रम्मो मेरी ओर मुड़कर कहने लगी—अब तुम ख्याल कर सकते
[ह]ो इस अभागिनी की पीड़ा को। दो आने की अफीम खाकर यह अपनी नई
[ज]वानी के आनन्दमय जीवन को समाप्त कर देने में प्रसन्न हो रही है।

"तुम लोगों को प्राणों से विराग कोई नई बात नहीं है। बात बात में
[ज]ीवन को तुच्छ तृण की तरह समझने में तुम लोग बड़ी बहादुर होती
[ह]ो।"—यह कहते कहते मुझे सोहनपुर की बात याद आगई जब स्वयं रम्मो
तलैया में जा कूदी थी। मालूम पड़ा कि रम्मो के मस्तिष्क में भी वही बात
घूम गई थी।

उसने अपने को सभालकर कहा—बस बस रहने दो। तुम तनिक देखो
तो सही।

इतना कहते कहते उसने कल्याणी की कलाई पकड़कर उसे अपने
पास खींच लिया और उसकी पीठ की साड़ी ऊँची कर दी। मैंने देखा
उसकी पीठ बेंतों की मार से लाल पड़ गई थी और जगह जगह खाल
उपट गई थी व खून जम कर स्याह पड़ गया था।

इसके बाद दिखाये जाँघों पर के दो लंबे फफोले जो तपाई हुई लोहे
की छड़ के लगा देने से पड़ गये थे।

मेरे मुँह से अनायास निकल पड़ा—राम राम, छिः छिः।

रम्मो और कल्याणी दोनों की आँखों से छल छल करके अश्रुधारा गिरने
लगी। नीचे बैठा मैं भीग भीग कर पवित्र होने लगा।

दूसरे दिन किशनसरूप के पास एक तार आया। रामरूप ने मेरी बुआ
की तरफ से तार देकर मुझे तुरन्त बुलाया था। अगले दिन प्रातःकाल की
गाड़ी से मैंने चलने की ठहराई। गाड़ी सबेरे पाँच बजे रवाना होती थी।

कुली से रात को ही कह दिया था। वह चार बजे ही मेरा सामान ले गया। करीब साढ़े चार बजे रम्मो और किशनसरूप से विदा होकर मैं चला। मालूम पड़ता है कल्याणी पहले से ही द्वार पर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। दरवाजे पर पहुँचते ही उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली—मुझे अपने साथ नहीं ले चलोगे?

मैंने हँसने का बहाना करके कहा – फिर कभी आऊँ तो चलना।

"तब तक मैं यहाँ थोड़े ही रहूँगी। मैं हँसी नहीं करती। मैं इस नर्क से जल्दी ही अपने को मुक्त कर लूँगी। तुम जाओ। जीजी की चिट्ठी से जल्दी ही सुन लोगे।"

उसने मेरा हाथ छोड़ दिया। मैंने रुँधे गले से यह कहते कहते उसे अभिवादन किया—ऐसा पागलपन मत करना, भाभी। ये सब दो दिन की बातें हैं। घर से निकली हिन्दू नारी के लिए कहीं जगह नहीं होती, यह तुम्हें बताने की धृष्टता मैं नहीं करना चाहता।

कल्याणी—अच्छी बात, जाओ।

इसके बाद मेरी जेब में एक रूमाल डाल दिया, कहा—अपनी भाभी की यह निशानी तो लेते जाओ।

मैंने कहा—धन्यवाद।—और मैं घर से बाहर हो गया।—पीछे देखा कल्याणी के नाम का प्रथमाक्षर अंकित वह रूमाल खाली नहीं है। उसमें मेरे लिए कुछ रुपये बँधे हैं। राह में वे रुपये कितने काम आये।

सोहनपुर पहुचा तो रोने धोने का शिष्टाचार करने के बाद, दो मास से एकाकी वैधव्य जीवन बिता रही बुआ ने, मुझसे पहला आग्रह यही किया—अब इस तरह सैलानी कब तक बने रहोगे बेटा?

मैंने पालतू जानवर की तरह समर्पण का भाव दिखाते हुए उन्हें सान्त्वना दी—जैसे कहोगी वैसे ही रहूँगा। मैं तो सैलानी जिन्दगी से बेजार आगया हूँ।

बुआ ने सन्तुष्ट हो आँखें पोंछ डालीं। इस तरह कई साल बाद मेरा ग्राम्यजीवन फिर आरंभ हुआ।

पन्द्रह

बीच के कई महत्वपूर्ण वर्ष मैंने कैसे बिताये थे यह बात यहाँ पर लिख देने से सुभीता होगा। फूफा की मंजूरी पाकर भैया आये और मुझे ले गये।

भाभी की मेरे ऊपर विशेष कृपा होने से मुझे यह परिवर्तन बुरा नहीं लगा। हाई स्कूल में नाम लिखाकर मैं निश्चिन्त होकर एक बार पढ़ाई में लग गया। यहाँ का वातावरण ही दूसरी तरह का था। मित्रमंडली की रचना थोड़े ही दिन में होगई, जिसमें सदस्यों की संख्या दस ग्यारह थी। सब अपने अपने ढंग के थे। दूर दूर से आये हुए। एक उद्देश्य से इकट्ठे हुए मेरे इन मित्रों में परस्पर जमीन आसमान का अन्तर था तो भी सबकी मित्रता चल रही थी। गाँव के बालमित्रों के साथ न इन मित्रों का कोई साम्य था, न यहाँ की परिस्थितियाँ वैसी थीं।

हमारी मित्र मंडली में सदस्यता की स्वीकृति थी सिगरेट में ऐसा कश कि कम से कम एक तिहाई सिगरेट फुँक जाय। मैं इस परीक्षा में पास होगया। परन्तु कश लगाते ही मुझे चक्कर आ गया और कई मिनट के लिए मैं अचेत हो गया। जब होश में आया तो सभापति, हामिद मियाँ, ने मेरी पीठ ठोंकी और फरमाया—दोस्त तुम पास हो गये, आओ हाथ मिलाओ।

मैंने उत्साह से हाथ मिलाया। इसके बाद मुझे बताया गया कि हामिद

मियाँ को सभापतित्व मिलने का कारण उनकी बेमिसाल सिगरेट फूंकने की विशेषता है। वे एक फूँक में दो तिहाई सिगरेट राखकर देते हैं।

दूसरे दिन कक्षा में पहुँचे तो मास्टर डेविड ने कहा—नयें भरती हुए लड़के खड़े हो जाँय।—मैं और दो अन्य लड़के खड़े हुए।

मास्टर डेविड—देखिये जनाब, आप लोग नये आदमी हैं। इसलिए यह बताना जरूरी है कि इस कक्षा में शैतान लड़कों का एक गिरोह है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि नये लड़के अपने साथी चुनने में ऐसे लड़कों से दूर रहेंगे।

इस प्रवचन के बाद उन्होंने हामिद मियाँ की ओर दृष्टिपात किया और फरमाया—अजी खाँ साहेब, जरा खड़े तो हो जाइये।

हामिद मियाँ भीगी बिल्ली की तरह, अपनी अचकन के छोर को दो उँगलियों के बीच लिए, खड़े होगये। मिस्टर डेविड ने कहा—देखिये इन नवाब साहेब को। ये तीन साल से इसी कक्षा में तशरीफ रख रहे हैं और टस से मस नहीं होते। अगले छ साल तक, अगर स्कूल के हेडमास्टर इन्हें रियायत देने को तैयार न होंगे, तो ये कहीं जाने का नाम न लेंगे। आप लोग यह जानना चाहते होंगे कि इनको इस दरजे से ऐसा कौनसा प्रेम है? बात यह है कि दूसरे दरजे में सिगरेट-क्लब की सहूलियत नहीं है, जिसका सभापतित्व करना ये किसी तरह छोड़ नहीं सकते।

हम लोगों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बैठे रहे। इससे मास्टर डेविड को शायद तसल्ली हो गई। उन्होंने सोचा शिक्षा सफल हुई परन्तु वे कितनी भूल में थे। हम लोग तो दल में पहले से ही दीक्षित हो चुके थे।

मास्टर डेविड का आवारा निरंकुश लडकों के लिए प्राय. प्रतिदिन प्रवचन हो जाने के बाद ही पढ़ाई आरभ हो पाती थी। यह नित्य नियम था और पढ़ाई के दौरान में यदि क्लब के किसी मेम्बर ने मास्टर साहिब को रुष्ट कर दिया, जो एक साधारण बात थी क्योंकि इस क्लब का कोई सदस्य पढ़ने लिखने से विशेष वास्ता रखता हो इस बात पर किसी को विश्वास

नहीं था, तो फिर वह दिन जेबों की तलाशी, हथेलियों के सूँघने व अन्य परीक्षाओं में व्यतीत हो जाता था। कभी सिगरेट का कोई टुकड़ा उनके हाथ लग गया था। तभी से उन्होंने लड़कों की इस बुरी आदत की छानबीन शुरू कर दी थी और क्लब की बहुत सी बुराइयों का पता लगा लिया था। परन्तु यह लड़कों की होशियारी थी कि कक्षा के भीतर कभी भी तलाशी में उनके हाथ कोई ऐसी चीज़ नहीं पड़ी जिसे वे बतौर सबूत के पेश कर सकते। हाँ कुछ लड़कों की हथेलियों में तंबाकू की गंध का होना वे बड़े विश्वास के साथ बताते थे पर शायद उनके बराबर अस्वीकार करने पर अपनी नाक पर भी मन ही मन अविश्वास करने लगे थे। खैर, दो तीन साल मैं मास्टर डेविड के संपर्क में रहा परन्तु न जाने क्यों उन्होंने कभी मेरी हथेलियों को नहीं सूँघा और न कभी किसी तरह का संदेह प्रकट किया।

हमारे सिगरेट-क्लब की दूसरी विशेषता थी चायपान। मेरे देखते देखते यह चायपान इतना बढ़ गया कि अवश्य ही लिपटन कम्पनी के मैनेजर का ध्यान इस ओर गया होगा। कोई गिनती नहीं रह गई थी, दिन में कितने प्याले हम मे से हर एक पी लेता था। छात्रावास के समीपस्थ होटल में प्रातःकाल से लेकर रात्रि के नौ दस बजे तक किसी भी समय उबलती हुई चाय का मौजूद रहना इस बात का प्रमाण था कि यह रोग कितना व्यापक होगया था। उस समय तो शौक था चाय पीने का और हम लोग अपने पुरखों की कमाई के साथ अपने स्वास्थ्य को भी बेपरवाही से गँवाये दे रहे थे। बाद में प्रौढ़ जीवन के समय, जब मैंने अपने को इस का पूरी तरह अभ्यस्त पाया तब आजीविका के मार्ग में यह एक भयंकर व्यय का कीटाणु प्रतीत हुआ। परन्तु अब क्या हो सकता था। मेरी ही तरह मेरे अन्य साथियों को भी इसका भान अवश्य हुआ होगा।

यह चायपान का हम लोगों का अनुष्ठान धूम्रपान की तरह चोरी-छुपे नहीं चलता था। इसके बीच में मास्टर डेविड की फटकारें और लांछनाएँ नहीं थीं। कारण यह था कि मास्टर साहेब भी चायपान का शौक रखते थे और उनमें यह विशेषता थी कि ऐसी बात के लिए वे छात्रों

को रोकते नहीं थे जो स्वय करते हों। यद्यपि चाय के अवगुणों से वे पूरी तरह परिचित थे। अपनी इस कमजोरी को वे छात्रो के सामने खुले रूप में स्वीकार करते थे।

मुझे पता नहीं दौलतपुर की ग्राम्यशाला से मैं क्या क्या गुण-दोष लेकर आया। शायद तब अवस्था थोड़ी थी और इतना विवेक नहीं था कि मैं इन बातों की मीमासा कर पाता। परन्तु इस हाई स्कूल से सिगरेट और चाय के दो वरदान मुझे ऐसे प्राप्त हुए जो मेरे आजीवन सगी रहे। इनके कारण मेरा जीवन आनद से चाहे जितना वचित रहा हो पर कभी मैंने अपने आपको अकेला असहाय अनुभव नहीं किया और यदि मेरी प्रस्तुत जीवन गाथा में, धरती की छाया पाठकों को मिल रही है, तो उसके निर्माण मे इन दोनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

एक दिन नैनाबाबू की तरफ से चायपान का अनुष्ठान था। काफी विचार-विमर्श के बाद नवाब साहब की गढ़ी वाले बाग में पार्टी का होना तय पाया। इस स्थान का यह पुराना नाम अभी तक चला जाता है वैसे न अब वहाँ नवाब साहब की गढ़ी है न कोई बगीचा। गढ़ी की जगह कुछ सरकारी इमारतें बन गई हैं, और बाग की जगह वीरान मैदान। बहुत दूर एक कोने में पीपल बरगद, अन्जीर और शहतूत के कितने ही पेड़ों से घिरे दो तीन पुराने मकान खड़े हैं। समय की सलवटों से दूर से ही मालूम होजाता है कि वे अपनी जिन्दगी जी चुके हैं और अब क्यामत के दिन की प्रतीक्षा में हैं। इतने पर भी यह अप्रकट नहीं रहता कि वे किसी विध्वस्त वैभव के अवशेष हैं और उनके भीतर रंगीन स्वप्नों की स्मृतियाँ सिसक और कराह रही होंगी। चायपान के समारोह में भाग लेकर सब दोस्त इधर उधर टोलियों में बँट गये और जहाँ तहाँ गपशप करने लगे। मैं और हामिद मियाँ देर तक घास पर लेटे चाय और सिगरेट की प्रशसा करते रहे। बातें चुक जाने पर वे बोले—आओ यारो, थोड़ी ज़ियारत भी कर आयें।

और इसी ज़ियारत के लिए हम दोनों ऊपर बताये जीर्ण शीर्ण मकानों

की ओर चल पड़े। मैं आश्चर्य कर रहा था, सिगरेट के शौकीन हामिद मियाँ ज़ियारत के भी शौकीन हैं!

हम शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये।

तुम जरा यहाँ ठहर कर तब तक दो एक अंजीर खाओ। मैं भीतर हो आऊँ, फिर तुम्हें ले चलूँगा।—कहकर हामिद मियाँ उन खँडहरों में गायब होगये। मुझे यों तो अंजीरो से कोई प्रेम नहीं परन्तु हामिद मियाँ का आग्रह था इसलिए दो एक अंजीर तोड कर चखने लगा।

वायदे के अनुसार वे शीघ्र ही वापस आकर बोले—अभी दो मिनट ठहरना होगा।

मैंने पूछा—किसी की दरगाह है?

हामिद मियाँ—अभी चलते जो हैं।

थोड़ी देर में हम खँडहर में दाखिल हुए। हामिद ने कहा—तुम इधर आकर दीवाने खास में बैठो। मैं भीतर खबर करता हूं।

मुझे लेजाकर उन्होंने एक टूटे फूटे दालान के कोने में बिठा दिया। आप फिर गायब होगये। मैंने आँखें उठाकर अँधेरे दालान की छत और दीवारों की ओर देखा। मालूम हुआ किसी समय का पच्चीकारी का किया हुआ काम धूम्लि होकर मिट गया है। मकान की दीवारों की जड़ो को सीलन के कारण नोनी खा गई है तो भी छतों पर जगह जगह कारीगरी की छाप स्पष्ट दिखती है। दालान के दूसरी ओर घना अँधेरा था। थोड़ी देर में आँखें उस अँधेरे से परिचित हो जाने पर मैंने देखा एक संगमरमर की लंबी शिला इस प्रकार दीवार से सटाई हुई है कि एक लम्बे सोफे का काम दे देती है। पास ही एक बिना किवाड़ो का दरवाजा है। जिसके भीतर अंधेरा घुप है।

मैं अभी पूरी तरह यह सब देख भी न पाया था कि हामिद मियाँ ने आकर खबर दी—नवाब साहेब आ रहे हैं।

ऐसे स्थान और ऐसे समय पर मैं किसी नवाब साहेब का स्वागत करने की हालत में नहीं था, पर अब तो भाग जाने का कोई रास्ता नहीं रह गया था। वे तो आही रहे थे। पैरों की आहट साफ सुनाई दे रही थी।

मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। तब तक सगमरमर की शिला के पास वाले अंधेरे द्वार से एक वृहदाकार मानव-मूर्ति प्रकट हुई। हामिद मियां ने झुककर कोर्निश की। मैं भी अनायास उनके साथ ही जमीन तक आगे झुक गया।

जब मैंने सिर उठाया तो एक भीमाकृति वृद्ध महोदय को देखा जिनकी रूपरेखा इस लोक के आदमियों जैसी न थी। सफेद बालों से सिर और मुँह इस प्रकार गुंफित हो गया था मानों बहुत सा ऊन चिपका कर चेहरे को विकृत और भयानक बना लिया गया हो। दो आँखें अजीब तरह की रोशनी से दीप्त हो रही थीं। आवाज भारी और घनगर्जन सी सुन पड़ी जब उन्होंने दो चार शब्द जल्दी जल्दी मुँह से निकाले। मैं तो समझ भी न पाया कि नवाब साहेब कौनसी अरबी बोल रहे हैं। मेरी बुद्धि के ऊपर तरस खाते हुए हामिद मियाँ ने बताया—नवाब साहब तुम्हारे ऊपर बहुत खुश हैं।

इतनी रस्म अदा करके नवाब साहेब सगमरमर की अपनी मसनद पर बैठ गये। सामने हम लोग आसीन हुए।

नवाब साहेब को इस बार मैंने बहुत पास से और बखूबी देख पाया। शरीर को छोड़कर उनकी खाल बहुत नीचे तक झूलने लगी थी। महलों के खँडहरों की भाँति ही उनका शरीर जर्जर हो रहा था, पर वह यह बात याद दिलाये बिना नहीं रहता था कि कभी वह भी शक्ति और जीवन की आग से ओतप्रोत था। उनकी भौंहें इतनी घनी थीं और इस कदर बढ़कर फैल गई थीं कि अचानक देख लेने से आदमी का धीरज छूट जाय। भौंहों से खिसककर आँखों पर हाथ फेरते हुए दाढ़ी तक बार बार वे ले जा रहे थे। सूथन और कुरता जिन्होंने उनके बदन को ढक रक्खा था हजारों पेबन्दों का एक समूह मात्र थे। मालूम पड़ता था नवाब साहब को सारी जिन्दगी उन्हीं की मरम्मत में लगा देनी पड़ी थी। प्राचीनता के भग्नावशेष स्वरूप महलों व उनके शरीर के साथ उनकी पोशाक भी एक गणनीय वस्तु थी।

हामिद मियाँ ने मुझे लक्ष्य कर नवाब साहेब से कहना शुरू किया—ये बड़े खानदानी हैं साहेब। इनके बाप सरकार के बड़े माने हुए अफसर हैं। नवाबी जमाने में भी इनका खानदान आफताब की तरह रोशन था। ये बहुत कुछ करा सकते हैं।

मैंने देखा इन बातों का नवाब साहेब के ऊपर बहुत अच्छा असर पड़ा। उनका चेहरा अपनी भयानक आकृति से एक दम बदल कर कोमल होगया। आँखों से जो एक हिंसक ज्वाला झलक रही थी वह स्नेहदृष्टि में परिवर्तित होगई।

हामिद मियाँ अब मेरी ओर मुड़कर बोले—देखिये जी, नवाब साहब का यह अहद है कि सरकार के किसी अफसर के सामने हाजिर होकर वसीले के लिए दरखास्त नहीं करेंगे। अगर सरकार समझती है कि ये मसनद के सच्चे वारिस हैं तो वह खुद अपने किसी बड़े अफसर को भेज कर दरखास्त करे। उस वक्त नवाब साहेब चाहे तो कबूल कर सकते हैं। विगत पचासी साल से अपने उसी अहद पर कायम यह हस्ती यहाँ रह रही है। कभी किसी के आगे अपने दुख को नहीं कहा।

मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के दर्शाया कि मैं पूरी कोशिश करूँगा। नवाब साहेब का प्यार उमड़ कर लबों पर आगया। वे अपने आपको रोक न सके। अपने संगमरमर के आसन से उठकर आ गये और मेरे सिर व पीठ पर हाथ फेरा। मैंने देखा उनकी आरक्त आँखों में सुरमे की जो पतली रेखा बड़ी सावधानी से खींची गई थी वह धुली जा रही है। उनके मुँह से गंभीर घोष के साथ ये ही शब्द निकल रहे थे—ज़लज़ला, ज़लज़ला। और कुछ समझ में न आता था।

क्षणभर तो मुझे ऐसा लगा कि सचमुच ही एक भयानक ज़लज़ला (भूकंप) आ गया है और उसमें हम सब विलीन हुए जा रहे हैं। हामिद मियाँ को विनोद सूझा, वे एक कहकहा मार कर चिल्लाये—हराम खोर नवाब, हरामखोर नवाब! अरे! उठ रमेश भाग यहाँ से। बैठा क्या करता है? यह खूसट बुड्ढा बदमाश है।

को पहुँच गई हैं। इसका दोष अंग्रेजी हुकूमत को देने से कोई फायदा नहीं। यह तो दुनियाँ का कायदा है। जब एक हुकूमत समाप्त होकर दूसरी उसकी जगह लेती है तो अधिकार-च्युत लोगों की ऐसी ही दुर्दशा होती है। मुसलमानी राज्य की स्थापना के समय हिन्दू राजघरानों की राजकुमारियों ने इससे भी अधिक निर्दय दिन देखे हैं। आज जिन वेश्याओं को बड़े बड़े नगरों में हजारों की संख्या में देखते हैं उनमें से बहुत सी अभागिनी, ऐसे ही उथल पुथल के समय, अपने परिवारों से वंचित कर दी गई थीं! बेगम रुकिया और उसकी साथिन अन्य बेगमें उन वेश्याओं से भी अधिक बदतर हालत में हैं जिन्होंने समाज के शासन को परित्याग कर अपने को निरकुश घोषित कर लिया है।

सोलह

भैया की छोटी साली विशाखा अपनी बहिन के पास आई है। मैंने भाभी से पूछा—क्या यह वही विशाखा है जिसके गुण गाते तुम नहीं थकती हो भाभी ?

भाभी अचानक मेरे मुँह से ऐसी बात सुनकर मेरी ओर देखने लगीं।

मैंने कहा—देखती क्या हो ? मैं तो इसमें लड़कियों का कोई सलीका नहीं देखता।

भाभी ने उत्तर दिया—तुम्हारे न देख पाने से क्या मेरी बहिन बेसलीका हो जायगी ?

मैं—लड़कियों के मामले में हम लड़कों की राय का बहुत मूल्य होता है भाभी।

भाभी—मुझे तुम्हारी राय नहीं पूछनी है लल्ला।

मैं—तो तुम चाहती हो मैं निरर्थक ही उसके गुणगान करूँ और सौ दो सौ स्तोत्र रच डालूँ।

भाभी—उसके स्तोत्र भी कहीं रचे जा रहे होंगे। इससे तुम निश्चिन्त रहो।

मैं—हमारे भैया की तरह कोई वियोगी कवि होगा वह।

भाभी—विधुर से अधिक कुमारों की दयनीय दशा के चित्र हम स्त्रियों के साहित्य में मौजूद हैं। इस संबंध में तुम्हारा गर्व वृथा है।

मैं—सच कहती हो?

भाभी—नित्य प्रति का तो यही अनुभव है।

मैं—परन्तु, भाभी मेरा तो जी नहीं कहता है कि तुम्हारी विशाखा के संबंध में मेरा कवित्व कभी स्फुरित होगा।

भाभी—यही तो मैं कहती हूँ कि गर्व मत करो लल्लू!

इस 'लल्लू' संबोधन का प्रयोग करके भाभी जब कुछ कहती हैं तो उनका आशय मैं जानता हूँ यही होता है कि तर्क अब आगे नहीं चल सकता, और मैं उसके विपरीत करने का साहस नहीं करता। फलत. आज का वार्तालाप भी हमें यहीं बन्द कर देना पड़ा, उसके स्वाभाविक परिणाम की प्रतीक्षा में।

विशाखा के आगमन से पहले कितनी ही बार भाभी, राधारानी ने उसके नखशिख के अप्रत्यक्ष वर्णन के साथ उसके सद्‌गुणों और उसकी सुशीलता के कितने ही उपाख्यान मुझे सुनाये थे। नखशिख की चर्चा वे न करतीं तो भी उनकी सहोदरा होने के नाते उसके रूप लावण्य की कल्पना किसी हद तक कर लेने की योग्यता मेरे अन्दर थी, इस पर मैं विश्वास कर सकता हूँ परन्तु उसके शील-सौजन्यादि के विषय में यह बात न थी। भाभी के कथन के आधार पर ही उसकी एक मानस-प्रतिमा मैंने

बना रक्खी थी। बिना लपेट के यह बात स्वीकार करनी होगी कि मेरी कल्पना के चौखटे में जो विशाखा की प्रतिकृति जड़ी थी उससे असली विशाखा का मेल बिठाने में कुछ समय और परीक्षण की जरूरत थी। मुझे तर्क-विरत करने में इसी अवसर को सुलभ करने की ओर भाभी का इशारा था, परन्तु यह सब किसी विशेष उद्देश्य से था यह मुझे बहुत पीछे पता चला।

अपनी अवस्था को देखते हुए विशाखा के साथ किसी ऐसे संबंध की बात सोचना भी मेरे लिए अशक्य था कि जिसके सबध में भाभी के साथ खुलकर हँसी मजाक करने में मुझे लज्जा का अनुभव होता। मैं किशोरावस्था से कुछ ही ऊपर पहुँचा था और विशाखा उसी के कथनानुसार साढ़े सत्रह की हो चुकी थी। यदि वह कम से कम चार पाँच वर्ष बाद जन्मी होती तो उसकी चर्चा इतने खुले दिल से चलाने में मुझे झिझक होनी स्वाभाविक होती। खैर, भाभी का आदेश था इसलिए मैं चुप था। उनसे कोई विशेष बातचीत उसे लेकर न चल सकी, परन्तु विशाखा से हेलमेल बढ़ने में तो कोई बाधा न थी। उसके ग्रामीण निस्संकोच व्यवहार और उद्दण्ड स्वभाव में कुछ कुछ सुचेता के लक्षणों की झलक मुझे दिखाई पड़ी। इसीसे मेरे लिए वह कोई नई या भय की चीज प्रतीत न हुई। जैसे मैं उसे अपने लिए खतरे की वस्तु मानने को तैयार नहीं था उसी तरह वह भी मुझसे अपने को निरापद समझ रही थी। हम दोनों बेखटके जिस तिस काम में उलझ जाते थे और बेतकल्लुफी से उसे कर डालते थे।

स्कूल में सिगरेट और चाय क्लब के सदस्यों की बैठकों में रोज नये उपद्रव होते, मास्टर डेविड के धर्मोपदेश सुनने को मिलते, दूसरी दूसरी संभावित और असभावित दुर्घटनाएँ घट जातीं, उन सबको घर आकर मुझे भूल जाना पड़ता। विशाखा के साथ नई नई बातों का समारंभ होता। वह मेरे स्कूल-समय के बीच किसी न किसी दिलचस्प योजना को इस प्रकार जाल की तरह बुन रखती कि मैं आते ही उसमें जंगली कबूतर की भाँति फँस जाता।

उस दिन जब मैं आधी देर पढ़कर ही लौट आया तो भाभी अपने कपड़ों की सिलाई में लग रही थीं। विशाखा का जी उनका साथ देते देते उकता गया था और वह उठकर थोड़ी देर आराम करने लगी थी। मुझे स्कूल से लौट आया जान वह आकर मेरे कमरे में झाँकने लगी। मैंने पूछा—क्या देख रही हो?

"मैं देख रही हूँ कि तुम इतनी जल्दी कैसे आ गये? आज तो शनिवार नहीं है।"

"मैं जानता था कि तुम मेरी राह देख रही होगी। फिर न आता तो क्या करता?"

"मैं कभी तुम्हारी राह देखना पसन्द नहीं करती, यह बात मैं न कहना चाहूं तो भी तुम्हें समझ लेनी चाहिए।"

"इसके लिए धन्यवाद।"

"मुझे स्वीकार है तुम्हारा धन्यवाद। फिर भी मैं पूछना चाहती हूं कि आखिर इस कदर जल्दी लौट आने का क्या कारण है?"

"तुम्हें इस बात को जानने से लाभ? और न किसी ने तुम्हें मेरे ऊपर अफसर नियुक्त किया है।"

"कुछ भी न सही पर तुम्हें बताना पड़ेगा।"

"और अगर न बताऊँ?"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता। विशाखा जिस बात को जानना चाहती हो उसे कोई छिपाकर नहीं रख सकता।"

"मैं हर कोई नहीं हूँ। विशाखा को जान लेना चाहिए कि मैं भी उसकी जीजी का देवर हूं।"

"विशाखा की चुटकियों में ऐसे कितने ही देवर उड़ जाते हैं।"

मुझे उसकी उद्दंडता पर तैश आगया। मैंने जोर से कहा—तुम निकल जाओ यहाँ से।

मेरे क्रोध पर वह हँस पड़ी। जले पर नमक छिड़कती हुई बोली—मैं जानती हूं यह घर मेरा नहीं है पर जिसका है वह भी मुझे यहाँ से नहीं

निकाल सकता।

"तो मेरा सिर तुम इस तरह नहीं खा सकतीं।"

"मैंने मांस कभी छुआ तक नहीं है, आदमी का सिर खाना तो बहुत बड़ी बात है।"

"मैं कहता हूँ तुममें लड़कियों का एक भी लक्षण नहीं है।"

"यह तो बड़ी हैरानी की बात है।"

'इसमें तनिक भी हैरानी नहीं है।"

"है, मैं कहती हू है। अगर तुम मुझे यह बताना मजूर करो कि तुम स्कूल से प्राण बचाकर इस तरह क्यों भाग आते हो तो मैं तुम्हें बताऊँ कि इसमें कितनी और कैसी हैरानी है?"

"हम जैसे शूरवीरों को प्राण बचाकर भाग आने की जरूरत नहीं पड़ती। खुद मास्टर ही हमारे सामने से भाग छूटते हैं। मिस्टर डेविड के पैर में घोड़े से गिर जाने के कारण चोट आगई है। हम लोग उन्हें देखने अस्पताल गये थे।"

विशाखा—आखिर बताना पड़ा न? फिर इतनी तैश और तेजी किस लिए थी? विशाखा के आगे आज तक तो किसी की चली नहीं। आगे की मैं नहीं कहती।

मैं—यही तो बुरा है। जो बात मैंने दया करके बता दी उसके लिए इस प्रकार की गर्वोक्ति शोभा नहीं देती।

'दया की भीख किसी दूसरे की झोली में डालना। मुझे तुम्हारी दया की दरकार नहीं है।"

उसे तुम दया नाम देकर मानना नहीं चाहतीं। न सही, यही मान लो कि मैंने अपनी गरज से तुम्हें बता दिया। पर बता तो दिया—मैंने कहा।

विशाखा—हाँ बता तो दिया, मैं मानती हूँ और इसीसे मैं भी तुम्हें बता देती हूँ कि तुम मेरे में लड़कियों का एक भी गुण नहीं मानते हो।

यह बात सच है—मैंने कहा। बल्कि मैं तो तुम्हें लड़की से सिपाही

लेकिन हैरानी की बात यह है कि जीजाजी और जीजी दोनों कुछ और ही माने बैठे हैं। उन्होंने मेरे लिए प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर रक्खा है।—विशाखा कहती जा रही थी।

"मैं उस प्रमाणपत्र को मानने को बाध्य नहीं।"

वे कहते हैं अतः तुम्हें मानना पड़ेगा। तुम इस तरह नहीं मानोगे तो मैं ले आती हूं।—कहती हुई वह भीतर भाग गई और एक लपेटा हुआ कागजों का बंडल ले आई।

मैंने पूछा—यह क्या है?

यह देख लो न। अब भी क्या तुम नहीं मानोगे?—कहकर उसने दो जन्मपत्रियाँ निकालकर मेरे सामने फेंकदीं। रोली अक्षत चर्चित उन पत्रिकाओं की भाषा मैं नहीं समझता। तो भी यह बात मुझे समझनी पड़ी कि भैया और भाभी विशाखा को इसी घर की वस्तु बना लेना चाहते हैं। उनका षडयन्त्र धीरे धीरे चल रहा है। मातृहीना विशाखा को यहाँ बुलाकर इसीलिए रखने की जरूरत पड़ी है कि हम दोनों भावी जीवन की तैयारी मिलजुल कर करलेने का अवसर पा जांय।

विशाखा निस्संकोच भाव से देख रही थी कि मैं इसका क्या जवाब देता हूँ। सब कुछ सुनकर मैंने विशाखा से कहा—क्या तुम समझती हो कि मैं इससे तुम्हारे संबंध में अपनी राय बदल दूँगा?

मैंने तो जीजाजी से साफ कह दिया है कि मैं कोई गाय नहीं हूं कि तुम लोग जिस खूँटे से चाहो मुझे बाँध दो। तुम्हारे जैसा लड़का घोड़े पर चढ़कर मुझे ब्याहने आये तो जानते हो मैं क्या करूँगी?—वह बोली।

"मैं ऐसी गलती क्यों करने लगा? मेरे दो आँखें हैं, एक नाक है, दो कान हैं। मैं देख, सुन और सूँघ सकता हूँ। तुम्हारी जैसी सुलक्षणा में इन तीनों बातों के लायक क्या कोई गुण हैं? हों तो कहो।"

वह इस पर कुछ और कहना चाहती थी पर मैंने रोकते हुए कहा—अब यह रंभा-शुक-संवाद यहीं खत्म कर दो। कहीं भाभी सुन रही होगी तो दोनों में से एक की भी खैर नहीं।

दवाई प्याले में उँडेल दी। मेरा इनकार हवा में विलीन होगया। विशाखा को यह बात कतई पसन्द नहीं है कि उसका मरीज़ अपनी मरजी उसकी व्यवस्था पर थोपे। हाथ बढ़ाकर मुझे उसी क्षण दवाई लेनी और पीनी पड़ी। पीते ही शरीर में नई स्फूर्ति और ताज़गी का संचार हो चला।

मैंने सिर उठाने का प्रयत्न करके पूछा—तुम्हारे इस नर्सिंग होम, सुश्रूषागृह, से मुझे कब छुटकारा मिलेगा विशाखा?

विशाखा—बात नहीं करते।

इतनी सी बात में कोई हर्ज नहीं होता। मैं तो लेटा हू।—मैंने कहा।

विशाखा—लेटे रहो। चुपचाप।

मैं—मुझे यहाँ पड़े रहने में कोई तकलीफ नहीं है। अगर औषधोपचार का अत्याचार हर दो घन्टे के बाद न होता तो मैं यहाँ से कभी जाने का नाम भी न लेता।

विशाखा—बस, बस। मैं मना करती हूँ तुम बोलते जाते हो। रमेश, बीमार होकर तुम बच्चों की तरह जिद्दी हो गये हो।

"पर मैंने एक अच्छी बात भी सीख ली है।"

"वह क्या? मैं भी सुन सकूँगी उसे?"

"जरूर, वह जब तुम्हीं से सबंध रखती है तो तुम उसे क्यों न सुन सकोगी।"

"वह क्या है?"

"वह यही कि मैं अब इस निश्चय पर पहुच गया हूँ कि तुम कोरी अद्भुत गँवार ही नहीं हो। तुम्हारे अन्दर सिपाहियाना अक्खड़ता है तो ऐसे सद्‌गुण भी हैं जो बड़ी से बड़ी सुलक्षणा लड़की के लिए एक अमूल्य आभूषण हो सकते हैं।"

"रहने दो ये बातें। मैं तुम्हारे मुँह से प्रशंसा सुनना नहीं चाहती। यदि कोई मतवाला आकर इस प्रकार की अत्युक्ति करता तो मैं शायद आनन्द के नशे में झूम उठती।"

"मैं भी तुम्हारा एक मित्र हूँ मतवाला भले ही न होऊँ।"

"मैंने उस दिन तुमसे पूछा था कि यदि तुम्हारे जैसा लड़का मुझे ब्याहने आये तो जानते हो मैं क्या करूँगी।"

"मैं क्योंकर जान सकता हूँ किसी के मन की बात? लेकिन एक युवक के लिए एक युवती का व्यवहार ऐसे समय नितान्त अशोभन हो, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

"अशोभन ही क्यों उसे तुम दुष्ट कह सकते हो, पर मैं तो वही करती अर्थात् गले में फाँसी लगा कर मंडप में लटक जाती या सामने खड़े होकर कह देती देवाधिदेव, कृपा कर अपने घर लौट जाइये।"

"मैं इस बात से कुछ उत्तेजित हो उठकर बैठ गया। मैंने पूछा—तुम मुझे इतना घृणास्पद मानती हो? तुम झूठी हो विशाखा। तुम इस तरह कहकर अपने आपको छल रही हो।

"कभी नहीं। रमेश तुम समझते हो बीमारी में जिसकी परिचर्या कर सकती हूँ उसे मैं घृणा नहीं कर सकती। घृणा मैं तुम्हें भले ही न करती होऊँ, पर प्यार भी नहीं करती। कभी इसकी आशा मत रखना।"

"मुझे भी तुम्हारे प्यार की लालसा नहीं है विशाखा। इसलिए मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता। ऐसा तुम समझती हो तो भूलती हो। मुझे जैसा लग रहा था उससे अधिक मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। उस दिन जब पहले पहल तुम इस घर में आई थीं और एक अपरिचित-सी दिखती थीं तब भी मैंने भाभी से जो मेरे जी में आया साफ-साफ कह दिया था। भाभी को मेरी बात दुखी भी होगी। शायद तुमने भी सुना हो और वह बात तुम्हें लग गई हो।"

"हो सकता है।"

"लेकिन यह तो तुम्हें सोचना चाहिए कि उस समय की बात उस समय कही गई थी और इस समय की अब कही जा रही है। समय बदलता रहता है और उसके साथ आदमी के विचार भी बदलते रहते हैं।"

"सारी दुनियाँ बदलती है। मैं भी तो तब से बदल गई हूँ। उस समय तुम यों पड़े होते तो मैं तुम्हें दवाई तो क्या जहर भी न पिलाती।

दुबले ?—शहर के अन्देशे से।" आज वह कहावत पूरी तरह सत्य प्रतीत हुई। पत्र-सपादक से लेकर वहाँ के समस्त कर्मचारी और दूसरे आने जानेवाले सदा दुनियाँ में होरही छोटी बड़ी घटनाओं की मीमासा में ही लगे रहते थे। मैं तो सुबोध के साथ वहाँ जाकर बैठ जाता। कौतूहल से उनकी चर्चाओं को सुनता। अपना निर्णय अपने पास ही सुरक्षित रखता।

सुबोध के वहाँ दो एक घनिष्ट मित्र थे। वह उनसे बड़ी दिलचस्पी से विवाद में रत हो जाता। कभी कभी वह उनके साथ कार्यालय से बाहर निकल आता और हम सब पड़ोस के पार्क में जा बैठते। वहां एक आदमी दूसरे को अपनी बात मनवा लेने का आग्रह करता, परन्तु वे कभी एक निश्चय पर न पहुंच पाते।

एक दिन नैना बाबू ने मुझसे कहा—रमेश, एक बात सुनी है।

बतलाओ—मैंने कहा।

"यह सुबोध सदिग्ध आदमी है।"

"संदिग्ध ?"

"हाँ एकदम रहस्यपूर्ण।"

मेरे बहुत आग्रह करने पर बताया—यह कोई क्रान्तिकारी है। किसी बड़े षड्यन्त्र में वाछित।

अब तक न मैं जानता था कि क्रांतिकारी क्या होता है, न जानता था षड्यन्त्र क्या होता है। फिर भी नैना बाबू की फुसफुसाहट से ऐसा लगा कि अवश्य ही सुबोध किसी भयङ्कर कार्य में लगा है। इतने पर भी सुबोध की सरल निष्कपट मुद्रा इस बात पर विश्वास करने न देती थी कि वह ऐसा जीव होगा जिसका सपर्क विपज्जनक हो सकता है।

मैंने कहा—किसी ने तुम्हें बहकाया है। सुबोध जैसा सीधा युवक तो मैंने कहीं देखा ही नहीं।

नैना बाबू—तुम्हें शीघ्र पता लग जायगा। पुलिस उसके पीछे लगी है। वह किसी दिन पकड़ा जा सकता है।

मैं—उसने क्या अपराध किया है ? फिर पुलिस से वह छिपा तो नहीं

है। वह उसे पकड़ती क्यों नहीं ?

"यह तो मैं नहीं जानता। तुम देख लेना।"

यही बात मेरे साथियों में से बहुतों ने कही। न जाने क्यों सभी सुबोध को शंका और संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे। वह सबको अधिकाधिक रहस्यमय जान पड़ने लगा। मेरे मन में भी कभी कभी शंका उठती, लेकिन न तो मैं किसी क्रान्तिकारी की भयानक मुद्रा की कल्पना कर पाता और न उसके साथ सुबोध के चेहरे की संगति बैठा पाता। वह मुझे पहले जैसा ही सरल, सीधा और सौजन्यपूर्ण दिखाई देता था। मैं सदा थोड़ा मौका मिलते ही उससे दो चार बातें कर लेने को उत्सुक रहता। वह भी मेरे प्रति स्नेहभाव प्रकट करता।

कभी कभी जब मैं उसके साथ समाचारपत्र के दफ्तर जा रहा होता या सड़क पर टहल रहा होता तो मेरे मन में यह बात बारबार आती कि मैं उससे पूछ लूं; लेकिन कभी पूछ न पाता।

एक दिन हमारी बातचीत का सिलसिला चलते चलते राजनीति के दायरे में चला गया। तब मैंने पूछा—सुबोध महाशय, क्रांतिकारी क्या चाहते हैं ?

"वे चाहते हैं परिवर्तन, लेकिन तुम क्यों पूछते हो ?"

"यो ही, मेरे मन में कई दिन से यह प्रश्न उठ रहा था। क्या ऐसा प्रश्न होना नहीं चाहिए ?"

"क्यों नहीं होना चाहिए। प्रश्न तो हर किस्म का हो सकता है। सवाल यही है कि उसे उठाये कौन और उसका जवाब कौन दे ? मेरा आशय हम दोनों से है। न तुम्हें इस तरह का प्रश्न पूछने का अधिकार है न मैं उसका विस्तार से उत्तर देने की स्थिति मे हूँ।"

"क्यों ?"

"यह रास्ता बहुत कँटीला है।"

"बहुत ही खतरनाक ?"

"बहुत ही। प्राणों की बाजी लगानेवाले उस ओर जाने का साहस

"इन्हें नाश करना सरल नहीं है।"

"जरूर, पर इससे क्या हम हार कर बैठ रहेंगे?"

"यह सब बातें तो घर घर में हैं। जो कीटाणु रक्त में मिल जाते हैं वे सहज में दूर नहीं किये जा सकते।"

"यह बात न समझी हो सो नहीं। घर घर में मोरचा लगा कर उनका उच्छेद करना होगा। इस संघर्ष में जो भी प्रिय और बहुमूल्य बीच में आ जायँगे उनकी परवाह किये बिना हमें अपना काम जारी रखना होगा। हमारा काम बड़ा टेढ़ा है। भीतर और बाहर के इधर उधर चौतरफे शत्रुओं से एक साथ युद्ध-व्यापार में रत होना कोई हँसी खेल नहीं है।"

यह बात सुबोध महाशय ने कुछ आवेश में आकर कही। मुझे उनकी चाय पीने की कमजोरी याद आगई। मैंने जरा हँसकर विनोद में पूछा—महाशय, यह युद्ध जब आरभ होगा उन दिनों हमारी खान पान की व्यवस्था का क्या होगा?

"खान पान का युद्ध से क्या संबध?"

"मेरा मतलब है कि जब यह युद्ध छिड़ेगा तो चाय पीने की सुविधा तो जाती रहेगी?"

साश्चर्य उन्होंने मेरे प्रश्न की असबद्धता पर खीझते हुए कहा—अर्थात् ..

"यही कि यह युद्ध तो घर घर में होगा। सुबह शाम होगा। रात दिन होगा। स्त्री-पुरुषों में होगा। बाप-बेटों में होगा। भाई-भाई में होगा। ब्राह्मण शूद्रों में होगा। तब चाय पीने को कैसे मिलेगी? हम लोग किस तरह बिना चाय पिये युद्ध के मैदान में डट सकेंगे?"

यह कहकर मैं हँस पड़ा। सुबोध भी मेरे विनोद को समझकर हँस पड़े। थोड़ी देर तक हँसते रहकर बोले—यह तो खूब कहा है तुमने। अपने लोगों को चाय के दो चार प्याले मिल जाया करें और बस! हम लोग तो बस चाय के प्याले में तूफान उठानेवाले हैं।

मैंने जरा गंभीर बनने की चेष्टा करते हुए कहा—नहीं-नहीं महाशय

यह बात नहीं है।

"मैं अपनी कमजोरी को जानता हूँ रमेश। फिर भी हमारा आदर्श वही है। अपने उसी आदर्श को पूरा करने के लिए हम अपने विचारों को संकल्प में बदलने की चेष्टा करते हैं।"

"मैं इसमें आपके साथ हूँ।"

यह बातें जिस दिन हुई थीं उसके काफी अरसे बाद एक दिन हम बहुत से साथी ग्रहणस्नान के मेले में जा रहे थे। सुबोध चटर्जी भी हमारे साथ थे। नाना प्रकार के पाखंड किसी धार्मिक मेले में देखने को मिल जाना साधारण बात है। गाँव के भोले लोगों और दूसरे श्रद्धालुओं के पुण्य-संचय के द्वार होने से ऐसे अफंड बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। हमने मेले में भिखमंगों और करामाती साधुओं की भारी भीड़ देखी। गंगा की रेती में अपने अपने ढंग से अपनी अपनी दूकान लगाये वे ग्राहकों का आवाहन कर रहे थे। मैं बहुत आरंभ से मेलों का शौकीन नहीं हूँ, फिर भी ये दृश्य मेरे लिए कोई नए नहीं थे। भारतवर्ष और विशेषतः हिन्दू समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं में ये अपनी खास अहमियत रखते हैं। इसलिए अपने को हिन्दू और भारतवासी कहलानेवाला कोई भी पुरुष इनसे अनभिज्ञ नहीं हो सकता। फिर भी हमारे एक मनचले दोस्त ने हम लोगों को रोककर कहा—जरा ठहरो तुम्हें थोड़ा मजा दिखायें।

हम लोगों में से कोई भी उनके आशय को न समझ पाया। सभी एक मिनट के लिए रुके। हमारे उस साथी ने कहा—अच्छा आओ हमारे पीछे पीछे।

इतना कहकर वे हम लोगों का साथ छोड़ दस पंद्रह कदम आगे चलने लगे। थोड़ी दूर पर मार्ग के किनारे एक जटाधारी फक्कड़ ने गंगा की रेती में मिट्टी का ढेर लगा रक्खा था और उसमें अपना सिर गड़ा कर टाँगें सीधी आकाश की ओर कर रक्खी थीं। हम लोगों को केवल उसकी दो आँखें ही दिखती थीं। बाकी सारा सिर धूल में ढका था। धूल के भीतर से चमकती हुई दो आँखों के आगे एक चादर बिछी थी। उस पर पैसों और फल-फूलों

का अच्छा खासा ढेर लगा था। जनता हठयोगी बाबा के त्याग और तपस्या के पुरस्कार स्वरूप अपनी श्रद्धा की अंजलि चढ़ाती जाती थी। हमने मन ही मन फक्कड़ बाबा की अक्ल की प्रशंसा की। इतने में ही हमारा साथी उनकी चादर के पास जा पहुँचा और बजाय कुछ भेंट-पूजा चढ़ाने के उसने पलक मारते ही मुट्ठी पैसों से भरी और ले भागा। फक्कड़ बाबा यह देख अपना शीर्षासन त्याग उछलकर खड़े हो गये और भद्दी भद्दी गालियाँ देते हुए उसके पीछे बेतहाशा दौड़े। हम सब यह दृश्य देखकर हँसते हँसते बेदम होगये।

आधा फर्लांग तक दौड़ने के बाद हमारे साथी ने पैसे जमीन पर डाल दिये। फक्कड़ बाबा ने भी अब उस बन्दर का पीछा करना उचित न समझ कर उसकी सात पीढ़ियों का श्राद्ध करना तथा उसकी माँ बहिनों से सबंध स्थापित करना ही काफी मानकर अपनी संपत्ति को सहेज लेना उचित समझा। इस दौड़धूप में भी उनकी आखें बराबर अपनी चादर की ओर ही लगी थीं। वे घूम घूम कर देख रहे थे कि कहीं कोई दूसरा बदमाश उधर तो हाथ साफ नहीं कर रहा है? यदि उन्हें इधर का खटका न होता तो शायद हमारा साथी सहज में न छुट पाता। वे अवश्य ही उसे जा लेते और तब उसकी पूरी तरह खुड़िया-मुड़िया कर डालते।

आगे पहुच कर जब हम अपने साथी से मिले तो मैंने कहा—भाई, ज्वाला, आज दिन सीधे थे तभी बच गये नहीं तो तुम्हारी हड्डी-पसली तक न मिलती। वह हट्टा कट्टा फक्कड़ तुम्हारे शरीर की चटनी बना डालता।

ज्वाला हँसकर बोला—कैसा त्यागी बनता है? दो आने पैसों के लिए अपना सारा स्वांग त्याग कर मेरे पीछे दौड़ पड़ा।

"हम सबने तो समझा था कि तुम्हें पकड़ कर कच्चा ही चबा जायगा।"

"मैं जानता था। जहाँ मैंने उसके पैसे जमीन पर डाले नहीं कि वहीं रुक जायगा।"

हमारे दूसरे साथी ने कहा—गालियों का तो अमूल्य भंडार मालूम पड़ता है। कैसा सधा हुआ अभ्यास कर रक्खा है? एक दम धारा

प्रवाह गालियाँ देता है।

इस 'धारा प्रवाह' शब्द पर सुबोध ने बहुत प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। कहा—यह शब्द तो बिल्कुल सार्थक कहा है आपने।

हम लोग थोड़ी दूर ही बढ़े होंगे कि सुबोध हमारा साथ छोड़ एक दम एक ओर दौड़ गया। अन्य साथियों ने तो ध्यान न दिया पर मैं न रह सका। मैं भी उधर ही चला गया। देखा सड़क पर नल से पानी ले रही एक कुलीना अधेड़ स्त्री एक गरीब लड़की पर टूटी पड़ रही है। इतनी बुरी तरह उसे कोस रही है कि यदि लड़की में कुछ पुण्य-प्रताप न होता तो वह कभी की भस्म हो गई होती। ऐसा मालूम पड़ता था कि मँगती लड़की ने कोई ऐसा अनर्थ कर डाला है जिससे धरती अभी नहीं तो दो चार क्षणों में रसातल को चली जायगी।

उस स्त्री के इस प्रकार आकाश सिर पर उठा लेने से मेले की भीड़ इकट्ठी होने लगी। मैंने देखा, सुबोध झपट कर बीच में जा पहुँचा और पूछा—क्या बात है ?

स्त्री को मानों सहारा मिल गया। वह और भी फट पड़ी। बोली—यह कम्बख्त मेरे रोकते रोकते नल में हाथ लगाये दे रही थी।

लड़की अब भी धूप की मारी प्यासी खड़ी सिसक रही थी।

सुबोध ने कहा—यह प्यासी है।

प्यासी होने से क्या होता है। यह नल में हाथ लगा देगी ? नल तो ब्राह्मण-क्षत्रियों के लिए है।—स्त्री ने बताया।

सुबोध—आप इसे अपने लोटे से पिला दें।

इस प्रस्ताव पर स्त्री और अधिक बिगड़ पड़ी, बोली—अपने लोटे से पिला दूँगी मैं ? छिः छि क्या कहते हो ?

"तब यह प्यासी मर जायगी ?"

"मेरी बला से मर जाय या नरक में जाय।"

तो आप हट जायँ, इसे पानी पी लेने दें।—सुबोध ने समझाया।

उठीं—कितनी व्यर्थ की बातें आती हैं तुम सबको। घर में न कोई काम-काज है जिसमें लड़कियाँ मन लगायें, न आदमियों के लिए बाहर अपना पुरुषार्थ दिखाने का कोई सिलसिला रह गया है।

विशाखा ने उत्तर दिया—काम तो कोई पड़ा नहीं रह जाता जीजी! तुम नाहक दुखी होती हो।

"मैं इसलिए भी दुखी होती हूँ कि एक लड़की के लिए इस तरह घर-गृहस्थी के सब काम छोड़कर बेकार की चर्चा में लग जाने से कैसे बनेगा? उसके भाग्य में न जाने क्या बदा है? कैसे घर में, कहां, किस हालत में पहुचना होगा?"

विशाखा ये सब बातें सुनने के लिए वहाँ नहीं रुकी। वह उठकर नीचे चली गई। भाभी मुझे लक्ष्य करके कहने लगी—भैया मर्दों को सब बातें सोहती हैं। उन्हें घर की झँझटों से मतलब नहीं। वे चाहे रात-दिन तर्क वितर्क में गँवा सकते हैं। बुरा मानने की बात नहीं। कल मेरी बहिन को पराये घर जाना है। माँ बाप के अभाव में उसे घर-बार की छोटी-मोटी बातें भी नहीं सिखाईं, यह उलाहना तो मेरे ही सिर आना है।

मैंने उनकी एक भी बात का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझी। घूमने जाने का समय हो गया था। अत मैं उन्हें उसी तरह छोड़ घर से निकल पड़ा।

बाहर आकर मालूम पड़ा कि सुबोध महाशय कल रात से ही अन्तर्धान हो गये हैं। उनके निवास-स्थान को गुप्त पुलिस ने घेर रक्खा है और सरकार को उनकी आवश्यकता है।

वे कब गये, कहाँ गये और कैसे गये—इन बातों की विस्तृत अटकल लगाई जा रही है और उसी के अनुसार खोज हो रही है। कोई प्रयास उन्हें प्राप्त कर लेने का छोड़ नहीं रक्खा गया है।

मुझे सुनकर दुख हुआ पर आश्चर्य नहीं हुआ। आश्चर्य हुआ सात-आठ वर्ष बाद जब एक बार मैंने सद् गृहस्थों की तरह एक जगह जमकर रहना चाहा था और इसी आशय से एक मकान किराये पर ले रक्खा था

बिल्कुल एक कोने में जहाँ इक्के-दुक्के मित्रों के सिवा कोई पहुंचता न था। न उस कंगालों की बस्ती में किसी को जाने का साहस होता था। वहीं एक संध्या को मेरे मित्र आकर कहने लगे—भाई रमेश, मुझे बाहर आना जाना रहता है इस वास्ते मेरे एक मित्र को दो चार दिन के लिए तुम्हारे यहाँ टिका देना चाहता हूँ। मेरी श्रीमती पर्दे की इतनी पाबन्द हैं कि मेरे कैसे भी विश्वासी मित्र को एक घड़ी मेरी अनुपस्थिति में घर में रहने देने को तैयार नहीं हैं।

मैंने कहा—मेरा क्या हर्ज है। इतने कमरे खाली पड़े हैं। जिसमें चाहें आपके मित्र रह सकते है। खाने की व्यवस्था यहाँ न मेरी है न उनकी हो सकेगी।

इसकी चिन्ता मत करो—कहकर वे चले गये और संध्या समय अपने मित्र को ले आये।

बतौर शिष्टाचार के मेरे सामने उन्हें करके कहा—ये आगये हैं। उसी कमरे में रख दिया है।

मैंने कहा—बड़ी खुशी की बात है। एक और एक ग्यारह हुए।

संध्या के अन्धकार में मैंने अपने अतिथि की आकृति न देख पायी। दूसरे, तीसरे और चौथे दिन तक तो मैं भूल भी गया कि कोई दूसरा आदम का पुत्र उस घर की छत के नीचे सोता है। क्योंकि कभी उसे न आते देखा न जाते। एक दिन अकस्मात जब मैं घर से निकल रहा था उसी समय वह भी कहीं जा रहे थे। संध्या होने ही वाली थी फिर भी इतना प्रकाश था कि मैं उसका चेहरा अच्छी तरह देख सकता था। मैंने उसको और उसने मुझे दृष्टि भर कर देखा। मेरे आश्चर्य का अन्त न था। इतने दिन बाद ये सुबोध महाशय कहाँ से आविर्भूत हो गये? क्या पाँच छ: दिन से यही मेरे घर में अपरिचित बनकर रह रहे हैं? मैं विचार में पड़ गया।

मेरे ऊपर गहन दृष्टि डालकर भी वे मुझसे बोले नहीं। इस तरह चादर से अपना सिर ढक कर निकल गये जैसे मुझे जानते ही न हों।

मैं भी उन्हें इस दशा में रोकने का साहस न कर सका। सोचा

लौटकर बातचीत करेंगे। परन्तु लौटने पर कमरे में झाँका तो वह खाली पड़ा था। न वहाँ बिस्तर थे, न सामान। मैंने बहुत प्रतीक्षा की परन्तु फिर वे लौटकर न आये। कई दिन बाद उन्हीं मित्र की जबानी पता चला कि उनका काम पूरा होगया है और वे अपने देश पंजाब चले गये हैं।

मैंने पूछने का प्रयत्न किया—क्या वे वहीं के निवासी हैं? पंजाबी जैसे दिखते तो नहीं।

पंजाबी ही हैं।—संक्षिप्त उत्तर मिला, लेकिन मैं किस प्रकार अपनी आँखों पर अविश्वास कर सकता था और एकांत विश्वास का आधार भी तो मौजूद नहीं था।

इस घटना को एक सप्ताह भी न बीतने पाया था कि मजदूरों की घनी बस्ती में पुलिस ने एक आतंकवादी को घेरने का प्रयास किया। फल-स्वरूप दोनों ओर से गोलियों का आदान प्रदान हुआ। कुछ लोग हताहत हुए परन्तु अपराधी हाथ न आया। पत्रों में सनसनी पैदा करनेवाले समाचार छपे। शीर्षक थे "एक आतंकवादी से पुलिस की मुठभेड़। गोलियों की बौछार के बीच से अपराधी बच गया।"

अगले दिन मैं घूम-टहल कर आरहा था। सड़क पर एक महाशय पीछे से दौड़ते हुए आये और मुझे रोककर क्षमा माँगते हुए बोले—कोई चीज़ तो आपकी नहीं गिरी?

मैं अकचकाकर खड़ा हो गया। अपने तन बदन, कागज-पत्र, पैसा-रुपया सब सभालकर उत्तर दिया—मालूम तो नहीं पड़ती।

उन्होंने हँसकर कहा—अच्छी तरह देख लीजिए।

मैंने फिर सोचा और एक बार अपनी सारी चीजें देख लीं। उन्होंने कागज में लपेटी हुई एक तस्वीर मेरी ओर बढ़ा दी और कहा—यह देख लीजिए। यह आपकी नहीं है?

तस्वीर मेरे हाथ में थी। सुबोध चटर्जी की आकृति को क्या मैं भूल सकता हूं? मैंने कहा—मेरे पास से तो नहीं गिरी लेकिन यह आई कहाँ से?

वे कहने लगे—अभी किसी के पास से गिरी है। क्या आप कह सकते हैं यह किसकी फोटो है ?

"जिसकी है उसे मैं जानता अवश्य हूं लेकिन वह कहाँ है यह न मालूम होने से उसके पास पहुंचाना तो कठिन है।"

इसके बाद वे महाशय बातें करते-करते दूर तक मेरे साथ आये। इस बीच सात-आठ साल पहले के सुबोध चटर्जी के संबंध में मैंने उन्हें अनेक बातें बताई। लेकिन यह बात न मालूम कैसे मैंने उनसे छिपा ली कि अभी एक सप्ताह पहले वे शायद मेरे ही यहाँ आश्रय लिए हुए थे।

शाम को जब मेरे मित्र व्यस्त से भागे जा रहे थे तो मैंने उन्हें रोक कर पूछा—यों क्यों भाग रहे हो ?

इसके बाद वे मुझे अपने साथ एक प्रसिद्ध धनिक की कोठी पर ले गये और वहाँ मैंने सुबोध महाशय से मुलाकात की तथा यह मालूम किया कि उनका चित्र मुझे दिखानेवाले गुप्त पुलिस के एक नामी अफ़सर थे और उन्हें इस बात का शक था कि सुबोध चटर्जी मेरे घर में शरण लिए हुए हैं। ये सारी बातें विस्तार से यहाँ कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुबोध से मुलाकात के बाद मुझे इतना पता लग गया कि सात साल पूर्व के परिचय को वे भूले नहीं हैं। उसके प्रति मोह-ममत्व उनमें बना है।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद समाचार पत्रों में पढ़ा कि सुबोध एक दूरस्थ नगर के समीप पुलिस की गोलियों से बिंधकर मृत्यु को प्राप्त होगये। उनके साथियों ने बताया कि छत्तीस गोलियां उनके शरीर में लगी थीं। वे एक सच्चे वीर की मौत मरे थे।

उन्नीस

इतनी जल्दी भैया विशाखा के लिए वर तलाश कर देंगे उसका पता न मुझे था, न विशाखा को और न भाभी को ही। अचानक यह खबर हम सब लोगों में फैल गई।

विशाखा एक धनी घर में जा रही थी। इसका भैया को हर्ष था। भाभी को भी शायद उसके भाग्य से ईर्षा हो रही हो लेकिन हम दोनों को यह सम्बन्ध कोई रुचिकर विषय न था।

एक दिन विशाखा ने मुझे और मैंने विशाखा को अपना जीवन-संगी बनाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। वही विशाखा आज भी थी परन्तु उसमें शक्ति न थी कि खुलकर कुछ कहे। चवालिस वर्ष के पति की स्त्री होने के गौरव को उसकी कोमल वय सह नहीं सकती थी, इसीलिए वह इन दिनों सिर उठाकर बात नहीं कर पा रही थी। बात बात में तर्क उठाने-वाली विशाखा गऊ की भांति सीधी और अवश हो रही थी।

मैंने विशाखा से कहा—जितना पढ़ लिख चुका हूं उससे आगे मैं किताबों से माथापच्ची करने में अपने को अक्षम पा रहा हूँ। विद्या भी मेरे जैसे बुद्धि के कुबड़े को पसन्द नहीं करती इतना उसने मुझसे कह दिया है। इसलिए तुम्हें अपनी खातिर नहीं तो मेरी खातिर यह संबंध स्वीकार करना ही है।

"मेरे स्वीकार-अस्वीकार पर अब जो बात निर्भर नहीं है। उसका

जबरदस्ती श्रेय लेना मैं नहीं चाहती। जो कुछ आरंभ होगया है वही होगा।"

"यही तो एक बुद्धिमती लड़की के योग्य बातें हैं। विशाखा, मैं इसके लिए तुमसे पूरी तरह सन्तुष्ट हूं।"

"किसी के संतोष के लिए विशाखा कभी कुछ नहीं करती, यह बात क्या तुम्हें फिर आज बतानी होगी।"

"आज शिष्या गुरु को पढ़ायेगी? कलिकाल में जो न देखना पड़े वही बहुत है।"

"गुरु बनने का मोह तो कभी तुम्हें हुआ नहीं था। आज उसके जागने के समय तो संध्या का अँधेरा घिर रहा है।"

मैंने कहा—छोड़ो इन बातों को। काम की बात यह है कि तुम जब दस बारह दिन में रानी के आसन पर जा विराजो तो निकम्मे गुरु का भी थोड़ा ध्यान रखना। अपने यहाँ किसी न किसी स्थान पर उसे लगवा देने की सिफारिश कर देना। किसी भी छोटे मोटे काम से लग कर वह शायद कुछ बन जाय।

"विशाखा के शरीर की इतनी बड़ी सार्थकता भी हो सकती है। यह बात तो मेरे ध्यान में ही न आई थी।"

"वैभव की चकाचौंध में आँखें अच्छी तरह खोलकर और बुद्धि को सक्रिय बनाकर चले बिना पदपद पर ठोकर खानी होती है।"

"यह बात मैं याद रखूँगी।"

"तो तुम विशाखा से विजया बन जाओगी।"

"यही मेरे गुरुवर का आशीर्वाद है?"

"हाँ,।"

विशाखा ने ससुराल से आये वस्त्राभूषण बिना किसी संकोच के धारण कर लिए। हीरे-मोतियों में अपनी बहिन को जड़ी देखकर भाभी राधारानी के हर्ष का पार नहीं था। वे रत्नाभूषणों और बनारसी साड़ियों को देखती थीं फिर अपनी विशाखा की छवि को। न मालूम उनके हृदय में

होगा कि सोहनपुर में पहुँचकर मैं स्थापित तो होगया और यह निश्चय करके स्थित हुआ कि अब यहीं स्थायी वास करूँगा।

मेरे रगढग से बुआ को धीरज हुआ। परन्तु गाँव का जीवन आरंभ में जैसा आकर्षण रखता है वैसा वहाँ बस जाने की इच्छा कर लेने के बाद नहीं रहता। मेरे अपने अनुभव ने मुझे यही ज्ञान दिया है। सभव है अपने भाग्य का यह दोष रहा हो। एक अस्थिर फिरन्दर प्राणी के अक भाग्य में लिखा लाने की वजह से ही चाहे मैं कहीं टिक न पाया होऊँ, कौन जाने?

खैर इतने दिनों में सोहनपुर की दुनियाँ में कायाकल्प हो चुका है। मेरी उदास और नीरस घड़ियों में मिश्री की डलियाँ घोलनेवाली मेरी बाल्य सहचरी बिट्टो अपनी ससुराल चली गई है। उसके लबे चौड़े घर में उसकी अम्मा अकेली रहती है। बिट्टो के ब्याह के बाद उनके मकान में आग लग गई थी। उसी आग के घेरे में आजाने से उनकी आँखों को नुकसान पहुँच गया था। अब तो वे आँखों से बिलकुल लाचार हैं।

मुझे अपने समीप पाकर वे भी रो पड़ीं, बोलीं—देखो, बेटा मैं इस दुर्भाग्य की जिन्दगी बिताने के लिए अब तक बची हूँ। मेरा जी भीतर भीतर ही कलपता रहता है। सोचती हूँ कि अब मैं किसलिए जी रही हूँ? अभी क्या कोई और अनिष्ट मुझे देखने हैं? भगवान मेरी बच्ची को सुखी रक्खे।

मैंने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा - अम्मा भगवान पर तुम्हें भरोसा है तो वे अवश्य ही तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।

इसके बाद बीते दिनों की अनेक बातें उन्होंने कीं और मेरी सजग कल्पना को कितने वर्ष अतीत की दुनियाँ में पहुँचा दिया। मैं उन घड़ियों के लिए बेचैन हो उठा। काश, एक बार सिर्फ एक क्षण के लिए वे दिन फिर लौट आते।

मैंने ठंडी साँस भर कर पूछा—अम्मा, बिट्टो ससुराल में सुखी तो है?

इसके उत्तर में वे कुछ व्यथित होकर बोलीं—सुखी ही है बेटा। ससुराल का सुख माथे के सुहाग से होता है।

मैंने कहा—इसमें मुझे कुछ शंका होती है अम्मा।

तुम्हारी शंका सही है बेटा—वे बोलीं। कहते कहते उनके गले के साथ उनकी आँखें भी उमड़ आईं।

तो उसे क्या दुख है?—मैंने साग्रह पूछा।

"स्वामी के सुख से ही वह वंचित है बेटा। कहीं मैं ब्याह से पहले यह बात जान पाती तो अपनी बच्ची को बचा लेती। बेटा, तुम तो बहुत पढ़े-लिखे हो। क्या कोई शास्त्र ऐसा नहीं है जो इस छोटी सी भूल के सुधार का कोई उपाय बता सके?" कहते कहते उनकी हिचकियाँ बँध गईं।

मैंने उन्हें अनेक प्रकार के प्रबोधन देकर समझाने की चेष्टा की परन्तु सब व्यर्थ। आखिर मैंने कहा—अम्मा, ये शास्त्र-वास्त्र मनुष्य ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किलेबन्दी के रूप में निर्माण किये हैं। भगवान और धर्म के नाम की मुहर लगाकर वह न जाने कितने दिनों से उनकी ओट में सुरक्षित है। मजे से पड़ा पड़ा अत्याचारों की सेज पर सुख की नींद सो रहा है।

मेरे वक्तव्य का अधिकांश शायद वे सुन भी न सकीं। अपनी ही झोंक में कहने लगीं—बेटा रमेश, तुमसे इतने दिन बाद अपने भीतर की एक बात कहूं जो मैंने कभी किसी से नहीं कही। कई बार तुम दोनों को साथ खेलते देखकर मेरे जी में कितनी बार यह साध जगी थी कि यह जोड़ी कैसी सुन्दर रहेगी। एक दो बार सोचा भी था कि तुम्हारी बुआ से चर्चा चलाऊँ। कहीं वह मेरी मनोकामना पूरी हो जाती तो आज मैं सुख से मर सकती। मन भीतर भीतर इस तरह न कलपता। हाय, राम!

यह बात कहकर उन्होंने बहुत वर्ष पूर्व बुआ के प्रस्ताव की मुझे याद दिला दी। बुआ ने भी ऐसी ही कामना की थी। तभी तो उन्होंने मुझसे पूछा था, बिट्टो कैसी लड़की है? उससे तेरा ब्याह कर दूँ तो कैसा रहे?

उस समय मेरा उत्तर बिल्कुल बचपन से भरा था किन्तु आज बिट्टो की अम्मा के मुख से उक्त शब्द सुनकर मैं कुछ भी न कह सका। मेरे भीतर एक अस्फुट दीर्घ निश्वास उमड़ कर रह गई।

कुछ देर मौन रहकर मैंने पूछा—अम्मा, इतनी भारी भूल कैसे होगई तुमसे ?

"क्या बताऊँ बच्चा। मेरी एक बचपन की सखी हैं। भला मैं उनका विश्वास न करती ? मेरी सखी ही मुझे धोखा देंगी यह मैं जान भी कैसे पाती ? वे अनूपशहर में ब्याही हैं। मौसी के घर आई थीं। वहाँ बरसों बाद भेंट हुई। बिट्टो को देखा तो सिहा गईं और अपने लडके के लिए माँग लिया उसे।"

"तुमने लडका नहीं देखा था ?"

"देखा था। लड़का देखने से क्या होता है बेटा। हाथ पाँव, नख-शिख सभी तो पूरे हैं। भीतरी खोट को मैं कैसे जानती ?"

"बडा धोखा हुआ तब तो। और उन पापियों ने इतना बडा अन्याय हो कैसे जाने दिया ?"

"मेरी बच्ची का सर्वनाश कर दिया। उसे जीवन-भर की नरक ज्वाला में झोंक दिया। मैं तो उस अपनी सखी कहलानेवाली बैरिन को रोज सबेरे बासे मुँह कोसती हू कि उसको जन्मजन्मान्तर में कभी दाम्पत्य सुख न मिले।—मुझे विश्वास है नहीं मिलेगा।"

"ऐसी बात है तो तुम डरती क्यों हो ? बुला लो न उसे यहाँ। अभी उसका बिगडा क्या है ?"

"कुछ नहीं बिगड़ा है भैया। वह तो अभी कुँवारी ही है। दो बरस ब्याह हुए होगये। उसने एक दिन भी नहीं जाना कि पति किसे कहते हैं।"

"तब तुम्हारा रास्ता खुला है। उसे कौन रोक सकता है ? तुम धर्मशास्त्र की बात कहोगी। धर्मशास्त्र भी तो यह नहीं कहता। अम्मा, तुम उसे बुला लो।"

"लेकिन वे राक्षस भेजते कब हैं उसे। वहीं जाकर दो बार मैं देख आई हू। जब जी नहीं माना तब चली गई।"

"कानून भी तो यह अन्याय नहीं सह सकता। जरूरत हो तो कानून की सहायता लेना भी बुरा नहीं है।"

"भैया, लेकिन वे इस बात को मानते जो नहीं। उन्होने तो कह रक्खा है कि लड़की में दोष है। जिस दिन से ब्याह कर गई है उसे औषधि और पथ्य दिया जा रहा है। एक दिन भी तो उससे मुक्ति नहीं मिली है उसे।"

"यह सब बहाने नहीं चलेंगे उनके। कानून परीक्षा करके देखता है।"

"मैं अन्धी हो गई हूं। कचहरी-अदालत में मुझसे दौड़ कब होगी? बच्ची को भी दुनियां के सामने अपनी लाज उघारनी पड़ेगी। क्या वह कभी इसके लिए तैयार होगी?"

अच्छी बात है। मैं ही कोई उपाय सोचूंगा—कहकर मैं चला आया क्योंकि बुआ का बुलावा पहुंच गया था।

घर में प्रवेश करते ही देखा बुआ प्रतीक्षा में खड़ी हैं। मैंने पूछा—क्या बात है?

वे—बात यह है रमेश बेटा कि अब हमें घर खाली नहीं रखना है। घर में बहू ले आनी है। मेरे रहते वह घर-आंगन देख ले।

मैं—तो यही कहने के लिए मुझे बुला भेजा था?

वे—क्यों क्या यह छोटी-सी बात है?

"छोटी सी तो नहीं। है तो बड़ी सी। इसलिए मैंने पूछा कि जो इतनी बड़ी और गंभीर बात है उसे इस तरह खड़े खड़े कैसे तय किया जा सकेगा?"

"तो, चलो उसे बैठकर आज तय कर लें।"

कहाँ चलना होगा?—मैंने पूछा।

वे बोलीं—भीतर।

बुआ और मैं भीतर जाकर बैठे। बुआ बोलीं—मैं अब कितने दिन की हूँ? जीते जी घर-आंगन में बहू की रुनझुन देख जाऊँ तो जी सिराये।

मैंने बड़े इतमीनान से उत्तर दिया—क्या पता है कि उसकी पैंजल में सर्दी के बजाय गर्मी न पैदा होगी, और जी शीतल होने के बजाय उत्तप्त न होगा?

कुछ देर मौन रहकर मैंने पूछा—अम्मा, इतनी भारी भूल कैसे होगई तुमसे ?

"क्या बताऊँ बच्चा। मेरी एक बचपन की सखी हैं। भला मैं उनका विश्वास न करती ? मेरी सखी ही मुझे धोखा देंगी यह मैं जान भी कैसे पाती ? वे अनूपशहर में ब्याही हैं। मौसी के घर आई थीं। वहाँ बरसों बाद भेंट हुई। बिट्टो को देखा तो सिहा गई और अपने लड़के के लिए माँग लिया उसे।"

"तुमने लड़का नहीं देखा था ?"

"देखा था। लड़का देखने से क्या होता है बेटा। हाथ पाँव, नख-शिख सभी तो पूरे हैं। भीतरी खोट को मैं कैसे जानती ?"

"बड़ा धोखा हुआ तब तो। और उन पापियों ने इतना बड़ा अन्याय हो कैसे जाने दिया ?"

"मेरी बच्ची का सर्वनाश कर दिया। उसे जीवन-भर की नरक ज्वाला में झोंक दिया। मैं तो उस अपनी सखी कहलानेवाली वैरिन को रोज सबेरे बासे मुँह कोसती हू कि उसको जन्मजन्मान्तर में कभी दाम्पत्य सुख न मिले।—मुझे विश्वास है नहीं मिलेगा।"

"ऐसी बात है तो तुम डरती क्यों हो ? बुला लो न उसे यहाँ। अभी उसका बिगड़ा क्या है ?"

"कुछ नहीं बिगड़ा है भैया। वह तो अभी कुँवारी ही है। दो बरस ब्याह हुए होगये। उसने एक दिन भी नहीं जाना कि पति किसे कहते हैं।"

"तब तुम्हारा रास्ता खुला है। उसे कौन रोक सकता है ? तुम धर्मशास्त्र की बात कहोगी। धर्मशास्त्र भी तो यह नहीं कहता। अम्मा, तुम उसे बुला लो।"

"लेकिन वे राचस भेजते कब है उसे। वहीं जाकर दो बार मैं देख आई हू। जब जी नहीं माना तब चली गई।"

"कानून भी तो यह अन्याय नहीं सह सकता। जरूरत हो तो कानून की सहायता लेना भी बुरा नहीं है।"

"भैया, लेकिन वे इस बात को मानते जो नहीं। उन्होंने तो कह रक्खा है कि लड़की में दोष है। जिस दिन से व्याह कर गई है उसे औषधि और पथ्य दिया जा रहा है। एक दिन भी तो उससे मुक्ति नहीं मिली है उसे।"

"यह सब बहाने नहीं चलेंगे उनके। कानून परीक्षा करके देखता है।"

"मैं अन्धी हो गई हूं। कचहरी-अदालत में मुझसे दौड़ कब होगी? बच्ची को भी दुनियां के सामने अपनी लाज उघारनी पड़ेगी। क्या वह कभी इसके लिए तैयार होगी?"

अच्छी बात है। मैं ही कोई उपाय सोचूंगा—कहकर मैं चला आया क्योंकि बुआ का बुलावा पहुंच गया था।

घर में प्रवेश करते ही देखा बुआ प्रतीक्षा में खड़ी हैं। मैंने पूछा—क्या बात है?

वे—बात यह है रमेश बेटा कि अब हमें घर खाली नहीं रखना है। घर में बहू ले आनी है। मेरे रहते वह घर-आंगन देख ले।

मैं—तो यही कहने के लिए मुझे बुला भेजा था?

वे—क्यों क्या यह छोटी-सी बात है?

"छोटी सी तो नहीं। है तो बड़ी सी। इसलिए मैंने पूछा कि जो इतनी बड़ी और गंभीर बात है उसे इस तरह खड़े खड़े कैसे तय किया जा सकेगा?"

"तो, चलो उसे बैठकर आज तय कर लें।"

कहाँ चलना होगा?—मैंने पूछा।

वे बोलीं—भीतर।

बुआ और मैं भीतर जाकर बैठे। बुआ बोलीं—मैं अब कितने दिन की हूँ? जीते जी घर-आंगन में बहू की रुनझुन देख जाऊँ तो जी सिराये।

मैंने बड़े इतमीनान से उत्तर दिया—क्या पता है कि उसकी पैंजल में सर्दी के बजाय गर्मी न पैदा होगी, और जी शीतल होने के बजाय उत्तप्त न होगा?

इस पर बुआ ने मेरे मुख की ओर देखा कि मैं बात को गंभीरता से कह रहा हूँ या योंही उड़ा रहा हूँ। जब मेरी गंभीर आकृति से उन्हें विश्वास होगया कि उनकी शंका निर्मूल थी तो वे कहने लगीं—दूसरा काम जो तुम्हारे ब्याह से पहले कर लेना है वह है इस जमीन-जायदाद को तुम्हारे नाम करवा देना।

मैंने कहा—बात तो बड़ी अच्छी है। ऐसा करने में मेरा लाभ ही लाभ है। लेकिन क्या कोई ऐसा भी है जो आशा लगाये बैठा हो? मेरे नाम कर देने से वह अपने अधिकार को छिना हुआ समझे?

"ऐसे समझनेवाले बहुत हैं भैया। लेकिन उनके समझने से क्या होता है? इसीलिए तो मैं कह रही हूँ कि ब्याह से पहले यह सब कर लेना होगा।"

"किसी को कलपाकर उसके प्राप्य पर अधिकार कर लेना मुझसे नहीं होगा। जिसका जो है मेरे कारण उसे वह न मिले, यह मुझे कभी रुचिकर नहीं है।"

"बेटा, तुम नासमझ नहीं हो। तुम्हें मैं जो सौंप रही हू वह अपनी इच्छा से। अपनी चीज को मैं जिसे चाहूँ उसे देने का मुझे अधिकार है।"

"यह ठीक है। परन्तु लेना न लेना तो मुझ पर है?"

"तुम्हारे ऊपर कुछ नहीं है। मैं तुमसे नाहक ही ऐसी चर्चा कर रही हू। कोई भी सीधी और सच्ची बात तुम्हारी समझ में कभी आई नहीं। चलो छोड़ो इसे। पहले ब्याह की बात करो। मैंने तुम्हारे लिए एक लड़की की बातचीत चलाई है।"

मैंने हँसकर कहा—सिर्फ बात ही तो चलाई है। अच्छी बात है। इससे आगे कोई बात करने की जरूरत हो तो मुझसे राय ले लेना अच्छा होगा।

इस बात पर निश्चय ही बुआ कुछ कुढ़ उठीं, बोलीं—रमेश, तुम्हारी बात सदा ऊटपटांग होती है। भला तुम्हारी क्या राय इसमें लेनी होगी? लड़की कुबड़ी, कानी, लँगड़ी नहीं है। मैंने यह देख लिया है।

तुम और उसमें क्या करोगे ?

मैंने अपनी एक एक बात पर बल देकर समझाने के तरीके से कहा—बुआ, तुम्हें मालूम है कि मैं किसी योग्य नहीं हूं। मुझसे यह शरीर ही नहीं सँभलता है। उसके ऊपर एक लड़की का बोझ डालकर क्या तुम निश्चिन्त हो सकोगी ? मेरा क्या ठिकाना है, इस समय मैं यहां हूँ और लहर आने पर न जाने कहाँ चला जाऊँगा। मेरा सैलानी जीवन क्या गृहस्थी के झंझट में पड़ने के लिए है ?

मेरी बात पर बुआ ने गौर करके बड़ी आत्मीयता के लहजे में कहा—यही बात तो मेरे जी में हर घड़ी चुभती रहती है कि मेरी आँखें मिच जाने के बाद तुम्हारा जीवन न जाने कैसे बीतेगा ? तुम्हारे सैलानीपन से चिन्तित होकर ही मैंने यह तय किया है कि तुम्हारे पैरों में ऐसी बेड़ियाँ डालती जाऊँ जो तुम्हें बांधे रक्खें।

मैं - यही बात है तो मेरे पैर ये रहे। इन्हें जैसे चाहें जकड़ जायें। यह ख्याल रहे कि सांकल मजबूत डालनी होगी। कहीं मझधार में उसे छोड़ कर ये चपत न हो जायं।

ईश्वर चाहेगा तो ऐसा न होगा—उन्होने सहास्य कहा।

मैं बोला—लेकिन मुझे सोचने समझने को तो कुछ समय मिलेगा ?

"बहुतेरा मिल चुका है। बीस-बाईस साल के जीवन का एक बड़ा भाग क्या इसी तरह सोच विचार में नहीं बीता है ? इतने में ही अकल नहीं आई तो क्या दो-एक दिन में आ जायेगी ?"

मेरी बुद्धि पर तुम्हें इतना भी भरोसा नहीं है ? सच कहना बुआ। —मैंने पूछा।

"कैसे हो ? जिसके बुद्धि होती है वह अपने भले बुरे की बात पहले सोचता है। एक छोटा बच्चा भी तुम्हारी तरह लापरवाही से नहीं रहता। अपने स्वार्थ के लिए इतनी उपेक्षा दिखाने से दुनियां में कभी आराम से नहीं रहा जा सकता।"

"मैं मना कब करता हूँ ? आप मेरी सुख-शांति का बीमा बेच

"जिस गृहस्थी को मैंने इतने मोह से जोड़ा है उसका बीमा बेच जाने की ही मेरी इच्छा है। देखती हू कि घर की कुंजियों को सहेजनेवाली को लाकर उसे ये सौंप जाऊँ। इस बारे में अब तुम सोचने-समझने की जिद छोड़ दो।"

"छोड़ दी। मैं आपकी इच्छा का विरोध कब करता हूँ?"

इतनी बात तय हो जाने के दो चार दिन बाद ही एक सवेरे बैलगाड़ी दरवाजे पर आ लगी। बुआ ने मुझे सोते से जगाकर कहा—उठो रमेश, ग्रहण नहाने चलेंगे।

मैंने लेटे लेटे ही कहा—मैं न जाऊँगा। चन्द्रमा का कलंक इस कमरे के भीतर नहीं आने पाया है। कालुष्य से सर्वथा सुरक्षित रहने से मेरे लिए शुद्धि की जरूरत नहीं है। आप जायें।

वे कब माननेवाली थीं। आग्रह किया और मुझे उठाकर अपने साथ ही ले गईं। वहाँ पता चला कि ग्रहण-स्नान उनका मुख्य उद्देश्य नहीं था। उस बहाने मुझे कोकिला को दिखाना चाहती थीं। सो मैंने उसे देख लिया और उससे दो-चार बातें भी कर सका। बात करने का मौका शायद न भी आता, क्योंकि कोकिला यों मुझसे अपरिचित होने पर भी शायद यह बात जानती थी कि उसके माँ-बाप उसे वहाँ क्यों लाये हैं? हम लोग कौन हैं, क्या उद्देश्य लेकर निमन्त्रित हुए हैं? इसीसे उसके संकोच की मात्रा बढ़ गई थी।

बात यों हुई कि पाँच छः बरस का उसका भाई मेले में खो गया। हम सब लोग परस्पर परिचय में लगे रहे और वह छोटा-सा बच्चा भीड़ में पड़कर न जाने किधर चला गया। जब उसकी खोज हुई तो कहीं पता न चला। सब लोग इधर उधर दौड़े। सबसे बड़ा भय हो रहा था कि कहीं वह गंगा में तो नहीं जा पड़ा है? उसके माँ-बाप की बुरी दशा थी। लड़के की माँ, मेरी भावी सास, देवताओं की मनौतियाँ मानने और हाय हाय करने लगीं। बाप के हाथ पैर फूल गये।

मैंने उन्हें समझाया—घबड़ायें नहीं। इधर उधर तलाश करें। अभी

मिल जायगा। तब तक मैं जाकर सेवासमिति के दफ्तर और पुलिस कैंप में सूचित कर देता हूं।

इतना कहकर मैं वहाँ से चल पड़ा। इससे उन लोगों को तसल्ली थोड़ी बहुत हुई होगी पर चिन्ता नहीं मिटी थी। इसलिए जहाँ जिसका जी आया वहाँ वह उसे खोजने को दौड़ पड़ा। कोकिला ने दूर एक छोटे बच्चे को जाते देखा तो वह वहीं दौड़ गई। वह अपने स्थान से इतनी दूर चली गई कि फिर वहीं पहुंचना उसके लिए कठिन हो गया।

मैं भागा-भागा सेवासमिति में गया। वहाँ लड़के का नाम और हुलिया लिखा दिया। इसके बाद पुलिस कैंप में पहुँचा। वहाँ भी रिपोर्ट दर्ज करा दी। मैं लौट रहा था कि एक कान्स्टेबल कोकिला के भाई को लेकर आ पहुंचा। मैंने पुलिस इन्चार्ज से कहा—यही बच्चा है जनाब।

उत्तर मिला—आप उसके माँ-बाप को यहाँ ले आइये। उनके आने पर बच्चा उन्हें सौंप दिया जायगा।

यह कायदे की बात मुझे माननी पड़ी। मैं अपने स्थान की ओर चल पड़ा। रास्ते में मैं अकचका गया जब अचानक कोकिला करीब मेरी बाहों में आ पड़ी। वह बड़ी व्यस्त हो रही थी। लगता था जैसे कोसों से भागती हुई चली आ रही है। साँस उसकी फूल रही थी। शरीर काँप रहा था और एकदम भय से व्याकुल हो रही थी। मुझे देखकर जैसे शरण पा गई।

मैंने दोनों हाथों से सहारा देकर उसे गिरने से बचाते हुए पूछा—क्या हुआ है?

वह प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करती हुई बोली—भैया को ढूँढ रही थी। भीड़ में मैं ही खोगई।

तो इतना भयभीत होने की क्या बात है?—मैंने पूछा।

उसने कुछ उत्तर तो नहीं दिया परन्तु अपने पीछे इधर उधर इस प्रकार देखा जैसे किसी को बता रही हो।

मैंने पूछा—किसे देख रही हो?

आखिर उसने मुँह नीचा करके कहा—वे दो मेरे पीछे लग गये थे।

"जिस गृहस्थी को मैंने इतने मोह से जोड़ा है उसका बीमा बेच जाने की ही मेरी इच्छा है। देखती हूं कि घर की कुंजियों को सहेजनेवाली को लाकर उसे ये सौंप जाऊँ। इस बारे में अब तुम सोचने-समझने की जिद छोड़ दो।"

"छोड़ दी। मैं आपकी इच्छा का विरोध कब करता हूँ?"

इतनी बात तय हो जाने के दो चार दिन बाद ही एक सवेरे बैलगाड़ी दरवाजे पर आ लगी। बुआ ने मुझे सोते से जगाकर कहा—उठो रमेश, ग्रहण नहाने चलेंगे।

मैंने लेटे लेटे ही कहा—मैं न जाऊँगा। चन्द्रमा का कलंक इस कमरे के भीतर नहीं आने पाया है। कालुष्य से सर्वथा सुरक्षित रहने से मेरे लिए शुद्धि की जरूरत नहीं है। आप जायें।

वे कब माननेवाली थीं। आग्रह किया और मुझे उठाकर अपने साथ ही ले गईं। वहाँ पता चला कि ग्रहण-स्नान उनका मुख्य उद्देश्य नहीं था। उस बहाने मुझे कोकिला को दिखाना चाहती थीं। सो मैंने उसे देख लिया और उससे दो-चार बातें भी कर सका। बात करने का मौका शायद न भी आता, क्योंकि कोकिला यों मुझसे अपरिचित होने पर भी शायद यह बात जानती थी कि उसके माँ-बाप उसे वहाँ क्यों लाये हैं? हम लोग कौन हैं, क्या उद्देश्य लेकर निमन्त्रित हुए हैं? इसीसे उसके संकोच की मात्रा बढ़ गई थी।

बात यों हुई कि पाँच छ बरस का उसका भाई मेले में खो गया। हम सब लोग परस्पर परिचय में लगे रहे और वह छोटा-सा बच्चा भीड़ में पड़कर न जाने किधर चला गया। जब उसकी खोज हुई तो कहीं पता न चला। सब लोग इधर उधर दौड़े। सबसे बड़ा भय हो रहा था कि कहीं वह गंगा में तो नहीं जा पड़ा है? उसके माँ-बाप की बुरी दशा थी। लड़के की माँ, मेरी भावी सास, देवताओं की मनौतियाँ मानने और हाय हाय करने लगीं। बाप के हाथ पैर फूल गये।

मैंने उन्हें समझाया—घबड़ायें नहीं। इधर उधर तलाश करें। अभी

मिल जायगा। तब तक मैं जाकर सेवासमिति के दफ्तर और पुलिस कैंप में सूचित कर देता हूं।

इतना कहकर मैं वहाँ से चल पड़ा। इससे उन लोगों को तसल्ली थोड़ी बहुत हुई होगी पर चिन्ता नहीं मिटी थी। इसलिए जहाँ जिसका जी आया वहाँ वह उसे खोजने को दौड़ पड़ा। कोकिला ने दूर एक छोटे बच्चे को जाते देखा तो वह वहीं दौड़ गई। वह अपने स्थान से इतनी दूर चली गई कि फिर वहीं पहुंचना उसके लिए कठिन हो गया।

मैं भागा-भागा सेवासमिति में गया। वहाँ लड़के का नाम और हुलिया लिखा दिया। इसके बाद पुलिस कैंप में पहुँचा। वहाँ भी रिपोर्ट दर्ज करा दी। मैं लौट रहा था कि एक कान्स्टेबल कोकिला के भाई को लेकर आ पहुंचा। मैंने पुलिस इन्चार्ज से कहा—यही बच्चा है जनाब।

उत्तर मिला—आप उसके माँ-बाप को यहाँ ले आइये। उनके आने पर बच्चा उन्हें सौंप दिया जायगा।

यह कायदे की बात मुझे माननी पड़ी। मैं अपने स्थान की ओर चल पड़ा। रास्ते में मैं अकचका गया जब अचानक कोकिला करीब मेरी बाहों में आ पड़ी। वह बड़ी व्यस्त हो रही थी। लगता था जैसे कोसों से भागती हुई चली आ रही है। साँस उसकी फूल रही थी। शरीर काँप रहा था और एकदम भय से व्याकुल हो रही थी। मुझे देखकर जैसे शरण पा गई।

मैंने दोनों हाथों से सहारा देकर उसे गिरने से बचाते हुए पूछा—क्या हुआ है?

वह प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करती हुई बोली—भैया को ढूँढ रही थी। भीड़ में मैं ही खोगई।

तो इतना भयभीत होने की क्या बात है?—मैंने पूछा।

उसने कुछ उत्तर तो नहीं दिया परन्तु अपने पीछे इधर उधर इस प्रकार देखा जैसे किसी को बता रही हो।

मैंने पूछा—किसे देख रही हो?

आखिर उसने मुँह नीचा करके कहा—वे दो मेरे पीछे लग गये थे।

मैंने भीड़ की ओर देखकर पूछा—कौन ?

उसने उँगली से बताया भी पर भारी भीड़ में क्या मैं उन्हें देख सकता था ? सदाचार के देश में, गंगा के पवित्र तट पर, भारत की नारी का क्या यही उचित सम्मान है ? कच और राम के आदर्शों के बीच पले हुए भारत के युवकों के लिए क्या यही शोभनीय आचार है ? मैं मन ही मन इन बातों पर सोचता हुआ कोकिला के साथ चल पड़ा। स्थान पर पहुंचकर खबर दी कि बच्चा पुलिस कैंप में पहुंच गया है। जाने से मिल जायगा।

मेरी योग्यता का शत मुख से बखान करते हुए कोकिला के माँ बाप दो एक और साथियों को लेकर वहाँ गये। मैं भी साथ जा रहा था पर उन्होंने मुझे यह कहकर रोक दिया—तुम बैठो भैया। तुम थक गये हो।

दो तीन स्त्रियाँ रह गई थीं वे बुआ को साथ लेकर पास की दूकान से बच्चों के लिए खिलौने खरीदने लगीं। अकेली कोकिला से दो चार बातें करने का मौका मुझे मिल गया। मैंने पूछा—आज तुम्हें मैं न मिलता तो क्या करतीं ?

मैं नहीं जानती—उसने संक्षेप में कहा।

मैं—तुम यहाँ क्यों आई हो ?

कोकिला—मैं नहीं जानती।

मैं—ग्रहण नहाने आई हो ?

कोकिला—मैं नहीं जानती।

मैं हँस पड़ा। मैंने कहा—यह भी नहीं जानती, वह भी नहीं जानती। फिर आखिर तुम कुछ जानती भी हो ?

नहीं—उसने सिर हिलाकर जताया।

मैंने कहा—तुम यह तो जानती हो कि मैं कौन हूँ ?

पता नहीं—उसने कहा।

और यह पता है कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ, या कहो बुलवाया गया हूँ ?—मैंने पूछा।

इस पर कुछ विशेष लजाकर उसने धीरे से कहा—नहीं।

मैंने कुछ तेज होकर कहा—तुम झूठ बोलती हो। तुम्हें सब कुछ मालूम है।

इस पर उसने अपना मुँह अपने अचल में छिपा लिया।

मैंने कहा—अच्छी बात है मानलो तुम नहीं जानती हो। लेकिन मेरा ख्याल है कि ये सब लोग तुम्हें मेरे साथ व्याहना चाहते हैं।

शायद उसे संभावना न थी कि उससे मैं इस तरह की बातें भी कर सकता हूँ। यदि वश चलता तो वह जमीन मे धँस जाती। मैंने इस बात की परवाह नहीं की। मैंने कहा—देखो कोकिला, मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूं। तुम एक अच्छी सुशील लडकी हो। तुम्हे मैं धोखा देना नहीं चाहता। मैं एक बहुत ही आवारा आदमी हूँ। मेरे साथ व्याह करके तुम कभी सुखी न हो सकोगी। तुम इस संबध को कभी मजूर न कर लेना।

मैंने देखा उसने दो डबडबाई आँखें उठाकर मुझे ताका और फिर सिर झुका लिया। शायद वह यह जानना चाहती थी कि कहीं मैं उसे भुलावा तो नहीं दे रहा हू ?

मैंने कहा—मैं सच कहता हूँ कोकिला। न तो मेरे घर है न कहीं ठौर-ठिकाना। मेरी बुआ के बहकाने में मत आ जाना। पीछे सारी जिन्दगी भर पछताना पडेगा। फिर मुझे दोष न दे सकोगी।

मुझे इतमीनान हो गया कि मेरी बातों का उत्तर न देकर भी उसने उनको विश्वास के योग्य समझ लिया। कृतज्ञता से भरी हुई उसकी दोनों आखें मुझे सदा याद रहेंगी। कोकिला का यह संक्षेप सा परिचय मेरे जीवन का एक अविस्मरणीय क्षण है। जब जब दुख और कष्ट के अवसर आये हैं या आते हैं तब तब वे दो आंखें मेरे सामने आजाती हैं और मुझे लगता है कि उनके बिना शायद मेरे जीवन में कहीं पर एक बड़ा अभाव-सा रह गया। उन्हें खोकर मैंने कुछ ऐसा खो दिया है जिसकी पूर्ति न कभी हो पाई न हो पायेगी। शायद यह सब इसलिए भी हो कि इस संबध के न होने से बुआ की आत्मा को कष्ट पहुचा था। वही घनीभूत होकर मेरे मन पर छा गया। बड़ों की आत्मा को दुखाने से क्या कभी किसी ने सुख

मैं अपने घर में सहजभाव से जो कुछ बोलता वह बिट्टो के यहाँ सुन लिया जा सकता, इतने पास रहकर भी इस समय में उससे कोसों दूर अपने आपको मान रहा था। मेरा मन कुछ इतना आन्दोलित, कुछ इतना आच्छन्न हो रहा था कि कुछ स्थिर नहीं कर पाता था। सारे दिन घर के भीतर पड़ा ऊब ऊब उठता पर निकलकर कहीं बाहर जाने की इच्छा न होती। बाहर जाता भी तो भगवान् से मनाता कि कहीं उससे (बिट्टो से) सामना न हो जाय। जी भीतर भीतर धुकुर-धुकुर करता रहता। न जाने क्यों मेरे अन्दर इतना भय समा गया था? मन कह रहा था कि अब कोई आता है, अब कोई पुकारता है और मुझे वहाँ बुला ले जाता है लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। न किसी ने मुझे बुलाया, न घर से बाहर आते-जाते मुझे कोई नजर पड़ा। दिन बीत गये। सप्ताह बीत गये। लगता था कि उस घर में कोई रहता ही नहीं है। मुर्दों की शांति से ढका हुआ वह घर कभी कभी मौन क्रन्दन कर उठता था, फिर थोड़ी देर में शांत हो जाता था। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता था मेरे हृदय का साहस खोता जाता था। मैं अपने को अपराधी मान कर और भी दीन-हीन बनता जा रहा था।

इस बार जब से मैं सोहनपुर लौट कर आया हूं प्राय. घर में ही घुसा हूं। किसी से मिला-जुला भी नहीं। बुआ ने आज ठेलकर मुझे घर से खदेड़ा और भगवान् सत्यनारायण की कथा सुनने भेज दिया। गाँव में सत्यनारायण की कथा एक सामाजिक उत्सव है। उसका बड़ा माहात्म्य है।

वहाँ कई पुराने साथियों से भेंट हुई। तोता और चन्दन अब वैसे नहीं रहे हैं। वे बढ़कर जवान हो गये हैं। अपने अपने काम में लग गये हैं। वह दिलेरी और लापरवाही जाती रही है। उनसे मिलकर थोड़ी देर तक कितने ही साथियों की बातें चलती रहीं। कौन कहाँ है और क्या करता है इस चर्चा में एक बार सब साथियों का जिक्र आ गया।

मैंने देखा चन्दन की उद्दंडता में अभी तक रत्तीभर फर्क नहीं आया। वह उसी तरह अक्खड़ता से बातें करता है। कमजोर शरीर में क्रोध की

भर पाया है। हड्डियाँ वैसी ही उभरी हुई हैं। जब बात करता है तो पिचके हुए मुँह में आँखें कढ़ आती हैं। तोता के चेहरे पर सौम्यता बढ़ गई है। कर्मरत जीवन की झाँई के कारण श्यामला शरीर और भी काला होजाने से उसमें गंभीरता का वार्धक्य होगया प्रतीत होता है। मैंने उससे हँसकर कहा—कोई एक दो कहानियाँ नहीं सुनाओगे ?

उसने हँसते हुए सिर हिलाकर प्रस्ताव स्वीकार किया पर कहा कि कथा के बाद सुन लेना। लेकिन भगवान की कथा में मेरा मन कतई नहीं लगा। मैं और मेरे साथ ही तोता उठकर चले आये। बाहर निकलकर मैंने पूछा—कहाँ चलोगे ?

इतने दिन बाद तो मिले हो। चलो तुम्हें घुमा लायें।—तोता ने जवाब दिया।

मैंने कहा—प्रसाद लिए बिना चले जाने से जानते हो बुआ घर में घुसने देंगी ?

तोता—छोड़ो जी प्रसाद को। हम लोगों की बातों से प्रसाद थोड़े ही मीठा है।

दो चार ही कदम हम गये होंगे कि देखा पीछे चंदन भी आरहा है। मैंने कहा, अरे भाई ऐसा तो न करो। सब लोग उठकर चले आओगे तो पंडित जी महाराज जरूर रुष्ट होंगे भगवान चाहे कुछ कहें या न कहें।

क्या सुनें ? वे उधर लड़ पड़े दिखते हैं। एक घन्टे उल्लू के पट्ठों से चुप नहीं रहा जाता।—कहता हुआ वह अपने घर की ओर भाग गया, जिधर से जोर जोर से हल्लेगुल्ले की आवाज आरही थी।

मैंने कहा—क्या झगड़ा है ?

तोता—इनका क्या झगड़ा ? अभी सिर फोड़ेंगे, थोड़ी देर में हिलमिल कर बैठेंगे, साथ साथ खायेंगे पियेंगे।

मैं—अजीब आदमी हैं।

अजीब नहीं बड़े निकम्मे हैं ये सब के सब। न मालूम किस शैतान ने इनकी रचना की है। मेरा विश्वास है कि ईश्वर तो अपने हाथों से इन्हें

बना नहीं सकता। छोटे बड़े, बाप बेटे सभी एक काँटे में उतरे हैं।—तोता ने बताया।

यह मैं जानता हूँ। क्या इतनी जल्दी भूल जाऊँगा वे सब बातें ?—मैंने कहा।

तोता —लेकिन भाग के बड़े सिकन्दर हैं। जैसे ही ये एक से एक बढ़कर शैतान की आँत हैं ठीक उसी के विपरीत इन्हें लक्ष्मी और सरस्वती समान घरवाली मिली हैं। विधाता की ऐसी उलटी योजनाओं पर कभी कभी जी बहुत कुढ़ता है।

मैंने उस समय तोता की बातों को सुना तो पर ठीक ठीक उसका अन्दाज कई दिन बाद हो पाया, जब एक सामूहिक उत्सव के अवसर पर उसने बताया कि देख लो, यह रही चंदन की स्त्री और ये उसकी भाभियाँ। गुण-शील तो मैं उनके कैसे जान पाता पर हाँ रूप और गुणों में यदि कोई संबंध होता हो तो वे साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती ही थीं। एक दम सुदर्शन रूप, मक्खन की पुतलियों जैसी कमनीय। ऐसा रूप लाखों में कहीं होता है।

तोता ने कहा—या तो इन्होंने कोई बड़ा पाप किया होगा जो ये इस नरक में आ पड़ी हैं, या इनके मर्दों ने कोई महान तप करके इन्हें वरदान में पाया है, मेरा तो ऐसा ही ख्याल है। तुम्हारी क्या राय है ?

मैंने उत्तर दिया—दो में से एक बात जरूर होनी चाहिए।

आज भी मेरा यही ख्याल है कि मैंने ठीक कहा था। दो में से एक बात हुए बिना ऐसा कैसे सभव हो सकता है ? साक्षात् राक्षसों की उस टोली के लिए विधाता ने उन अप्सराओं की सृष्टि स्वेच्छा से कभी नहीं की होगी। इतनी बड़ी भूल करनेवाला संसार के चलाने की बुद्धि नहीं रख सकता। इतना होने पर भी इस दुनियाँ में, इसी छोटे से जीवन में मुझे अनेक असंगतियाँ देखने को मिल गई। जिनको सुनाने लगें तो विश्वास नहीं होगा परन्तु वे उतनी ही सत्य हैं जैसे नगराज हिमालय का अस्तित्व।

तोता में बाहर से चाहे जितनी गंभीरता आगई हो परन्तु वह भीतर

से वैसा ही सरल और सरस बना है। ग्राम्यजीवन की जो जो विशेषताएँ हैं वे सब उसमें जैसे परिपूर्ण हो गई हैं। सूझबूझ में वह नागरिकों की गिनती नहीं करता। उससे एक बार फिर संपर्क कायम करके सोहनपुर के मेरे कुछ दिन बहुत आनंद से कटे। उसके सजीव वर्णन, उसकी आश्चर्यजनक स्मृति और मधुर वाणी ने एक बार फिर मुझे अतीत के मीठे दिनों में पहुँचा दिया। कुछ तो बीच में कई वर्ष तक सोहनपुर से संपर्क न रहने के कारण, कुछ अपने सहज उदासीन स्वभाव के कारण, मैं उस दूर अतीत की सुखमय स्मृतियों से अलग जा पड़ा था। तोता ने फिर मुझे वहीं पहुंचा दिया।

तोता के साथ सोहनपुर के उन स्थानों को धर्म-तीर्थ की श्रद्धा लेकर मैंने देखा जहाँ बालपन की वे घटनाएँ घटी थीं जो मेरी स्मृति के कोष में अब तक सुरक्षित हैं। निरन्तर दृष्टा के रूप में वर्तमान रहकर तोता ने उन सब में हो रहे परिवर्तन को देखा था। काकभुसुंडी की भांति उसने विगत वर्षों का सही इतिहास मेरे आगे रखने में कोई कसर नहीं की।

उस दिन अचानक हम दोनों एक लकड़ी के तख्त पर बैठे बातें कर रहे थे कि उधर से सिर पर अमरूदों की टोकरी रक्खे मियाँ मौला धीरे धीरे बाजार की ओर जाते दिखाई दिये। विगत वर्षों ने उनके शरीर को कमजोर कर दिया था। फिर भी मैंने देखते ही पहचान लिया। उन्हें देखने से लगता था कि परिवर्तन जैसे हम लोगों के ऊपर आया था वैसा उन पर नहीं। अभी भी उनमें वे विशेषताएँ मौजूद थीं जिनसे वे सहज ही पहचाने जाते थे, जबकि हम लोगों को उतनी आसानी से पहचानना कठिन था।

मैंने आवाज देकर बुलाया। उन्होंने टोकरी लाकर मेरे सामने रख दी और गांव में आया कोई नया बाबू ख्याल करके कहा—निहायत मीठे हैं बाबू साहेब। बोलो कितने दूँ ?

मैंने कहा—मौला मियां, मुझे पहचाना नहीं ?

आंखों को तिलमिलाकर उन्होंने मुझे बारबार देखा। गौर किया, फिर बोले—देखा तो जरूर है। आंखें ठीक काम नहीं देतीं। इसीसे कुछ याद नहीं पड़ता।

मैंने कहा—मैं आपका पुराना कर्जदार हूँ।

मौला मियाँ—अजी वाह जी बाबू साहेब। आपने तो मुझे एक लहमें में साहूकार बना दिया।

मैं—नहीं, मैं सच कह रहा हूँ। आपको याद नहीं होगा।

मौला—तो वह पैसे-धेले से ज्यादा नहीं होगा। इस जिन्दगी में इससे ज्यादा देने की हैसियत मेरी कभी हुई हो यह तो मुझे याद नहीं।

मैंने कहा, जो भी हो और मैंने दो रुपये निकालकर उसके आगे रख दिये।

रुपये देखकर वह चमक गया, बोला—अजी नहीं बाबूजी, तब तो आपका मुझसे कोई वास्ता नहीं। दो रुपये मौला ने किसी को छोड़ दिये हों यह नामुमकिन बात है। दो रुपये हम लोगों की एक हफ्ते की कमाई होती है।

मैंने कहा—मैं भूल नहीं करता। पहले रुपये हाथ में ले लो। ये काट नहीं खायेंगे।

काट खाने की ही बात है। हम मेहनतकश लोगों के लिए इस तरह हराम की रकम में हाथ लगाना ठीक नहीं होता। बुरी आदत पड़ जाय तो जिन्दगी बरबाद हो जाये।—मौला ने कहा, और अपनी टोकरी उठाकर चलने का उपक्रम करने लगा।

मैंने हाथ पकड़कर उसे रोक लिया, कहा—रुको तो मियाँ। मान लो कभी हमने कुछ पैसों के ही अमरूद लिये हों, पैसे न दिये हों तो क्या सूद ब्याज समेत आज उनके दो रुपये भी नहीं हो सकते?

इस पर तो मौला मियाँ तैश में उछल पड़े। हल्ला मचाकर बोले—क्या कहते हैं। मैं मुसलमान हू। नमाज पढ़ना चाहे न जानता होऊँ पर यह तो मुझे मालूम है सूद हम लोगों के लिए हराम है। अब थोड़ी सी जिन्दगी में सूद खाकर क्यामत को बरबाद न करूँगा।

तोता अब तक चुप बैठा हम दोनों के झगड़े को देख रहा था। वह बोला—ऐसी तो कोई बात नहीं है मौला चचा। इन्हें याद है कि ये

तुम्हारे कर्जदार हैं। जैसे तुम्हें सूद खाना हराम है वैसे इन्हें भी तो किसी का पैसा रखना हराम हो सकता है। इसलिए ये जो दें सो ले लो और इन्हें कर्ज से मुक्त कर दो। तुम्हें अगर रुपये न रखने हों तो कहीं अच्छे काम में लगा देना—अपनी बच्ची को दे देना।

मौला चुप रहा। वह कुछ सोच रहा था।

"अब ले भी लो चचा। ये रुपये तुम्हें नहीं दे रहे हैं। तुम्हारी बच्ची को ही दे रहे हैं।"

मैंने रुपये अमरूदों की टोकरी में रख दिये।

लेकिन भतीजे, मौला ने कहा—मुझे इतमीनान कैसे हो कि इतने बड़े आदमी मेरे जैसे गरीब के कर्जदार होंगे। यह तो सब हँसी की बातें हैं। मैं तो अभी तक इन्हें पहचान भी नहीं पाया हूं। कहीं मेरे जैसे आदमी को शेखचिल्ली तो नहीं बनाया जा रहा है।

मैंने कहा—सच पूछो तो ये दो रुपये कुछ भी नहीं हैं। इससे भी ज्यादा मुझे तुम्हें देना चाहिए था।

जरूर, क्यों नहीं—वह हँसकर बोला।

मैंने कहा—याद करो मियाँ दस-बारह साल पहले की बात। कुछ लड़कों ने तुम्हारे बाग पर हमला किया था। कितना नुकसान किया था उन्होंने तुम्हारा? क्या वह इतना भी नहीं था कि उसके लिए मैं दो रुपया आज तुम्हें हरजाने के रूप में देकर माफी माँग लूँ। उस वक्त मैं नासमझ था, आज समझदार हूँ। आज मुझे लगता है कि हमने तुम्हारे साथ कैसा सलूक किया था।—बोलो, अब याद आया या नहीं?

याद क्यों नहीं आया। और आपके साथ एक लड़की भी थी, शेरदिल लड़की। लेकिन बाबूजी उसका तो बदला उसी समय चुक गया था। मैंने भी तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी। वह कर्ज नहीं हो सकता। वह तो डाका था या कहो हमला था और उस हमले का जवाब भी पूरा दिया था—कहकर वह बच्चों की तरह अकृत्रिम हँसी हँसने लगा। मुझे ऐसा लगा कि वह भी उस विगत घटना के रस का स्वाद ले रहा है।

मैंने कहा—अब तो मैं अजनबी नहीं हूँ।

अजनबी नहीं, अब तो हम पुराने दोस्त हैं—यह कहकर उसने टोकरी में से दोनों रुपये उठा लिए और हाथ बढ़ाकर मेरी जेब में डालकर बोला—ये रक्खो अपने पास और खुदा के लिए हमारी दोस्ती में खलल मत डालो। इतने दिन बाद मिले हैं। लाओ, हाथ मिलाओ।

उसने हम दोनों की उम्र के अन्तर का ख्याल किये बिना मेरा हाथ लेकर अपने हाथ में बड़े प्रेम से दबा लिया। मैंने भी उसकी गहरी आत्मीयता के भाव को पूरी तरह अनुभव किया।

मौला बोला—उस दिन हम अमरूदों के लिए लड़े थे। आज ये दो अमरूद मैं अपने पुराने दोस्त को नजर करूँगा। उसने जबरदस्ती दो अमरूद मेरी मुट्ठी में ठूँस दिये। मैंने शिकायत के तौर पर कहा—और मेरे रुपये तुम मंजूर न करोगे?

मौला—कभी मेरे घर आकर बच्ची को दे जाना। मैं उज्र न करूँगा। अब तो हम दोस्त हैं। अच्छा, अब चला, सलाम।

मैं उस गँवार उजड्ड बूढ़े नारंगवाला मुसलमान के व्यवहार पर भीतर से बाहर तक पुलकित हो उठा। तोता ने कहा—बड़ा सच्चा और नेक आदमी है। इसीलिए बेचारा मेहनत और गरीबी में बसर करता है।

इस घटना के एक दो दिन बाद मैं और तोता दोनों शाम के समय अपने दोस्त मौला मिया के घर गये। बड़ा स्वागत सत्कार हुआ। बूढ़ी भाभी ने बड़े से घूँघट के भीतर से हृदय के प्यार को प्रगट करके जता दिया कि हम कोई गैर नहीं हैं। चलते वक्त मैंने अपनी सात साल की भतीजी बानू के हाथ पर जब पांच रुपये रख दिये तो वह खुशी से नाच उठी। मौला ने भी उसे रुपये लेने से मना नहीं किया। सिर्फ इतना कहा—वादा दो रुपये का ही था भाई साहेब।

मैंने हँसकर कहा—लेकिन इतने दिन में कुछ सूद भी तो बढ़ गया जनाब!

तो आपने मुझे सूदखोर बना दिया।—कह कर वह ठठाकर इतनी

देर तक हँसता रहा कि थोड़ी दूर चले आने के बाद भी हमारे कानों में वह हँसी गूंजती रही।

संध्या के झुटपुटे में तोता को भेजकर मैं घर लौटा आ रहा था। ख्याल नहीं था कि इस समय अँधेरे में बिट्टो बाहर होगी। मालूम होता तो घूम कर दूसरी ओर से जाता जैसा कि मैं इन दिनों बराबर कर रहा था। बिट्टो या उसकी अम्मा का सामना करने की शक्ति मुझ में न थी। हुआ उल्टा। बिट्टो न जाने कब की वहाँ खड़ी थी। मेरे पास से निकलते ही बोली—जरा अम्मा को चलकर देख लोगे? वे न जाने कब से बुला रही हैं।

अब मैं कहाँ और कैसे भागता? मैंने सहजभाव से पूछा—कैसी हैं अम्मा?

बीमार हैं। बुखार आता है।—उसने बताया।

आगे कुछ न पूछकर मैं अम्मा को देखने के लिए घर में गया। पीछे बिट्टो आ रही थी, निश्चल और मौन। बिट्टो ने न मुझसे कुछ कहा, न मैं उससे कुछ पूछ सका। परन्तु मैं जिस तरह उसके हृदय की व्यथा को अनुभव कर रहा था उसी तरह वह भी इस बात से अनजान नहीं होगी कि जगत-दिखावे की हम दोनो के बीच कोई जरूरत न थी। तो भी एक संकोच चारों ओर से हमें घेरे हुए था।

अम्मा के पास पहुंचा तो उनकी दशा देखकर मैं भयभीत होगया। इतनी जल्दी ऐसा क्या होगया था उन्हें? शरीर पर माँस नहीं रह गया था। काँटे-सी काया लिए बिस्तर पर पड़ी थीं।

मेरे पैरों की आहट सुनकर बोलीं—बिट्टो, रमेश आया है री क्या?

उत्तर मैंने दिया—आकर मैंने बड़ी गलती की है यहाँ अम्मा। भला मैं होता ही कौन हूं? नहीं तो क्या अपने शरीर की यह हालत कर लेतीं और दीवार के उस पारवाले घर में खबर न देतीं? मैं कौन दूर था?

अम्मा—बेटा तुम सोच सकते हो ऐसा? मुझे क्या अपने शरीर का भान था इन दिनों? तो भी रात-दिन राम-नाम की तरह अपने रमेश का

भी कोई दम तक ही अटक रही है। चारो तरफ कोई नहीं दिखता है। रमेश, भैया इस अभागी की नैया कैसे पार लगेगी ?

मैंने इधर उधर देखा। बिट्टो कमरे में नहीं थी। मैंने कहा—अम्मा, साँझ और सवेरा तो दुनियाँ में होते ही रहते हैं। चिन्ता करने से भी उनका होना रुकता नहीं है।

"लेकिन माँ का हृदय रखकर मैं चिन्ता न करूँ तो और कौन करेगा भैया ?"

"तुम चिन्ता करोगी तो तुम्हारा यह शरीर कितने दिन चल सकेगा ? इसमें रह ही क्या गया है ?"

"दुर्भाग्य के ऊपर दुर्भाग्य की मार से मेरी बेटी को काठ मार गया है। मैना की तरह सदा चहकनेवाली पत्थर की तरह अचल होगई है। हँसी-खेल के दिनों में मौन की गभीरता में उसे डूबी देखकर जी होता है कि धरती फट जाय और वह उसमें समा जाय तो मैं त्राण पा जाऊँ।"

"यह तो सच है अम्मा, लेकिन इससे तो उसके भीतर की आग और जलेगी। उसे तो इस समय शांति देने की जरूरत है। इतने दिन उसे आये होगये और मे एक बार भी नहीं आया, इसीलिए तो कि मैं आकर उसे रुलाऊँगा ही। सो अम्मा तुम अपने को सँभालो, और उसे भी। तुम्हारे इस तरह गिर पड़ने से वह और भी निरीह हो जायेगी।"

मेरी बात सुनकर उन्होंने सिर तकिया पर रख लिया और पलकें बद करके पड़ रहीं। बहुत देर तक उसी भाँति पड़े रहने के बाद बोलीं—रमेश भैया, तुम उसकी खबर तो लेते रहना। तुम्हारा ही भरोसा है मुझे। कदाचित मैं न रहूँ। उस दिन उसका सारा भार तुम्हारे ऊपर होगा।

"तुम उस दिन की चिन्ता मत करो। जिसके ऊपर ऐसा दिन आता है उसके भीतर आत्मबल भी पैदा हो जाता है।"

अम्मा चुप रहीं। मैंने कहा—मैं जाता हू अम्मा, लेकिन अब से दिन में दो समय तुम्हारी खबर लेनी पड़ेगी यह मैं देख रहा हू।

मैं उठकर उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही चला आया। बिट्टो

बाहर हाथ पर सिर धरे दीवाल के सहारे बैठी थी। मैंने कहा—उठो, दरवाजा बन्द कर लो।

वह मन्त्रचालित-सी उठकर मेरे पीछे चल दी। मैंने उससे कहा—तुम्हारे भीतर जो कुछ है उसे अम्मा से जैसे हो सके छिपाये रहना होगा। नहीं तो मैं तुम्हें कहे देता हूँ कि तुम उन्हें भी खो बैठोगी। मैं सवेरे शाम तो आऊँगा ही और कभी जरूरत पड़े तो भोला से बुलवा लेना।

वह अपनी समझ से दृढ़ता को पूरी तरह बनाये हुए थी इसलिए सिर हिला दिया पर आँखों पर उसका बस न रहा था। वे छल छल करके बरस ही पड़ीं।

घर आकर मैंने खाया-पिया और बिस्तर पर लेट गया। आधी रात तक मुझे नींद न आई। बिट्टो, अम्मा, बानू, बानू की माँ और मौला मियाँ तथा उनसे संबद्ध और सैकड़ों प्राणी मेरे मनोराज्य में विचरण करते रहे। उन्हें बलपूर्वक निकाल फेंकने का प्रयत्न करने पर भी मैं किसी तरह सफल नहीं हो सका। संसार का स्वामी बनने के स्वप्न देखनेवाला पुरुष अपने मनोराज्य पर भी पूर्णतया हावी नहीं है, यह कैसी विपरीतता है!

●

इक्कीस

अचानक देवीसिंह से भेंट होगई। फौज में हवलदार है। सुचेता के पति कर्नल लालसिंह के नीचे काम करता है। छुट्टी आया है। सुचेता से कभी मिला है, वह कैसी है, यह पूछने पर मालूम हुआ अच्छी है। आजकल मायके में ही आई हुई है। छुट्टी खत्म होते ही देवीसिंह उसे साथ ही ले जायगा। कर्नल भी घर पर छुट्टी आये हैं। वहीं सुचेता को छोड़ कर दोनों नौकरी पर चले जायेंगे।

उस दिन तीसरे पहर मेरा दौलतपुर जाना जरूरी होगया। इतने दिन बाद अपनी बाल सहेली से मिलने में कितना आनन्द हुआ मुझे। आज सुचेता वह उद्दंड लड़की नहीं है। वह आज मातृगौरव से परिपूर्ण भारतीय नारी है। गभीर, शात, सौम्य, स्निग्ध मधुर उसके इस रूप से बचपन की अल्हड़ सुचेता का कोई वास्ता नहीं है। मुझे द्वार पर देखते ही पहचान लिया। मुस्कराकर स्वागत किया—भैयाजी, एक युग के बाद तो दिखाई दिये। फिर भी बाहर खड़े हो। जैसे पराया घर हो। आओ न, भीतर आओ। खाट बिछी है, बैठो।

मैंने खाट पर बैठते हुए पूछा—अच्छी तो रही?

उसने हँसकर उत्तर दिया—यह मोटा-ताजा शरीर देखकर भी ऐसी बात पूछने की जरूरत रह जाती है क्या? अथवा भैया जी, शिष्टाचार के रूप में ऐसा कह रहे हो?

मैंने कहा—जैसा समझो।

"रुष्ट हो गये क्या भैया जी? मैंने तो ऐसा इसलिए कहा था कि दुख सुख की चर्चा तो मुझे चलानी चाहिए थी जिसके सामने तुम्हारा दुबला पतला शरीर मौजूद है। अभी जिस पर माँस नहीं चढ़ा है। अपनी और पराई चिन्ताओं के बोझ को सदा अपने ऊपर ले लेने की तुम्हारी आदत अभी गई नहीं मालूम होती है। शरीर को सुखाने में तुम्हें क्या मिलता है?"

मैंने कहा—देखता हूँ तुम्हें बातें बनाना पहले से ज्यादा आगया है।

जाने दो, भैयाजी। छोड़ो इस लड़ाई-झगड़े को। यह बताओ कि मेरी भाभी कहाँ हैं? तुम्हारे शरीर के संबध में जो लड़ाई लड़नी होगी वह मैं उन्हीं से लड़ूँगी।—उसने कहा।

भाभी के बिना भी तो दुनियाँ के काम चलते ही हैं। फिर एक नया झंझट पालने की क्या आवश्यकता है? हाँ, लड़ाई झगड़े के लिए उसकी जरूरत हो तो हो सकती है।—मैंने हँसकर कहा।

"तो तुम अब तक भाभी नहीं ला सके? शायद इसलिए कि हम जैसी आ धमकेंगी और गृहस्थी की जरूरतों को बढ़ा देंगी, पर भैयाजी, इस तरह की कन्जूसी से काम नहीं चलेगा। तुम्हें एक भाभी का प्रबंध तो करना ही होगा।"

वह प्रबंध तो मेरे वश की बात नहीं है—मैंने कहा।

"तो मैं करूँगी। आप मुझे अपनी अनुमति दे दीजिए।"

"इस अनावश्यक-जैसे काम के लिए भी मेरी अनुमति की दरकार है क्या?"

"मैं तुम्हारी आदत जानती हूं। मैं तुमसे बहस नहीं करूँगी। इस आवश्यक और अनावश्यक का निर्णय तो मेरी भाभी ही आकर करेंगी। मुझे तुम जैसे जवाब दे रहे हो, उन्हें वैसे न दे सकोगे। यह मैं जानती हूँ।"

अच्छी बात है। मैं मान लेता हूं।—इतना कहकर मैंने जो सिर उठाया तो देखा एक ढाई तीन साल का बालक बाहर से भागता हुआ चला

आरहा है। मुझ अजनबी को देखकर दो क्षण ठिठका और फिर भाग कर सुचेता की गोद में जा गिरा। सुचेता ने उसे अपने से अलग करते हुए कहा—बड़ा बुद्धू है रे। देखता नहीं है मामाजी आये हैं।

बालक ने माँ की गोद में से ही सिर उठाकर एक बार चारों ओर देखा फिर बोला—मामा जी नहीं हैं।

"ये भी मामाजी हैं, बाबू!"

"बच्चे ने मेरी ओर देखा।"

मैंने एक उँगली उसके गाल में गड़ा कहा—आओ, हम-तुम खेलें।

सुचेता—अपना लट्टू ले आओ और मामाजी को चलाकर दिखाओ। बोलो दिखाओगे?

बालक ने हाँ भर ली। गया और लट्टू ले आया। सुचेता ने पूछा—लट्टू किसे चला कर दिखाओगे?

बालक कनखियों से मेरी ओर ताक कर शरमा गया। मैंने कहा—कह दो, अपने मामा को दिखायेंगे।

बालक ने धीरे धीरे कहा—मामा को दिखायेंगे।—लेकिन सुचेता के मुस्करा देने से वह लजा गया।

मैंने उसके हाथ से लट्टू लेकर जमीन पर घुमाया और पूछा—देखो, इस तरह घूमता है यह। क्या तुम ऐसे घुमा सकते हो इसे?

बालक ने सिर हिलाया और मैंने लट्टू उसके हाथ में दे दिया। थोड़ी देर में हम दोनों हिलमिल गये। वह मुझे बताने लगा, इस तरह घुमाओ मामा जी और मैं उसी तरह घुमाने लगा।

इस तरह सूरज के साथ मैं देर तक खेलता रहा। तब तक सुचेता जाकर मेरे खाने के लिए दाल की पकौड़ियाँ तल लाई। उसने एक तश्तरी मेरे और एक सूरज के आगे रखदी। अपने आगे की तश्तरी एक ओर खिसका कर सूरज ने कहा—मैं नहीं खाता इसमें। मैं तो मामाजी के साथ खाऊँगा।

मैंने उसे अपनी गोद में खींच लिया और कहा—हाँ, हम दोनो साथ खायेंगे।

सुचेता ने हँसकर कहा—तू मामा के साथ खायेगा तो मैं तुझे छुऊँगी नहीं।

मत छूना—सूरज ने उत्तर दिया और मेरी गोद मे बैठकर पकौड़ियाँ खाने लगा।

सुचेता एक ओर बैठकर देखने लगी। उसने कहा—भैया जी, यह बड़ा उपद्रवी लड़का है। मेरा तो इसके कारण नाकों दम है। दिन रात किसी वक्त चैन नहीं लेने देता।

मैंने सूरज के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—मैं किस तरह मान सकता हूँ। मैं तो देख रहा हूँ कि सूरज सा सुशील कोई दूसरा लड़का नहीं है। यह हो सकता है कि तुम उसकी बातों पर ध्यान न देती हो और इसलिए वह तुम्हें तंग करता हो। बच्चे के भावों की कद्र करने से ही उसकी शराफत का पता चलता है।

सुचेता ने मेरे उपदेश को हँसी में उड़ा दिया, बोली—अभी जरा-सी देर में यह बिगड़ जायगा तो तुम्हारा कोई भी शास्त्र काम नहीं देगा। अभी तो देवता प्रसन्न हैं इसीसे जो चाहो कह सकते हो।

खा-पी चुकने पर सूरज ने मेरा हाथ पकड़ा और खींच ले चला। सुचेता हँसी और कहा, लो अब शुरू होगया नाटक। मैंने सूरज से पूछा—कहाँ चलोगे?

उसने कहा—बाहर चलेंगे।

अच्छी बात, चलो—कहकर मैं उसके साथ हो लिया।—बाहर क्या करना होगा?—मैंने पूछा।

"कबूतर पकड़ेंगे। मुझे एक कबूतर चाहिए।"

"तुम कबूतर का क्या करोगे?"

"अपने बक्स में रक्खेंगे।"

"बक्स में कबूतर मर जायगा।"

"तो जेब में रख लेंगे।" उसने अपने कुरते की जेब में हाथ डालकर दिखाया।

"तुम्हारी जेब तो छोटी सी है। कबूतर उसमें कैसे आयेगा?"

तब क्या करेंगे?—उसने पूछा। इस पर वह विचार में पड़ गया।

मैंने कहा—कबूतर को वहीं रहने दो। उसे दूर से देखा करो। और तुम उसे पकड़ लोगे तो उसके रखने को कोई जगह नहीं है, फिर उसकी अम्मा रोयेगी।

उसकी अम्मा रोयेगी—सूरज ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा।

"क्यों नहीं रोयेगी। अपने बेटे के लिए रोते रोते वह मर जायेगी।"

"तो नहीं पकड़ेंगे हम उसे। सिर्फ देखेंगे। वह कैसा गुटरगूँ करता है!"

हाँ।—मैंने कहा।

मेरी इस विजय पर सुचेता को बड़ा आश्चर्य हुआ। बालक ने कहा—तो मामाजी मछली को पकड़ लायेंगे। वह तो पानी में रहती है। अपने घर में पानी इतना सारा भरा है। यहाँ रख देंगे उसे।

"मछली की भी तो अम्मा है। वह फिर कैसे रहेगी?"

"उसके भी अम्मा है?"

"सभी के अम्मा होती है।"

"अम्मा को भी उसकी ले आयें तो?"

"तब उनके लिए बहुत पानी चाहिए, बहुत जगह चाहिए।"

"कितना पानी, कितनी जगह?"

बहुत बड़ी—तालाब जितनी। जैसे कबूतर बक्स में नहीं रह सकता वैसे मछली भी छोटे से बरतन में नहीं रह सकती।"

"तालाब जितना पानी कहाँ से लायें?" बालक विचार में पड़ गया।

"तालाब में ही उसे रहने दो। बस होगया। वहीं चलकर देख लिया करो। जिसका जो घर होता है, उसे वहीं रहने देना चाहिए।"

"तालाब मछली का घर है क्या?"

"हाँ, और क्या? वही तो उसका घर है। वहीं तो उसकी अम्मा,

उसकी नानी, उसके नाना सब कोई रहते हैं।"

"उसकी माँ भी उसके लिए पकौड़ियाँ तलती होगी?"

"क्यों नहीं।"

"उसके मामा भी आते होंगे?"

"जरूर।"

मुझे लगा कि मछली के साथ उसकी पूरी सहानुभूति जागृत हो गई है। उसने मुझे बाहर ले जाने का हठ त्याग दिया।

सुचेता ने मुझसे कहा—भैया जी तुम बच्चों के शिक्षक क्यों नहीं हो जाते?

"शिक्षक होने की मेरी योग्यता है? मैंने किस कालेज में पढ़ा है? मेरे जैसे अधकचरे के हाथों में बच्चे को सौंपकर कौन माँ बाप निश्चिन्त हो सकेंगे?"

"रहने दो भैया जी, तुम तो अपनी योग्यता को कुछ आँकते ही नहीं हो।"

"और तुम भैयाजी को आसमान पर चढ़ाये दे रही हो। यह नहीं जानती कि इतने ऊँचे से गिर पड़े तो भैयाजी की हड्डी पसली का पता नहीं रहेगा।"

"मेरा बस चले तो आसमान से भी ऊँची जगह पर बैठालूँ तुम्हें। ज्ञान और बुद्धि कालेजों में ही नहीं बिकती है। उसे तो अपने भीतर से, चकमक से आग की तरह, पैदा करना होता है।"

"अच्छी बात है, कभी सुचेता शाला खोलो तो मैं उसमें अपनी सेवाएं देने को तैयार रहूँगा।"

इसके बाद मैंने चाँदकुँवरि की चर्चा चलाई। मालूम हुआ, दादी के मरने के बाद से उसका कहीं पता नहीं। उसके संबंध में अनेक प्रवाद गाँव में चल रहे हैं। ज्यादातर यही ख्याल है कि वह शोक के आवेग में रामगंगा में जा पड़ी और डूब गई। चाँदकुँवरि के लिए हम दोनों को बहुत दुख हुआ, पर विवश थे।

चलते चलते मैंने सुचेता को मियाँ मौला से मुलाकात की सारी घटना सुना दी। उसने मुझे बानू के लिए एक ओढ़नी और दो रुपये दिये, जो मैं ले आया। सूरज से कह आया कि फिर आऊँगा। नहीं तो वह आने ही न देता था।

तबसे अम्मा को सुबह शाम जाकर देखना, उनके इलाज का प्रबंध करना, उनके पथ्यापथ्य के लिए बिट्टो को आवश्यक हिदायतें छोड़ आना, मेरा नियम होगया। बिट्टो मेरी बातें सुन लेती, उन्हें पूरी तरह काम में भी लाती परन्तु मुझसे किसी विषय में उत्तर प्रत्युत्तर न करती थी। एक घना कुहरा सा उसके चेहरे पर छाया रहता। यौवन श्री से विभूषित उसकी काया भीतर के विषाद से मलिन दिखाई पड़ती, परन्तु मेरी आँखों में इससे उसकी सहज छवि घटने की बजाय बढ़ती प्रतीत होती थी। जी होता था कि और कुछ देर बैठ कर उससे बातें की जाँय। उसके जी को तसल्ली दी जाय और उसकी खोई हुई उत्फुल्लता को पुन वापस बुलाया जाय। बिट्टो लेकिन मुझे इसका मौका ही न देती। आवश्यक बातचीत समाप्त होते ही वह उठ जाती और अपने कार्य में जा लगती। मुझे ठहरना होता तो अम्मा के पास ठहरता। उनका आशीर्वाद लेता और अपनी कहता सुनता।

मेरी नियमितता और बिट्टो की सुश्रूषा व मोला की दौड़धूप से अम्मा का स्वास्थ्य वापस लौट आया और सबसे बड़ी बात यह हुई कि उनकी आँखों की रोशनी बढ़ गई। अब वे उठती बैठती, चलती फिरती तथा अपने घरेलू काम काज मे भी हाथ बँटा लेती थी। मैं जब पहुँच जाता तो फूली न समाती थीं। माँ का बेटे के लिए कितना प्यार हो सकता है इसका उनके व्यवहार मे मुझे आभास मिलता था और उससे जी पुलकित हो उठता था। इतना होने पर भी बिट्टो की चर्चा वे मेरे सामने इन दिनों जहाँ तक होता नहीं करती थीं। कभी कोई प्रसग भी आजाता तो उसे टाल जातीं। मेरी समझ मे इसका कोई कारण न आरहा था।

अचानक एक दिन डाक से मुझे एक लिफाफा मिला। अपरिचित हाथ की लिखावट से मैं यह न समझ पाया कि कहाँ से और किसने भेजा होगा।

खोल कर पढ़ा तो और भी चकित रह गया। पत्र लिखा था चाँदकुँवरि ने। वह कहीं उदयपुर में थी और ऐसे संकट में थी कि मेरी सहायता के बिना उसका उद्धार होना असंभव था।

बहुत थोड़ी सी इबारत थी। संदर्भ को जानबूझ कर छोड़ दिया गया था। शायद वह चर्चा अनावश्यक और व्यर्थ-विस्तार जान पड़ी होगी।

मैंने जी में एक बार सोचा—क्या सारी दुनियाँ का संकट से उद्धार करने का जिम्मा विधाता ने मुझे ही सौंप दिया है? एक दिन ठहर कर चाँदकुँवरि की वृद्धा दादी की सेवा की थी बीमारी के कुछ दिनों में रामरूप के भी छोटे मोटे कई काम कर दिये थे। बिट्टो की अम्मा की बीमारी में भागदौड़ कर ही रहा हूं। क्या सेवा का ही व्रत मेरे जीवन का चरम ध्येय है? यदि ऐसा ही है, तो इसका परिणाम क्या होगा?

चांदकुँवरि का पत्र मेरे सामने रक्खा था। बारबार उसकी इबारत का भावार्थ मेरे अन्त:करण को अपनी ओर खींच लेता था। जी में विचार उठता कि मेरे जैसे अकर्मण्य व्यक्ति के ऊपर लोगों को क्योंकर ऐसी आस्था है? क्यों इतने विश्वासपूर्वक उसने यह बात लिखी है? उसे क्या मालूम नहीं है कि मैं अपने शरीर की रक्षा तक करने में पूर्णतया असमर्थ हूँ। भला, मैं किसी की क्या सहायता करूंगा? थोड़ी देर में विचार की धारा बदल जाती और याद आता कि चांदकुंवरि के समान सहिष्णु और आत्माभिमानिनी लड़की भी क्या और कोई हो सकती है। बिना किसी असाधारण संकट में पड़े वह भला क्या किसी को एक शब्द भी लिख सकती है? अवश्य ही वह किसी महान विपत्ति में घिर गई है।

पत्र इतना संक्षिप्त था कि उससे और किसी तरह की व्यंजना सम्भव न थी। आखिर मेरे जी में आया कि ऐसे समय मुझे जाना ही चाहिए। सोच विचार करने से न जाने क्या दुर्घटना हो जाय? लेकिन एक ऐसे परदेश में जहां अपना कोई नहीं, जहां किसी तरह की जान-पहचान नहीं, मैं पहुंचकर उसकी कैसे सहायता करूंगा? कैसे उसे संकट से बचाऊंगा।

"उसका कोई कारण भी तो हो? असल गलती यहीं पर है कि मैंने तुम्हें यह नहीं बताया कि मुझे क्यों जाना पड़ रहा है। एक मित्र पर कोई ऐसा सङ्कट आया है। उन्होंने ही मुझे बुला भेजा है। यह रहा उनका पत्र।"—मैंने चाँदकुवरि का पत्र जेब से निकालकर उसके आगे कर दिया।

वह बोली—मैं क्या करूँगी?

"पढ़ लो और बताओ कि मेरा जाना उचित है या नहीं। मैं तो बड़े पशोपेश में हूं।"

मेरे अनुरोध पर उसने पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ा। मैंने स्पष्ट लक्ष्य किया, उसकी मुख-मुद्रा बदल गई। उसी तरह पत्र को बन्द करके बिना कुछ कहे उसने मुझे दे दिया। मैंने पूछा—मेरा जाना उचित है या नहीं?

"मैं क्या कह सकती हूं?" कहकर वह जाने लगी।

मैंने कहा, "ठहरो, बताओगी नहीं?"

"नहीं।" कहकर वह चली गई। मुँह से न कहने पर भी उसका उत्तर तो स्पष्ट होगया। लेकिन किस कारण से उसे आपत्ति थी यह मैं न समझ पाया। मेरे सोहनपुर रहने से उसका कोई स्वार्थ तो सधता नहीं था, न जाने से इसके अलावा कोई हानि न थी कि अम्मा के लिए मैं थोड़ी दौड़धूप कर देता था। उसकी भी अब आवश्यकता न रह गई थी। अम्मा स्वस्थ हो गई थीं।

इससे एक बात तो हुई कि मैं जो यह चाहता था कि कोई मुझे रोके, अनुरोध करे और उस आग्रह-अनुरोध को टेल कर मैं जाऊँ तो जाने का मज़ा है। वह बात तो हो गई परन्तु बिट्टो के मूक स्वाभिमान ने मेरे दृढ़ निश्चय को एक बार हिला दिया। मैंने सोचा—व्यर्थ है मेरा जाना। यहाँ घर में ही उसके ऊपर जो महान संकट पड़ा है, उससे वह अभी स्थिर भी नहीं हो पाई है। उसे निरालम्ब छोड़कर मैं जहाँ तहाँ भागने की उससे अनुमति चाहने जाऊँ और यह सोचूँ कि वह तो केवल अपने ही स्वार्थ को देखती है, तो मैं उसके साथ बड़ा अन्याय करूँगा। घर में दिया

जलाकर ही मस्जिद में जलाना उचित है, यहाँ उसे वंचित करके सैकड़ों मील की दूरी पर किसी को कृतार्थ करने जाऊँ, यह न होगा।

ऐसा निश्चय करके मैं घर गया और बँधा हुआ बिस्तर खोल डाला। बुआ ने पूछा—क्यों रमेश, जाना नहीं है तुझे आज ?

मैंने कहा—नहीं, मुहूर्त टल गया है।

वे हँसने लगीं, बोलीं—तू भी भैया मुहूर्त को मानने लगा है ?

मैंने कहा—न मानने से कहीं चलता है।

"चलता तो यह दुनियाँ पागल तो नहीं हैं। कुछ न कुछ हुए विना कौन विश्वास करता है ? उमर बड़ी होने से ही इन बातों का ज्ञान होता है। अनुभव आदमी को सिखाता है।"

मैंने बुआ के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट न किया। जो कुछ उन्होंने कहा उसे शिरोधार्य कर लिया।

इसके बाद मैंने जो भी काम किया उसमें जी नहीं लगा। एक विरसता सी सब कामों में जान पड़ने लगी। मैंने सोचा, चलो थोड़ी देर घूमघाम आयें और मैं घर से निकल गया।

वायुमंडल में कुछ उमस के कारण दिन में थोड़ी बूँदा-बाँदी हुई थी। इस समय हवा चलने से मौसम सुन्दर हो गया था। स्वच्छ आकाश में से बादल के टुकड़े बुहार कर पवन ने क्षितिज पर छोड़ दिये थे। अपरान्ह की किरणों से रँगकर वे खिल उठे थे। एक सुन्दर दृश्य पैदा होगया था। उसके दर्शन का सुख लूटता हुआ मैं दूर तक खेतों में चला गया। इच्छा हो रही थी कि और चलता जाऊँ, जब तक आँखें तृप्त न हों चलता ही जाऊँ। लेकिन तोता न जाने कहां से आ गया। मुझे पुकार कर बोला—कहां चले जा रहे हो ?

मैंने कहा—कहीं तो नहीं। थोड़ा घूमने निकला था। आज मौसम बड़ा सुहावना है, इसी को देखता हुआ यहाँ तक चला आया। तुम किधर गये थे ?

तोता—मैं गया था अपना खेत जोतने। अब दहा पहुंच गये हैं।

"उसका कोई कारण भी तो हो ? असल गलती यहाँ पर है कि मैंने तुम्हें यह नहीं बताया कि मुझे क्यों जाना पड़ रहा है। एक मित्र पर कोई ऐसा संकट आया है। उन्होंने ही मुझे बुला भेजा है। यह रहा उनका पत्र।"—मैंने चाँदकुवरि का पत्र जेब से निकालकर उसके आगे कर दिया।

वह बोली—मैं क्या करूँगी ?

"पढ़ लो और बताओ कि मेरा जाना उचित है या नहीं। मैं तो बड़े पशोपेश में हू।"

मेरे अनुरोध पर उसने पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ा। मैंने स्पष्ट लक्ष्य किया, उसकी मुख-मुद्रा बदल गई। उसी तरह पत्र को बन्द करके बिना कुछ कहे उसने मुझे दे दिया। मैंने पूछा—मेरा जाना उचित है या नहीं ?

"मैं क्या कह सकती हू ?" कहकर वह जाने लगी।

मैंने कहा, "ठहरो, बताओगी नहीं ?"

"नहीं।" कहकर वह चली गई। मुँह से न कहने पर भी उसका उत्तर तो स्पष्ट होगया। लेकिन किस कारण से उसे आपत्ति थी यह मैं न समझ पाया। मेरे सोहनपुर रहने से उसका कोई स्वार्थ तो सधता नहीं था, न जाने से इसके अलावा कोई हानि न थी कि अम्मा के लिए मैं थोड़ी दौड़धूप कर देता था। उसकी भी अब आवश्यकता न रह गई थी। अम्मा स्वस्थ हो गई थीं।

इससे एक बात तो हुई कि मैं जो यह चाहता था कि कोई मुझे रोके, अनुरोध करे और उस आग्रह-अनुरोध को टेल कर मैं जाऊँ तो जाने का मजा है। वह बात तो हो गई परन्तु बिट्टो के मूक स्वाभिमान ने मेरे दृढ़ निश्चय को एक बार हिला दिया। मैंने सोचा—व्यर्थ है मेरा जाना। यहाँ घर में ही उसके ऊपर जो महान सकट पड़ा है, उससे वह अभी स्थिर भी नहीं हो पाई है। उसे निराला छोड़कर मैं जहा तहाँ भागने की उससे अनुमति चाहने जाऊँ और यह सोचूँ कि वह तो केवल अपने ही स्वार्थ को देखती है, तो मैं उसके साथ बड़ा अन्याय करूँगा। घर मे दिया

जलाकर ही मस्जिद में जलाना उचित है, यहाँ उसे वंचित करके सैकड़ों मील की दूरी पर किसी को कृतार्थ करने जाऊँ, यह न होगा।

ऐसा निश्चय करके मैं घर गया और बँधा हुआ बिस्तर खोल डाला। बुआ ने पूछा—क्यों रमेश, जाना नहीं है तुझे आज ?

मैंने कहा—नहीं, मुहूर्त टल गया है।

वे हँसने लगीं, बोलीं—तू भी भैया मुहूर्त को मानने लगा है ?

मैंने कहा—न मानने से कहीं चलता है।

"चलता तो यह दुनियाँ पागल तो नहीं हैं। कुछ न कुछ हुए बिना कौन विश्वास करता है ? उमर बड़ी होने से ही इन बातों का ज्ञान होता है। अनुभव आदमी को सिखाता है।"

मैंने बुआ के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट न किया। जो कुछ उन्होंने कहा उसे शिरोधार्य कर लिया।

इसके बाद मैंने जो भी काम किया उसमें जी नहीं लगा। एक विरसता सी सब कामों में जान पड़ने लगी। मैंने सोचा, चलो थोड़ी देर घूमघाम आयें और मैं घर से निकल गया।

वायुमंडल में कुछ उमस के कारण दिन में थोड़ी बूँदा-बाँदी हुई थी। इस समय हवा चलने से मौसम सुन्दर हो गया था। स्वच्छ आकाश में से बादल के टुकड़े बुहार कर पवन ने क्षितिज पर छोड़ दिये थे। अपरान्ह की किरणों से रँगकर वे खिल उठे थे। एक सुन्दर दृश्य पैदा होगया था। उसके दर्शन का सुख लूटता हुआ मैं दूर तक खेतों में चला गया। इच्छा हो रही थी कि और चलता जाऊँ, जब तक आँखें तृप्त न हों चलता ही जाऊँ। लेकिन तोता न जाने कहां से आ गया। मुझे पुकार कर बोला—कहां चले जा रहे हो ?

मैंने कहा—कहीं तो नहीं। थोड़ा घूमने निकला था। आज मौसम बड़ा सुहावना है, इसी को देखता हुआ यहाँ तक चला आया। तुम किधर गये थे ?

तोता—मैं गया था अपना खेत जोतने। अब दहा पहुंच गये हैं।

झूला डाला गया था। पुष्प हारों से आच्छादित और फूलों की सज्जा से सज्जित नवेली लक्ष्मी पान की पीक से ओंठ लाल किये और मेंहदी से हथेलियाँ रँगे यौवन के रंग में पेंग बढ़ा रही थी। बहुत दिन पहले जिसे एक छोटी बच्ची के रूप में देखा था, वह खिलकर फूल हो गई थी—ऐसा फूल जो यौवन की तरंग में झूम रहा था, मकरन्द और पराग जिसमें छलक रहे थे। कितने ही नौजवान प्रलुब्ध भौरों की तरह उस उत्सव में शामिल थे। अपनी समवयस्का युवतियों से छेड़खानी करती हुई वह उत्सव की रानी के रूप में अपनी शोखी प्रगट कर रही थी। अपने को प्रदर्शित करने की बलवती इच्छा से उन्नत उसका वक्ष युवकों के आकर्षण का केन्द्र हो रहा था। साधारण लज्जा और घरेलू शिष्टाचार का परित्याग करके वे सब आपस में धमाचौकड़ी मचा रहे थे। कौन आता और कौन जाता है इसका उन्हें ध्यान नहीं था। न वे इसकी चिन्ता करके अपने अबाध आनन्द में विघ्न डालना चाहते थे।

वहाँ ठहरकर देखने का मुझे साहस नहीं हुआ, परन्तु मेरा साथी ठिठक गया। उसने कहा—तुम जाओ। मैं थोड़ी देर झूला झूले विना नहीं आऊँगा।

मैं कटी पतंग सा अकेला चला आया। तोता उन्हीं में शामिल होगया। बाद में हम जब मिले तो उसने बताया कि लक्ष्मी जो आजकल उन्मुक्त कुसुम बन रही है और अनिमन्त्रित भौरों की भीड़ से घिरी रहती है यह बूढ़े बहनोई के साथ उसे व्याह देने का सुफल है। माँ बाप ने अपनी सहूलियत तो देख ली, लड़की के जीवन के परिणाम की ओर ध्यान नहीं दिया। अपने वयस्क पति के काबू से बाहर होकर वह कई दिनों से इसी प्रकार रँगरलियाँ कर रही है। उसके यौवन की बाढ़ में घर का पैसा और कई युवकों का भविष्य बहे चले जा रहे हैं, किसी में सामर्थ्य नहीं है जो उसके ऊपर अंकुश लगाये। पति देव ने भी उसे अपनी असामर्थ्य से विवश होकर ढील दे रक्खी है।

मैं सुनकर चुप रह गया पर मन के भीतर एक हलचल पैदा हो गई।

सारी रात उसके कारण उन्निद्रा का शिकार रह कर सवेरे उठा तो सिर भारी था, देह टूट रही थी। सोचा, अम्मा की खबर ले आऊँ। घर गया तो देखा बिट्टो अकेली है। वर्षों बाद अम्मा ने आज घर से पैर बाहर निकाला है। उनकी दूर रिश्ते की कोई बहिन इलाज कराने सोहनपुर आकर ठहरी हैं। उन्हीं के आग्रह से वे उनके साथ गई हैं। बिट्टो ने मुझे देखकर आश्चर्य सहित पूछा—कल तो जाने की बात थी ?

"कुछ निश्चय नहीं कर पाया। तुमसे भी तो पूछा था। तुमने कब राय दी थी ?"

"मैं राय क्या देती ? जिसने विश्वास करके संकट के समय बुलाया है। उसका विचार ही करना था।"

"उसका विचार तो यही कहता है कि मुझे विलंब न करना चाहिए। चाँदकुँवरि को तुम जानती नहीं। वह जिस मिट्टी की बनी है, उससे भय होता है कि वह कोई असाधारण विपत्ति में पड़ गई है अन्यथा वह क्या यों किसी को कष्ट देती ?"

"फिर भी नहीं गये। किसी ने कह दिया वही मान लिया।"

"तुम्हारी राय हो तो साँझ को रवाना हो जाऊँ ?"

"हाँ, मेरी राय है। तुम्हें जाना चाहिए। साँझ का भी इन्तजार क्यों करते हो ?"

"तो फिर दोपहर से पहले ही जाऊँ ?"

"हाँ।"

"पर तुमने एकाएक विचार बदल कैसे दिया ? कल मैंने पूछा था तब तो तुम्हारी इच्छा नहीं थी कि मैं इस मुसीबत में पड़ूँ।"

"हाँ, अब मैं सोच-विचार के बाद तुम्हें मुसीबत में डाल रही हूँ। जिसने इतना अपनापन रक्खा है कि संकट के समय अपने किसी स्वजन-बन्धु को याद न करके तुम्हें याद किया है, उसका मोह तुम्हारे प्रति कितना होगा। वर्षों हृदय में सञ्चित किये रहकर आज उसे प्रकट करने का प्रसंग आया है और आज ही उसे पता लग जाय कि वह तुम्हारी उपेक्षा से अधिक

कुछ नहीं पा सकती तो क्या उसका हृदय टूक टूक न हो जायगा ?"

"उपेक्षा के स्थान पर मैंने कभी अनुराग तो प्रकट किया नहीं। साधारण सी जान-पहचान रही है। उसे इतनी आशा मेरे से करनी नहीं चाहिए थी।"

"यह गलत है। राह चलती जान-पहचान से इतना नहीं हो सकता।"

"तो क्या मैं तुमसे कुछ छिपा रहा हूँ ?"

"यह तुम जानो।"

"बिल्कुल नहीं, बिट्टो ! यह अपराध मुझसे कभी न होगा। ऐसी शंका इस जीवन में मेरे प्रति कभी मन में न लाना।"

इस संबोधन से वह चौंक पड़ी। उसे अपनी और मेरी स्थिति का ध्यान हो आया। बोली—अब बेकार देर क्यों करते हो ? जाते क्यों नहीं ? धूप चढ़ने से पहले निकल जाओगे तो आराम मिलेगा।

"मेरे आराम की इतनी चिन्ता तुम्हें है और इस तरह घर से निकाले भी दे रही हो ?"

मुझे किसी की चिन्ता नहीं है, वैसा अधिकार भी नहीं है।—कहते कहते उसका कंठ काँप गया।

वह पलट कर जाने लगी तो मैंने कहा—अम्मा से मेरा प्रणाम कह देना।

उसने सिर हिला दिया। मैं द्वार से निकलने को हुआ तो मुझे पुकारकर बोली—पहुंचने पर अम्मा को एक चिट्ठी तो लिख देना। नहीं तो वे चिन्ता करती रहेंगी।

मैंने भी बदले में सिर हिला दिया और घर से बाहर होगया। उसके अंतिम अनुरोध से न जाने क्यों मेरी छाती फूल गई, हृदय गद्‌गद् होगया और मैं एक गहरे नशे में झूमता हुआ आकर अपनी तैयारी में लग गया।

बुआ को इतनी जल्दी नये मुहूर्त की आशा नहीं थी। इसीसे उन्होंने खाना-पीना तैयार नहीं किया था। मुझे जाने को प्रस्तुत देखकर वे जल भुन गई और मेरी मनमौजी कार्रवाही पर दो चार बातें भी सुना डालीं। मैंने

उनका रत्ती भर बुरा नहीं माना। हँसते हँसते कहा—आखिर तो कई दिन बाजार में ही खाना है। आज भी खा लेने से पेट में दर्द नहीं हो जायेगा। व्यर्थ चिन्ता क्यों करती हो ?

इस तरह मैं घर से चल पड़ा। किसी के सकट में सम्मिलित होने जाते हुए भी मेरा हृदय आज अपरिसीम आनन्द से उछल रहा था, मानों किसी उत्सव मे जा रहा होऊँ। मन में कितनी बातें आ जा रही थीं—असंभव और अकल्पित !

कांईस

रेल की मुसीबतों और रास्ते की दुर्घटनाओं का हाल बताने लगूं तो एक नया ग्रंथ ही बन जाय। मालूम पड़ता है जितनी बाधाएँ और जितने प्रकार की मुसीबतें हो सकती हैं वे सब इस यात्रा मे मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। दो जगह तो लाइन की गड़बड़ी से अपना सामान सिरपर उठाये रात के समय आध आध मील चलकर दूसरी गाड़ी में स्थान खोजना पड़ा। भीड़ इतनी थी कि आदमी पर आदमी गिरता था। साँस लेना मुश्किल हो रहा था। इस आफत मे भी एक महिला की सहायता से ही मेरी जान बची। वे बड़ौदा की तरफ कहीं जा रही थीं अकेली अपने बच्चे को लिए। इस बड़ी उम्र में भी उनके शरीर का सौंदर्य जादूभरा था। जिससे हँसकर बोल देतीं, वही कृतार्थ हो जाता। मुझे उनकी वह हँसी तो मिली नहीं। मुझे मिली उनकी दया और उसी का मैं पात्र था। बहुत प्रयत्न करने पर

भी जब किसी डिब्बे में स्थान नहीं मिला तो मैं निराश हो चुका था। तभी उन्होंने अपने सम्मोहन के बल पर मेरे लिए अपने पास ही एक अच्छा सा स्थान खाली करा लिया और मुझे हाथ पकड़कर ले जाकर बिठाया। मैंने धन्यवाद दिया और उन्होंने अपने सुन्दर सुकोमल बच्चे को मेरी गोद में लिटा दिया। बोलीं—यह अपने बाप के पास रहने में ही खुश रहता है। आपके पास रोयेगा नहीं।

वे तो इस तरह निश्चिंत हो गईं और मैं बच्चे की पुतलियों में तैरती हुई अपनी परछाईं को देखने लगा। इस प्रकार रेल में एक नया परिचय और नया प्रसंग उपस्थित हो गया। फिर सारे रास्ते भर उन्हीं श्रीमतीजी ने मेरे खाने पीने और आराम करने की चिन्ता रक्खी। बार बार मना करने पर भी वे नहीं मानीं। जब मैं उदयपुर के लिए गाड़ी बदलने लगा तो बड़े प्यार से वे बोलीं—अगर तुम जरूरी काम से न जा रहे होते तो मैं तुम्हें छोड़ती नहीं। अपने साथ ही ले चलती। मैं तुम्हें इतनी देर में ही कितना चाहने लगी हूं।

मैंने इसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया और गाड़ी बदल कर एक भील परिवार के साथ शेष यात्रा की।

उदयपुर में उस स्थान पर पहुंचने में मुझे कोई दिक्कत न पड़ी जो चांदकुंवरि ने लिख भेजा था, परन्तु वहां जाकर यह मालूम हुआ कि एक दो दिन पहले ही उन्होंने मकान बदल लिया है। नये मकान में काफी परेशानी के बाद ही मैं पहुँच पाया। पुराना मकान गरीबों की बस्ती में था, और बहुत साधारण-सा था। जबकि नया एकदम विशाल और आलीशान था। मैं क्षणभर खड़ा होकर सोचने लगा कि किससे पूछा जाय। उसी समय मकान का द्वार खुला और एक नौकर ने मुझसे पूछा—सोहनपुर से आ रहे हैं ?

मेरे 'हां' कहने पर वह मुझे भीतर ले गया। देखा चांदकुंवरि खुद दौड़ी आरही है। आकर बोली—मैं तो कह रही थी कि पत्र मिल गया तो तुम जरूर आओगे। कोई बाधा नहीं जो तुम्हें रोक सके। लेकिन राह

देखते देखते निराश होकर मुझे यहाँ चली आना पड़ा।

मैंने देखा अब वह चाँदकुँवरि नहीं रह गई है। स्वच्छ वस्त्रों में उसके रूप की अतुल निधि साधारण स्थिति से उसे बहुत ऊँचा उठाये हुए है।

दौलतपुर में वर्षों पहले एक गरीब लड़की को देखा था। वह उस समय भी अपने कई आन्तरिक गुणों के कारण मेरी चित्तवृति के अनुकूल पड़ती थी लेकिन आज की भव्य दीप्त चाँदकुवरि से उस लड़की का कोई सबंध नहीं था। उसके रूप और उसकी सज्जा के आगे मेरी स्मृति की चाँदकुंवरि कहीं की कहीं विलीन हो गई।

मैंने उसे बताया कि रास्ते में किस तरह ज्यादा समय लग गया। उसने सुनकर कहा—मेरा दुर्भाग्य।

परन्तु इस दुर्भाग्य का आशय मैं नहीं समझ पाया। वह बोली—अभी-अभी उनकी आँखें लगी हैं। दो मिनट सो लेने दें तब ले चलूँगी उनके पास। तुम भी थके हुए होगे। चलकर थोड़ी देर आराम करलो।

मैं नहीं समझ पाया कि उसके 'वे' कौन हैं जिनसे मुझे मिलना होगा और ऐसा कौन-सा बड़ा सकट है जिसके लिए मुझे इतनी दूर से बुलाया गया है। इस आलीशान मकान में, इतने नौकर चाकरों के बीच, किसी सकट की कल्पना कर लेना कोरी हिमाक़त है। मैंने कहा—मुझे आराम की आवश्यकता नहीं है।

"तो चलकर तुम मेरे पास बैठो। मै उनके लिए पथ्य तैयार कर लूँ। तुम्हारे खाने पीने का प्रबध पास के ही मकान में कराया है।"

उसकी बातों से इतना तो स्पष्ट हुआ कि उसके 'वे' बीमार हैं। उन्हें रात भर नींद नहीं आती। कभी थोड़ी देर के लिए आँख लग जाती है। उनके लिए पथ्य की जरूरत होती है जो नौकर चाकरों से न तैयार कराके घर की मालकिन खुद करती है। मैंने पूछा—उन्हें क्या हुआ है?

अभी ले चलूगी उनके पास। देख लेना। उनकी बीमारी क्या कोई साधारण बीमारी है? जीवन को बूँद बूँद करके चूस लिया है उसने। मैं तो कहीं की भी न रह गई!—यह कहते कहते उसका गला रुँध गया

और आँखें सजल होगईं। मैंने देखा कि उसके भीतर कोई महान वेदना घुमड़ रही है। अभी तक वह उसे रहनसहन के आडंबरपूर्ण वातावरण में छिपाये हुए थी। मैं उसके भीतर की वेदना के अथाह पारावार को देख न पाया था। ओस से सजल हुए कमल की तरह उसके मुख की ओर देख कर मैंने कहा—परन्तु दृढ़ता रखने से ही ठीक होगा।

"मैंने इनके लिए सब कुछ छोड़ा भाई रमेश और ये मुझे मझधार में छोड़े जा रहे हैं।" वह सिसकने लगी।

"यही क्या दृढ़ता रखने जैसी बात है? मेरे उपदेश को तुम इसी तरह मान कर चलोगी तो उसका सुपरिणाम क्या होगा?"

मकान के बाहर मोटर का हार्न सुन पड़ा। चाँदकुंवरि चौंक पड़ी। नौकर ने दौड़कर सूचना दी—बाबू साहब आये हैं।

उसका चेहरा धुले कपड़े की तरह रक्तहीन होगया। उसे संभाल कर बोली—कह दो अभी काम कर रही हूँ। मिल नहीं सकती।

नौकर ने लौट आकर कहा—एक दो मिनट के लिए कह रहे हैं।

"उनसे कहो बैठें।" कहते कहते उसके चेहरे पर आवेश की छाया घनी हो गई।

नौकर ने फिर आकर बताया—वे यहीं आरहे हैं।

"यहीं। यहाँ नहीं। उनसे कहदो।" कहती हुई वह उठ खड़ी हुई और बेतहाशा कमरे से निकल गई। तब तक किसी के भारी पैरों की आहट आती हुई सुनाई दी। मैं वज्राहत-सा अपनी जगह पर बैठा रहा। यह सब क्या हो रहा है? इसके ऊपर मुझे आश्चर्य हो रहा था। दो एक सेकन्ड बाद मालूम होगया कि आगन्तुक और चाँदकुंवरि पास के ही बड़े कमरे में हैं।

वह कह रही थी—आप जायें, इस समय मैं एक मिनट के लिए भी बात नहीं कर सकती।

आगन्तुक ने कहा—अच्छा, जा रहा हूँ, लेकिन देखो चाँद! ये नखरे जैसी कोई चीज हमारे बीच में अब नहीं रहनी चाहिए।

इस हालत में हूं ।"

चाँद चुपचाप खड़ी थी । वह हम दोनों के बीच में एक शब्द भी न बोली । मैंने कहा—मुझे तो क्या किसी को भी शायद ही यह मालूम हो कि तुम यहाँ हो ।

राधावल्लभ—ऐसी बात नहीं है भाई । मैंने बहुत पहले ही अपने पिता जी को एक पत्र लिखकर बता दिया था कि मैं कहां और कैसे हूँ । उनका उत्तर भी आया था । चाँद, वह पिता जी का पत्र रक्खा है न सँभाल कर तुमने ?

मैंने चाँद की ओर मुख करके देखा । उसकी कमलायत आखें अश्रुधारा बहा रही थीं । राधावल्लभ ने फिर कहना आरंभ किया—जानते हो भाई, पिताजी ने क्या लिखा था ? उन्होंने लिखा था कि मैं कभी उनसे कोई सबंध न रक्खूँ । यदि कभी मरने भी लगूँ तो अपनी मृत्यु का समाचार न भिजवाऊँ । मेरे मरने में अब बहुत देर भी नहीं है, और मैं उनकी आज्ञा का पालन करूँगा । इसीलिए मैंने अपनी बीमारी की, जो एक दम मौत का पैगाम है, किसी को खबर नहीं दी । तुम्हें बुलाया सो भी चाँद ने, मैंने नहीं ।

अधिक बोलने से राधावल्लभ को खाँसी उठ खड़ी हुई । वह जोर जोर से खाँसने लगा । अब चाँद खड़ी न रह सकी । वह झट घूमकर पलग की पाटी पर जा बैठी और धीरे धीरे उसकी पीठ सहलाने लगी । उसके आँसू गालों पर ढुलक कर अपनी कहानी अलग कह रहे थे ।

चाँद ने हाथ के इशारे से मुझे कहा कि मैं कोने में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ जाऊँ । मैंने कुर्सी लेकर आगे खींच ली । खाँसी के वेग से ऊपर का वस्त्र खिसक जाने के कारण मैंने राधावल्लभ का शरीर देखा । उसमें रक्त-मास का तो नाम भी नहीं रह गया था । मेरी आँखों के सामने उसका वह कैशोर शरीर था जो हम सब साथियों के लिए एक दिन दर्शनीय वस्तु था । वह सारी शरीर संपत्ति कैसे खोगई यही मैं सोच रहा था । सामने मौजूद होते हुए भी जी इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहता था कि यह वही

राधावल्लभ है।

खाँसी शांत होने पर उसने इशारा किया कि वह उठकर बैठना चाहता है। एक ओर से मैंने और दूसरी ओर से चाँद ने उसे उठाया और मोटा तकिया रखकर उसके सहारे बिठा दिया। एक हड्डियों का ऐसा ढाँचा मात्र था वह कि जिस पर खाल भर लपेटी हुई हो। मानव शरीर और यौवन का ऐसा परिवर्तन मैंने अपने जीवन में अब तक न देखा था।

चाँद ने कहा—दलिया ठंडा हो गया है। कहो, तो गर्म करके ले आऊँ?

ले आओ—राधावल्लभ ने सिर हिलाकर जता दिया।

वह उठकर बाहर चली गई।

मुझे दुखी देखकर राधावल्लभ बोला—दुखी होने की बात नहीं है मेरे लिए भाई। मैंने जीवन के सब सुखों का भोग कर लिया है। समाज के नियमों को तोड़कर मैंने चाँद जैसी नारी को पाया, इसे मैं जीवन का सबसे बड़ा वरदान मानता हूँ। मेरे अपने कर्मों का बोझ इतना भारी था कि मैं कभी का उससे दबकर पिस गया होता। चाँद ने मेरे जीवन में प्रवेश करके उस पापों के हिमालय को स्वयं उठा लिया और मुझे ऐसी राहत दी कि मैंने एक बार नया जीवन पाया। हाय, परन्तु मैंने अपनी कुटेवों से उस प्राप्त स्वर्ग को फिर से खो दिया!

कहता कहता राधावल्लभ अपने भावों में खो गया। कुछ क्षण चुप रहकर बोला—रमेश भाई, तुम्हें याद होगा एक दिन मैं, तुम, रामचरन और सुचेता साथ साथ खेलते थे। सुचेता को लेकर मैं और रामचरन में झगड़ा होता था और तुम बीच में पड़कर हमारे झगड़े को निबटाते थे। कितने निकट अतीत की यह बात है। उसके बाद सुचेता हमारे जीवन से निकल गई परन्तु नारी के प्रति पुरुष की जो लालसा होती है उसे जो वह जगा गई वह फिर मेरे भीतर प्रज्ज्वलित ही होती गई। वह कभी कम न हुई। मैं न जाने कहाँ कहाँ भटकता फिरा। तप्त मरुभूमि में तृषित हिरन की भाँति मुझे मरुमरीचिका के सिवा और कुछ न मिला। बंबई, कलकत्ता,

दिल्ली और लाहौर के संगीत विद्यालय, नाटक मंडलियाँ, मजलिसें और फिल्म स्टूडियो सभी की खाक मैंने छानी। कोई बाकी न रहा। सर्वत्र गायक गायिकाओं, अभिनेता व अभिनेत्रियों के संपर्क में आया। उनका कृपापात्र बना और उनके साथ रगरेलियाँ कीं परन्तु भीतर की आग शांत होने के बजाय दीप्त ही अधिक हुई। इस मरणशैया पर लेटा हुआ मैं आज उस सुचेता को, वह जहाँ कहीं भी हो, शाप देता हूँ कि जीवन-सुख से वह जन्मजन्मान्तर तक वंचित रहे।

अब तक तो मैं चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था। अब मेरे से न रहा गया। मैंने उसे रोककर कहा—ऐसा मत कहो। सुचेता के लिए ऐसा मत कहो भाई। मैं उससे मिलकर आरहा हूं। उसे भगवान् ने जो सुख दिया है उसके लिए किसी अशुभ कल्पना को मैं सुनना नहीं चाहता।

इसके साथ ही मैंने सुचेता कैसी है, यह सारा हाल बताकर कहा—पुण्यवती उस नारी के लिए कुछ भी कहना आज ठीक नहीं है भाई। लड़कपन की बातों को याद करके उसे दोष देना अनुचित है।

'मैं तो अपने भीतर की वासना को भड़काने का उसे दोषी मानता हूँ। उसने किस तरह छेड़छेड़ कर उसे जगाया था यह तुम्हें मालूम नहीं। तुम तो उस समय निरे बच्चे थे।''

''हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि अपने हृदय की भावनाओं को तुमने भूल से उसके आचरण में देखना शुरू कर दिया हो। यों वासनात्मक मोह मानव शरीर की प्रकृतिदत्त आवश्यकता है, परन्तु उसके आसपास मानसिक कल्पनाओं का जाल बुनकर वह उसमें इतनी उलझनें पैदा कर देता है कि कभी कभी स्वयं भी उसकी थाह पाने में भूल कर बैठता है। जिस हेतु तुम जो बात करते थे उसी कारण वह भी वैसा करती थी, यह मान बैठने से ही इस प्रकार की भूल हो जाती है।''

उसने मेरी किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर सुस्ता लेने के बाद बोला—हो सकता है। मातृगौरव के उच्च पद पर आसीन हो जाने से आज सुचेता देवी भी बन सकती है। तुम सब लोग धूप दीप लेकर

उसकी पूजा कर सकते हो, उसे सीता और सती के आसन पर विराजमान कर सकते हो। लेकिन एक आदमी है, जो शीघ्र ही राख के ढेर में विलीन हो जायगा और उसके बाद उसकी कैसी भी राय का अस्तित्व नहीं रहेगा, वह जानता और मानता है कि वह उस पवित्रता से कोसों दूर है जिसके लिए भारतीय नारी को इतना ऊँचा उठाया गया है। मैं तो नहीं रहूंगा लेकिन मौका मिले तो उससे पूछ लेना। राधावल्लभ का नाम लेकर पूछ लेना।

मैंने कहा—जाने भी दो इस चर्चा को। आपकी बात सच हो सकती है, लेकिन समय के साथ आदमी बदलता भी तो है। देवता राक्षस और राक्षस देवता भी तो बनता है।

क्यों नहीं। यह तो होता ही है। यही चाँद थी जिसे मैंने कभी नजर उठाकर नहीं देखा था। एक दिन तुम्हें शायद याद हो मेरे से उसका सिर फोड़ देने का अपराध भी बन पड़ा था। उसका दाग आज तक मेरी स्मृति के रूप में उसके माथे पर मौजूद है। वह आघात तो अनिच्छा से और अचानक लग गया था। उसके बाद अनेक आघात मैंने जानबूझकर उसके लगाये हैं। उसके ऊपर मेरे अत्याचारों का अन्त नहीं रहा है, परन्तु उन सबको सदा उसने अपनी मुस्कराहट में ही लपेटकर स्वीकार किया है। मुझे पता नहीं तुम्हें किसी नारी ने कभी प्रेम किया है या नहीं और यह भी पता नहीं कि तुमने उसका कैसा सत्कार किया है। मेरे लिए तो मैं कह सकता हूँ कि चाँद को पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूं। माता-पिता से त्याज्य, समाज से तिरस्कृत और बंधु-बांधवों से विस्मृत मेरा जीवन चाँद की छाया में कभी सूना नहीं बीता। उसने मेरे सारे अभावों को पूरा किया है। मैं नहीं समझता कि मेरे जैसे आवारा जीवन में प्रेम-नीड़ का निर्माण करने की दुर्बुद्धि उसे किसने दी थी? वह कहीं भी जाती तो इससे हजार गुना अधिक सुखी रहती। मेरे साथ सदैव दुख और अभावों से वह लड़ती रही है। विधाता ने उसे जितना रूप और जितने गुण दिये हैं उनसे वह राजरानी बन कर रह सकती थी। मुझे आश्चर्य होता है उसने

मेरे सुख के लिए क्या नहीं किया ?

चाँद की इस प्रशस्ति के समय मुझे बराबर सबेरे वाली घटना याद आ रही थी जब एक बाबू साहेब ने घर के भीतर आकर उससे मुलाकात की थी और जिन शब्दों में जो कुछ कहकर वे चले गये थे वे शब्द तबसे अब तक मेरे कानों में गूँज रहे थे। यद्यपि मैं उन शब्दों का सन्दर्भ नहीं जान पाया हूँ परन्तु ये स्वय इतने स्पष्ट और साफ हैं कि उनसे अधिक सार्थक शब्दावली और क्या होगी ? वे अपने आशय को आपही प्रकट कर रहे हैं। उनकी खबर तक न रखकर राधावल्लभ जो यह स्तोत्र पाठ कर रहा है उससे वह चाँद के मूल्य को बढ़ाने की बजाय घटाता ही अधिक है।

इस बीच चांद न जाने कब आकर खड़ी होगई थी। वह बोली—तुम्हें जरा कभी नींद आजाती है तो उसके बाद फिर चुपचाप नहीं बैठते। बोल बोलकर तबियत खराब कर ही लेते हो। यह भी कोई बात है।

राधावल्लभ—बात यह है चांद कि अब जब जीवन की कोई आशा नहीं है तो कराह कराहकर मरने की अपेक्षा बातें करते करते मरूँ यही मैं चाहता हूँ।

चांद—तुम तो सदा इसी तरह करते हो। लो यह दूध और दलिया थोड़ा सा ले लो। पीछे तुम्हारे मन में आये सो करना।

उसने एक छोटी टेबिल पर दूध दलिया और चम्मच रख दिया। राधावल्लभ बिना प्रत्युत्तर दिये चम्मच उठाकर उसकी आज्ञा का पालन करने का यत्न करने लगा।

इतनी देर हम लोगों से अलग रहकर चांद प्रकृतिस्थ हो चुकी थी। बोली—भाई, तुम्हें यह बात शायद बुरी लगी होगी कि मैंने तुम्हारे रहने और खाने का प्रबंध यहाँ नहीं किया।

अवश्य ही इसका कोई कारण होगा—मैंने कहा।

इस घर का किराया चुकाने या इस प्रकार के रहन सहन को बरदाश्त करने लायक हमारी हालत नहीं है। साढ़े आठ महीने से इन्होंने एक पैसा भी पैदा नहीं किया है। दो महीने बम्बई में, डेढ़ महीने नासिक में और

बाकी पांच महीने यहां सिर्फ खर्च करते ही बीते हैं। हमारे पास जो कुछ था वह समाप्त हो चुका। अभी दो दिन पहले दूसरे दिन के लिए इनके पथ्य को भी हमारे पास कुछ नहीं था।

राधावल्लभ ने खाना बंद कर दिया और बोला—रमेश भाई, इसके आगे बहुत दर्दनाक अध्याय है। चांद उसे ठीक से न कह सकेगी।

सचमुच ही चांद में शक्ति का शेष हो चुका था। वह कमरे से बाहर चली गई थी। राधावल्लभ बोला—एक बाबू साहेब बंबई से चांद के गाहक हैं। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों के आराम के लिए मैंने अपनी चांद को उन्हें दे डाला है। बदले में इस घर का निवास और रहन-सहन का सारा खर्च तथा नौकर चाकर पाये हैं।

कहते-कहते चम्मच उसके हाथ से छूट पड़ा, और सांस ऊपर चढ़ गई। एक भयानक कष्ट से उसकी सारी काया मरोड़ खाने लगी।

मैंने दोनों हाथों से सहारा देकर उसे सँभाला। चांद कहीं गई न थी। द्वार से सटकर दीवाल के सहारे खड़ी थी। सामने रहकर यह सब सुनने की सामर्थ्य उसमें न थी। वह भी भीतर आगई और जो-सो उपचार की व्यवस्था करने लगी।

"इनसे तो थोड़ी देर भी शान्त नहीं बैठा जाता।"

"ऐसी हालत में कौन शान्त रह सकता है? इन्हें व्यर्थ दोष न दो चांद!"

उपचार जारी रहा। करीब बीस मिनट में जाकर राधावल्लभ का जी ठिकाने आया। चांद ने सख्त हिदायत कर दी कि अब व्यर्थ की बातें नहीं करनी होंगी।

राधावल्लभ ने क्षीण कंठ से कहा—परन्तु काम की बातें तो कर लेने दो। समय बीता जा रहा है। गिनी हुई सांसें रह गई हैं। फिर कौन बताने आयेगा?

छलछलाई आंखों में रोष की लाली लाकर चांद ने उसे झिड़कते हुए कहा—तुम नहीं मानोगे तो हम जाते । तुम्हें तो अकेला ही पड़ा रहने

देना चाहिए।

नौकर ने आकर सूचना दी—डाक्टर देखने आया है।

पीछे पीछे अपने हैंडबैग के साथ डाक्टर ने प्रवेश किया।

तुम कैसा है महाशय ?—डाक्टर का पहला प्रश्न था।

मैंने डाक्टर के लिए कुर्सी छोड़ दी। वह उस पर बैठ गया। राधावल्लभ ने हँसने का यत्न करते हुए कहा—इस समय मैं बिल्कुल स्वस्थ हू डाक्टर।

यह तो बहुत अच्छा सम्बाद है महाशय!—डाक्टर ने नाड़ी की परीक्षा करते हुए कहा।

राधावल्लभ—मैं इस कदर स्वस्थ हूं डाक्टर, कि पैदल ही स्वर्ग तक चला जा सकता हूँ। तुम्हें कैसा लग रहा है ?

डाक्टर—स्वर्ग का रास्ता तुम्हारे लिए कभी का बन्द हो गया है।

राधावल्लभ—स्वर्ग का बंद होगया है पर नर्क का तो खुला है। मेरे जैसे आदमी को स्वर्ग में घुसने भी कौन देगा ?

डाक्टर—नर्क में कोई जाना नहीं चाहता। तुम जाना चाहता है ?

राधावल्लभ—लेकिन तुम्हें देने को अब हमारे पास फीस नहीं है।

उसकी फिक्र तुम्हें नहीं करनी है महाशय। फीस हमारे पास आपही पहुँच जाती है। मुझे तो बदस्तूर दिन में तीन बार आकर तुम्हारी परीक्षा करनी है।—डाक्टर ने कहा।

चाँद अब तक चुपचाप खड़ी थी। वह बोली—डाक्टर साहेब, यह बोलते बहुत हैं आप इन्हें ऐसी सलाह दीजिए कि ये कुछ देर शांत रहा करें।

"शांति और मौन ही तो इनका पथ्य है। देखो महाशय, डाक्टर और पत्नी दोनों की राय जिस बारे में मिल जाय उसे स्वीकार करना बीमार का फर्ज है। उसमें कुपथ्य नहीं चल सकता।"

"महामौन की साधना में कभी कभी मौन-भंग की छूट तो होनी ही चाहिए डाक्टर! बोलिए क्या यह ठीक नहीं है ?"

"तब तुम्हारी इस खूबसूरत बीबी का क्या होगा, यह भी सोचा है ?"

"यही एक द्विविधा है। इसका भी कोई इलाज है?"

"उसकी जरूरत नहीं है। अच्छा, नमस्कार महाशय।"

राधावल्लभ और हम सबने डाक्टर को नमस्कार किया। चाँद कमरे से बाहर दूर तक उसके साथ गई और बीमार के उपचार के विषय में जरूरी परामर्श करके लौटी।

उस दिन रात्रि-शयन से पूर्व मुझे सब बातों का पता चल गया। किस तरह दादी की मृत्यु के बाद निराधार चांद को राधावल्लभ ने आश्रय दिया था और पूरे एक साल तक दोनों एक साथ रहकर भी पति-पत्नी के संबंध की कल्पना से रहित थे। राधावल्लभ को एक अभिनेत्री के पंजे से मुक्त करने के लिए चाँद के जी में इस नये संबंध का विचार उठा। वह सफल हुई और राधावल्लभ को उसने बचा लिया। उसने संगीत और नृत्य का इतना अच्छा अभ्यास किया कि राधावल्लभ कृतकृत्य होगया। उसे वह सब अपने घर में ही मिल गया जिसके लिए वह दर-दर भटक रहा था। इतने पर भी इस जोडे को आर्थिक समस्या की भीषणता का शिकार होना पड़ा। राधावल्लभ किसी स्थायी काम में लग नहीं पाया और चांद का यह प्रण था कि वह नाचने और गाने को अपनी जीविका का साधन नहीं बनायेगी। वह अपने विचार पर बराबर दृढ़ रही। मित्रों और हितेच्छुओं के लाख समझाने पर भी उसने अपनी अड़ नहीं त्यागी। बद से बदतर गरीबी के दिन देखे परन्तु प्रलोभन में नहीं पड़ी। उसके नृत्य और संगीत ने जो मित्रों तक ही सीमित था उसकी ख्याति और प्रशंसा को फैला दिया। बंबई के धनवान बाबू साहेब बरसों से उसकी चाह में व्याकुल हो रहे थे। राधावल्लभ की बीमारी और बेबसी का लाभ उठाकर उन्होंने चाँद का सौदा किया है। राधावल्लभ की इच्छा से नहीं बल्कि चांद की स्वीकृति से। पूरे चौबीस घन्टे बीमार को पथ्य और दवादारू कुछ भी न जुटा सकने की अवस्था में पहुँच जाने पर उसीने अपने आपको उस रूप लोभी धनिक के हाथों में सौंप दिया। उसकी इच्छा चांद को रंगमंच पर ले जाने की है। जो काम स्वतंत्र रूप से करना उसने अस्वीकार कर दिया था और अनेक

कष्ट उठाकर अपनी प्रतिज्ञा को निबाहा था। उसे वेश्रसी की हालत में आज वह करने की स्वीकृति दे चुकी है।

यह सुनकर मुझे और अधिक दुख हुआ कि मेरी प्रतीक्षा में दो दिन बिना खाये पिये बिताने के बाद निराश होकर उसने यह जौहर व्रत करने का निर्णय किया था। काश, मैं दो दिन पहले पहुच गया होता। इसी मेवाड़ में इसी तरह की एक ऐतिहासिक घटना तब घटी थी जब राजपूत बालाओं की चिता की राख पर खड़े होकर हुमायूँ ने आँसू बहाये थे। वह भी समय पर नहीं पहुच पाया था। मैं भी उसी तरह समय के बाद पहुँचा हू। मैं भी पलकों में अश्रु लिए अपनी बुद्धि का तिरस्कार कर रहा हूँ।

चाँद का जितना स्तोत्रपाठ राधावल्लभ ने किया था मेरे निकट वह उससे कहीं अधिक पूजनीय और महनीय हो उठी। इतना बड़ा त्याग करके कोई पुरुष कभी धरती पर पैर भी न रखना चाहेगा। यह मातृजाति ही है जो हँसते हँसते अपना सर्वस्व प्रियतम पर निछावर कर सकती है और फिर भी मुह नहीं खोलती, मूक बनी रहती है। राधावल्लभ के लिए, जिसे उसके मां बाप ने कपूत ठहराकर त्याग दिया, उसने क्या नहीं किया है? तपस्या का यदि कोई फल होता है, त्याग की यदि कुछ महिमा है, पुण्य का यदि कोई प्रताप है तो उसे कभी इस दुनिया में दुख नहीं होना चाहिए। उसकी पाप की कमाई के एक कण से भी मेरा वास्ता न रहे इस वास्ते वह फुर्सत के एक एक क्षण को बुनाई और कशीदे के काम में लगाती है और जो कुछ तैयार होता है उसे बुढ़िया अम्मा की मारफत दूकानों पर पहुँचा देती है। उन्हीं श्रम से उपार्जित पैसों से मेरे रहन-सहन की उसने व्यवस्था की है।

मुझे ये सब बातें जिस समय राधावल्लभ ने बताईं उस क्षण मेरा रोमरोम श्रद्धा से गद गद् हो गया। मुझसे नहीं रहा गया। अपरान्ह-काल की सुखदायक छाया में बैठकर चाद एक फ्राक पर कशीदा काढ रही थी। मैं सीधा उसके पास चला गया, और उसे अकचकाकर उसके दोनों पैरों को छू माथे से लगा लिया। वह रोकती और चिल्लाती ही रह

गई—अरे, यह क्या ? क्या करते हो भैया रमेश !

मैंने कहा—इन चरणों की धूलि का तीर्थराज की रेणु से भी बड़ा महात्म्य है। तुम मुझसे उम्र में भले ही छोटी हो चांद, लेकिन मेरा जीवन तो आज तुम्हारे इन चरणों को छूकर ही सफल हुआ है।

"इस तरह क्यों मेरा तिरस्कार करते हो—मैं अभागिनी पापिष्ठा क्या तुम्हारे समीप खड़ी होने योग्य हूँ ? मुझे इतना आदर देने से यह पृथ्वी भारी दब न जायगी।"

"इस जीवन में जो कुछ महान है, इस दुनियाँ में जो कुछ धर्म-पुण्य है, वह सब तुम्हारे कामों से नीचे है चाँद। जो इसे नहीं मानते वे पाखंडी हैं।"

"उन्हें तो मर्ज हो गया है। वे इसी तरह की बातें करके अपनी कल्पनाओं के अंबार उठाया करते हैं। तुमसे न जाने क्या क्या गढ़ गढ़कर कह डाला है। उनकी बातें क्या तुम सत्य समझते हो ? वे तो अपनी धारणा के मुताबिक जो मान लेते हैं उसे ही लिए बैठे रहते है। ये उनके स्वस्थ मन की बातें नहीं है। स्त्री अपने स्वामी की दुख-दर्द में सहायक न होगी तो और कौन होगा ? यदि वह इस सेवा सुश्रूषा के लिए यश और कीर्ति चाहने लगे तो क्या उसका लोक-परलोक एक भी सधेगा ?"

"संसार में लीक-लीक चलने वाले ही अधिक हैं। उन्हीं से दुनियाँ भरी है। ऐसों के आगे कभी मेरा यह सिर झुका हो तो भूल से ऐसा हुआ होगा। अलीक और विपथगामियों का साहस ही श्रद्धा की चीज है चाँद। वह बाधाओं से रगड़-रगड़कर सत्य के सुनहले रूप को प्रकट करता है। उसके आगे जो न झुके वह अन्धा है।"

"तो तुम लोग मुझे रहने नहीं दोगे ?"

"तुम रहोगी चाँद, इस दुनियाँ में अपनी मृत्यु के बाद भी तुम पूर्णिमा के चांद की तरह ही सदा चमकती रहोगी।"

"राम-राम. ऐसा मत कहो।"

का। मैं जीवन की बहुत बड़ी प्राप्ति को खो देता यदि तुम्हारा पत्र पाकर भी यहाँ न आता। नारी चरित्र की यह प्रोज्ज्वल दीपशिखा मेरे पथ में प्रकाश-स्तम्भ बनकर खड़ी रहेगी।"

"तुम्हें तो मैं सदा विचार से काम लेनेवाला ही समझती रही हूँ। इतनी जल्दी मत करो। मुझ जैसी एक दीन दुर्बल पतिता की स्तुति करके उसका भार और न बढ़ाओ। पुण्यक्षीण करने जैसी बात तो मेरे मुँह से निकल नहीं सकती, क्योंकि इस जीवन मे पुण्य जैसा पवित्र कार्य करने की मुझे याद नहीं है।"

यह कहते कहते उसकी पलकें भीग गईं। वह उन्हें पोंछ डालने के लिए वहाँ से मुँह छिपाकर भाग गई। मैंने उससे अधिक कहना ठीक न समझा। मैं पास के कमरे में जहा मेज कुर्सी और लिखने पढ़ने का सामान रक्खा था चला गया और अम्मा के नाम पत्र लिखने लगा। बिट्टो का अनुरोध कि अम्मा चिन्ता करेंगी पहुचने पर एक पत्र तो लिख देना, मुझे याद था। मैं कागज-कलम लेकर बैठ गया। लेकिन क्या लिखूँगा यह एक उलझन पैदा होगई। यदि सचमुच अम्मा को ही लिखना उद्देश्य होता तो इतनी उलझन की बात न थी। सीधे सादे चार-छ वाक्यों में कुशल-समाचार और कुछ अपनी यात्रा का हाल लिखा जा सकता था, लेकिन पढ़नेवाला एक दूसरा ही आदमी होगा और उसे सीधी-सादी चार लाइनों से कुछ अधिक, कुछ विशेष, लिखे बिना काम नहीं चलने का। पत्र लिखने के और जो भी उद्देश्य हो एक यह तो बहुत जरूरी है कि उससे सामनेवाले का परितोष हो जाय। वह जिज्ञासा की व्यथा से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाय। स्याही में भरी हुई कलम मेरे हाथ में थी, और मैं सोच रहा था कि कहां से कैसे आरभ करूँ। अम्मा के लिए तो बहुत थोड़ी सी और काम की बात ही काफी होती जबकि बिट्टो के लिए जितना लिख सकूँ और जो जो भी लिख सकूँ वही थोड़ा है। उसकी शिकायत बनी ही रह सकती है। आखिर मैंने जो जी में आया लिखा परन्तु चांदकुँवरि और राधावल्लभ के नामों का उल्लेख न किया, न उनका

कोई हाल लिखा। इतना अवश्य लिख दिया कि संभव है मुझे यहां ज्यादा दिन ठहरना पड़े। मैं जानता हूँ यह पत्र बिल्कुल ही अपूर्ण था और इसके लिए मेरे पर यह आरोप किया जा सकता था कि मैंने जानबूझ कर बातों को टाल दिया था। शेष बातें मिलने पर कहूंगा लिखकर पत्र को समाप्त कर दिया, परन्तु इतना लिखने में कई घन्टे का समय लग गया। अन्तिम बार पत्र को बांचकर यह और जोड़ दिया कि तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है? अपना कुशल समाचार अवश्य देना।

इतना लिखकर एक बार फिर मैं अपने लेख पर दृष्टि डाल रहा था कि नीचे मोटर का हार्न बजा। और उसके बाद किसी का पदनिक्षेप कानों में पड़ा। पैरों की आहट से मालूम हुआ कि आनेवाला आकर बगल के कमरे में ही बैठ गया है। कुछ क्षण बाद चांद भी वहां आ पहुंची। आते ही बोली—क्या समय हुआ है अभी?

आगन्तुक—मैं जानता हूँ मैं समय से पहले आगया हूँ। इसके लिए मैं तुमसे माफी मांग लेता हूँ।

"यही मैं बिलकुल पसन्द नहीं करती।"

"तो क्या मुझे अब तक इतना भी अधिकार प्राप्त नहीं है कि मैं कभी आवश्यकता पड़ने पर तुमसे बीच में मुलाकात कर सकूं?"

"नहीं"—चांद ने दृढ़ता से कहा।

"कभी होगा?"

"नहीं।"

"कभी नहीं?"

"मैं बारबार वही बात नहीं कहती।"

"तुमने बारबार मेरे प्रस्ताव को ठुकराया था। फिर आखिर मान लिया। मेरे हाल पर जैसे तरस किया है, वैसे ही अब उसको निभाओ। मैं तुम्हें प्रसन्न देखना चाहता हूं न कि इस तरह मुरझाई हुई। बात क्या है? तुम्हारा मुंह आज कैसा हो रहा है? मेरी प्यारी चांद, क्या तुम रो रही हो?"

"मैं तुम्हारा यह मकान कल ही खाली कर दूँगी। इसी का लाभ उठाकर तुम एक दुखिया को परेशान करते हो। मैं चाहे जीती हूँ चाहे मरती हू ग्यारह बजे से पहले तुम्हें यह जानने का अधिकार नहीं दिया गया है।"

"तुम तो खफा होगई। मैं किसी तरह उस नियम को तोड़ने की गरज से नहीं आया।"

"तो फिर क्या चाहते हो? तुम यह चाहते हो कि जब तुम्हारी इच्छा हो यहाँ चले आओ और मैं हर समय तुम्हारी सेवा में खड़ी रहूँ?"

"कभी नहीं यह तुम्हारे मन में कैसे उठा है? मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारे चेहरे पर उदासी के बजाय प्रसन्नता देखूँ, तुम्हारी आँखों में आँसू के बजाय प्रेम का सदेश पाऊँ। सारा घरबार छोड़ कर मैं तुम्हारे पीछे फिर रहा हूँ। अगर मैं तुम्हें अपने अनुकूल न कर सका तो मेरा प्रयत्न निष्फल है।"

"अनुकूल-प्रतिकूल को जाने दो आनन्द। आन्तरिक प्रेम की पीड़ा से विह्वल होकर मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है, यह तो जानते ही हो। यह तो एक सौदा है। जब तक इसकी शर्तों पर हम दोनों कायम है यह चलेगा, नहीं तो टूट जायगा।"

"छिः, तुम बड़ी निठुर हो।"

"मैं सच कहती हूँ। उन शर्तों का प्रतिपालन करने की तुम जरूरत नहीं समझ रहे हो। यह तो स्पष्ट है। मेरी विवशता के कारण तुम्हारा यह अत्याचार चल रहा है।"

"चाँद, अगर तुम इसे अत्याचार कहोगी तो मैं फिर कभी तुम्हें अपनी शक्ल न दिखाऊँगा। मैंने तो सुना था, इसीलिए चला आया।"

"क्या सुना था?"

"सुना था तुम्हारे कोई मित्र यहाँ आकर ठहरे है।"

"हाँ, मेरे भाई आये है।"

"लेकिन उस दिन तो तुम कह रही थीं कि तुम अकेली हो। तुम्हारे

परिवार में और कोई नहीं है।"

"वे मेरे सगे भाई नहीं है।"

"तो तुमने उन्हें बुलाया था।"

"हाँ।"

"किसलिए?"

"यह सब बातें जानने का तुम्हें अधिकार नहीं है आनन्द। पन्द्रह मिनट के लिए तुमने कहलाया था ये बीत चुके है।"

"परन्तु मेरी बात तो खत्म नहीं हुई है।"

मालूम पड़ता है चांद जाने को उद्यत हुई तो आनन्द ने उसे पकड़ लिया। इस पर वह बोली—देखो, यह ठीक नहीं है। मुझे छोड़ दो आनंद।

मेरे जी मे आया कि दीवार तोड़कर कमरे में घुस जाऊँ और मोटर पर चढ़कर आने वाले आनन्द को इस अत्याचार का मजा चखा दूँ। परन्तु सोच विचारकर मैं रह गया।

आनन्द—मैं तुम्हें गिरफ्तार कब किये हूं? गिरफ्तार तो तुमने मुझे किया हुआ है।

चाँद— तो तुम यहाँ से चले जाओ।

आनन्द—मैं जा रहा हूं सिर्फ एक बात कहकर। मैं कुछ दिन के लिए बबई जा रहा हूँ। शायद इस बीच तुम्हें रुपयों की—

"नहीं मुझे रुपयों की कोई जरूरत नहीं है। आप अपने रुपये साथ ही ले जायें।"

तुम्हें मेरी कसम है इनकार मत करो। ये रुपये रखलो। कहकर मालूम पड़ता है आनन्द ने जबरदस्ती चाँद को नोटों का बंडल थमा दिया और जाने लगा। चाँद ने बंडल उसी के ऊपर फेंक दिया जिससे नोट सारे कमरे में खरखराकर बिखर गये। आनन्द ठहर गया और बोला—यह क्या किया तुमने? सारे कमरे में नोट ही-नोट कर दिये। तुम्हारे भाई आजायेंगे तो देखकर क्या कहेंगे?

"मेरे भाई नोटों के लोभी नहीं है।"

किसी पर विश्वास नहीं रहता। यह तो उसकी देखरेख करनेवालों का कर्त्तव्य है कि वे उसे तसल्ली भी देते रहें और इलाज में भी कोई व्यतिक्रम न होने दें।

राधावल्लभ—यह सब कुछ नहीं है। मैं दो दिन का बीमार नहीं हूँ। मैं उसके साथ कदम कदम चलकर वहाँ पहुच गया हूं जहां से मृत्यु को भली भाँति देख सकता हूं।

मैं—यह लंबी बीमारी से उत्पन्न निराशा का परिणाम है। मृत्यु कभी किसी को दिखती नहीं है, जब दिखती है तो वह तुरन्त उसकी गोद में विश्राम ले लेता है।

राधावल्लभ—लेकिन मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं दवा का अब एक बूँद भी नहीं लूँगा।

अगर ऐसा ही है तो मत लेना—मैंने कहा।

उधर रामधन डाक्टर को लेकर आ पहुँचा। कमरे में प्रवेश करते ही डाक्टर ने सहज विनोद के भाव से कहा—कहिये महाशय, आज तो चंगे हो?

"चंगा तो था लेकिन आपको देखकर बीमार हुआ जा रहा हूं।"

"यह क्या, सभी तो डाक्टर को पास पाकर साहस का अनुभव करते हैं। आप बीमार हुए जा रहे हैं?"

"डाक्टर मुझे विश्वास हो गया है कि आपके पास कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे डाक्टर और बीमारी दोनों से त्राण मिल जाय?"

"हर एक दवा ही तो यह गुण रखती है महाशय, लेकिन रोगों की किस्में भी तो लाखों है। कब कौन सी दवा यह काम करेगी यह निर्णय करना ही मुश्किल होता है।"

"मैं आपको एक दवा बता सकता हूँ जो हर दशा में यही काम करेगी।"

"जरूर बताइये महाशय। आप मेरे गुरु, मैं आपका चेला। कहिये।"

"डाक्टर, वह दवा है जहर—हलाहल।"

यह सुनकर डाक्टर इतनी जोर से हँसा कि सारा मकान गूँज गया।

फिर बोला—लेकिन डाक्टर लोग ऐसी चीज का प्रयोग करके अपने पेशे पर कुठाराघात करना नहीं माँगता।

"तो आप लोग अपने पेशे को कायम रखने के लिए बीमारियों को कायम रख रहे हैं ?"

"आप सच कहते हैं महाशय ! अब लाइये आपकी नाड़ी-परीक्षा करें।"

"लीजिये, नाड़ी-परीक्षा कीजिये लेकिन राधावल्लभ अब आपकी दवाई का एक बूँद भी गले से नीचे नहीं उतारेगा।"

"क्यों महाशय ?"

"यही निश्चय किया है। अगर दवा ही देनी है तो मुझे दो बूँद हलाहल दो डाक्टर। आपकी दूसरी दवा मैं नहीं लूँगा।"

डाक्टर ने नाड़ी देखी। हृदय की परीक्षा की। सतोष प्रकट करके कहा—आम हालत में संतोषजनक उन्नति हो रही है।

राधावल्लभ ने इस पर मुस्कराकर कहा—परन्तु खास हालत बिगड़ रही है यह सुधार उसके आगे कुछ भी नहीं है डाक्टर।

डाक्टर चला गया। उसकी भेजी हुई सभी दवायें टेबिल पर रक्खी रहीं। एक बूँद भी रोगी ने नहीं ली। चाँद पानी भरी हुई घटा की तरह फिर रही थी। मैं जानता था उसे जरा भी छेड़ दूँगा तो घर में आँसुओं की गगा बह जायगी। सब लोग चुपचाप और मौन थे। मैं बुढ़िया अम्मा के यहाँ भोजन करने भी नहीं गया। आकाश के बादल छँट गये थे पर घर का वातावरण साफ न हुआ था।

दोपहर के बाद हवा चली और उसके साथ ही आँधी-पानी के आसार दिखाई दिये। राधावल्लभ एक हलकी चादर से अपना कंकाल ढके चुपचाप पड़ा था। मैं पास ही कुर्सी पर अलसाया बैठा था। जी नहीं होता था कि किसी से कुछ बात करें। देखा चांद भीतर आई और राधावल्लभ को लक्ष्य करके बोली—क्या आज सबको निराहार रखना है ? पथ्य भी नहीं लोगे ?

राधावल्लभ—चाँद, तुम्हारी खुशी-नाखुशी की परवाह किये बिना

मैंने बहुत बार बहुत से काम किये हैं। आज नहीं करूंगा। आज जाने से पहले तुम्हें नाराज नहीं करूँगा। लाओ पहले दवा दो, पीछे पथ्य देना।

चांद इतनी देर बाहर रहकर जो साहस और कोप बटोर लाई थी, इस आशा से कि इस बार वह राधावल्लभ को दो चार कड़ी बातें सुनायेगी। दो चार ऐसी शिकायतें करेगी जिससे वह यह समझे कि वह न केवल अपने पर बल्कि घर के और सब लोगों पर कम अत्याचार नहीं कर रहा है। उस का वह सारा साहस और कोप आँखों में से आँसू बनकर ढुलकने लगा। उसने यह परवाह नहीं की कि मैं यहां बैठा हूं। वह आगे बढ़कर राधावल्लभ की चारपाई पर औंधी होगई और हिचकारी मारकर रोने लगी। मैं अपनी कुर्सी पर किंकर्तव्यं विमूढ-सा रह गया। मुझे सूझ नहीं पड़ा कि क्या करूँ, कमरे से बाहर निकल जाऊँ या वहीं बैठे बैठे उन्हें सान्त्वना दूँ।

राधावल्लभ ने अपनी छाती पर रक्खे हुए उसके सिर को दोनो बाहों में भर लिया और कहा—चांद, प्यारी! रोओ नहीं, दवाई पिलाओ। मेरा कठ सूख रहा है।।

उसके भर्राए कंठ स्वर से मालूम पड़ा कि वह भी करुणार्द्र हो उठा है।

चाँद रोते रोते ही बोली—मैं क्या तुम्हें इसलिए दवाई पिलाना चाहती हूँ कि तुम्हें कष्ट हो? अगर तुम्हें दवाई नहीं भाती है तो मत लो उसे।

राधावल्लभ—दवाई पर से मेरी आस्था उठ गई है चाँद, इसीलिए मैंने ऐसा कहा था। उससे मुझे अरुचि नहीं है।

चाँद—आस्था उठ गई है तब भी तो उसे नहीं लेना चाहिए। ऐसी हालत में कोई लाभ नहीं होगा उससे।

राधावल्लभ—होगा, क्यों नहीं होगा। तुम अपने हाथों से डालकर दो। जरूर लाभ होगा। मैं दवा के प्रभाव से नहीं तुम्हारे हाथों के अमृत के प्रभाव से ही तो आज तक जिन्दा हूँ। जरा अपने हाथ इधर दो मुझे।

चाँद ने निस्सकोच भाव से अपने दोनों हाथ बढ़ा दिये। राधावल्लभ ने

बारी बारी से दो तीन बार दोनों का चुम्बन किया और कहा—कितने मीठे हैं ये ! ओह, अमृत भी क्या इतना मीठा होगा ?

इसके बाद राधावल्लभ के चेहरे पर से मुर्दनी दूर होती दिखाई दी। जैसे सचमुच ही हाथों के अमृत का प्रभाव उसके ऊपर हुआ हो। चाँद के भीतर का गुबार भी निकल गया और वह भी स्वस्थ और हल्की प्रतीत हुई। वह दवाई पिलाने का हठ किये बिना ही कमरे से बाहर चली गई और जब पथ्य लेकर लौटी, तभी मानों मेरी उपस्थिति का उसे भान हुआ और उसके कारण वह शर्म से दोहरी हुई जाने लगी।

पथ्य खिलाकर जब वह चली गई तो राधावल्लभ ने मुझसे पूछा—रमेश भाई, क्या ख्याल है, बुद्ध को बोधिज्ञान की प्राप्ति कराने में सुजाता की खीर कारण थी या उसके हाथों का अमृत ?

शायद हाथों का अमृत ही होगा, नहीं तो खीर तो सभी खाते हैं पर बुद्धदेव कोई नहीं हो पाता।—मैंने उत्तर दिया।

इस पर देर से बन्द कर रक्खी हुई अपनी आंखों को खोलकर उसने कहा—'शायद' फिर किसलिए, निश्चयपूर्वक कहो न।

मैं—शायद इसलिए कि मुझे इसका पूरा अनुभव नहीं है।

"यह सही है तुम्हें अभी इसका ज्ञान नहीं है। परन्तु होगा, निश्चय ही होगा। नारी के प्रेम का प्रसाद तुम्हें जल्दी ही मिलेगा और तब तुम जानोगे।—मैं तो अपने को किसी अक्षय पुण्य का पात्र मानता हूँ जिसे एक नारी के अकृत्रिम प्रेम का वरदान बिना माँगे मिला है। मैं जिन्दा रहूँ तो सुखी हूं और मर जाऊँ तो भी दुख नहीं है।"

मैंने कहा—तुम धन्य हो।

मालूम पड़ता है इतनी देर तक आवेगपूर्ण बातें करते करते उसका सिर घूमने लगा। हाथों को इधर उधर फैलाकर पलँग की पाटी का सहारा लेते हुए वह बोला—रमेश, जरा उसे बुलाओगे भाई ?

मैंने देखा उसकी आँखों की पुतलियाँ पलट रही हैं। मैं दौड़कर चाँद को बुला लाया। वह भागती आई। तब तक उसका सिर पट्टी पर गिर

लटक गया था, जिसे रोती बिलखती हुई, चाँद ने लेकर गोद में रख या।

मैंने रामधन को आवाज दी और रोगी की कलाई को हाथ में लेकर डी देखने लगा।

रामधन डाक्टर लेने दौड़ा गया और पाँच सात मिनट में ही मोटर बिठाकर उसे ले आया। डाक्टर ने हृदय की धड़कन देखी। दो एक जेक्शन दिये। फल कुछ भी न हुआ। केवल एक बार कराहने की चीख साथ निकला 'माँ', फिर सब शांत होगया। डाक्टर ने उदास भाव से ा—'बहुत देर से खबर दी!' और अपना बैग उठाकर चला गया।

मैं भी कुछ देर के लिए कमरे से बाहर निकल आया और हवा की सनाहट में चांद के ये शब्द गूँजते रहे—हाय, चलते समय मुझे तो कुछ नहीं कह गये।

तेईस

अंतिम सस्कार के समय चाद ने बताया कि उनकी इच्छा थी कि शव को जलाया न जाय। प्रेम की स्मृति को जलाना उन्हें सहन था।

लोगों ने इस राय को पसन्द नहीं किया। यह हिन्दू रीति के अनुसार था। परन्तु मैंने कहा—कोई हर्ज नहीं है। समाधिस्थ करो। उनकी न्तिम इच्छा को पूर्ण होने दो। प्रेम की स्मृति को कायम रहने दो।

वही किया गया। रामधन का तार पाकर बंबई से आनन्द आ गया था। मेरे साथ बड़ी सहृदयता से मिला वह। उसके प्रति जो दुर्भावना मैं पहले से मन में रक्खे हुए था वह उससे मिलने पर न जाने कहाँ चली गई। इतना सौजन्यपूर्ण था उसका व्यवहार।

स्मशान से लौटने पर चाँद ने कहा--मैं इस घर में तो नहीं रह सकूँगी। जिसके आराम के लिए इसे लिया था वही न रहा, तो मैं रहकर क्या करूँगी ?

आनन्द ने कुछ भी जोर नहीं दिया, बल्कि समवेदना प्रकट करते हुए चाँद की इच्छा का समर्थन किया, कहा—तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ रह सकती हो। तुम्हें कोई विवश नहीं करेगा।

चाँद ने कहा--जबतक रमेश भैया हैं मैं इन्हीं के साथ रहूँगी।

आनन्द ने कहा—ठीक है।

इस निर्णय के अनुसार चाँद मेरे साथ बुढ़िया माँ के घर आगई। आनन्द साथ आकर हमें पहुंचा गया।

चाँद ने सादे कपड़े तथा स्वच्छ भोजन के सिवा और किसी रूढ़िगत रीति का पालन नहीं किया। न तो बिलख-बिलख कर विलाप करने का अभिनय किया, न जहाँ तहाँ दीवारों और चौखटों से माथा फोड़ा। हाँ, रोज संध्या समय समाधि पर दीपक जलाना और फूल चढ़ाना उसका निश्चित नियम था। वहाँ जाने से पहले वह स्नान करती, वस्त्र बदलती और कुछ देर मौन रहकर अपूर्व शांति के साथ प्रस्थान करती। जब लौटकर आती तो अद्भुत कांति से उसका मुख-मंडल देदीप्यमान होता। वहाँ से आने के बाद वह किसी से बातचीत न करती। चुपचाप अपने आपको कमरे में बन्द कर लेती।। मेरा ख्याल है कि वह जब तक सो न जाती तब तक अपने प्रियतम की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करती या उसकी स्मृति में आँसू बहाती होगी। मैंने कभी उसे इससे विरत करने की चेष्टा नहीं की!

घर छोड़ने से पहले उसने नोटों के कई बंडल निकालकर आनन्द

को लौटा दिये थे, कहा था—इस समय मेरे ये किसी काम के नहीं हैं। कभी जरूरत पड़ेगी तो देखा जायगा।

आनन्द ने बड़े दुख के साथ उन्हें ले लिया। इस प्रकार बहुत शीघ्र ऐसी स्थिति आगई कि हम लोगों का काम चलना कठिन होगया। मेरे पास रुपये थे उनसे काम चल सकता था। वे मैंने चाँद से परामर्श किये बिना ही बुढ़िया अम्मा को देदिये। लेकिन इसके साथ ही मुझे यह चिन्ता होगई कि कुछ प्रबध करना चाहिए। अब तक मैं घर पर ही रहता था अब बाहर इधर उधर घूमकर काम की तलाश करने लगा परन्तु कहीं सफल नहीं हो सका। असफल होने की असल बात यह थी कि मैं स्वय न जानता था कि मैं कौनसा कार्य सुचारु रूप से कर सकूँगा। किसी भी कार्य का कोई विशेष अनुभव मुझे था नहीं। इस प्रयत्न में मुझे मालूम हुआ कि मेरे जैसे उद्देश्यहीन व्यक्ति की इस दुनियाँ में कहीं कोई जरूरत नहीं है।

एक दिन मैं इसी तरह घूमघाम कर लौटा तो देखा चाँद घर में नहीं है। बुढ़िया अम्मा से पूछा—बहिन कहाँ गई है अम्मा ?

बाबू साहेब के बँगले पर गई है।—उत्तर मिला।

मैंने पूछा—कोई बुलाने आया था ?

"नहीं, बुलाने नहीं आया था। अपनी इच्छा से गई हैं। जाये आये बिना कैसे चलेगा उसका काम। कितनी सी तो उसकी उमर है? फिर बाबू साहेब इतना मानते हैं कि क्या कहूं मैं। तुम तो आँखो से देख चुके हो ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक जी कुछ विषण्ण रहा, फिर शीघ्र ही अपने को हल्का महसूस करने लगा। अब तक अपने कंधो पर एक बड़ा उत्तरदायित्व समझकर मैं चिन्तित रहा करता था।

चाँद कई घन्टे बाद लौटी। उस समय मैं अम्मा को एक पत्र लिखने की तैयारी मे था। वह चुपचाप मेरे पीछे आकर खड़ी होगई और बोली—भाई, बिना पूछे मैं आनन्द बाबू से मिलने चली गई थी।

मैंने पलटकर उसकी ओर देखा और कहा—तो इसमें क्या अपराध हुआ ? इसके लिए मेरी आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता थी ?

"क्यों नहीं थी ? उनके जीवनकाल में आनन्द के साथ मेरा अहद हुआ था कि वे उनकी बीमारी में जो कुछ खर्च होगा करेंगे। बदले में समय आने पर मैं आनन्द की फिल्म कंपनी में कार्य करूँगी।"

"तुम्हारा विचार फिल्म में काम करने का है ? यह तो अच्छा ही है।"

"नहीं मेरा वैसा विचार नहीं है। इसीलिए तो मैं गई थी। यद्यपि वह अहदनामा अबतक कायम है।"

"उस अहदनामा की भाषा क्या है ?"

"वह कहीं लिखा हुआ नहीं है। सब कुछ जबानी तय हुआ था। उसके अनुसार मैंने अपने शरीर को भी आनन्द के हाथों बेंच दिया था।"

"तो अब क्या विचार है तुम्हारा ?"

"ऐसी सूरत में मैं नारी की पवित्रता का अधिकार नहीं रखती। मेरे लिए दो ही मार्ग हैं या तो सारे जीवन भर पश्चाताप और प्रायश्चित में जलती रहूँ या रंगमंच पर चली जाऊँ और कुछ दिन आनन्द और विलासिता के वातावरण में रहकर शेष जीवन को आराम से बिताने के लिए कुछ इकट्ठा कर लूँ।"

"यह तो तुम्हारे ही निर्णय करने की बात है चाँद, परन्तु तुम्हारी एक बात मुझे नहीं जँचती।"

"वह क्या ?"

"वह यही कि नारी की पवित्रता से वंचित हो जाने की जो तुम्हारी संस्कारगत धारणा है उसका विधान तुम्हारी जैसी असाधारण नारी के लिए कोई शास्त्र भी नहीं करते। उनकी मर्यादाएं और नियम तुम्हें बाँधने के लिए नहीं हैं। तुमने मुझे अब तक अपने हाथों का छुआ हुआ खिलाने से वंचित रख कर यह सोचा कि तुम अपने भाई की सहज पवित्रता को कलुषित न होने दोगी, लेकिन मैंने क्या समझा है कि मैं अछूतों की उस श्रेणी में पहुँच गया हूं जिसे तुम्हारी हवा भी नहीं लगना चाहती। एक दिन भी तुम मुझे अपने पास बैठने योग्य समझ पाती तो मैं अपने को अकारथ नहीं समझता।"

यह क्या तुम सच कहते हो रमेश भैया ? यह जानकर भी कि मैं क्या हूँ तुम मुझे स्पर्शयोग्य समझते हो ?—कहते कहते उसकी आँखें छलक उठीं।

मैंने कहा—यदि मैं इसमें जरा भी झूठ कहता होऊँ तो मेरे लोक परलोक दोनों नष्ट होजाएँ।

"उनकी ऐसी बातों पर मैं सदा अविश्वास करती रही और यही समझती रही कि वे मुझे प्रसन्न देखने के लिए इस तरह की बातें उठाते हैं। आज तुम्हारे मुँह से वही बातें सुनकर मैं अविश्वास नहीं करती। आज मैं यह मान कर प्रसन्न हूँ कि मेरा यह क्षुद्र अस्तित्व भी सर्वथा अकारथ नहीं रहा।"

तुम्हें इससे अधिक मानने का अधिकार है—मैंने कहा।

चाँद ने वहीं झुककर मुझे प्रणाम किया और अपने हाथों से मेरे लिए रसोई तैयार करने चली गई।

सन्ध्या समय मैं खा पीकर निश्चिन्त हुआ तो एक पत्र लिए चाँद दौड़ी आई और एक बार फिर क्षमायाचना करते हुए बोली—भैया, तुम्हारा यह पत्र कई दिन पहले रामधन देगया था। मेरी हालत ठीक न थी। मैं इसे रख कर भूल गई थी। क्षमा करना।

मैंने पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ने लगा। बिना हस्ताक्षर का वह पत्र बिट्टो ने लिखा था। अम्मा की ओर से लिखते हुए भी वह अपने आपको अलग न रख सकी थी और इसलिए वह एक बड़ी मजाक की चीज बन गया था। सबसे ऊपर लिखा था, 'श्रीचरणों मे'। कितने प्रयास और कितनी मेहनत से लिखा गया था वह पत्र। पत्र लिखने के लिए जिसने कभी लेखनी न पकड़ी हो, और कहने के लिए जिसके पास बहुत सी बातें हों—शिकायतें भी और सवाद भी और उन्हें भी अवगुण्ठन से बाहर न झाँकने देना हो तब उसके सामने मुश्किलें पैदा हो ही जाती थीं। मैं तो एक नजर डालते ही हँस पड़ा।

चाँद ने मुझे हँसते देखकर पूछा—किसका पत्र है भैया, जो यों हँस

रहे हो ?

मैंने कहा—लो तुम भी पढ़ लो।

चाँद ने आदि से अन्त तक पत्र बाँचकर कहा—तब तो जाना ही होगा तुम्हें ?

"जाने की तो ऐसी कोई ताकीद नहीं है। इबारत कुछ मरकूफ-सी है। इसी से तुम्हें ऐसा लगा। लिखनेवाली को अभ्यास नहीं है।"

"कुछ भी हो। इतने दिन हो गये हैं। सब लोग घबड़ा रहे हैं। घबड़ाना वाजिब भी है।"

मैंने कहा—कोई चिन्ता नहीं। पत्र का आशय मैं भली भांति समझ रहा हूं। तुम्हें बंबई रवाना करने के बाद ही प्रस्थान करूँगा।

"मैं बंबई अभी कहाँ जा रही हूं ? आनन्द तो बीमार पड़े हैं। उनके स्वस्थ हो जाने के बाद ही वहाँ जाने न जाने के संबंध में तय करूँगी।"

"क्या बीमार हैं आनन्द ?"

"यहाँ आने के दूसरे ही दिन से तो बीमार है। कह रहे थे, बीमार न होते तो क्या यहाँ एक दो बार भी न आते।"

"दवा दारू कौन करता है ? घर से कोई आगया होगा ?"

"नहीं, घर तो सूचना ही नहीं दी है। स्त्री से उनके झगड़ा चला करता है। रामधन ही दौड़धूप करता है।"

"साधारण बीमारी है ?"

"हाँ, साधारण ही दिखती है। यों भगवान जाने। कमजोर बेहद हो गये हैं। आप कहें, तो दो एक दिन शाम को जाकर मैं वहीं रहूं। सवेरे आजाया करूँगी। आपको कष्ट न होने दूँगी।"

मैंने कहा—हाँ, चली जाना। तुम्हारे पास मे रहने से उन्हें बहुत आराम मिलेगा।

यह अन्तिम वाक्य मुँह से निकलकर समाप्त होते होते मेरे निकट ही अशोभन सा प्रतीत हुआ। चाँद एक बार तो मेरे मुँह की ओर ताकने लगी। आँखें नीची करके बोली—कैसे भी हो, अब तो आनन्द का सहारा

मुझे लेना ही होगा। दूसरा उपाय ही क्या है? तब उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करना भी तो एक कर्तव्य है।

मैंने कहा—अवश्य।

इसके बाद उस समय और अधिक बातें न हुईं। चाँद को रामधन आकर साथ लेगया, इससे मुझे मालूम हुआ कि मेरी आज्ञा माँगना तो उसका एक शिष्टाचार मात्र था। वहाँ जाना वह पहले ही तय कर आई थी।

उस दिन देर गये रात तक मैं विस्फारित नेत्रों से कमरे के अन्धकार में इधर से उधर देखता रहा। नारी-चरित्र के गहन पहलुओं की मीमासा में घटो निरत रहने के बाद बड़ी मुश्किल से मुझे नींद आई। सवेरे आँख खुली तो देखा चाद न जाने कब की लौट आई है। नहा धोकर केशो को सुखाने के लिए मेरे मुँह के सामने धूप मे खड़ी है। उसकी कुन्दन-सी काया और गुलाब सा मुखड़ा बालसूर्य की आभा में एक दम अनमोल हो पड़े है। मेरी आँखो मे लोभ का नशा उमड़ आया। मैं चुपचाप उसकी रूप छटा का पान करके मुग्ध होने लगा।

चाद को इसकी कुछ भी खबर न थी। मेरी व्याकुलता अपने भीतर काबू मे नहीं रही, तो अचानक मेरे मुँह से आवेग भरे स्वर में निकला—चाँद। चाँद।

सद्यस्नाता चाद इस अचानक सबोधन के धक्के से चौक गई जिससे शरीर में लपेटा हुआ वस्त्र उसके हाथों से छूट गया और वह मेरी आखो में नग्न मर्मर-प्रतिमा सी समा गई।

मैंने आँखें बन्द कर लीं। मेरा हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। माथे पर और हाथ पैरों मे पसीना ही पसीना होगया। इस बीच चांद अपने वस्त्र को फिर से लपेटकर कमरे में घुस आई और बोली—भैया, भैया, रमेश! कैसा जी है? सो रहे हो!

उसने मेरे मुँह पर से वस्त्र हटा दिया। मैंने आँखें खोलीं, देखा उसके नेत्रों में दया भरी है। उसके मुँह पर मातृत्व उमड़ रहा है।

मेरी आँखो मे रम रही वासना उन्ही मे गड़ कर रह गई। मैंने दीन

और कातरभाव से कहा—मैं तुम्हारे इस स्वर्ग से पतित हो गया हूं चाँद ! मेरा अब यहाँ ठहरने का अधिकार छिन गया है ।

"यही मैं देख रही हूँ, यद्यपि इसमें मेरा ही दोष है। तो अब कब जायँगे ?"

"आज ही ।"

"आज ही, इतनी जल्दी ?"

"हाँ ।"

"अच्छी बात है । एक बार जाने से पूर्व आनन्द से मिलना चाहो तो मिल लेना ।"

"मिल लूँगा ।"

मैंने जाने की तैयारी संपूर्ण कर ली तब आनन्द से मिलने गया। बहुत सी इधर उधर की बातें करने के बाद चलने लगा तो आनन्द ने कहा—रमेशबाबू, मैं भी तुम्हारी ही तरह स्वर्ग-से पतित प्राणी हूं । अन्तर इतना ही है कि तुमने गिरने से पहले अपने को बचा लिया है और उसके प्रलोभन से संपर्क न रखने के लिए दूर चले जा रहे हो जबकि मैंने उस पतन और प्रलोभन को ही सौभाग्य मानकर सिर पर चढ़ा लिया है। तुम विजयी हो, मैं पराजित हूं । जाओ, नमस्कार !

मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले । मैंने केवल हाथ जोड़ दिये और कोठी से निकल आया । आनन्द की मोटर पहले से ही मेरा सामान लिये खड़ी थी । रामधन ने कहा—मोटर, में चलना होगा बाबू !

मैं मोटर में बैठने के लिए आगे बढ़ा तो देखा चांद झुककर मेरे पैर छू रही है । मैंने कहा—मुझे कहीं रहने को जगह दोगी या नहीं ? वह एक ओर हट गई । मैं मोटर में बैठ गया और वह सर्राटे से चल पड़ी । चांद और वहाँ का समस्त वातावरण क्षणभर में आंखों से ओझल होगये ।

रामधन मेरे साथ था । सेकण्ड क्लास का टिकट मेरी जेब में डालकर वह मुझे गाड़ी में सवार करा गया । रास्ते भर कभी उदयपुर और कभी सोहनपुर, कभी चांद और कभी बिट्टो, यही मेरे दिमाग में आते जाते रहे ।

चौबीस

यदि मन की कुभावना कोई पाप है, यदि पाप का कोई फल होता है, तो कहूँगा कि उसी के फलस्वरूप मुझे भयकर दुख मिला। ऐसा दुख जिससे मेरे मन की शाति कुछ दिन के लिए हरण होगई। मेरी जीवन-धारा में इतनी उथलपुथल हुई कि जिसके लिए मैं कतई तैयार न था। मैं जिसके लिए सोहनपुर दौड़कर आया था वह बिट्टो कभी का उसे छोड़ चुकी थी। अम्मा और बिटिया भोला की मृत्यु के बाद सोहनपुर रहतीं भी किसके आसरे? मैंने पत्र में लिख ही दिया था कि मुझे शायद देर तक ठहरना पड़ेगा। यदि मैं नहीं भी लिखता तो मेरा उन्हे क्या भरोसा था कि मैं सोहनपुर ही पड़ा रहूँगा। कहीं फिर न चल दूँगा। ऐसी सूरत में अपने निकट सबधी के प्रस्ताव को मानने के सिवा अम्मा के पास उपाय ही क्या था। अपने भैया-भतीजो के आश्वासन और अनुरोध को मानना ही पड़ा उन्हे। एक दिन दो तीन बैलगाड़ियो मे गृहस्थी का सारा सामान भरवाकर वे पचास-साठ कोस से भी लम्बी यात्रा को निकल पड़ीं। सदा के लिए अपनो के बीच में जाकर रहने में ही उनकी सुरक्षा है, उनकी जवान विधवा लड़की का हित है, यह बात वे भली भाति जानती थीं।

मैं उदयपुर से लौटकर आया तो सोहनपुर एकदम सूना मिला। बुआ बीमार पड़ी थीं। घर बाहर चारो ओर भाय भाय हो रहा था। घर से निकलते ही चिलम पीता और खासता हुआ या कमर में चादर का कमर

बन्द लपेटे और सिर पर दुपल्लू टोपी दिये जल्दी जल्दी बिटिया (बिट्टो) के किसी काम के लिए जाता हुआ स्वामिभक्त भोला अब दिखाई न देता था। बचपन से उसने गोद में खिलाकर बिट्टो को पाला था। इसलिए अपनी बच्ची की ही तरह उसे लाड़ करता था। उसके साथी के नाते मेरे ऊपर भी उसकी वैसी ही माया ममता थी। वह अन्तिम दम तक अपने कर्त्तव्य का पालन करके, अपनी स्वामिनी और उनकी बेटी की सेवा बजाकर, चलता बना। उसे उनके जीवन के नये परिवर्तन देखने न पड़े। एक ही दुख उसे हुआ कि उसकी बिटिया की मांग का सिन्दूर उसके सामने ही दुर्भाग्य ने पोंछ दिया था और इस बात का उसके स्वास्थ्य पर काफी असर पड़ा था।

एक तरह से वे सारे चिह्न ही मिट गये थे जिनसे बिट्टो का, उसकी अम्मा का या उसके घर का सम्बध था। सिर्फ खाली घर खड़ा था जिसमें बाहर से एक बड़ा सा देशी ताला जड़ा था। मैं इधर उधर से जब आता जाता तो वह ताला जैसे बोल बोल उठता कि इधर निहारने से कोई लाभ नहीं है। यहाँ अब कोई नहीं है जिसे तुम्हारी आँखें खोज रही है।

अपनी मानसिक व्यथा और सूनेपन को लिए मैं बुआ की सेवा-चाकरी में लग गया। इतनी तत्परता से इससे पहले मैंने किसी की सुश्रूषा न की थी। बुआ मेरी सेवा से आनन्द-विभोर होगईं। वैद्य से लाकर उनकी दवाई तैयार करना, उनके पीने के लिए पानी उबालना, पथ्य बनाना, घर की झाड़बुहार करना सभी मैंने अपने हाथों से शुरू कर दिये। इतने दिनों में मेरे अन्दर इतने सद्‌गुणों का उदय देखकर उनकी अन्तरात्मा भीतर से पुलक उठी। वे मेरे कामों की प्रशंसा करते करते न थकतीं। मेरे कष्टों की चिन्ता में इतनी घुल जातीं कि अपनी बीमारी और अपने शरीर की अशक्यता पर खीझखीझ उठतीं। उनकी बातें सुन सुन कर मुझे कौशल्या रानी का वह कथन याद आ जाता जो उन्होंने सीता की कोमलता और वन की कठोरता का अन्तर बताने के लिए कहा। मैंने भला घर के ये धंधे कब किये थे? परन्तु आज मैं अपने अभाव को भुलाने के लिए,

अपने सुख-दुख की चर्चा की। 'सत्यवचन' बोलकर बड़ी गंभीरता से उन्होंने सुना। मेरे विवाह के विषय में कहा—यह भक्त तो बड़ा भाग्यशाली है। इसके ब्याह की चिन्ता स्वय शकर और पार्वती को है। बहुत मुहूर्त टल गये हैं। इस साल नहीं टलेगा। यही मर्जी परमेश्वर की है।

भाभी ने कहा—महात्माजी, ब्याह तो इन्होंने खुद ही टाल दिये हैं।

'सत्य वचन' कहकर महात्मा जी ने उत्तर दिया—यह भी किसी अच्छे के लिये ही किया था इन्होंने। ये भक्त बड़ा ज्ञानी है।

इसके बाद उन्होंने अपनी धूनी में से थोड़ी सी राख लेकर और ओठो में कुछ बुदबुदा कर मेरे आगे करदी जिसे मैंने बड़ी श्रद्धा भक्ति का अभिनय करते हुए दोनों हाथ आगे करके ले ली।

अब भाभी ने महात्मा जी से कहा—भगवन्, मेरी बहिन संकट में है। उसका कैसे उद्धार होगा?

सत्य वचन माता—कहकर महात्मा जी क्षणभर अन्तर्लीन रहकर बोले—उसके उद्धार का काल निकट ही जानो। शकर पार्वती दोनों उसकी खबर ले रहे हैं।

भाभी ने श्रद्धा सहित उनके चरणों के पास की धूलि माथे पर लगा कर कहा—भगवन् उसका कष्ट जल्दी निवारण करिये।

सिर हिलाकर महात्मा जी ने कहा—यही होरहा है। कैलाश पर्वत पर इसीके लिए तैयारी हो रही है। आंखें बद करके भी मैं सब कुछ देख सकता हू। सारी दक्षिण दिशा में हलचल मची है।

मैंने अपनी हँसी को भीतर ही दबाकर पूछा—भगवन्, कैलाश तो उत्तर दिशा में है दक्षिण में हलचल मचने का कोई विशेष कारण होगा?

"सत्यवचन भक्त, इसका कोई विशेष ही कारण है। शकर के दरबार में विशेष कारण बिना कुछ नहीं होता। वही इस सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता है।"

महात्मा जी का भक्त समुदाय वहाँ उपस्थित था। उसने गुरुदेव की इस बात पर 'हर हर महादेव' के गगनभेदी नारे लगाये।

इसके बाद हम लोग चले आये परन्तु समस्त सोहनपुर में यह चर्चा घर-घर फैल गई कि साधु-महाराज इतने करामाती हैं कि दूरदूर शहरों से उनके चरणों की धूल लेने आते हैं।

दूसरे दिन से धूनी में चौगुनी लकड़ी और कई गुनी प्रसादी की सामग्री इकट्ठी होने लगी। भक्त-मंडली की खूब बन आई। सब लोग खूब छक छक कर प्रसाद पाने और मौज उड़ाने लगे।

घर आकर मैंने भाभी से पूछा—तुम्हारी कौनसी बहिन कष्ट में है?

"मेरी दो चार बहिनें तो हैं नहीं। ले-देकर एक ही तो है। जिसे तुम जानते ही हो।"

"विशाखा?" मैंने पूछा।

"हां, वही तो"

"उसके ऊपर क्या संकट पड़ा है भला?"

"पूरा ही संकट है भैया।"

"क्या घड़ियाल उसे चैन नहीं लेने देता है?"

"सब सुख होने पर भी उसकी सी दुखी दुनियाँ में शायद ही कोई दूसरी हो। अगर मैं ऐसा जानती तो तुम्हारे ही हाथ-पैर छूकर खुशामद कर लेती। रोज रोज का रोना तो नहीं।"

"आखिर ऐसी क्या बात है? उसे सीधा करना हो तो मुझे कह देना।"

"वह तो बेचारा अब खुद ही मौत की घड़ियाँ गिन रहा है।"

"सच, बीमार है?"

"सख्त बीमार है। छः महीने से अब तब कर रहा है।"

"तब तो सचमुच ही विशाखा के दुख का अन्त नहीं होगा,—लेकिन भाभी.........."

मैं बहुत कुछ पूछना चाहता था पर पूछ न सका। भाभी ने मेरे आशय को भांप लिया। वे बोलीं तुम्हारा संदेह सही है लल्लाजी। एक दिन भी मेरी बहिन ने सुहाग-सुख को सुख नहीं समझ पाया। जब वह डेढ़ महीने रह कर पहली बार लौटी तो मैं उसे पहचान नहीं पाई थी। अपने जीजा

दुख में सूख सूख कर मर गई कि मैंने उसे कभी भूलकर भी न छुआ था। मेरी तन्दुरुस्ती इस अवस्था में भी ईर्षा के लायक होने का यही कारण था। किसी तरह की मेहनत को मैं खेल समझता था और इसीलिए कितना भी काम करने पर मुझे थकावट न आती। पिताजी की संपत्ति को इधर कुछ ही सालों में मैंने बढ़ाकर दूना-चौगुना कर दिया था, वह अपने परिश्रम के बल पर। आपकी साली को ब्याह कर लाने पर ही नारी के आकर्षण का जादू मुझ पर चल पाया। मेरे रोमरोम में उसने आग लगा दी। मैं अधा बन गया और फलस्वरूप मैंने उस बेचारी पर विषम अत्याचार किये। वासना का इतना उत्कट वेग मेरे अन्दर छुपा था इसका मुझे पता न था। वह जब उमड़ पड़ा तो उसे कौन रोकता? इसके बाद की बहुत-सी बातें आपको मालूम हैं। आपके साथ भी मैंने उसी झोंक में बहुत कुछ अनुचित व्यवहार कर डाला। जब आपकी साली को मैं दुबारा ले आया तो उसकी भयभीत मुद्रा और प्रतिरोध के सकल्प को समझने की मैंने बहुत कोशिश की। एक युवती को जिन बातों में रस लेना चाहिए उनसे वह भागती थी, बल्कि ऐसा मालूम होता था जैसे वह उसे अपने शरीर पर अत्याचार समझती हो। इसकी मैंने विशेष परवाह नहीं की। मेरा बलप्रयोग उस पर बराबर चलता रहा। कुछ यह भी संदेह होगया था कि मेरी प्रौढ़ अवस्था के कारण शायद वह मुझे घृणा की दृष्टि से देखती है। इससे मेरे व्यवहार मे मेरा क्रोध भी मिल गया था। एक बार नवरात्र के उपवास के समय उसकी दुर्बल काया पर मदा की भाति मैंने अत्याचार किया। उस दिन उसने कवई प्रतिरोध नहीं किया। अपनी क्षीण-शिथिल देह को मेरी गोद में अवश छोड़ दिया। अपनी बड़ी बड़ी आँखों में आँसू भरकर केवल मेरी ओर देखती रही। मैंने उससे पूछा—क्या देखती हो इस प्रकार?

"देखती हूँ तुम्हे यह शरीर ही तो चाहिए।"

"इतना सुन्दर शरीर क्या कम लोभ की चीज है?"

"आज से तुम्हारे लोभ की वस्तु पूर्णतया तुम्हारे अर्पण है।"

"और, आत्मा नहीं ? मन नहीं ? प्रेम नहीं ?"

"नहीं।"

"वे किसके लिए रख लिये हैं ?"

"जो उनका प्रेमी है, वे उसीके लिए हैं।"

"अर्थात् ?"

"जो हाड़-मांस का इच्छुक है उसके लिए हाड़मांस है जो प्रेम का भिखारी है उसके लिए प्रेम है।"

इतना कहकर उसने आँखें बद करलीं। मुझे ऐसा लगा कि उसने मुझे पराजित कर दिया है। उसे किसी का इतना बड़ा बल प्राप्त होगया है कि मेरी गोद में विवश पड़ी हुई भी वह मुझसे जरा भी भयभीत नहीं हैं। कहाँ तो मेरी आँखों के इशारे पर इमली के पत्ते की तरह थरथर काँपती थी, कहां अशंक स्थिर भाव से चुपचाप लेटी है।

मैंने कुछ कठोर होकर पूछा—ब्याह से पहले ही प्रेम का सौदा किस यार से कर चुकी हो ?

"जो उसकी कीमत जानता है।"

"वह कौन है ?"

इसका उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैंने धमकाकर पूछा—"वह कहाँ रहता है ?"

उसने उँगली से अपने हृदय की ओर इशारा करके बताया—"यहां।"

मैं क्रोध के आवेश से लाल होउठा। मैंने उसे गोद से नीचे शय्या पर पटक दिया और कहा—जानती है, मैं तेरे हृदय को चीरकर अभी उसे वहां से निकाल लूँगा।

"केवल शरीर को चाहनेवाले से यह संभव नहीं। बोटी-बोटी काट डालने पर भी तो तुम उसे नहीं हटा सकोगे। उठो, बैठे क्या हो ? देखो न फाड़कर इस शरीर को।"

मैंने देखा, स्थिर और दृढ़ उसकी वाणी में पूर्ण विश्वास भरा हुआ है और मैं जिस आधार पर खड़ा हूँ वह भीतर से खोखला है। वह एक धक्का

भी नहीं सह सकता। उसकी जड़ें कांप रही हैं।

मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं उसे वहीं पड़ी छोड़कर दूसरे कमरे में चला गया। सारी रात मैं व्याकुल की भांति तड़फड़ाता रहा। दूसरे दिन भी मेरी दशा वैसी ही अस्तव्यस्त रही। मैं नहीं जानता था कि मेरे इतने सतर्क रहने पर भी कौन मेरे अन्त:पुर में प्रविष्ट होगया? किसने पीछे से सेंध लगाकर मेरे प्राप्य पर अनायास अधिकार कर लिया?

मैं हैरान था, मेरा क्रोध और मेरा बल कहां चले गये? वज्रदंश की भांति मेरी स्त्री के शब्द अब भी मेरे कानों में गूँज रहे थे। वह मुझे प्रेम नहीं करती। प्रेम उसने दूसरे को बेच दिया है। मैं, शरीर का भूखा, चाहूँ तो उसके शरीर को खा सकता हू।

मैंने बहुत छानबीन की पर कोई समाधान न मिला। मेरा संशय बढ़ता और उलझता गया किन्तु उसका कोई आधार हाथ न लगा।

मैंने उसे खुला छोड़ रक्खा। जहां तहां जाने के लिए उसे स्वतन्त्र कर दिया। मैं केवल उसके ऊपर नजर भर रखता था परन्तु उसमें कोई ऐसी बात मैंने नहीं देखी जिससे उसके कथन की सत्यता प्रमाणित हो। कभी कभी अचानक उसके कमरे में प्रवेश करके मैंने यह जानने की चेष्टा की कि वह क्या करती है? परन्तु वह जैसे बिल्कुल ही बेखबर हो। मेरी ओर देखे विना ही वह अपने घरेलू कामों में उलझी रहती। इन फुर्सत के दिनों में वह एक प्रकार से संतोष की सांस-सी ले रही थी।

धीरे धीरे मेरे ऊपर फिर वासना का प्रकोप होने लगा। क्षोभ और दुश्चिन्ता को दबाकर वह फिर उमड़ती आरही थी और लगता था कि संशय की बाधा को ठेलकर मैं फिर उस रूप राशि के रसास्वादन में डूब जाऊंगा, पर कर न पाता। एक अडिग चट्टान हमारे मार्ग में अड़ गई थी। जब कभी मैं उसे पार करके उस ओर जाने को बढ़ता वह मुझे रोक देती। वारुणी के साथ मेरे संसर्ग का यही कारण हुआ। मैंने उससे स्नेह लगाया। विशाखा को भुलाने के लिए वारुणी का मैं दास होगया। मेरे घर में उसी दिन से लाल अंगूरी पेय की खाली और भरी बोतलें जहां-तहां

लुढ़कने लगीं। मेरे इस अतिचार से पीड़ित मेरी पत्नी ने मेरे नये व्यसन का विरोध नहीं किया। वह मेरी साक़ी बन गई और मैं मदिरा के सागर में आकंठ मग्न होगया। यही मेरे विनाश की कहानी का आरंभ है। यही मेरे किये हुए कर्मों का फल है। आज मैं अपना शरीर और स्वास्थ्य दोनों खोकर शय्यासीन हूं। जीवन की आशा बूँद बूँद करके ढलती जा रही है। मेरी अवगुंठिता अपने उपचारों से मेरी सुश्रूषा मे निरत है। यदि आज मुझे यह सर्व-ग्रसिनी बीमारी न लगी होती तो मैं अपनी पत्नी के सहज स्निग्ध स्नेह से वंचित ही रह जाता। इन दिनों ही मुझे उसके अथाह-अगाध प्रेम का परिचय मिला है। आज मैं बिना उसके कहे ही अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे अतिचार में वासना की भूख ही विशेष थी प्रेम की पीड़ा नहीं। आज मेरा वह पाप पीन और पुष्ट होकर मेरी आंखों के सामने खड़ा है। मैंने अपनी वासना की आहुति में एक कली को झोंक दिया। उसकी कोमल अवस्था का अविचार करके मैं अपने सुख और स्वार्थ का ही साधन उसे बनाता रहा। धन और वैभव के बल पर इतना बड़ा अन्याय करने की छूट मुझे मिल गई। उसी मुझको अवश और अशक्त दशा में देखकर जो दयार्द्र हो उठी है और रात-दिन की चिन्ता किये बिना जिसकी टहल कर रही है, वह यदि किसी को सच्चे दिल से प्रेम करती तो वह प्रेम कैसा अलौकिक होता? उस स्वर्गीय कमनीय प्रेम से किसी एक को वंचित करके मैंने मानवता की प्रगति को एक कदम पीछे हटाने का पाप किया है। मेरा हृदय भीतर ही भीतर इसके लिए जल रहा है। विशाखा से मैंने ही अनुरोध किया था कि वह आपको यहां बुला ले। मेरी इच्छा है कि मैं अपनी समस्त संपत्ति का उत्तराधिकार एकमात्र उसको ही दे जाऊँ। यों भी वही उसे पायेगी पर संभव है कोई कहीं से निकल आये और उस पर अपना अधिकार जताने लगे तो अबला बेचारी क्या करेगी? मेरी संपत्ति को वह जैसे चाहे व्यय करे; जिस तरह चाहे रक्खे। उसमें किसी का हस्तक्षेप न होगा।"

भाभी के मुख से इतनी कथा ध्यानपूर्वक सुनकर मैं स्तब्ध रह गया।

ख्याल का जो स्वार्थमय रूप मैंने देख सुन रक्खा था और जिसके कारण घृणा का एक आवरण उसके आगे सदा बना रहता था वह एक नई भावना में बदल गया। जिस आदमी में सदा राक्षस ने निवास किया है वह भी क्षण में किसी कारणवश बदल कर पुण्यात्मा बन सकता है।

भाभी की कहानी अभी चुकी नहीं थी। वे अपने गोद के बालक को दूध पिलाते हुए बोलीं—तुम्हारे भैया ने विशाखा से बात की। वह किसी तरह अपने स्वामी की सपत्ति को स्वीकार करने को तैयार नहीं। वह कहती है, यह धन मेरे किस काम का है? मैं इसे लेकर क्या करूँगी? अपने हाथों से वे उसे गरीबो मे बाट जायें, इसीमें मैं प्रसन्न होऊँगी। इतने अनर्थों की जड़ यह माया है यह जानते हुए भी मेरे गले मे आप जीजाजी उसे क्यो डलवाते हैं?

तुम्हारे भैया की छुट्टी खत्म होरही थी। वे लौटने लगे तो विशाखा के पति ने उनसे हाथ जोड़कर कहा—आप अवस्था मे छोटे होकर भी सबध मे बड़े है। एक भिक्षा मैं आपसे चलते समय माँगूँगा। दे सको तो दे देना। वह यह कि विशाखा की उम्र अभी कुछ भी नहीं है। यदि वह मान सके तो किसी समवयस्क के साथ उसे व्याह देना और मेरी जायदाद उसे दहेज में दे देना। ऐसा सभव न हो, वह न माने तो कोई बच्चा गोद ले ले। यदि ऐसा भी न करे तो अपने हाथो से वह जैसे चाहे इसे गरीबों को दे दे। इसी आशय का उत्तराधिकार-पत्र मैंने लिख दिया है। मेरे बाद आप उसके अभिभावक रहेंगे और मेरी अतिम इच्छा को पूरा करने में कुछ उठा न रखेंगे।

कुछ दिन बाद विशाखा ने अपने जीजा को पत्र भेजा—जीजा जी, मेरे पति ने सारी जायदाद और सपत्ति मेरे नाम कर दी है। आज से मैं उसकी एक मात्र स्वामिनी हूँ। मेरे कधो पर दायित्व और कर्त्तव्य का नया बोझ आ पड़ा है। देखूँ, मैं उसे उठा सकूँगी या नहीं? उनकी इच्छा के आगे मेरे लिए झुकने के सिवाय और कोई उपाय नहीं था।

महात्माजी की वाणी भला मिथ्या कैसे हो सकती थी? उन्होने कहा

था—विशाखा का संकट शीघ्र टलेगा। शंकर और पार्वती दोनों उसकी फिक्र ले रहे हैं।

प्रातःकाल एक शोक समाचार युक्त दस्ती पत्र लेकर एक सवार उपस्थित हो गया है। विशाखा पति रूपी संकट से मुक्ति पा गई है। भाभी कुछ शिष्टाचार का पालन करके रो रही है। भैया को सवार के साथ ही जाना है। उन्होने मुझसे कहा—रमेश, तुम भी चलो न।

मेरा जी सोहनपुर में इन दिनों लग भी नहीं रहा था। मैं तैयार हो गया। जिस विशाखा को सुहाग की साड़ी में लिपटे देखा था उसे आज वैराग्य के तट पर खड़ी देखने जा रहा हूँ। इतनी जल्दी इतना परिवर्तन हो जायगा। इसकी किसने कल्पना की होगी ?

दूर दूर से सुनकर उस विपुल संपत्ति का अन्दाज नहीं हो सकता था जिसकी विशाखा आज एक मात्र अधीश्वरी है। उसका वैभव देखकर मैं तो हैरान रह गया। अंतःपुर में प्रविष्ट होकर हम दोनों भाई जब विशाखा के कक्ष में पहुँचे तो वह एक साधारण से आसन पर मूर्तिमती करुणा की भांति बैठी थी। हम दोनों भाइयों को एक साथ उपस्थित देखकर वह कुछ देर के लिए चंचल हो उठी। आवेग निकल जाने पर शान्त और सुस्थिर हुई तो बोली—पिछले चार पांच दिन उनके इतनी शांति से बीते कि मैं एक तरह से बेफिक्र होगई थी। अचानक हालत ऐसी पलटी की फिर कोई उपचार काम नहीं आ सका।

परिचर्या और चिकित्सा में किसी तरह की कसर नहीं रही थी। संतोषप्रद उपचार कर लेने के बाद भी जो होना था वही हुआ। इस कारण विशाखा की आखों में जहां आंसू थे वहा एक प्रकार का आत्मसंतोष भी था। यदि उसकी सेवा-सुश्रूषा रोगी की रक्षा नहीं कर सकी तो फिर कोई और कर भी नहीं सकता था।

भैया ने व्यथित कंठ से कहा—मरना जीना तो शरीर के साथ लगा ही है। तुमने उनकी सेवा-चाकरी में त्रुटि नहीं की। इस विषय में अंत समय उनकी आत्मा सुख और संतोष का अनुभव कर सकी यही बड़ी

यहीं रहने दो।

विशाखा—जीजाजी, आपकी आज्ञा मेरे लिए सदा मान्य है। मैं हठ नहीं करूँगी। ख्याल मेरा यही था कि शुभ कार्य जितनी जल्दी आरभ हो जाता अच्छा होता। उनका श्राद्ध ब्राह्मणों को जिमाकर करने की अपेक्षा मैं उनकी स्मृति में ट्रस्ट कायम करके करना ज्यादा ठीक समझती हू।

भैया—उसके लिए अभी कई दिन का समय है। रास्ते के श्रम से मैं इस समय इतना श्रान्त हू कि थोड़ी देर विश्राम किये बिना किसी काम में जी नहीं लगता।

अत. विशाखा ने हमे छुट्टी दे दी। उसकी नौकरानी हम दोनों भाइयों को उन कमरों में ले गई जहाँ हमारे ठहरने के लिए प्रबध किया जा चुका था।

सद्य वैधव्य को प्राप्त हुई विशाखा इन दिनों अपने कक्ष से बाहर कहीं आती जाती नहीं तो भी सारे मकान में पूर्ण अनुशासन है। नौकर चाकर जिनकी सख्या दर्जनों है अनुशासन की डोर से इस प्रकार बधे हैं कि किसी काम में कहीं अव्यवस्था का नाम नहीं। रानीजी के नाम से सब उसे सबोधन करते है और श्रद्धा व आदर के साथ उसकी आज्ञाओं का पालन होता है।

हम दोनो भाई विशाखा के निकट सबंधी हैं और वह हम लोगो को मानती है नौकरो को मालूम है और रुकिया जो विशाखा की मुख्य दासी है यह भी जानती है कि मैं उसकी स्वामिनी का गुरु भी रहा हूँ। अपनी मालकिन की विद्याबुद्धि पर उसे अनत श्रद्धा है। उसका गुरु समझकर वह मुझे तो विद्या का स्रोत ही मान बैठी है। फिर मैं उसे रुकिया न कहकर रुक्मिणी बोल कर पुकारता हूँ जिससे मेरे प्रति उसके स्नेह का अन्त नहीं है। उसने बिना पूछे ही मेरे कमरे के फर्श पर बैठकर मुझे बताया कि उसका पति जो उसे जी से प्यार करता था, उसे रुक्मिणी कहकर ही पुकारता था। आज उसको मरे सात वर्ष बीत गये हैं तबसे किसी ने उस प्यार के सबोधन से उसे नहीं बुलाया। उसकी रानीजी ने भी जान या अनजान में रुक्मिणी

कहकर पुकारने का स्नेह नहीं दरशाया। मेरी विद्या-बुद्धि को वह यदि उनकी बुद्धि से बड़ी माने तो कोई अनुचित नहीं।

इन दिनों भैया विशाखा के स्वर्गस्थ स्वामी के लिए किये जानेवाले श्राद्ध आदि की व्यवस्था में लगे रहते हैं। दिन में अनेकबार जाकर उन्हें अपनी विधवा साली से परामर्श करना होता है तब मैं अकेला पड़ा पड़ा घबरा उठता हूँ। यद्यपि यहाँ परिचारकों की कमी नहीं है परन्तु उनमें से मैं किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं समझता। केवल रुक्मिणी के स्नेह के आगे मैंने भी हार मान ली है। वह घूम फिर कर मेरे कमरे में आ पहुँचती है और कोई न कोई ऐसा अनुरोध कर बैठती है जो अनिच्छा रहते भी मुझे मानना पड़ता है। मैं नहीं समझता विशाखा को मेरे खाने पीने की इतनी ही चिन्ता है जितनी वह बार बार आकर प्रदर्शित करती है। विशाखा को इस समय यही एक काम तो नहीं है जो वह घड़ी-घड़ी पर मेरी खबर लेने के लिए दासी भेजती रहे। अवश्य ही इसमें बहुत कुछ रुक्मिणी के अपने मन की उपज है।

दो दिन बाद ब्रह्मभोज होगा। भैया को सबेरे से शाम तक फुर्सत नहीं है। रुक्मिणी की कृपा से मुझे अकेलेपन का अनुभव नहीं होने पाता। वह आकर बैठ जाती और अपनी मालकिन की उदारता की कहानियाँ सुनाने लगती। कोई विशेष सरदी का मौसम न होने पर भी वह एक रंगीन शाल ओढ़कर आई है यह बताने के लिए कि काश्मीर यात्रा के समय मालिक यह शाल लाये थे। एक बार भी अपने शरीर पर न रख विशाखा ने वह उसे दे दिया है। मँगतों और भिखारियों की भीड़ सुबह शाम ड्योढ़ी पर इकट्ठी होती है। उसे नियम से अन्न वस्त्र दिये जाने की रानीजी ने ही व्यवस्था की है। जमींदारी की प्रजा को कर-मुक्त कर देना, असमर्थ किरायेदारों को किराये में छूट दे देना, कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के परिवारों के दुख सुख की खबर रखना और उन्हें गुप्त सहायताएँ पहुचाना यही उनके घरेलू धंधे हैं। पहले जैसा भी रहा हो इधर कितने ही दिनों से मालिक में भी ऐसा परिवर्तन होगया था कि वे

धारण कर लिया। वह भी जैसे मेरे मौन में ही अपने प्रश्न का उत्तर पाकर सन्तुष्ट होगई। फिर दुबारा उसने कुछ नहीं पूछा। जिस काम से आई थी वह पूरा करके मेरे कमरे से बाहर चली गई।

जीवन में हरएक आदमी के सामने विचारलीन होने के क्षण आते हैं। वैसा ही क्षण इस समय मेरे सामने आ उपस्थित हुआ। मेरा मन विचार-तरंगों में लहराने लगा। मेरी आखों के सामने एक स्वस्थ सुडौल लड़की बैठी है। विवाह समय की रगविरगी रेशमी पोशाक उसके शरीर में खिल उठी है। उसकी आखो में आसुओं की बाढ़ बरबस रोक ली गई है। उसे बलि-वेदी पर जाने के लिए तैयार करके मैं गौरव के साथ सिर ऊँचा करके खड़ा हू। वह मेरे आदेश से अनुशासित सिर झुकाये बलि पथ पर बढ़ी जा रही है। अपने हृदय की समस्त रगीन कल्पनाओं को फूँककर उसने राख कर दिया है। यह सब करके वह समतल धरातल से बहुत ऊपर उठ जरूर गई है लेकिन गर्व के शिखर पर खड़ा मैं उसके महत्व को नहीं आँक पा रहा हू।

अकस्मात् मेरे कमरे में विशाखा का आगमन हुआ। वह आते ही बोली—यहाँ अकेले बैठे बैठे तो जी उकता रहा होगा। वहाँ मेरे घर में क्यों नहीं चले आते ?

मैंने अपने विचारो से जागकर उत्तर दिया—कहाँ, अकेला तो मैं नहीं था। अभी अभी ही तो रुक्मिणी यहाँ से गई है।

वह बोली—निकम्मेपन से काम नहीं चलेगा। आलस छोड़कर अब कार्य मे जुटना पड़ेगा। इसलिए चलो बैठकर काम की बातें करलो। मैंने अपना कर्त्तव्य बजा दिया है अब आपकी बारी है। उससे मुँह नही चुरा सकोगे।

मैंने कहा—तुम्हारा आशय समझ रहा हूँ परन्तु जब मैंने वह बात कही थी तब जी में और ही तरह की उमगें थीं, और ही तरह का उत्साह था। आज किसी काम में जुट जाने लायक मैं नहीं रहा हू।

विशाखा—तो मैं व्यर्थ ही उसे सच माने बैठी थी ?

मैं—उसकी सचाई में तो कोई संदेह नहीं था, लेकिन तबसे अब तक बहुत-सा समय बीत गया है। समय के साथ आदमी बदल जाता है। मैं भी बदल गया हूं। मेरे विचार और मेरी इच्छाएँ अब वैसी कहां रही हैं।

विशाखा—जीजा से मेरी बातें हो चुकी हैं। कोई ऐसी बात तो उन्होंने बताई नहीं जिससे मैं यह समझ सकूँ कि तुम्हारे झंझट तब से अब बढ़ गये हैं। बल्कि उनके अनुसार तो पहले से भी तुम्हें अब अधिक सुविधा है।

मैं—हाँ यह ठीक है, गृहस्थी का झंझट मेरे साथ नहीं है। भगवान् ने उससे दूर रहने की बुद्धि दे रक्खी है। लेकिन साथ ही कर्म-भीरु ऐसा कर दिया है कि मैं एक दम बेकार बन गया हूँ। यह तो अच्छा है कि हमारे देश में अभी रूस जैसी समाजवादी व्यवस्था नहीं अन्यथा मैं कोई काम न करने के कारण भोजन-वस्त्र से वंचित रहनेयोग्य समझ लिया जाता।

विशाखा—लेकिन इस सब वैराग्य का कोई कारण भी तो होगा?

मैं—कोई विशेष कारण तो नहीं है।

विशाखा—घर गृहस्थी न होने से आदमी कर्म-भीरु होजाता है, ऐसा विश्वास हो तो अभी उसका समय बीत नहीं गया है।

मैं—समय बीता-सा ही है। एक पुरुष के अन्दर जो आत्मवि होता है वही उसे आगे बढ़ाता है। वही उसे काम में लगाये रह मैं अपने भीतर आरंभ से ही उसका अभाव पा रहा हूँ। इसीसे कभी

[illegible] लग सक [illegible] भाग्य का

रह जाता। फिर आप पर तो बहुत बड़ी जिम्मेवरी है।

मैं—अच्छी बात है, फिर भी मुझे कुछ समय तो चाहिए ही। मुझे स्थिर हो लेने दो। मैं अपने आपको कर्त्तव्य के अनुरूप ढाल सकूँगा यह तो देखना ही होगा।

विशाखा—अभी दो दिन और बाकी हैं। किस तरह क्या करना होगा यह पूरी तरह विचारना है ही। एक बात तो निश्चित है आज से तीसरे दिन विशाखा इस घर में न होगी, न उसका कोई अधिकार इस सपत्ति पर होगा। इसका सुप्रबध और सुदुपयोग कैसे होगा, यह सब आपके सोचने की बात होगी।

मैं—इतनी जल्दी इतना बड़ा निश्चय नहीं हो सकता। तुम्हारे घर छोड़ देने की बात तो और भी मेरी समझ में नहीं आती।

घर छोड़ देने से मेरा यह मतलब नहीं है कि मैं विधवा बगालिन की तरह वृन्दावन या काशी वास करने चली जाऊँगी। यह तब करती जब जन्मान्तर में किसी सुख की आकांक्षा अपने हृदय में लिए होती। अपने गुरुदेव के उपदेश को मैंने जन्मजन्मान्तर के लिए स्वीकार किया है। मैं जब जिस रूप में रहूँगी वहीं उस उपदेश की छाया मेरे साथ रहेगी। अपने सुख की कामना से कोई काम नहीं करूँगी। इसलिए मैं यहीं रहूँगी। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर अपने रहने के लिए मैंने छोटा सा मकान ठीक कर लिया है। वहाँ रहते हुए मेरे से जो होगा यहाँ के काम में सहायता ही दूँगी।—बस मैं इतना ही कहने के लिये यहाँ आई थी। अब जा रही हूँ। जब यहाँ जी न लगे तब वहीं चले आना। इतना कहकर वह जाने लगी परन्तु थोड़ी दूर जाकर लौट आई और पूछा—तुम्हारी चाय और सिगरेट का ठीक प्रबन्ध है या नहीं यह पूछना तो मैं भूल ही गई थी।

मैंने हँसकर कहा—तुम तो जानती ही हो उनके बिना मैं नहीं रह सकता। अगर उनकी ठीक व्यवस्था न होती तो मैं अब तक या तो भाग गया होता या तुम्हारे दुख-सुख की परवाह किये बिना ही अपनी कष्ट-कथा को निवेदन करा दिया होता।

मेरे उत्तर से सन्तुष्ट होकर वह चली गई। मैं भी आज पहली बार कहीं घूम फिर आने के लिए निकल पड़ा।

मुझे ख्याल नहीं कि मेरे जीवन में पहले भी ऐसी असंभावित दुर्घटना घट चुकी है। जब मैं एक अनजान वस्ती में से गुजर रहा था तो सामने से सर्राटे भरती हुई एक टैक्सी आकर मेरे सामने इस प्रकार रुक गई जैसे उसे यह भय होगया हो कि मैं उसके नीचे आजाऊँगा। इस प्रकार उसके यकायक मुँह के सामने आ रुकने से मेरा ध्यान उधर गया तो देखता हूँ कि उसमें कल्याणी बैठी है। अचानक मेरे मुँह से निकल पड़ा—ऐं, भाभी तुम!

कल्याणी—और लाला जी तुम!

"मैं तो अपनी एक रिश्तेदारी में आया हूं।"

"इस समय किसी जल्दी में तो नहीं हो?"

"नहीं, मैं तो घूमने-फिरने ही निकला हूं।"

"कुछ हर्ज न हो तो मेरे साथ आ जाओ।"

"हर्ज क्या हो सकता है?"

"तो आ जाओ।"

उसने खिड़की खोलदी और मैं उसके पास ही बैठ गया। कार चल पड़ी तो मैंने पूछा—भाभी, तुम यहाँ कैसे आई हो?

वह बोली—आगई हूं किसी तरह।

"इसका क्या मतलब है मैं नहीं समझा।"

सब आदमी एक से नहीं होते हैं। उस दिन तुमसे पूछा था—मुझे भी अपने साथ ले चलोगे? तब तुमने इनकार कर दिया था। किसी किसी में कितनी कायरता होती है।—वह इस तरह ऐसी कई बातें कह गई जैसे वह मेरे अस्तित्व को अति तुच्छ समझती हो।

"इस तरह तुम कहना क्या चाहती हो भाभी?"

"मैं जो कहना चाहती हूँ यहाँ रास्ते में नहीं कहूंगी। अगर सुनना है तो मेरे घर चलो।"

कल्याणी ने इशारा किया। चालक गाड़ी को घुमाकर घर की ओर ले चला। कुछ ही मिनट में हम एक भवन के द्वार पर जा रुके।

गाड़ी से उतर कर हम खड़े हुए तो कल्याणी बोली—लालाजी मैं तुम्हें ले तो आई हूँ परन्तु—

"परन्तु अब कहना नहीं चाहती हो यही न ?"

"नहीं, मैं यह सोच रही हूं कि तुम्हें घर में ले चलूँ या नहीं।"

"यह तो पहले सोचना चाहिए था। न्योता देकर तो बुला लाई हो अब डर लग रहा है।—जाने दो, मैं जा रहा हूँ। तुम्हारे ऊपर कोई सकट आये यह मैं नहीं देख सकता। उस दिन की बात मैं भूला नहीं हू। फिर वैसी गलती नहीं करूँगा।—कहकर मैं लौटने लगा।

वह बोली--यह बात नहीं है। उस डर से मैं कभी की मुक्त हो चुकी हू। अब मैं एक स्वतंत्र नारी हू। किसी पुरुष की इच्छा से बँधी नहीं हूँ। यहाँ आनेवाले उल्टे मेरी दासता करते हैं और उसे अपना अहोभाग्य मानते हैं।

मैं आश्चर्य से अभिभूत हो गया। मैंने कहा—क्या कहती हो ? आज तुम्हें हो क्या गया है ?

कल्याणी—मैं ठीक कहती हूँ मैं आज सर्वसुलभ हूँ। इसलिए सोचना पड़ता है कि तुम्हारे जैसे भलेमानस को एक वेश्या के घर में ले चलूँ या नहीं ? सोचती हूँ ले ही चलूँ। तुम्हारा पुण्य भी थोड़ी देर के लिये क्षय हो जाय तो कोई हर्ज नहीं। तुम्हे बारबार तो आना है नहीं यहाँ।

वह मेरा हाथ पकड़कर ऊपर ले गई। सच पूछो तो मेरे शरीर का रक्त सुन्न पड़ गया था। शारीरिक और मानसिक सब प्रकार की शक्ति पर जैसे वज्रपात हो गया हो। वह मेरे हाथ को अपने हाथ में लिए नीचे के तल से जीने मे होती हुई कितने ही कमरो को पार करके एक अलग एकान्त कक्ष में ले गई, बोली—यहाँ कोई नहीं आता है। यह स्थान तुम्हारे लिए ठीक रहेगा। चलो भीतर बैठो, मैं कपड़े बदलकर आती हूँ।

मैं कमरे में घुसा तो देखता हूँ कि अत्यन्त सादगी से उसे सजाया

हुआ है। एक तरफ एक चटाई बिछी है। एक कोने में एक आसन है। आले में दो पुस्तकें रक्खी हैं। दूसरे आले मे एक छोटी थाली में धूप-कपूर रक्खा है। खूँटी पर एक माला टँगी है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कमरा नहीं साधनागृह है। यह पूजा-पाठ, संध्यावंदन और भजन के काम आता है। मैं जाकर चटाई पर बैठ गया। स्थान को देखकर जी में आने लगा कि कल्याणी की सारी बातें मनगढन्त हैं। यह घर एक वेश्या का निवासस्थान नहीं हो सकता। फिर भी आज जिस कल्याणी को मैं देख पाया हूँ वह वही नहीं है जिसे कई वर्ष पहले भटिंडा में देखा था। कुल-बाला का शील-संकोच, जो अत्यन्त आकर्षण की वस्तु थी, उसमें एक अंश भी शेष नहीं है। आज वह इतनी स्वच्छन्द है कि अकेली एक ड्राइवर के साथ मोटर में घूमने चली जाती है। निस्संकोच बातें करती है। कीमती पोशाक पहनती है। आलीशान मकान में रहती है। उसके पति की इतनी हैसियत की कल्पना तो नहीं की जा सकती।

करीब आधा घंटे बाद कल्याणी लौटी, बोली—बहुत कष्ट दिया है लालाजी। क्षमा करेंगे। इस कमरे में मैं बिना नहाये नहीं आती। नहाने और कपड़े बदलने में कुछ देर लग गई है।

मैंने कहा—भाभी, तुम्हें अब बातें तो बहुत आने लगी है।

यह कला तो हम लोगों को सीखनी पड़ती है। नहीं तो कौन पूछे हमें?—उसने कहा।

"मेरे लिए तो तुम एक पहेली होगई हो भाभी।"

"इस कमरे में बैठे बैठे और मुझे सादी साड़ी मे देखकर तुम्हें लग रहा होगा कि मैंने जो कुछ कहा है वह सब मिथ्या होगा। अगर सचमुच मिथ्या होता और तुम इसी भाँति मेरे घर आये होते तो मुझे कितना गर्व होता, कितना सुख होता, इसका तुम शायद ही अनुमान कर सको। परन्तु मैंने जो कुछ तुमसे कहा है, दुर्भाग्य से वह उतना ही सत्य है जितना हम दोनों का अस्तित्व। तुम चाहोगे तो मैं तुम्हें अपने रंगभवन में भी ले चलूँगी, केवल दिखाने के लिये, बिठाने के लिए नहीं, क्योंकि तुम वहाँ

बैठने के उपयुक्त पात्र नहीं हो। वहाँ जाते समय मैं कौन से वस्त्र पहनती हूँ यह मैं तुम्हें न बता सकूँगी। आज इतने वर्ष बाद तुम्हें अपने घर लाकर भी मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मैं गर्व और उल्लास के साथ तुम्हें दिखा सकूँ। यही मुझे दुख है।"—कहते कहते उसकी कमलायत आँखें भीगी-भीगी सी हो गईं।

मैंने कहा—तो खड़ी क्यों हो भाभी? बैठ जाओ न।

मैं स्वयं चटाई पर एक ओर खिसक कर बैठ गया। कल्याणी भी मेरे कहने से मेरे पास ही चटाई के दूसरे छोर पर निस्संकोच बैठ गई। बोली—मैं क्यो इस दुनियाँ में आ पड़ी, इसका कुछ कुछ अनुमान तो तुम कर ही सकते होगे। मैं रात दिन के अत्याचारों से तंग थी ही। यह तो तुम देख आये थे। एक साहसी आदमी ने, जिसे तुम नहीं जानते, मुझे वहाँ से निकालकर इस पथ पर लाकर खड़ा कर दिया। यहाँ जैसी सफलता मैंने पाई है वह तुम्हारी आँखों के सामने है लेकिन जो चीज़ इस प्राप्ति में खो गई है उसके लिए जब जब लोभ हो आता है तब तब मेरा व्याकुल हो उठना स्वाभाविक है। इसे तुम्हारे सामने कहने की आवश्यकता मैं नहीं समझती।—बोलो, ऐसी दशा में उस समय टैक्सी में तुम्हारे पास बैठे बैठे मेरा तुम्हें कायर कहकर पुकारना क्षम्य था या नहीं? यदि उस दिन हाँ कह देते और थोड़ा साहस दिखा सकते।

"तब भी वही बात होती भाभी। मैं भी तो आदमी हूँ। मैं भी तुम्हें ले जाकर किसी ऐसे ही चौराहे पर छोड़ देता।"

"नहीं छोड़ देते। तुम नहीं छोड़ सकते थे, तुम में वह साहस नहीं है। तब शायद मैं गलती भी कर जाती। अब इतने दिन के अनुभव के बाद मैं एक बार देखकर ही आदमी परख कर लेती हू। अपने आज के अनुभव से मैं कह रही हूँ कि तुम्हारे साथ होने से मुझे कुछ खोना नहीं पड़ता।"

"यह मिथ्या विचार है तुम्हारा भाभी। मेरा तो अनुभव है कि पुरुष सभी भेड़िये हैं। नारी उनका स्वादिष्ट भोजन है। अपने भोजन के प्रति

कोई भी पुरुष दयालु नहीं होता। अवसर पाते ही वह उसे खा जाता है।"

"यह तुम्हारी बात बहुत कुछ सत्य है उसी तरह जैसे तुमने उस दिन कहा था कि घर से बाहर निकले पीछे हिन्दू नारी के लिए दुनियाँ में कहीं भी स्थान नहीं है। तुम्हारी वह बात अकसर मेरे कानों में गूँजती है और मैं विचार करती हूँ। मैंने इतना कमाया है—इतने सुख-साधन इकट्ठे किये है। रात दिन आनन्द विलास की सामग्रियो में डूबी रहती हूँ। शायद जन्मजन्मान्तर में भी अपने घर में मुझे इन सुखों का कभी दर्शन न होता तो भी हृदय तुम्हारी उस बात के फलितार्थ को मानने लिए मचला पड़ता है। मैं इस दुनियाँ में कहीं भी अपने लिए स्थान नहीं पाती। कोई भी धर्म, कोई भी मत, इतना उदार नहीं दिखता जो मेरा खोया स्वर्ग मुझे वापस दिला सके। वे अपने अन्दर लेने को लालायित हो सकते हैं परन्तु वे वह सब कहाँ से लायँगे जो हिन्दू नारी का एक मात्र काम्य है, जिसके गौरव से उसका मस्तक उठा रहता है। उस कांटों की सेज में कोई ऐसा अपूर्व सुख था जो इस फूल-शैय्या में लेटे लेटे भी मुझे लुभा लेता है।"

"धर्म और सम्प्रदाय तो मगरमच्छों की दंष्ट्रा हैं। वे देखने में ही सुन्दर और चमकीले लगते हैं। अन्ततः वे भी उनका उदर भरने के औजार हैं।"

"इन सब पर से मेरी आस्था पहले ही उठ चुकी है। कितने तिलक और छापाधारियो को लुकछिप कर यहाँ आते नित्य देखती हूँ। वह सारा पाखड उनका दुनियाँ को धोखे में डालने के लिए होता है। भीतर से वे भेड़ियों की तरह खूँखार हैं। तिलक और छापा, धर्म और ध्यान ने उनके हृदय को थोड़ा भी नहीं बदला है।"

"इतना सब जानते हुए भी तुमने यह आडबर क्यों रच रखा है?" मैंने उस कमरे की सामग्री पर नजर डालते हुए पूछा।

"यह मैं खुद नहीं जानती। यह सब अपने आप ही होगया यह भी नहीं कह सकती। मैंने ही इसका निर्माण किया है। नाचरंग के वातावरण

से बाहर होकर कभी कभी कहीं अकेले में सास लेने की इच्छा ने लका में इस देवस्थान की सृष्टि की है। यहा आकर अपने को बन्द कर लेने पर मैं उस दुनिया से बहुत दूर चली आती हू। यहीं मुझे अपने जीवन की व्यर्थता पर विचार करने का अवसर मिलता है। लेकिन इससे कोई सुफल हुआ हो उसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव नहीं।" इतना कहकर वह चुप हो गई। मेरे पास भी कुछ खास कहने को नहीं था। मैं भी चुपचाप बैठा किसी नये विषय को बातचीत का आधार बनाने की सोच रहा था।

इतने में वह बोली—तुम्हें यहा ले आई हूँ तो सारा घर ही क्यों न दिखा दूँ। चलो, आओ। फिर तुम यहा क्यो आने लगे? एकबार देख तो आओ कि तुम्हारी भाभी तुमसे कितनी भिन्न अवस्था में जी रही है।

मैंने कहा—अभी तो मैं कई दिनो तक यहा हूँ।

"उससे क्या होता है? इस घर में फिर भी क्या तुम कदम रखने को तैयार होगे?"

"जरूर, जब तक यहा रहना पड़ेगा तब तक क्या मैं यहा आये बिना रह सकूगा?"

"यह सब देख सुनकर भी तुम यहा आना पसन्द करोगे रमेशबाबू?"

'मुझे तो कोई डर नहीं। फिर मैं आऊँगा अपनी भाभी के पास। हां यदि तुम्हे कोई आपत्ति हो तो न आऊँ?"

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? परन्तु तुम्हारी भाभी अब है कहा, क्या अब भी तुम उसे पाते हो? सच कहो रमेशबाबू, क्या अब भी तुम्हें वह यहा दिखाई देती है?" दबे हुए अगारे के ऊपर से राख जैसे हटा दी जाय इस प्रकार उसका चेहरा एकबार दमक उठा।

मैंने कहा—तुम्हें अचानक पाकर आज मैंने अपनी कितनी बड़ी चीज को खो दिया है, यही पूछती हो न? बरसो से प्रेम और पूजा की एक तस्वीर मेरी स्मृति में जड़ी थी आज उसने निश्चय ही बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसके लिए मेरे जी मे कैसा ज्वार उठ रहा होगा, इसकी कल्पना तुम कर ही रही हो। तो भी, उसमें मैंने अपनी भाभी को

खोज लिया है, उसीके पास मुझे आना होगा। जब तक यहां रहूँगा आऊंगा, जब बुलाओगी तब आऊंगा।

कल्याणी जहां बैठी थी वहीं उसने जमीन पर माथा टेक दिया। अपने अंचल से अपनी आंखें पोछती हुई बोली—रमेशबाबू, क्या तुम अपने इन चरणों की थोड़ी सी धूल नहीं दे सकते ? जिन पुरुषों को मैंने देखा है उनसे तुम कितने भिन्न हो ? दुनियाँ ने जिन्हें वर्जित प्रदेश मान रक्खा है वहीं तुम अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हो ?

"धूल से कुछ नहीं होता है भाभी। मैं तो समूचा ही तुम्हारा हूँ। मौका आये तो मुझे याद कर लेना।—अब कल मुलाकात होगी।" कहकर मैं उठ खड़ा हुआ।

कल्याणी भी खड़ी होगई, बोली—देखो, आना जरूर। मैं प्रतीक्षा करूँगी।

अवश्य आऊँगा। विश्वास रक्खो—कहता मैं घर से बाहर निकल आया।

घर पर रुक्मिणी पहले से ही मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। कई देर तक मेरे न पहुचने से दीवार के सहारे झुककर वह झपक गई थी। मेरी पैंछल से उसकी आँखें खुल गईं तो बोली—रानीजी ने आपको याद किया है। मैं कितनी देर से राह देख रही हूँ।

मैंने कहा—चलो, मैं चल रहा हूँ।

मुझे देखते ही विशाखा ने पूछा—आज कहीं चले गये थे ?

मैं—हाँ, आज स्वर्ग और नरक एक ही जगह देख कर आया हूँ। वह प्रश्न सूचक मुद्रा से मेरी ओर निहारने लगी।

"आदमी की जीवन-नौका कब कहाँ से कहाँ जा लगे इसका कुछ ठीक नहीं।" इन शब्दों से आरभ करके मैंने कल्याणी के संबंध की सारी कथा उसे सुना दी।

सब कुछ सुनकर वह कुछ देर के लिए मौन होगई, फिर बोली—बड़े दुख की बात है; लेकिन तुम्हारे फिर वहाँ जाने की आवश्यकता है क्या ?

उसके इस संक्षिप्त प्रश्न में कितना भय था, यह उसके प्रश्न की व्यग्रता

से ही प्रकट होगया।

मैंने कहा—मेरे लिए कोई भय की बात नहीं है वहाँ।

"भय है यह मैं नहीं कहती, लेकिन यहाँ इन दिनों बहुत से काम जो हैं। उन सभी को निबटाना है। जीजाजी अकेले क्या क्या कर लेंगे?"

मुझे लगा कि किसी आशंका ने उसके मनमें इन नये कामों की सृष्टि कर दी है। इससे पहले तो मुझे एक भी काम नहीं सौंपा था। आज ही उन सबको मेरे द्वारा निबटाये जाने की जरूरत पड़ गई। मैंने कहा—ठीक है।

इस बीच भैया भी आ पहुँचे और कामकाज की अनेक बातें हुईं। विशाखा का गृहत्याग भैया को जँच नहीं रहा था परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ थी। ट्रस्ट की बात पक्की-सी हो चुकी है। उसके ट्रस्टी मैं, भैया और विशाखा तीनों ही रहेंगे। कार्यग्राहक ट्रस्टी मेरे रक्खे जाने के लिए विशाखा जोर दे रही है। मैं नहीं जानता कहाँ तक मैं इसका निर्वाह कर सकूँगा। अवश्य ही मेरे लिए यह एक भारी बोझा है।

रात को ग्यारह बजे आकर मैं अपने बिस्तर पर लेट पाया हू। अगले दो दिन के लिए विशाखा ने मुझे इतने काम सौंप दिये है कि नौकर चाकरों की मदद से भी शायद ही वे पूरे पड़ें। कल्याणी के यहाँ मैं न जा सकूँ इसी की पेशबंदी मानो की गई है, ऐसा मुझे लग रहा है। परन्तु क्यों, मेरे प्रति उसे क्या लोभ है? मेरे साथ ब्याह करने की अपेक्षा जो गले में फाँसी लगाकर मर जाने को अच्छा समझती थी, उसे मेरे प्रति किसी तरह का लोभ तो हो ही कैसे सकता है? तब फिर यह ईर्षा का प्रपंच किसलिए है? मेरे पास इसका कोई सधान नहीं है। त्याग और तपस्या से उज्ज्वल उसके देदीप्यमान चरित्र को लेकर मैं ऐसी मीमांसा में प्रवृत्त हो सकता हूं, यह मेरे जैसे उद्‌भ्रान्त मनुष्य के द्वारा ही सम्भव है। अपने स्वभाव से आदमी लाचार होता है। मैं भी अपने स्वभाव से लाचार हूँ। नींद आँखो मे छू नहीं गई है। कमरे की छत जो अंदर के आकाश को ढँके है उस पर मेरी विचारमाला अंकित होरही और मिट रही है उसी तरह जैसे जीवन में घटनाएँ घटीं और फिर अतीत के गर्भ में विलीन हो गई हैं। मैं कौन

हूँ, कहाँ से आया हूँ ? इस घर से मेरा क्या संबंध है ? काज़ी जी की भांति शहर के अंदेशे से दुबले होने की मुझे क्या पड़ी थी ? क्यों मैं चांद के निमंत्रण पर दौड़ा उदयपुर तक चला गया ? क्यों मैं बिट्टो की अम्मा के स्वास्थ्य की चिन्ता में पड़ा ? क्यों कल्याणी के यहां दुबारा जाने की इच्छा कर रहा हूँ ? विशाखा के प्रति नई नई उद्भावनाएँ करने की प्रेरणा कहां से आ रही है ? बिट्टो, कल्याणी, चांद, सुचेना, विशाखा बारबार घूम कर दिमाग में आरही हैं, और भी कितनी ही स्पष्ट आकृतियाँ हैं, जो आती और जाती हैं। कभी उन पर रंग फिरा होता है, कभी निरंग होती हैं। क्या पुरुष के हृदयाकाश में नारी रूपी नक्षत्रमालिका का ही उदय होता है ? यदि नारी सुख का स्रोत है, विलास का साधन है, जीवन की सिद्धि है तो उसको ग्रास करने के लिए मगरमच्छ चतुर्दिक जिह्वा क्यों लपलपा रहे हैं ? आज मुझे नींद नहीं आरही है। आज मुझे नींद नहीं आयेगी। इस खाली कमरे में आज अकेला कौन सो सकता है ? जब काली अँधेरी रात सुनसान सन्नाटे में डूब रही है तब इस एकान्त कमरे में कोई निश्चिन्त होकर सो सकता है ? विश्वास नहीं होता कि ऐसी अँधेरी काली रातों में मुझे कैसे नींद आती रही है ?

दीवाल घड़ी ने टन से एक बजा दिया। अब बिस्तर पर पड़े रहना बेकार है, सोचकर मैं उठ कर खड़ा हो गया। इधर उधर टहलने लगा। कमरे के भीतर का वातावरण आज घुट-सा रहा है। मैं बाहर निकल गया। बाहर रात चांदनी से नहा रही है। स्वप्न घुलघुलकर बहे जा रहे हैं। सामने रानीजी का महल है। उसकी खिड़की खुली है। भीतर बत्ती जल रही है। आजकल रानीजी कमरे में नहीं सोतीं, फिर आधीरात को बत्ती क्यों जल रही है ? शायद घर छोड़ने की तैयारी में व्यस्त हैं। सभी प्रबंध करके तो उन्हें जाना है। जब घर छोड़ ही रही है तो उसके सुप्रबंध की चिन्ता क्यों साथ लिये जा रही हैं ? लेकिन संस्कारों से निर्मित मानवहृदय क्या उनके प्रभाव से बिल्कुल शून्य हो सकता है ?

यह सब सोचता सोचता मैं कहां चला आया हूँ ? मैं कहां जा रहा हूँ

इस आधीरात मे ? इस समय किसी और के घर तो जाया नहीं जा सकता है। कल्याणी के घर जा सकता हूँ, उसका घर तो हर किसी के लिए हर समय खुला है। तो क्या मैं वहीं जा रहा हूँ ? जाऊँ तो कोई हर्ज भी नहीं है। भाभी कल्याणी के यहाँ जाने में मेरे लिए सकोच की कौन सी बात है ? रानीजी के प्रासाद को छोड़कर, उनके आदेश की अवहेलना करके, मैं भाभी के घर जा रहा हूँ।

मुझे रास्ते में कोई मिला या नहीं मैं नहीं कह सकता। मेरा चित्त रास्ते भर ठिकाने नहीं था। मैं विचारलीन कल्याणी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। एक दो खटके में ही ऊपर का दरवाजा खुला। कौन है ?—कल्याणी ने आवाज दी।

"मैं हूँ भाभी।"

"रमेश बाबू, तुम इस समय। अच्छा, आई।"

क्षण भर में आकर उसने मुझे घर के भीतर ले लिया। उस समय सारी दुनियाँ सोई पड़ी थी। कल्याणी ने कहा—बत्ती जल्दी में नहीं जला सकी। तुम चले तो आओगे या सहारा दूँ ?

"सहारा दो भाभी।"

"आओ"—कहकर उसने हाथ बढ़ा दिया। उसे अच्छी तरह मजबूती से थाम कर मैं ऊपर चढ़ गया।

मुझे ऊपर लेजाकर बोली—जानते हो, इस समय दो बजे हैं। सब कोई सोये पड़े हैं। तुम्हें मेरे कमरे में ही चलना होगा।

"वहीं चलूँगा। यहाँ से भाग जाने के लिये थोड़े ही आया हूँ।"

"मैं भी तुम्हें निकाल नहीं रही हूँ।"

कल्याणी मुझे अपने शयनागार में ले गई। कहा—यहाँ, यह एक ही पलँग है। इसकी चादर और ओढ़ना मैं बदल देती हूँ।

मैंने पूछा—और तुम ?

मेरी चिन्ता मत करो।"

"पर तुम जाओगी कहां ?

"यहीं रहूँगी। मुझे बैठे बैठे सोने का बड़ा अभ्यास है। जरूरत पड़ जाय तो ऐसी ऐसी चार पांच रातें मैं इसी तरह निकाल सकती हूँ।"

"यह सब मैं जानता तो इस समय आकर तुम्हें न सताता।"

'ऐसा ही समझो तो मैं जाकर अपने उपासनागृह में पड़ रहूँगी।"

"यह नहीं हो सकता। अकेलापन दूर करने के लिए ही तो मैं इतनी रात गये यहां तक दौड़कर आया हूं।"

"तो तुम्हारा स्वागत है। तुम कपड़े उतार डालो और लेट जाओ। मैं भी तुम्हारे पास ही इस आरामकुर्सी पर पड़ जाती हूँ।"

कल्याणी के आदेश का मैंने पालन किया। कपड़े उतार कर खूँटी पर टाग दिये और उसकी ठीक की हुई शैया पर पड़ रहा। लेटे लेटे मैंने पूछा—तुम अभी तक जाग रही थीं भाभी ?

"इस समय तक तो अकसर हमें जागना पड़ता है। कोई न कोई आया रहता है। नाच गाने की उनकी ख्वाहिशों का दौर समाप्त होने पर ही हमें सोना नसीब होता है।"

"आज तुम्हारी मजलिस नहीं जमी ?"

'नहीं, आज मेरा जी ठीक नहीं था। शाम को तुम गये, तभी से जी अनमना हो रहा था।"

"या कोई आज आया ही नहीं ?"

"आये तो कई। आनेवालों की कमी शायद ही किसी दिन पड़ती हो। घर में ब्याह बरातों के उत्सव छोड़ कर लोग यहां आते हैं। बीमार कुटुंबियों की परिचर्या से ऊब कर भी कोई कोई दिल बहलाने आते हैं और कोई कोई तो अपने प्रिय जन की लाश अकेले घर में रख आते हैं और उसके वियोग का दुख भूलने के लिए यहा आ पहुंचते हैं।"

'बड़ा आकर्षण है तुम्हारे इस घर में।"

"है ही। नहीं तो तुम्हीं कैसे इतनी रात गये आ पहुँचते ?"

"हां, देखो न। परन्तु नृत्य-संगीत का प्रेमी होकर तो नहीं आया ?"

"अगर उसके लिए आओ तो क्या मैं तुम्हारे सामने नाच गा सकती ?"

' यह तुम जानों ।"

"मर जाऊँ तो भी कभी न कर सकूँ । मेरे पैर क्या तुम्हारे सामने उठें ? मेरा गला फट न जाय ?"

"यह क्यों ? अपनों को ही वंचित रखने से लाभ ?"

"मैं नहीं जानती । उसकी कल्पना से ही लज्जा की सिहरन प्रतीत होने लगती है ।"

' सच, और यहां अकेले में भी मेरी इच्छा को तुम पूरा नहीं कर सकतीं ?"

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"यह मैं नहीं जानती ।"

"तब मेरा यहां आना बेकार है । मैं जाता हूँ ।"

"तो क्या तुम इसलिए आये हो ?"

"क्यों, मैं आदमी नहीं हू ?"

"मैं तो नहीं मानती । मेरे लिए तो तुम ' रमेशबाबू हो ।"

"तो चलो मुझे नीचे पहुँचा आओ ।"—मैं उठने की चेष्टा करने लगा ।

"तो सचमुच तुम नाच-गाने का आनन्द लेने आये हो ?"

' इसमें भी कोई संदेह हो सकता है ?"

"परन्तु अभी तो तुम्हीं ने कहा था कि तुम नृत्य-गीत के प्रेमी होकर नहीं आये हो ।"

"वह झूठ था ।"

"तो तुम नाच देखोगे ? गाना सुनोगे ?"

"जरूर ।"

"अभी ?"

"हां ।"

"अच्छी बात है ।"—वह उठकर कमरे से बाहर जाने लगी तो मैंने

कहा—जाती कहां हो ? इसके लिए तुम्हें पेशवाज की जरूरत नहीं है। मेरे लिए तो सादा गाना और सादा नाच ही काफी है।

वह रुक गई और बोली—मैं अपनी एक साथिन को बुला लाती हूं। वह तुम्हारी सारी इच्छाओं को पूरा कर देगी।

"एँ, तो क्या मैं किसी दूसरी का नाच देखूँगा ?"

"क्या हर्ज है ? वह मुझसे अधिक सुन्दरी है। उसके नाच की मोहनी माया से तुम अभिभूत हो जाओगे। बिल्कुल पड़ोस के घर में है। एक आवाज दी और वह आ हाजिर हुई।"

मैंने रोककर कहा – नहीं यह न होगा।

"नहीं इसमें कोई डर नहीं है। मैं यहां बराबर रहूँगी तुम्हारी रक्षा के लिए।" उसने हंसकर कहा।

"नहीं।"

"तुम्हारी इच्छा नहीं है तो न जाऊँगी। मैं अगर नाच सकती तो तुम्हारा मन न मारती। विश्वास करो रमेशबाबू तुम्हारे सामने मेरा पग नहीं उठ सकता। नाचना तो बड़ी बात है।"

"तो जाने दो।—मैंने तो यही देखने के लिए कहा था कि तुम लोग स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा को बिल्कुल छोड़ पाई हो या नहीं ?"

"तो यह कहो कि भाभी की परीक्षा ले रहे थे ?"

"और नहीं तो क्या ?"— मैंने हँस दिया। वह पलटकर अपनी आरामकुर्सी पर आ पड़ी।

मैंने कहा—रोशनी बुझा दो। अब थोड़ी देर सो लेना है।

उसने कमरे की बत्ती बुझा दी। अंधकार में चुपचाप लेटे लेटे कब हम दोनों को नींद आगई इसका ठीक अंदाज नहीं। सवेरे आंख खुली तो सारा शरीर अकड़ा जा रहा था। उठने की जरा भी इच्छा नहीं थी। कल्याणी कभी की नहा-धोकर तैयार हो गई थी। वह मुझे जगा जान कमरे में आई, बोली—जी ठीक नहीं मालूम होता है तुम्हारा ?

मैंने कहा—शायद।

"लाओ, देखूँ" कहकर उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया तो भयभीत होगई। बोली—तुम्हें तो जोर का बुखार है। शरीर एकदम जल रहा है।

मैंने भी कुछ चिन्तित होकर कहा—तभी उठने की इच्छा नहीं होती है। रानीजी ने इतने काम दे रक्खे थे वे कैसे पूरे होंगे ?

वह बोली—क्या कह रहे हो ?

मैं—कह रहा हू, तब तो कई दिन तक तुम्हारा मेहमान रहना पड़ गया।

कल्याणी—और क्या करोगे ? मुझे ही कलंक लगवाओगे। रात में जागकर सर्दी खा गये हो। नाम होगा कल्याणी का। कौन से रिश्तेदार यहां हैं, वे चिन्ता करेंगे।

कर लेंगे चिन्ता। तुम फिक्र मत करो।—मैंने कहा।

"तो आराम से लेटो, तुम्हारे खाने पीने की व्यवस्था कैसे होगी ?"

"आज शाम तक तो पानी के सिवा कुछ लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। कल देखा जायगा। जैसी तबियत रही कह दूँगा सो बना लेना।"

"मेरे हाथ की बनी हुई खा लोगे ?"

"क्या तुम सबको अपने को अछूत समझने की आदत पड़ गई है"

"हम सब कौन ?"

"तुम्हीं सब, और कौन ?"

"एक तो मैं हूं, दूसरी कौन है ?"

"दूसरी है चाद। चादकुँवरि को तुम क्या जानों ? अभी कुछ ही दिन पहले मैं उसके साथ रहकर आया हूँ। दुनियाँ जिनका नाम लेकर पवित्र हो सके वही जब अपने को यों अछूत मान बैठें तो फिर हम जैसे परावलम्बी पुरुषों को या तो पाकशास्त्र की पूरी शिक्षा लेनी पड़ेगी या व्रत-उपवास करते करते शरीर को सुखा देना होगा।"

"सच कह रहे हो ?"

"तुम्हारे विचार से इसमें कुछ मिथ्या हो तो उसे उखाड़ फेंको। सत्य यदि

यही हो कि जिसके कमरे में, जिसके बिस्तर पर, आराम से सो सकता हूँ, जिसे हृदय से आदर और सम्मान का अर्घ्य चढ़ा सकता हूँ, उसी के हाथ की बनी हुई रसोई को नहीं छू सकता तो ऐसे सत्य को दूर से ही नमस्कार है।"

"तुम्हारा यही विचार है तो मुझे क्या आपत्ति है? ऐसे सौभाग्य को पाकर मैं किसलिए उसका त्याग करूँगी? लेकिन कहीं किसी को पता लग गया, तो मेरे लिए रहने को जगह कहाँ रहेगी?"

"पता लगने से मुझे हानि पहुँच सकती है इसकी संभावना ही छोड़ दो। पुरुष के स्वेच्छाचार को हमारा समाज भी वर्जित नहीं समझता। यह तो नारी ही है जिसके आचार पर पद पद पर झाड़ फूँक होती है। फिर मैं तो आरंभ से मनमौजी हूं। धर्मधुरीणों से जो आशाएँ समाज कर सकता है वे मेरे जैसे विद्रोहियों से करने का साहस उसमें नहीं है। मुझ जैसों की भूलों को नजरअन्दाज करके ही उसे चलना पड़ता है।"

"तो तुम्हारे लिए डाक्टर बुलाना होगा?"

"तुमसे बढ़कर मेरा और कोई डाक्टर नहीं है भाभी।"

"इस संबंध में हठ और हँसी दोनों को ही त्यागकर चलना होगा बाबू! कहीं कुछ हो जाय तो मेरा काला मुँह होगा।"

"तुम कतई चिन्ता न करो। काला मुँह जिसका भगवान् ने नहीं किया है उसका पामर मनुष्य चाहते हुए भी नहीं कर सकेगा। अपनी बीमारी की सीमारेखा और तुम लोगों की शक्ति का मुझे ज्ञान है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि मेरा बाल भी बाँका न होगा।—एक दिन की बात है जिसे कितने ही वर्ष बीत गये हैं, मैं बीमार पड़ा था। वह काफी चिन्ता जनक बीमारी थी। यदि उस बीमारी के समय मैं अस्पताल मे होता तो शायद वहाँ से सीधा चिता पर ही ले जाया जाता। परन्तु मैं सौभाग्य से अस्पताल में नहीं था, न किसी एम०डी० के जेरेइलाज था। तुम्हारी जैसी ही एक बहुत कच्ची उम्र की नर्स की देखरेख मे भगवान् ने मुझे रख दिया था, और मजा यह था कि वह मेरे प्रति उतनी अनुरक्त भी नहीं थी जितनी तुम हो। वह मेरे साथ अपने गठबंधन को गले में फाँसी लगाकर

लटक जाने से भी कहीं बुरा समझती थी। उसीके वरद हाथों ने तब मुझे जीवन दान दिया था। आज तो मैं निश्चिन्त हूं। आज न तो वह कठिन बीमारी है न वह कष्ट और ऊपर से तुम्हारे मधुर स्नेहोपचार की छाया।"

"तुम्हारे ऊपर हृदय का मधुर रस छिड़कने वाली पुण्यशीला देवियों से मुझे तनिक भी ईर्षा नहीं है। लेकिन वह दुःशीला कौन हो सकती है जो इस तरह बाहर से तुम्हें ठेल कर भी हृदय से तुम्हारी पूजा करती है?"

"यह क्या कहती हो तुम? उसका बाहर भीतर उस समय दो नहीं थे। वह जो अनुभव करती थी वही कहती थी। इसका मैं गवाह हूं।"

"परन्तु वह है कौन?"

"वह कोई है। शायद कभी तुम्हारी उससे भेंट हो तब तुम स्वयं ही उसे पहचान लोगी।"

इस इतनी बातचीत के बाद मुझे कुछ थकावट मालूम पड़ने लगी। सिर में कुछ दर्द का भार बढ़ गया। मैं माथे को हथेली से दबाकर चुपचाप लेट रहा। कल्याणी ने मेरी पीड़ा को समझ लिया।

बोली—सिर में दर्द हो रहा है?

मैंने कहा—"थोड़ा थोड़ा।"

लाओ तेल लगा दूँ—कहकर वह उठ गई और एक तेल की शीशी ले आई। मेरी चारपाई पर ही मेरे सिरहाने बैठ कर देर तक वह तेल मसलती रही। यहाँ तक कि मुझे नींद आ गई। आंख खुली तो दिन काफी चढ़ आया था। कल्याणी अपनी नौकरानी को, क्या क्या करना होगा, समझा रही थी। मैंने उसे पुकारा नहीं। चुपचाप लेटा रहा।

चार दिन बाद कहीं जाकर मेरा ज्वर उतरा। इस बीच दिन और रातों का बहुत बड़ा भाग कल्याणी ने मेरे पास बैठ कर बिताया। ज्वर के वेग में भी मुझसे छिपा न रहा कि उसने अपने तमाम कारबार को इन दिनों बन्द रक्खा। जो भी घर के दरवाजे पर आया उसे वहीं से लौटा दिया गया। क्या कह कर लौटाया गया यह अवश्य मैं नहीं कह सकता।

ज्वर में दूध और नींबू के सिवा मैंने कुछ भी नहीं लिया। अब जब

ज्वर उतर गया तब मैंने कल्याणी से कहा—भाभी, अब तो मुझे भूखा न मारो।

"क्या खाओगे?" उसने पूछा।

"जो तुम जल्दी से बना सको।"

"मैं सभी कुछ बना सकती हूं। तुम अपने मन की बात कहो।"

"खिचड़ी का पथ्य बुरा नहीं होता, यह डाक्टरों ने कहा है।"

"तो खिचड़ी बना दूँ?"

"बना दो।"

मुझे गर्म पानी हाथ मुँह धोने और कुल्ला करने के लिए देकर वह मेरे लिए खिचड़ी बनाने चली गई। खिचड़ी सीजने के लिए चूल्हे पर रखकर वह मुझसे पूछने आई कि साथ में पत्ती का साग भी बनाया जा सकता है या नहीं? भूख से मेरा उदर जल रहा था। मैंने खीझकर कहा—इस समय जबान के स्वाद की चिन्ता से अधिक पेट की पूर्ति की आवश्यकता है। जो कुछ होगया हो वही लाकर दे दो।

"इतने अधीर हो उठे हो?"

"अधीर नहीं होऊँगा? भूख से मर रहा हूं"

"पुरुषों की अधीरता विलक्षण होती है।" कहती हुई वह चली गई।

उस समय सचमुच ही मैं पेट में कुछ पहुचाने के लिए व्यग्र हो उठा था। कई दिन से लगभग निराहार रहते रहते शरीर मे शक्ति नहीं थी जो भूख के वेग को सहन करती। जब तक जाकर कल्याणी ने खिचड़ी तैयार की तबतक मेरी अधीरता व्याकुलता को पहुच गयी। आखिर वह खिचड़ी बनाकर ले आयी और मैं खाने बैठा। उसने एक चौड़ी तश्तरी में खिचड़ी का पतला पतला परत सब जगह फैला दिया और एक चम्मच मेरे हाथ मे दे दिया। झारी में से मेरे लिए औटाकर ठंढा किया हुआ जल गिलास मे उँडेल कर बोली—तुम्हारी उतावली की वजह से मैं जल्दी से ले आयी न मालूम ठीक से सीज भी पाई है या नहीं?

मैं भूख से व्याकुल था। खिचड़ी को स्वाद आदि पर ध्यान दिये बिन

ही मैंने जल्दी से मुँह में डाला। चार छः कौर खा चुकने के बाद एक अपूर्व शांति का अनुभव होने लगा। आखें जो झँपी जा रही थीं खुल गईं। मैंने खिचड़ी का एक चम्मच मुँह में डालते हुए कहा—भाभी, इतनी स्वादिष्ट बनी है कि मत पूछो।

वह केवल मेरे मुँह की ओर देखकर मुस्करा भर दी। कई दिन मेरी बीमारी में रात दिन जागने और विश्राम न करने से उसका सुन्दर सलोना मुखड़ा कितना म्लान हो गया था? इधर मेरा ध्यान ही न था। उस मलिन मुखड़े पर खिल उठी मुस्कराहट को क्षणभर देख लेने के बाद मुझे ख्याल आया कि इस अबला पर कितना अत्याचार जबरदस्ती उसका मेहमान बनकर मैंने लाद दिया है। उसे उसकी थोड़ी भी शिकायत नहीं है, परन्तु क्या मेरा यही कर्त्तव्य है कि मेरी उधर दृष्टि भी न जाय।

मैंने पुलकित होकर कहा—भाभी, बीमार तो मैं हुआ था। तुमने मालूम पड़ता है सहानुभूति में मेरे साथ फाके किये हैं। मैं तो खाकर तृप्त होगया अब तुम भी थोड़ी सी खिचड़ी पेट में डाल लो।

मेरी चिन्ता मत करो बाबू—कहकर वह मेरे जूठे बरतन बटोरने लगी।

मैंने मना करते हुए कहा—तुम बरतन पड़े रहने दो। नौकरानी उठाकर ले जायगी। मेरी बात मानकर दो चार कौर खिचड़ी खा लो।

वह हँसकर बोली—अपनी ही तरह दूसरों को भी समझ रहे हो। हम लोगों को भी क्या खाने की इतनी हड़बड़ी होती है?

"क्यो तुम लोग क्या हाड़-मास की बनी नहीं हो?"

"हम लोग फौलाद की बनी हैं, यही समझो।" कहकर वह अपने कार्य में व्यस्त रही।

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—यह रहने दो। तुम्हे मेरी कसम भाभी। मेरे कहने से थोड़ी सी खिचड़ी खा लो।

उसने हाथ को छुड़ाने की चेष्टा न किये बिना ही कहा—यह खूब, कसम खिलाने लगे। अच्छा बाबा, मैं खा लूँगी। क्या भूखी थोड़े ही रहूँगी?

मैं—तो खातीं क्यों नहीं ? दूसरा आसन पड़ा है । उसी पर बैठ जाओ।

"तो क्या मैं तुम्हारे सामने खाऊँगी ?"

"क्यों, मेरे सामने खाने से क्या नजर लग जायगी ?"

"हाँ।" वह खिलखिला कर हँस पड़ी ।

'परन्तु मैं तो अब भूखा नहीं हूं।"

"पुरुष तो सदा ही भूखे रहते है । उनकी भूख का कोई अन्त नहीं होता ?"

"तब जाकर कहीं अँधेरे-कमरे में छिपकर खाना।"

वही करूँगी— कहकर जूठे बरतन लिये वह जाने लगी । वह अभी कमरे में ही थी कि इतने में नौकरानी दौड़कर आयी और बोली—कोई बाबूजी को पूछ रहा है ।

कौन है ?—कुछ अकचका कर कल्याणी ने पूछा । उसका वाक्य समाप्त भी न हुआ होगा कि 'मैं हूं बहिनजी, रमेशबाबू को लेने आई हूं ।' कहती हुई विशाखा बन में लगी आग की तरह अचानक प्रकट होगई ।

कल्याणी वज्राहत-सी कर्तव्य-मूढ़ रह गई । उसके हाथ से एक कटोरी छूटकर फर्श पर झनझनाहट के साथ गिर पड़ी । मैं भी अभिभूत सा बैठा रह गया।

विशाखा ने फिर कहा—मेरा यह अनुमान कि वे यहीं हैं और अच्छी तरह हैं, ठीक है कि नहीं ?

कल्याणी से बोला न गया । उसने सिर हिलाकर बताया—यहीं हैं।—फिर हाथ के इशारे से कमरे की ओर संकेत कर दिया ।

विशाखा कमरे में घुस आई और कल्याणी भागकर न जाने किस कोने में जा छिपी । मैं पलग पर तकिया के सहारे अधलेटा-सा था । मेरे सामने पहुंचकर विशाखा कुछ घबरा उठी, बोली—अरे, तुम तो बीमार पड़े हो ?

मैं—बीमार पड़ा नहीं हूं अब बीमारी से उठा हूं । लेकिन तुम यहां तक क्यों चली आईं ?

विशाखा—क्यों चली आई यह पूछने से अच्छा होता यह पूछते कि इतने दिन तक क्यों खबर नहीं ली ? काम की भीड़ से आज ही सांस ले पाई हूं और तभी मैंने सोचा कि ·

मैं—सब लोग परेशान हो रहे होंगे ? क्या करूं मैं, यहां आकर जो पड़ा तो उठा ही नहीं गया।

विशाखा—तुम तो अभी चलने लायक नहीं हो ?

"नहीं, अब मैं चल सकता हू। खिचड़ी ले चुका हूं। शरीर में थोड़ा बल आगया है।"

"नीचे तक चल सको तो दरवाजे पर कार खड़ी है।"

"चल सकूंगा" कहकर मैंने कमरे के दरवाजे की तरफ देखा। मैं देख रहा था कल्याणी क्या कर रही है पर वह कहीं भी मुझे दिखाई न दी। वृद्धा नौकरानी खड़ी थी। उसे लक्ष्यकरके विशाखा ने कहा—बहिनजी कहां हैं ? उन्हें जरा बुलाओगी।

नौकरानी को जवाब लाने में इतनी देर लगी कि मैं व्यस्त हो उठा। मुझे लगा कि कल्याणी विशाखा के सामने नहीं आना चाहती है। अपने अपराध की गुरुता से लज्जित वह कहीं छिपी बैठी है। नौकरानी ने आकर कहा—अभी एक मिनट में आ रही हैं।

मैं विस्तर से उतरकर अपने कपड़े पहन रहा था। देखा कल्याणी आकर चुपचाप नतशिर होकर खड़ी है। इतनी देर में उसके चेहरे की असली शोभा कहीं की कहीं विलीन होगई थी। धुले हुए वस्त्र की भांति उसका मुख किसी करुण चित्र की आकृति बन गया था। विशाखा ने इस परिस्थिति को सुधारने का प्रयत्न करते हुए कहा—ये इतने दिन नहीं गये तब भी मैं निश्चिन्त थी। मैं जानती थी इसलिए चिंता की कोई बात नहीं थी। हाँ परन्तु यह ख्याल होता कि इस तरह बीमार पड गये हैं तो काम की भीड़ में से भी समय निकालकर दौड़ी आती और देख जाती।

कल्याणी प्रतिमा-सी खड़ी थी। उसके मुंह में शिष्टाचारसूचक कोई उत्तर तक नहीं रह गया था। विशाखा कहती गई—अब कहो तो इन्हें ले

जाऊँ ? मेरे सिवा और तो सब चिंतित ही हो रहे हैं ।

कल्याणी ने सिर हिलाकर मंजूरी दे दी ।

मैंने कमरे से बाहर निकल कर कहा—भाभी, तुम जान गई होगी इन्हें ? तुम्हारी ही तरह एक दिन इन्होंने भी महाकाल की दाढ़ों से मुझे खींचकर बचाया था ।

कल्याणी को मेरी बातों से बोलने को कुछ आधार मिला । वह कहने लगी—अहोभाग्य हमारे, जो इस घर की-भूमि इन पवित्र चरणों की धूलि पा सकी है ।

मैं—पर इस सद्भाग्य के हेतु को कोई नहीं पूछेगा ?

कल्याणी—यह कैसे हो सकता है ? इसमें सबसे बड़ा श्रेय तो तुम्हीं को है । नहीं तो यहा इनका क्या काम था ? इस घर में भला ये क्यों आतीं ?

मैंने विशाखा को लक्ष्य करके कहा—तो मुझे नीचे चलना होगा ?

उत्तर कल्याणी ने दिया—बहादुर तो बड़े बनते हो । कहीं लड़खड़ा मत जाना । पैर कमजोरी से काँप रहे हैं, तो भी बिना सहारे के नीचे जाने को तैयार हो ?

तो सहारा किसका ताकूँ ?—मैंने कहा ।

विशाखा—मर्दों को सहारे की क्या जरूरत ? तुम वैसे ही चलो । चल सकते हो कि नहीं ?

फिर कल्याणी से कहने लगी—बहुत से काम रुके पड़े है इनके बिना । इसीसे लिये जा रही हूं । आज्ञा है न ?

मैं आज्ञा देने लायक हूँ क्या ? इन चरणों की धूलि को छूने का भी तो मुझे अधिकार नहीं है ।—झुककर उसने विशाखा के पैरों की ओर हाथ बढ़ा दिये ।

"नहीं, बहिनजी ! यह क्या तुम्हें शोभता है ? तुम तो बड़ी हो, पूज्या हो ।"

मैं जीने में उतर गया । विशाखा मेरे पीछे-पीछे आ रही थी । कई दिन

की जगी और श्रमित, भूखी प्यासी कल्याणी मन और भावों को विक्षुब्ध कर देनेवाली इस घटना को सह न सकी। धम से चक्कर खाकर गिर पड़ी।—यह देखकर विशाखा वहीं रुक गई और उसका सिर गोद में लेकर अंचल की हवा की। जल के छींटे दिये।

मैं सड़क पर खड़ी मोटर मे जा बैठा था और सोच रहा था विशाखा को अब किस बात ने रोक लिया है? ऐसी कौन सी बात है जो मेरे पीछे कल्याणी से कहने के लिए वह रुक गई है?

काफी देर बाद विशाखा निकलकर आई। जब वह कार में आकर बैठ गई तो मैंने पूछा—कहां रुक गई थीं?

विशाखा--तमाशा आगया था उन्हें। मुश्किल से होश में आई है। बिस्तर पर लिटाकर आई हू।

मोटर हार्न देकर स्टार्ट हो गई और हम रानीजी के निवास स्थान पर जा पहुँचे। मेरे रुग्ण शरीर को देखकर रुक्मिणी को जितना दुख हुआ उतना शायद ही और किसी को हुआ हो।

आज विशाखा के ट्रस्टडीड की रजिस्ट्री करा दी गई। कार्यवाहक ट्रस्टी मैं नियुक्त किया गया। एक दिन मैंने विशाखा से कहा था मुझ जैसे निकम्मो को काम पर लगाने के लिए तुम्हें अपने स्वार्थ की चिन्ता किये बगैर वृद्धावस्था के निकट पहुँचे हुए आदमी से भी विवाहकर लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। आज उसीकी पूर्णाहुति का दिन था। विशाखा ने उसे आज अपनी ओर से पूरा कर दिया। पता नहीं जो कार्य मेरे कंधो पर इस प्रकार आ पड़ा है उसे मैं कहा तक और किस प्रकार पूरा कर सकूँगा? यही सोचते हुए मैंने उस सन्ध्या को निद्रा देवी की गोद मे विश्राम ग्रहण किया।

पच्चीस

विपुल संपत्ति की सुरक्षा, प्रबन्ध और ट्रस्टडीड में वर्णित उद्देश्यों के अनुसार उसकी आय को खर्च करने आदि के झंझट ने मेरे जीवन की आठों पहर की शांति को छीन लिया। रानीजी के नये निवास स्थान पर रोज संध्या समय जाकर परामर्श करने को ही मेरा सैर-सपाटा, मनोरंजन व दिलबहलाव कहा जा सकता है। बाकी प्रातः से सायंकाल तक के समय का एक एक क्षण दफ्तर में बीतता है। कारखानों का प्रबंध देखना, जमीन-जायदाद के झगडे सुनना और उन्हें निबटाना, मजदूरों और कार्यकर्ताओं की मांगों और शिकायतों पर विचार करना, नव स्थापित संस्थाओं में योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति को देखना आदि नाना प्रकार के जरूरी काम निबटाने में ही सारा समय बीत जाता। एक मिनट को दम मारने की भी फुरसत नहीं मिलती।

नित्य नये नये आदमियों और नये नये कामों के संपर्क में आना होता। पगपग पर अपनी अल्पज्ञता का मुझे भान होता, पर एक गुरुतर दायित्व की गंभीरता के कारण सब कुछ निभा चला जा रहा था। मेरी आज्ञा सर्वोपरि थी। उसके औचित्य अनौचित्य के निर्णय करने का किसी को अधिकार नहीं था। मैं कर्तव्य से बुरी तरह भाराक्रान्त था। काम करने का अभ्यास ही कब था? अचानक मेरे कंधों पर आ पड़े बोझ ने मुझे कुछ समय के लिए कमंठ बना दिया।

हाँ, मेरे साथ एक महात्माजी आ गये हैं—उसने रुकते रुकते कहा।

"महात्माजी आगये हैं तो उन्हें ले आकर बिठाओ न भाई। उधर आसन बिछा दो। रसोई तैयार है, महात्मा जी से कहो यहीं प्रसाद पायेंगे। मैं अभी आई।"

इतनी सारी व्यवस्था करके विशाखा उठ गई।

कुटिया से बाहर फुलवारी है। फुलवारी में एक ओर छप्पर है। वहीं रसोईघर है। पास ही दूसरे छप्पर के नीचे आसन पर अर्धनिमीलित नेत्र एक साधु विराजमान हैं। कोई काम न होने से मैं भी दर्शनार्थ वहीं चला गया। देखा, वे बड़े मजे से अंग्रेजी बोलते हैं और शायद इसी कारण सरोज उन्हें आमन्त्रित कर लाया है। आंग्ल भाषा भाषी साधुओं को अभी तक वे सब सुविधाएँ सुलभ हो जाती हैं जिनके वे हकदार नहीं, क्योंकि लोग दासता के भाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं। उनके निकट अंग्रेजी का ज्ञान विशेष सम्मान की चीज है। यह और बात है कि वे देशी और देश के गुण गाना भी सीख गये हैं।

मुझे अपने सामने अभिवादन की मुद्रा में पाकर महात्माजी गद्गद् हो गये। हाथ उठाकर हिन्दी में आशीर्वाद दिया।

मैंने पूछा—कौन सा देश है, भगवन्?

उत्तर मिला—साधुओं का कौन-सा देश? यह सारी धरती ही तो उनकी है। वे जहाँ चाहें विचरते हैं।

मैं निरुत्तर होगया। आगे जाति, सम्प्रदाय आदि की बात उठाना व्यर्थ जान मैं वहीं धरती पर बैठ गया। मेरे ऊपर गम्भीर दृष्टि डालकर महात्मा जी कह उठे—सेवा सबसे बड़ा धर्म है—अखिल चराचर की सेवा।

मैं—लेकिन हम गृहस्थ तो स्वार्थ की ही आराधना करना जानते हैं। हम तो इसी को धर्म मान बैठे हैं।

महात्माजी—परार्थ को स्वार्थ की सीमा में सम्मिलित कर लेने की दृष्टि बना लो। सब ठीक हो जायगा। सेवा का राजमार्ग खुल जायगा।

"परन्तु कितना कठिन है यह?"

"कठिन को सरल करो।"

"इतनी घोर साधना की शक्ति कहां से लायें ?"

"शक्ति का भंडार तुम्हारे भीतर है—अक्षय भंडार। उसे खोज निकालो। काम में लाओ।"

मैं स्थिर दृष्टि होकर कुछ सोचने लगा। महात्माजी फिर कहने लगे-—तुम्हारे लिए तो यह रास्ता अपरिचित नहीं। तुम तो इसी में लगे हो।

"ऐसा कुछ नहीं है महाराज।"

"अर्थात् ?"

"स्वार्थ-पथ के सिवा दूसरा पथ हमने नहीं देखा है।"

"यह विपरीत भावना तुमने क्यों बना ली है ? तुम्हारे कामों से तो इसका कोई मेल नहीं।"

"मेरे कामों का लेखा आपने देखा है ?"

"क्यों नहीं। मेरी आँखों से क्या दूर है ?"

"आपका विचार है कि मैं विपथगामी नहीं हूँ ?"

"हाँ, मुझे निश्चय है और मेरा निश्चय गलत नहीं होता।"

"और उस निश्चय का आधार है आपका परोक्षज्ञान ?"

"प्रत्यक्ष ज्ञान कहो।"

"मेरे जीवन का प्रत्यक्षज्ञान आपको कैसे संभव है ?"

"असंभव भी नहीं हो सकता।"

"हाँ असंभव भी नहीं हो सकता। लेकिन संभव किस प्रकार हो ?"

"सोहनपुर में साथ साथ रहकर हो सकता है। दौलतपुर मे साथ साथ पढ़कर हो सकता है।"

सोहनपुर और दौलतपुर के उल्लेख से मैं विमूढ़ हो रहा।

महात्माजी थोड़ा मुस्करा दिये और बोले—चुप क्यों हो गये ? बोलो, संभव हो सकता है कि नहीं ?

"आप कौन हैं ?—रामचरन हैं क्या ?"

"मैं रामचरन नहीं रामचरनदास हूँ रमेश !"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"गँवार जो ठहरी।"

मुझे लगा कि मैं उससे हार गया। वह वैसी ही काम में लगी रही।

मैंने कहा—रामसखी!

"कहो।"

मैंने फिर दोहराया—रामसखी!

"बोलो।"

"मैं तुम्हें अनपढ़ गँवार समझे था।"

"और क्या हूं मैं ?"

"मेरी भूल थी वह। मुझे क्षमा करो, रामसखी।"

तुम ऐसी बातें करोगे तो मैं यहां से चली जाऊँगी—आँखें तरेरकर उसने कहा।

"कहाँ चली जाओगी ?"

"अपने घर।"

"यह घर तुम्हारा नहीं है ?"

"यह घर तुम्हारा है।"

"और अभी तुम क्या कह रही थीं ? तुम झूठ बोलना भी जानती हो रामसखी ?"

"मैं कह रही थी—मैं सच कह रही थी। और देखो, तुम मेरा नाम न लिया करो।"

"क्यों ?"

"पुरुष कहीं स्त्री का नाम लेकर पुकारता है।"

"तो कैसे पुकारा करूँ तुम्हें मैं ?"

"यह मैं क्या जानूं ?"

"तुम्हीं जानोगी। जब तुम मुझे नाम लेकर पुकारने से मना करती हो तो और कौन जानेगा ?"

"वाह जी, मैं तुम्हें बताऊँगी क्या ?"

"बताना पड़ेगा।"

"कैसे ?"

"ऐसे"—कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।—"जब तक न बताओगी तब तक के लिए तुम गिरफ्तार हो।"

"अच्छा छोड़ो, बताऊँ।"

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया। वह बोली – जैसे दादा (जेठजी) जीजी (जिठानी) को पुकारते हैं। वे क्या नाम लेते हैं ?

"वे तो कहते हैं, विभा की माँ, प्रभा की माँ।"

इस पर वह हँस पड़ी। मैंने पूछा—हँसती क्यों हो ?

"तुम्हारी बातों पर।"

"क्यों ?"

"विभा-प्रभा तो अब हैं। जब वे नहीं थीं तब कैसे बुलाते थे ?"

"तुम्हीं बताओ।"

"मैं बताऊँ ? मैं कैसे बताऊँ ? मैं क्या यहां बैठी थी तब ?"

"तुम सब जानती हो रामसखी ! और नहीं जानती हो तो जाकर भाभी से पूछ आओ।"

इस बात से वह ऐसी शर्माई कि क्या बताऊँ ? उसने एक लंबा-सा घूँघट खींच लिया। मैंने कहा—यह क्या आफत है ?

वह चुप। मैंने कहा—यह खूब रही। अजी वाह, कुछ बोलो तो। एकदम ऐसा क्या हो गया ?

उसने घूँघट के भीतर से ही कहा—तुम कैसे आदमी हो ? मैं जीजी से ऐसी बात पूछने जाऊँगी ?

"यह भी कोई शर्म की बात है ?"

"शर्म की बात नहीं है ?"

"मुझे तो नहीं जान पड़ती।"

"अजीब बात है।"

"पर घूँघट तो खोलो। मुँह तो तुम्हारा मैं देख ही चुका हूँ अब ढकने से क्या होता है ?"

उसने पहले जैसा तो नहीं खोला। हाँ, घूँघट थोड़ा ऊँचा कर लिया। मैंने बात बदलने की गरज से कहा—सिर में थोड़ा दर्द होने लगा है रामसखी।

"कहा"—कहकर वह मेरे पास आ गई—"कमजोरी से हो गया होगा। लाओ सिर दाब दूँ।"

निस्संकोच भाव से वह मेरे बिस्तर पर बैठ गई। मुंह न जाने कब उघर गया। मेरे माथे पर धीरे धीरे उसका हाथ फिरने लगा।

इस तरह पहली मुलाकात में ही मैं जान गया कि रामसखी कितनी दुर्लभ चीज है। इसके बाद तो उसका आकर्षण दिन दिन बढ़ता ही गया। उसकी बात ही ऐसी होती थी, जिसे याद करके आदमी को रोना आये। अपने लिए कभी कोई चीज उसने नहीं मांगी। न खाने पीने की, न शृंगार-सजाव की। मेरे बहुत झगड़ने पर कहती तो यही—जो तुम्हें भाये ले आओ। मेरा खाना-पहनना है तो सब तुम्हारे ही लिए। किसी बाहरवाले को तो दिखाना नहीं है। फिर बारबार पूछते क्या हो ?

मैं कहता—तुम कैसी भोली-हो रामसखी। तुम्हारी सखियां क्या कहती होंगी ? मेरी रुचि के मोटे-भद्दे कपड़े तुम लपेटे रहती हो।

"सखियों सहेलियों की पसदगी से मेरा कुछ आता जाता नहीं। मैं तो तुम्हारी पसंद से बँधी हूँ।"

माँ-बाप के घर बुलाने से जाती पर एक रात भी वहा न ठहरती। जाते जाते मुझे हिदायत दे जाती—देखो शाम होते होते पहुँच जाना। साथ साथ चले आयेंगे।

मैं कहता—यह ठीक नहीं है। तुम्हारे मा बाप बुरा मानेंगे।

वह उत्तर देती—रहने दो। उनकी नाराजगी देखूँ या तुम्हारी असुविधा। चलो अपने घर चलें। यहाँ क्या तुम घर की सी स्वच्छंदता से रह सकोगे ?

में परास्त हो जाता। उसे साथ ले आता।

इसी तरह मेला-ठेला, खेल-तमाशा, ब्याह-शादी कहीं भी वह रात को न रुकती। तीर्थ व्रत, पूजा-मान्ता जो भी उसके होते सब मेरे कल्याण के लिए, मेरे स्वास्थ्य के लिए, मेरी श्रीवृद्धि के लिए। अपने लिए उसका कुछ भी नहीं था।

मैं कभी कभी हँसी में उससे कहता—रामसखी, तुम्हारा नामकरण करनेवाला ज्योतिषी त्रिकालज्ञ था। उसने तुम्हें मेरी सच्ची सखी बनाकर भेजा है—नाम से भी, काम से भी। भगवान् उस ज्योतिषी की विद्या-बुद्धि को निरंतर बढ़ायें।

दो बरस बाद जब वह मृत्यु-शैया पर पड़ी थी तब मुझे उसकी इस अनन्यता का रहस्य समझ में आया। यदि रामसखी इतनी जल्दी मरने को न होती तो इतनी छोटी उम्र में इतनी सेवापरायण और अनन्य न होती। वह जब तक जीवित रही मेरी सेवा में समर्पित रही, मरने लगी तो भी शरीर के अपार कष्ट से जरा भी विचलित न हुई। उस समय भी उसे एक यही कष्ट था कि उसके बाद मेरा क्या होगा? कौन मेरी देखरेख करेगा? यदि सेवा का उत्तराधिकार किसी को दिया जा सकता तो वह अवश्य ही मुझे किसी अपनी विश्वस्त को सौंप गई होती।

इस प्रकार मेरी जीवन-संगिनी मेरे साथ साथ दो कदम चलकर ही मुझे छोड़ गई। गृहस्थी की किचकिच के नित्य सर्वत्र जो दृश्य देखने में आते हैं उनसे मुक्ति पाने और आत्मशांति का जीवन बिताने की खातिर मैं संन्यासी हुआ हूं। इसके सिवा मेरे लिए और दूसरा मार्ग नहीं था।

मैंने दृष्टि उठाकर देखा विशाखा की आंखें झरना बनी थीं और संन्यासी रामचरनदास के आगे रक्खी हुई थाली का भोजन ठंढा होगया था। सरोज अस्तव्यस्त और विचलित हो उठा था और रुकिया व्याकुल।

सन्यासीजी ने दो चार कौर लिये। अपने आवेग को भी उन्हीं के साथ उदरस्थ करने के बाद बोले—मैंने संन्यास जिस हालत में और जिस हेतु

लिया है उससे मुझे यह विचार करने की फुरसत नहीं है कि मुझे दुख है या सुख। इससे इसके प्रति विरति का प्रश्न नहीं उठता। अब रही यह बात कि पुरानी बातें मुझे याद आती हैं या नहीं और उनसे मैं विकल होता हू या नहीं? अपनी कहानी कहकर मैंने तुम्हें बता ही दिया है कि मैं आखिर मनुष्य ही हूँ, साधना के पथपर फूँक फूँककर चल रहा हू। सिद्धि अभी दूर है—बहुत दूर, बहुत दूर।

देर तक मौन रहकर वे बोले—रामसखी ही मुझे सेवा का महामन्त्र सिखा गई। उसी को जिस तरह होता है मैं जपता हूँ। अखिल चराचर की सेवा का व्रत लिए मैं घूमता हू। मैं सन्यासी हूँ, साधनहीन हूँ परन्तु सेवा में इतना बल है कि वह मेरे प्रयत्नो को स्वतः ही बल देती चलती है। आज तक मुझे कभी अभाव की प्रतीति नहीं हुई। साधनों की प्रचुरता चारो ओर से नदी की भांति उमड़ती चली आ रही है। ठीक तरह से उसका उपयोग करने के लिए सेवाव्रती लोगो को लेकर जगह-जगह सेवासघ स्थापित कर दिये हैं। अबतक एक हजार एक सौ से कुछ अधिक स्थानो पर संघ काम कर रहे है। भगवान् की इच्छा होगी तो उसकी एक लाख शाखाए विश्व-कल्याण की योजना को कार्यान्वित करने के लिए शीघ्र क्रियाशील दिखाई देंगी।

मेरे कुछ कहने से पहले ही वे बोले—तुम्हारी इस गृहस्थी का निश्चय ही यह स्थायी निवासस्थान नहीं मालूम पड़ता है, और तुम्हारी धर्मपत्नीजी मुझे साधारण कोटि की नारी नहीं लगतीं। वे मेरे काम में सहायिका बन सकती हैं।

मैंने कहा—मैं तो अभी तक गृहस्थ और गृहस्थी के झंझट से सर्वथा मुक्त हू भगवन्, और ये रानीजो हैं। इन्होंने अपनी पचास लाख की सपत्ति सेवार्थ प्रदान कर दी है।

सन्यासी—मैं अपनी अप्रबुद्ध धारणा के लिए तुम दोनो से क्षमा प्रार्थी हूँ।

फिर विशाखा की ओर मुँह करके बोले—कल्याणी, मुझे क्षमा करोगी?

विशाखा—महात्माजी आप यह क्या कहते हैं ? मैं आपको क्षमा करूँगी ? अनजान में कही गई बात के लिए आप इतने दुखी क्यों होते हैं ?

"पूर्वधारणा बना लेने से कभी कभी ऐसी भूल होजाती है। आप तो सेवा के मार्ग पर पहले से ही चल रही हैं। यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।"

विशाखा—भगवन् इसका श्रेय मेरे स्वर्गीय स्वामी को है। उन्होंने ही इतनी बड़ी धन-राशि पीछे छोड़ी है। मैंने तो उसे जिसकी समझा उसके हवाले कर दिया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। मैं जड़ बुद्धि धर्म-कर्म की ऊँची ऊँची बातों से सर्वथा अनजान हूँ।

संन्यासी—धन की माया ममता छोड़ देना ही तो बड़ी बात है। यही ममता-त्याग धर्म-कर्म का मूल है। यह बड़े बड़े तत्वज्ञानियों से भी मुश्किल से बन पड़ता है।

विशाखा ने महात्मा जी के सामने आकर धरती पर अपना माथा टेक दिया। महात्माजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

संन्यासीजी को पहुँचाने के लिए मैं दूर तक उनके साथ साथ गया। रास्ते में उन्होंने मुझसे पूछा—गृहस्थों के बीच रहकर गृहस्थी के झंझट से मुक्ति का क्या कारण होसकता है ?

"मेरे सामने आरंभ से कुछ ऐसी ही समस्याएं रही हैं।"

"जानते हो, हमारी भाषा में इन कल्पित समस्याओं का क्या नाम है ?"

"नहीं।"

"नाराज मत होना रमेश। हम इन्हें पलायनवृत्ति कहते हैं। अनियंत्रित जीवन बिताने से कभी कभी प्रतिकूल परिस्थितियों के संघर्ष में आदमी के अन्दर का आत्मविश्वास खो जाता है। तब वह ऐसी ऐसी अनेक समस्याओं को गढ़ लेता है। अधिक नियंत्रण में रहने से भी कभी कभी ऐसी ही स्थिति पैदा हो जाती है। गृहस्थी को झंझट मान लेना दुनियां से भागना है। यह भागना कोई प्रशंसा की वस्तु नहीं। संसार एक प्रयोगशाला है। प्रयोगशाला में लाखों लोग आते जाते हैं। उसको वे अधिकतर गोरखधंधा ही समझते

हैं परन्तु एक अन्वेषक बड़े धैर्य से उसका प्रबंध और सचालन करता है। नये नये प्रयोग करके वह दुनिया को प्रगतिशील बनाता है। हमें भी ससार की इस महान प्रयोगशाला में केवल दर्शक नहीं रहना चाहिए। अन्वेषक बने बिना, नये नये प्रयोग कैसे सभव होंगे और उनका सुपरिणाम प्राप्त न होने से ससार के प्रवाह की गति रुक न जायगी ? इसलिए गृहस्थ जीवन से भागना कोई अर्थ नहीं रखता। न मालूम किस महान प्रयोग की चिनगारी तुम्हारे अदर दबी है। उससे प्राणि-समाज को वंचित कर देने का अधिकार क्या तुम्हें है ?"

"परन्तु जब किसी को अपनी सामर्थ्य का ठीक ज्ञान हो तब न ?"

"ठीक ज्ञान नहीं हो सकता भाई। अपनी सामर्थ्य का ज्ञान किसे होता है। मैं जिस उद्देश्य में लगा हूँ क्या मैं जानता था कि उसे सपन्न करने की सामर्थ्य मेरे में है ?"

"आप तो सन्यासी हैं। आपको गृहस्थ-जीवन के लिए उपदेश देने की क्या पड़ी है ?"

"क्योंकि वह जीवन का एक आवश्यक भाग है। वह ससार की परिपूर्ति का साधन है। झील में एक ढेला फेंकने से सारी झील तरगित हो उठती है। गृहजीवन के एक एक कार्य का समाज के निर्माण पर असर पड़ता है। सन्यासी होजाने से समाज के कल्याण की भावना क्षीण होने की बजाय पीन ही अधिक होती है। इसलिए मेरा उपदेश मेरे और तुम्हारे किसी के विरुद्ध नहीं। बोलो, मानते हो इसे ?"

"मानता हूँ।"

"परन्तु तुमने मुझे भिक्षा तो नहीं दी रमेश ! बालबंधु होकर तुम मुझे कुछ भी न दोगे ?"

"मेरे पास जो है उसमें कुछ भी तो आपके लिए अदेय नहीं है।"

"तो मुझे यही दो कि अवसर आने पर तुम गृह-जीवन मे प्रवेश करने से भागोगे नहीं—उसे शिरोधार्य करोगे।"

"स्वीकार है।"

"भगवान् तुम्हारा भला-करेंगे। उससे संसार का मंगल होगा।—लौट जाओ। बहुत दूर आ गये हो।"

"फिर कब और कहां दर्शन होंगे?"

"यह तो भगवान् की इच्छा पर निर्भर है।"

मैंने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया और अपने स्थान पर लौट आया। संन्यासी रामचरनदास पहाड़ी पगडंडी का अनुसरण करते हुए न जाने किधर लुप्त हो गये?

छुट्टियां

"तुम कब जा रही हो?" मैंने विशाखा से पूछा।

"कहां?"

"घर।"

"और तुम?"

"मैंने जरा और घूमने-फिरने की ठानी है।"

"अकेले?"

"हाँ"

"अकेले रह सकोगे?"

"क्यों, क्या हर्ज है?"

"कहीं संन्यासी बनने की तो नहीं सोच रहे हो?"

"यह डर तुम्हें कैसे हुआ?"

"बालयंधु के रास्ते पर शायद चल पड़ो इसीसे।"

"मुझे साथ ले जाकर उन्होंने क्या उपदेश दिया था, जानती हो?"

"क्या जाने?"

"तुम्हारा क्या अनुमान है?"

"यही कहा होगा कि अकेले तो हो ही। क्यों न सेवा-संघ में आ जाओ।"

"नहीं।"

"तव?"

"उन्होंने कहा था व्याह करलो। सुख से रहो।"

"यह तो नहीं कह सकते हैं।"

"सच, यही कहा था।"

"और तुमने क्या उत्तर दिया?"

"मैं क्या इनकार करता? बड़ों के आदेश को शिरोधार्य किये ही बनता है। मैंने स्वीकार कर लिया।"

"तो व्याह करोगे?"

"अवसर आयेगा तो कर लूँगा।"

"परन्तु अवसर कब आयेगा?"

"इसका क्या पता? आज आये, कल आये, कभी न आये।"

"तो मुझे घर भेजकर कहा कहा घूमोगे?"

"इसका कोई निश्चय नहीं है।"

"कब निश्चय करोगे? मेरे चले जाने के वाद?"

"इस कुटिया को छोड़कर रास्ते पर खड़े हो जाने के उपरात देखूँगा किधर चलने में सुभीता होता है।"

"तो क्या पैदल यात्रा होगी?"

"ऐसा ही विचार है।"

"परन्तु पैदल यात्रा में कितना समय लगेगा और कितने कष्ट होंगे, यह नहीं सोचा होगा?"

"समय लगेगा और कष्ट भी होंगे परन्तु स्वास्थ्य के विचार से यही उत्तम होगा।"

"फिर घर कब तक पहुंचोगे ?"

"एक-दो महीने में। शायद पहले भी पहुंच सकूँ।"

"तो पूर्णमासी का ग्रहण-स्नान कराकर हमें गाड़ी पर चढ़ा देना ठीक होगा।"

"अच्छी बात है।"

"और यदि पैदलयात्रा का निश्चय रद् हो सके तो साथ ही चलना होगा।"

"ऐसा तो शायद ही हो।"

"न सही। भगवान् तुम्हारी यात्रा सफल करें। अच्छी-सी बहू खोजकर ला सको।"

"इस छोटी-सी यात्रा का इतना बड़ा उद्देश्य नहीं हो सकता।"

"बहू खोजने के लिए इससे भी लंबी यात्रा की जरूरत होगी ?"

"तो क्या समझती हो, राह-गली चलते उपयुक्त पात्र की प्राप्ति हो जाती है ?"

"यह तो सच है। खान खोदे बिना पत्थर भले ही मिल जायँ रत्नों की प्राप्ति तो दुर्लभ ही है।"

"परन्तु कठिनाई यह है कि मुझे न खान खोदना आता है न रत्नों की परख करना।"

"वह सद्बुद्धि समय पर स्वतः उपज जाती है।"

"ऐसी बात है।"

"और क्या।"

ग्रहण-स्नान निकट आने पर देखा, विशाखा मेरे लिए तैयारियों में संलग्न है। उसके आदेश पर रुक्मिणी जो-सो सामान जुटा रही है।

"मेरे लिए किसी तैयारी की आवश्यकता नहीं है ?" मैंने विशाखा से कहा।

"तो कितनी दूर तक मुझे पहुँचा आने का आदेश हुआ है तुम्हें ?"

"जहां तक आप ले चलना चाहें।"

"और इस रास्ते पर ही मुझे जाना है क्या यह भी तुम्हें बता दिया गया है ?"

"यह रास्ता सीधी पक्की सड़क से जाकर मिलता है। आपको जाना किस गांव है बाबू जी ?"

"गांव का नाम तो मुझे मालूम नहीं है, पर हां जाना है इसी ओर।"

रामरिख अपनी धुन में गाड़ी हांक रहा था। धीरे धीरे धूप तेज हो गई, और मुझे विशाखा का वह कथन याद आने लगा कि खुली गाड़ी में धूप का बचाव कर लेना। सामान तो मैं कुछ साथ लाया नहीं। धूप का बचाव किया जाय तो कैसे ? रामरिख धूप मेंह को धारता नहीं। मजे से गुनगुनाता हुआ चल रहा है। मैंने कहा—भाई, मन ही मन क्या गा रहे हो जरा जोर से गाओ न।

रामरिख—बाबूजी, हम गँवार लोग रेंक लेते हैं। गाना तो क्या जाने ?

"नहीं नहीं गाओ रामरिख, बहुत अच्छा तो गा रहे हो तुम।"

बीबी खड़ीं अगना, मियाँ परदेस
पाती न संदेस, पाती न सदेस।

खूब जोर से आलाप लेकर रामरिख ने ठेठ देहाती गले से गाया। आलाप के परिश्रम से उसका मुख लाल हो गया और पसीने की बूंदें चेहरे पर छागईं।

सामने एक छोटा सा गाव दिखाई दिया। मैंने कहा—यहां थोड़ी देर ठहर लें, जलपान कर लें, तब आगे चलेंगे।

रामरिख—यहा नहीं बाबूजी, यह चोरो का गाव है। अभी गाड़ी और बैल एक का भी पता नहीं लगने देंगे। बड़े बदज़ात हैं।

"ऐसी बात है ?"

"हां जी, आगे उस बड़े गांव में चलकर रुकेंगे।"

मैंने कहा—तुम्हारे गाड़ी बैल का मोह न होता तो मैं कहता एक बार जरूर देखेंगे इस गांव को। सारा गांव ही चोर है! बड़े अचरज की बात है।

"आपको मेरी बात का इतवार नहीं है तो आप चले जाओ, अभी परीक्षा हो जायगी।"

"मेरे पास अपनी कोई चीज ऐसी नहीं है जिसके चोरी जाने का भय हो।"

"यह झोला ही बहुत है। इसके भीतर कोई जोखम की चीज मत रहने देना। नहीं तो पछताओगे।"

"अच्छी बात है। यहीं मुझे उतार दो। देखें तो सही।"

"हां जरूर देखिये। लेकिन मेरे को दोष मत देना। पहले बता दिया है।"

"नहीं, तुम्हें क्यों दोष देने लगा? तुम तो यह लो अपना इनाम और लौट जाओ घर को।" मैं उसे एक रुपया देने लगा।

"नहीं बाबू साहेब, किराया पूरा मिल चुका है तो इनाम कैसा?"

"किराया और इनाम दो अलग अलग चीजें होती हैं। इनाम हरएक को नहीं दिया जाता। जो अच्छा मनपसन्द काम करता है वही उसका हकदार होता है।"

बड़ी मुश्किल से रामरिख को मैं एक रुपया दे सका। उसे लेकर वह बोला—मैं लौट जाऊँ या आपकी राह देखूँ?

मैं—लौट जाओ। आगे पैदल चला जाऊँगा। तुम मेरी चिन्ता मत करो।

मैं गाड़ी से उतर पड़ा। रामरिख ने गाड़ी का मुंह फेर दिया। वह पीछे की ओर गया और मैं आगे गाँव की ओर बढ़ा।

सीधी पगडंडी से पन्द्रह मिनट में गाँव के किनारे जा पहुंचा। मुश्किल से बीस घर का गाँव होगा वह। घने वृक्षों की छाया में समाया हुआ वह छोटा सा पुरवा सोहनपुर से बिलकुल-भिन्न था। मालूम पड़ता था कि उसके

रहनेवाले कहीं बाहर से आकर कभी वहाँ बस गये होंगे, अभी तक स्थायी निवास जैसे घर चार छः को छोड़कर वे ज्यादा बना नहीं पाये हैं।

सबसे पहले मेरी भेंट एक युवती से हुई। वह कौतूहल से मेरी ओर देखने लगी। मैंने कहा—मुसाफिर हूँ। रास्ता भूल गया हूँ।

"कहाँ जाना है ?"

"आगे।"

"तो चले जाओ। वह रास्ता पड़ा है।" उसने उँगली के संकेत से रास्ता बता दिया।

मैंने कहा—मैं थक गया हूँ। थोड़ी देर विश्राम किये बिना आगे जाना कठिन है।

वह—आओ फिर। आदमी तो सब थाने गये हैं। थानेदार रोज मरता रहता है जो।

मैं—क्या कहती हो ?

वह—कहती हूँ हम लोगों की जात कुत्तों से भी गई गुजरी है। चाहे कुछ करें चाहे न करें। बदनाम हम होंगे। मारे हम जायेंगे।

मैं—ऐसी क्या बात है ?

"बाबू, तुम किसी और गाँव में जाकर ठहरो"—कहकर वह एकाएक रुककर खड़ी हो गई ?

"तुम्हें मुझसे क्या डर है ?"

"डर बहुत बड़ा है। कोई कुछ जड़ देगा। हम गरीब नाहक मारे जायँगे।"

"क्या जड़ देगा ? तुम डरती क्यों हो ? मैं बदनियत नहीं हूँ। थका हुआ हूँ। थोड़ी देर आराम करके अपना रास्ता लूँगा। बोलो, इसमें कोई बुराई है ?"

"कोई नया बखेड़ा न उठ खड़ा हो। मुझे डर लगता है।"

"मेरे लिए तुम्हें डरने की जरूरत नहीं।"

"तो आओ"—कहकर वह मुझे ले चली।

थोड़ी दूर चलकर मैंने पूछा—तुम्हारा नाम ?

"बतासी",—उसने सशंकित दृष्टि मेरे चेहरे पर डालते हुए कहा।

"अच्छा बतासी, तुम्हारे मर्द थाने किसलिए गये हैं ?"

"रोज ही जाना पड़ता है ! कहीं कुछ हुआ कि हम पकड़े गये। मार-धाड़ रोज ही होती रहती है।"

"परन्तु क्यों ?"

"थानेदार और सिपाहियों की पूजा नहीं कर पाते।"

"कोई कारण तो होगा पूजा मांगने का उनका ?"

"हम जरायम पेशा लोग हैं। बस इसीलिए हमारी हर एक चीज पर पुलिस की आंख रहती है। हमारे घर में पहले वे खाते हैं पीछे हमारे मरद। हमारी लड़कियों को पहले वे भोगते हैं पीछे हमारे मरद। जरा इधर उधर किया और हमारा चालान हुआ।"

"यह तो बहुत बुरी बात है। तुम इसे क्यों सहते हो ? तुम यह पेशा छोड़ दो। खेती करने लगो। मेहनत मजूरी करने लगो।"

"पर कैसे करें ? हमारा नाम तो हमारे पुरखों के समय से पुलिस में लिखा चला आरहा है। आज हमारे कहने से हमें किसान और मजूर कौन मानेगा ?"

"तुम अच्छे काम करोगे तो अच्छे लोगों में गिने जाओगे।"

"लेकिन किस तरह बाबू ! पुलिस के हरएक दफ्तर में हमारा हुलिया दर्ज है, मरद और औरतों सबका। वे कैसे बदलेंगे उसे ? बदलेंगे तो वे खायेंगे क्या? अपने पापों और कुकर्मों को कैसे छिपायेंगे वे ? अभी तो जो कुछ हो जाता है। हमारे नाम पर मढ़ दिया जाता है। अभी छः सात दिन पहले यहां से पांच कोस पर एक बनिये का खून हुआ था। कुछ रुपया पैसा भी गया होगा। दिवान बहुत दिनों से दांत धरे था। मेरा मरद खेत में काम पर गया था। वह घर पर न मिला तो मुझे ही पकड़ ले गया। कहा, खून के मामले में पूछताछ करनी है। मैं औरतजात क्या जानूं कैसा खून होता है ? लेकिन वह तो न माना मुझे ले गया। पीछे पीछे मेरी मां दौड़ती गई।

उस बेचारी को मार मारकर अधमरी कर दिया और भूखी प्यासी एक कोठरी में डाल दिया। मेरे साथ बाबू, मेरे साथ तीन तीन आदमियों ने जोर जबरदस्ती की। मेरा सारा शरीर घायल कर डाला। तीन दिन तक इसी तरह किया। परसों मुझे छोड़ा और आज सब मर्दों को थाने बुला लिया। कहकर-बतासी रो पड़ी। उसकी बड़ी बड़ी कजरारी आँखों में बरसात की झड़ी लग गई। उन्हें अपने अंचल से पोंछकर मुझसे कहा—यह रहा मेरा डेरा। यहां आप आराम करिये। चटाई बिछा देती हू।

बतासी चटाई लेने चली गई। मैंने देखा, मैं गाव के बीच में था। मेरे चारों ओर युवतिया और बुढ़िया, बच्चे और बच्चियां घिर आये थे। बतासी ने लाकर चटाई बिछादी और सबको मेरा परिचय दिया—परदेसी मुसाफिर हैं। राह भूल गये हैं। थके-हारे दोपहरी में कहां भटकेंगे। मैंने कहा यहा आराम कर लो। पीछे चले जाना।

इसके बाद वह अपनी माँ को जाकर ले आई। कहा—देखो बाबूजी। यह हाल हो गया है इसका।

मैंने देखा बुढ़िया की देह में हल्दी थोपी हुई थी। डढों की बरतें सारे शरीर में उमड़ रही थीं। कराहते हुए उसने मेरे सामने अपनी सारी कष्ट-कहानी निवेदन की।

मानव के द्वारा मानवता की दुर्दशा पर मैं केवल आह खींचकर रह गया। इसके सिवा मैं क्या कर सकता था?

बतासी बोली—बाबूजी, आप आराम करने आये हैं पर यहाँ आराम नहीं कर पायेंगे। यहाँ तो दिल पर भार डालने की ही सारी बातें हैं। लेकिन आप क्या रोज रोज आयेंगे यहां? आगये हैं तो देखते जाइये हम लोग किस तरह रहते हैं? क्या खाते पीते हैं? सर्दी गर्मी और बरसात के अलावा कितनी जमजातनाएँ सहते हैं फिर भी हम चोर-उचक्के-बदजात कहकर ही प्रसिद्ध हैं। किसी की दया-मया हमें प्राप्त नहीं।

इतना कहकर वह स्त्रियों के झुंड में से एक सुन्दर सलोनी छोकरी को खींच लाई। मैंने देखा, प्रशंसनीय लावण्य के भार से दोहरी होते हुए

उस सुन्दरी को। बतासी ने उसका एक हाथ अपने हाथ में लिए हुये कहा—बता दे पारू बाबूजी को आपबीती।

पारू के मुँह से लेकिन एक शब्द भी नहीं कहा। मैंने कहा—क्यों उसे संकट में डालती हो बतासी। वह न कह पायेगी।

बतासी—यह मेरे मामा की बेटी है। मेरे भाई से इसकी मंगनी हुई थी। मेरा भाई कुछ और तरह का है। जरायमपेशा वह नहीं रहना चाहता, जैसा आप कह रहे थे। यह और वह डेढ़ साल हुआ चुपचाप निकल भागे थे। सोचा था। इतना बड़ा देस है। कहीं जाकर रह लेंगे। अपने लोगों से दूर। मेहनत मजूरी करके गुजर करेंगे, भले लोगों की तरह। लेकिन हुआ क्या? पुलिस के थाने में इनके भागने की खबर होगई। जहां जहां गये वहां वहां मेरे भाई पर मार पड़ी, इसकी जने-जने ने दुर्दशा की। पीछे फिर यहीं आना पड़ा। क्योंकि थानेदार को इसकी जरूरत थी। मेरा भाई तो तीन महीने हुए जमदूतों की मार के कारण लुंज होकर पड़ा है। हाथ पांव उसका कुछ भी साबित नहीं है। रात को, दिन को थानेदार जब चाहते हैं बुलाते हैं इसको। खुद रखते हैं, और रात-दो रात के लिए दोस्तों या अफसरों को भेंट करते हैं।—यह है हमारा जीवन। इस गरीबी और इन अत्याचारों के बीच हम बसते हैं। हम भलेमानस कैसे होंगे बाबूजी? मेरी इन बड़ी-बूढ़ियों ने तो हम लोगों से भी अधिक दुख उठाये हैं। दुख, दर्द, नफरत और जुल्मों के बीच जीने के कारण हमारे आदमी भी लोगों पर दया नहीं करते। पा जाते हैं तो हत्या तक कर डालते हैं। सजा से हम डरते नहीं। फाँसी का हमें भय नहीं। हो भी किसलिए? वह तो हमारी रोज की साथिन है।

मैंने मन ही मन कहा—उपदेशक और सुधारक व्यर्थ ही धर्म का झंडा लिये फिरा करते हैं। दलित और त्रस्त मानवता को उठाकर खड़ा करने के लिए ऐसी जगह नहीं आते। सरकारों को राजसत्ता की चिन्ता है। शासन का रोब कायम रखने के लिए उन्हें बुराइयाँ और उनका दमन दोनों की ही रक्षा करनी होती है। पारू को अपने मुँह की ओर ताकते देखकर

मैंने कहा— मुझे दुख हुआ है तुम्हारी ये सब बातें सुनकर। किन्तु मेरे हाथ में कुछ नहीं है। अगर कभी कर सका तो जरूर कुछ करूँगा।

बतासी—बाबूजी। हमारी हालत तो ऐसी है। कोई हमारे बीच में भूलकर भी आता नहीं। गाव में कभी हम में से कोई भीख मांगने चला जाता है तो लोग संदेह करते हैं। हर जगह लोग हमें शका की दृष्टि से देखते हैं। जहाँ एक दिन कोई भीख माँगकर ले आये वहाँ संजोग से चोरी होजाय या और ऐसी ही कोई बात हो तो अपराध हमारा बना बनाया है। यह बात भी नहीं कि चोरी हम न करते हों। खेती कितनी सी है। उससे गुजर कहाँ होती है। चोरी तो करनी पड़ती है। माल भी आता है लेकिन हमें तो इन्हीं चीथड़ों-गूदड़ों में रहना पड़ता है। कीमती सामान तो थाने के देवताओं की भेंट हो जाता है।

मैंने कहा—जब हाथ कुछ लगता भी नहीं तो चोरी जैसा काम क्यों करते हो? भूखे रह जाओ। बुरा काम मत करो। इसका भी तो असर होगा।

पारू अब तक चुप थी। मेरा ख्याल था बतासी ही वहाँ एक मात्र वक्ता है जिसकी जीभ कतरनी के बराबर ही काम करती है। बेचारी पारू सुन्दरी है पर लजीली है और शायद जीभ उसके मुँह में है ही नहीं।

अचानक पारू ने मुँह खोला। कहने लगी—हम चोरी का काम न करना चाहें यह भी कहीं हो सकता है?

क्यों?—मैंने पूछा।

"थानेवालों को चोरी कराने की जरूरत हुई तब तो हम बच नहीं सकते।"

"उन्हें भी चोरी कराने की जरूरत होती है?"

"होती क्यों नहीं है।"

"अच्छा।"

"इनाम लेने के लिए। तरक्की के लिए। दुश्मनों को दबाने के लिए ये चोरी करवाते हैं।"

इनाम और तरक्की के लिए !—मैंने आश्चर्य में पड़कर पूछा।

हाँ जी। इधर चोरी कराई। उधर माल लेजाकर किसी के घर बरामद करा दिया। उससे दुश्मनी निकाल ली। पैसा भी ले लिया और चोरी का पता लगा लेने की खैरख्वाही भी मिल गई। ये तो रोज की बातें है बाबूजी। वहां तो यही सलाह होती रहती है कि कैसे किसे सीधा किया जाय।

बतासी ने पारू की बात की प्रामाणिकता पर मुझे विश्वास कराने की गरज से कहा—इसे तो हमसे भी ज्यादा मालूम है। यह थाने में जाती जो है।

बतासी की बात से पारू सकुचा गई, बोली—तुम्हें भी तो मालूम है। तुम्हें क्या थोड़ा मालूम है? राधाकिसन सुनार के घर कैसे हुई थी चोरी?

बतासी—हाँ बाबूजी, गरीब सुनार ने लड़की के ब्याह की तैयारी कर रक्खी थी। उसके घर चोरी करने का हुक्म हुआ। हमारे लोगों में से कोई तैयार नहीं हुआ। राधाकिसन सबका भला। सबका सहायक। उसकी लड़की का ब्याह। उसकी चोरी करके कौन रंग में भंग करे। लेकिन जमदूतों की मार के डर से करनी पड़ी और फल यह हुआ कि राधाकिसन को थाने में लाकर धमकाया गया। उसकी औरत को बेइज्जत किया गया। लड़की और उसकी मां दोनों कुएँ में डूब मरी। राधाकिसन गाँव छोड़कर भाग गया। घर का घर बरबाद होगया।

इन बातों को सुनते सुनते मैं विचारों में डूब गया। दुनियांदारी में इन्सान को कैसे कैसे काम करने होते हैं। अपने गर्व और रोब की रक्षा के लिए अपनी सहूलियत और अपने आराम के लिए वह दूसरों को किस तरह नष्ट कर डालने में सुख मानता है? फूस को जलाकर ताप लेने की तरह वह अपने जैसे इन्सानों की बरबादी से अपने स्वार्थों को गर्मी देता है।

इसके बाद मैंने जाकर पारू के मर्द को देखा। एक युवक मांस का लोथड़ा बना पड़ा था। न पैर उठता था और न हाथ और न कमर। इतिहासकार बतूता ने मोहम्मद तुगलक के अत्याचारों की कथा लिखी है। बीसवीं सदी के मनुष्य को अपने समय पर गर्व है। वह उस मध्यकाल

को लूटमार और अत्याचार का काल कहता है। आज यदि वही मध्यकालीन इतिहासकार मेरे साथ होता तो इसे भी वह अपने समय के जनूनी सम्राट की करतूतों की सूची में ही दर्ज करता। क्योंकि अब और तब की घटनाओं में कोई विशेष फर्क नहीं है। जिसकी लाठी उसकी भैंस उस समय भी थी और इस समय भी है। तब भी आदमी को आदमी चूसता था अब भी चूसता है। बल्कि और नये नये तरीके चूसने के बरते जाने लगे हैं। कहीं धर्म के नाम पर कहीं कानून के नाम पर, कहीं जनता की सुख शांति के नाम पर कमजोरों और असहायों के रक्त-मास ही का क्यों उनकी सासों का भी व्यापार होता है।

आदमी ने कपड़े पहनकर अपने नगेपन को छिपा लिया है। इसी तरह सुन्दर सुन्दर नारों और वाक्छल के द्वारा ऐसे आदर्शों की सृष्टि करली है जिसमें सीधे सादे गरीबो को भुलाये रखना सहज हो गया है। 'यतो धर्मस्वतो जय.' जैसे उद्‌घोष वाक्छल के अतिरिक्त और क्या हैं ? गरीबों को धर्म के पाठ पढ़ाना उनको सदा-सर्वदा भेड़ बनाये रखने के महामन्त्रो के सिवा कुछ नहीं हैं। इन सब आदर्शवाक्यों को नगा कर देने की जरूरत है। जब तक ये सूक्तियों के रेशमी वस्त्रों से लिपटे हैं तब तक ये सीधे सादे प्राणियों को धोखा देंगे। हर एक परपरा का हमें नये सिरे से मूल्याकन करना है। जमी हुई धारणाओं पर से मोह हटाये विना यह सम्भव नहीं कि हम उन सस्कारो से मुक्त हो सकें जो हमें सड़ीगली विचार-परपरा से बाधे है।

मैंने बतासो से कहा—आदमी के द्वारा आदमी की ऐसी दुर्गति मैं तो पहली बार देख रहा हू।

बतासी—मैं आपको ऐसे नरक में खींच लाई हूँ बाबूजी ! आप जैसों का यहां काम ही क्या था ?

अच्छा ही हुआ। यह सब मैंने अपनी आंखो से देख पाया। मैंने आज नई रोशनी पाई। नया ज्ञान पाया।—मैं कुछ और कहने जा रहा था कि दो चार लड़के लड़कियां भागकर खबर देने आये—वे सब लौटे आ रहे

हैं। नदी के उस पार आ गये हैं। चलो, देख लो।

मैंने बतासी से पूछा—क्या बात है?

उसने उत्तर दिया—मरद सब थाने गये थे। वे लौट आये होंगे।

बतासी जल्दी से निकल गई। लौटकर घबड़ाई हुई सी आकर बोली—पारू, देख तो तेरा ननदोई नहीं आया है क्या?

पारू—काहे नहीं आया? आया होगा। तू तो ऐसे ही वहम करती है।

बतासी—अरी, देख तो निकलकर।

पारू कुछ जवाब दिये विना ही चली गई। बतासी मुझे लक्ष्य करके कहने लगी—बाबूजी, वह नहीं आया है। मेरा जी धड़क रहा है। न जाने वह दिवान उसके पीछे क्या इलजाम लगायेगा। वह मेरे पीछे पड़ा है। वह मुझे खायें विना चैन नहीं लेगा।

पारू लौट आई। सूखा मुँह लिए। बतासी ने पूछा—नहीं आया?

"नहीं। खून के मामले में रोका है।"

"मैं जानती हूं। खून वह मेरा पियेगा।"

पीछे मालूम पड़ा बतासी के मरद ने, जो अपनी स्त्री की दुर्दशा पर पागल हो रहा था हेड कांस्टेबल से भरे थाने में कहा था—दीवान के बच्चे, मेरा नाम रुनकुआ नहीं जो तू इस थाने से जिन्दा लौट जाय। इस फाटक के सामने ही तेरी कब्र न बनवाई तो मैं मरद का बच्चा नहीं।

इसी पर झगड़ा बढ़ गया था और दीवान ने कत्ल के संबंध मे पूछताछ खत्म न हो जाय तब तक के लिए उसे रोक लिया।

बतासी ने सुनकर निराशा भरे स्वर में कहा—तब तो वह कसाई उसे मार डालेगा।

फिर बोली—मैं जाऊँगी बाबूजी। एक बार जाकर देखूँ। शायद मैं उसे छुड़ा सकूँ।

मैंने कहा—मैं भी उधर ही चल रहा हूं।

बतासी को सहारा मिल गया। आप भी चल रहे है? थाने चलेंगे?—

उसने पूछा। उसकी आखें चमक उठीं।

"हाँ, क्या हर्ज है ?"

"तो चलिए मुझ गरीबिनी को बचाइये।"

फिर पारू से बोली—पारू देख अम्मा से न कहना कि मैं थाने गई हूं।

पारू ने अनमने भाव से सिर हिला दिया।

थाने में किसी भले आदमी की कोई गिन्ती नहीं होती। मेरी ओर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया। सैकड़ों आदमी वहाँ आते जाते रहते हैं। पुलिस कर्मचारियों की नजरों में हरएक के लिए लिहाज हो तो उनका रोब दाब कब रहे ? साधारण चौकीदार भी वहाँ अपने रोब की रक्षा करना चाहता है।

मैं भीतर जाने लगा तो चौकीदार ने पूछा— क्या चाहते हो ?

"थानेदार साहब से मिलना है।"

"एक तरफ बैठ जाओ। घंटे बाद मुलाकात होगी।"

घंटे बाद सही—मैं एक बेंच पर बैठ गया। सबने मेरी ओर एकबार देखा। पुलिस थाने में बेंच और कुर्सी पर बैठनेवाले को इस तरह ही लोग देखते हैं। उन्हें ख्याल होता है कि जरूर कोई विशिष्ट व्यक्ति है।

बतासी को जानबूझ कर पीछे छोड़ दिया था और उससे कह दिया था कि वह मेरे साथ आई है ऐसा मालूम न हो। वह बिना मेरी ओर देखे आकर दीवानजी के पावों पर गिर पड़ी।

दीवान जी ने अपने पैर खींच लिए। डाँट कर बोले--क्या नखरे करती है रडी कहीं की। नन्हेंखाँ इसे लेजाकर हवालात में बंद कर दो।

बतासी—दया करो सरकार। मेरे मरद को छोड दो।

नन्हेखाँ ने आगे बढ़कर कहा—पीछे हटती है कि धक्के देकर हटाऊँ ?

बतासी ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह कहती गई—मेरा आदमी बेकसूर है दीवानजी। खून से उसका कोई सरोकार नहीं। आप उसे न फँसाओ।

आखिरी बात से दीवानजी बिगड़ उठे। बोले--नन्हेंखाँ देखता क्या

है ? इस हरामजादी को ले क्यों नहीं जाता ? तेरी आशना लगती है क्या ?

नन्हेंखाँ पकड़ने चला तो बतासी ने उसे जोर से धक्का दे दिया। वह लड़खड़ा गया। बतासी चिल्लाई—देखो दीवानजी, मेरे मरद को छोड़ दो। तीन दिन मुझे बंद रखकर तुम सबने मेरे ऊपर जोरजबरदस्ती की। मैं अपना सारा शरीर डिप्टी साहब को दिखाऊँगी। याद रक्खो, मेरे मरद की देह में तुमने हाथ लगाया तो बुरा नतीजा होगा।

इतना कहकर बतासी पलट पड़ी और बाहर की ओर जाने लगी। दीवानजी की आँखों में खून उतर आया। चेहरा तमतमा गया। मुँह उठाकर नन्हेंखाँ की तरफ देखा। गरजकर बोले—देखो, जाने न पाये। एक औरत को तुम काबू नहीं कर सकते ? अफसोस ! चार आदमी दबा लो। बंद करो हवालात में बदजात को। जबान चलाये तो बेंत लो और खाल उधेड़ दो।

एक बेंत उन्होंने फर्श पर फेंक दिया। तीन चार कांस्टेबलों ने बतासी को दबोच लिया। नौजवान स्त्री के किस अंग पर हाथ नहीं लगाना चाहिए इसका विचार किये बिना ही उन्होंने उसे मुट्ठियों में कस लिया। वह व्यर्थ छटपटाती रही। घसीट कर वे उसे ले गये। ताला खोला और एक अँधेरी कोठरी में उसे ढकेल दिया।

दीवानजी ने आदेश दिया—ताला बंद मत करो नन्हेंखाँ। बेंत इधर दे दो मेरे हाथ में। हरामजादी के चूतड़ों पर दो चार बेंत पड़े बिना वह चुपेगी नहीं।

दीवान जी खड़े हो गये। बेंत फर्श पर से उठा लिया। वे अपने हाथों से अपने हुक्म की तामील करेंगे। मुझसे न रहा गया। मैं खड़ा हो गया। आगे बढ़कर मैंने पूछा—दीवानजी, इस औरत का क्या कसूर है ?

क्षण भर एक सन्नाटा छा गया। दीवान जी धक्के को सँभाल गये। रोब के साथ बोले—तुम्हें मतलब ?

यों ही पूछ रहा हूं—मैंने नर्मी से कहा।

एक कांस्टेबिल आगे बढ़ आया। मुझसे बोला—तुम कौन हो ? किस

लिये आये हो ?

"आदमी हूँ। थानेदार साहेब से मिलने आया हूँ।"

"तुम हमारे काम में दस्तन्दाजी करते हो ?"

"नहीं।"

"फिर यह सब पूछने का क्या मतलब है ?"

इसी समय फाटक पर कुछ गड़बड़ी सुन पड़ी। सबका ध्यान उधर चला गया। एक आदमी भीतर आना चाहता था और चौकीदार उसे रोक रहा था। दीवान जी ने आदेश दिया—आने दो। क्या बात है ?

आगन्तुक कहीं दूर से चलकर आया था। धूल उसके चेहरे पर छा गई थी। सांस जोर जोर से चल रही थी। दीवान जी ने पूछा—क्या चाहते हो ?

"दरोगाजी कहाँ हैं ?"

"दरोगा जी हरवक्त मौजूद नहीं रहते। तुम्हें जो कहना हो कहो। मैं दीवान हूँ।"

"दीवानजी, मैं सोनेलाल हूँ। एक हफ्ता पहले मानकपुर मे जो कत्ल हुआ था वह मैंने ही किया था। आप बयान दर्ज करलें। मैंने गड़ासे से अपने भाई का सिर काट दिया था। वह मेरी औरत से नाजायज ताल्लुक रखता था। मेरे मना करने पर भी जब नहीं माना तो मैंने उसे कत्ल कर दिया। आज अपनी औरत को भी कत्ल करके मैं सीधा यहाँ आ रहा हूँ। मेरी धोती पर ये खून के छींटे पड़े हैं।"

दीवानजी ने हुक्म दिया—इसे हवालात में बंद करो नन्हेंखाँ। मैं अभी बयान दर्ज करता हूँ।

सोनेलाल द्वारा कत्ल इकरारकर लेने के बाद अब दीवान जी के पास बतासी के मर्द और बतासी को हवालात में रोक रखने का कोई आधार नहीं रह गया था।

मैंने कहा—दीवानजी, अब भी बतासी और उसके मर्द को रोक रखने की जरूरत है ? अब तो खून का इकबाल होगया है।

दीवानजी—आप उस रंडी की तरफ से वकील बनकर आये हैं? आपको पता नहीं वे जरायमपेशा लोग हैं। उन्हें जब चाहें हम हवालात में रख सकते हैं।

मैं—लेकिन कत्ल की पूछताछ के लिए तो उन्हें रोक रखने की जरूरत नहीं है?

"यह सब आप हमसे नहीं पूछ सकते। आप अपना नाम-धाम लिखाइये। आप पुलिस के काम में दस्तन्दाजी करनेवाले कौन हैं?"

मैंने कहा—लिख लो मेरा नाम रमेशचन्द्र।

दीवानजी बोले—नन्हेंखाँ, इन्हें थानेदार साहेब के पास ले जाओ। नहीं, ठहरो मैं ही ले चलता हूँ।—आइये, चलिये मेरे साथ।

हम दोनों थानेदार के क्वार्टर में गये जो थाने के पीछे ही था। थानेदार के यहाँ डिप्टी साहेब आये हुए थे। दोनों की मित्रता थी। डिप्टी साहब जब इस इलाके में आते तो यहीं ठहरते थे। दीवानजी मुझे लेकर गये तो थानेदार और डिप्टी साहेब के बीच कहकहा लग रहा था। किसी ने दीवान जी की तरफ ध्यान नहीं दिया। मैं अपराधी नहीं था, पर अपराधी की तरह पेश किया जा रहा था, इसलिए मुझे अजीब सा लग रहा था। सोचरहा था कैसे पेश आऊँगा। इसी समय डिप्टी साहब की निगाह मुझ पर पड़ी तो चिल्लाकर बोल उठे—अरे रमेश, तुम यहाँ कहाँ?

और मैंने देखा अपने बाल्यबंधु हामिद को। वे झट आगे बढ़ आये और हाथ पकड़ कर मुझे खींच लिया। बोले—खूब आये। कहो अच्छे तो रहे?

मैंने कहा—दोस्तों की दुआ है।

दीवानजी यह सब देखकर धीरे से सटक गये। हम दोस्तों का पुराना दास्तान शुरू होगया। कौन कौन साथी कहाँ कैसा है इसकी चर्चा बड़ी देर तक चलने के बाद हामिद ने दरोगा जी से कहा—मेरे दोस्त के लिए चाय तो मँगवाओ दरोगाजी।

चाय आई और मैंने अपनी चिरसंगिनी का स्वागत खुले हृदय से

किया। हामिद मियाँ ने पूछा—रमेश, तुम्हें कभी शादी न करने का खब्त था ?

मैंने कहा—था तो सही।

"खुदा का शुक्र है तुमने उसे खब्त मंजूर तो किया।"

"खब्त ही था जो अब तक सिर पर सवार है।"

"तुम्हें मेरी कसम, सच कहो। अब तक तुम कुँवारे हो ? शादी नहीं की तुमने ?"

"तभी तो बरबादी से बचा हूँ ! शादी करता तो कभी का जहन्नुम रसीद हो गया होता। फिर एक साथिन तो तुम लोगों ने मेरे पीछे लगा ही दी है उसी की मिजाज पुरसी से फुरसत नहीं मिलती। एक और शादी करके क्या अपना गला फँसा लेता ?"

"किसे लगा दिया है हमने ?"

"इसे"—चाय के प्याले की तरफ मैंने इशारा करके बतलाया।

इस पर दरोगाजी और हामिद मियाँ दोनों ही जोर से हँस पड़े।

हामिद ने मुस्कराते हुए कहा—तब तो यार तुम्हारी खब्त रही नहीं। सिविल मैरिज तो कर ही चुके हो।

मैं—और क्या, लोग अपनी बीवियों की सौंदर्य रक्षा के लिए तरह तरह के साधन जुटाते हैं। मैं अपनी प्रेयसी से सम्बन्ध कायम रखने के लिए कुछ उठा नहीं रखता।

दरोगाजी प्रसन्न होकर बोले—भई वाह, यहां तो तलाक की भी गुंजाइश नहीं।

बिल्कुल नहीं—मैंने कहा।—तलाक की बात तो तब उठती है जब किसी तरह से आपसी प्रेम में कमी आजाय। यहां तो बात ही उल्टी है। ज्यों ज्यों जवानी ढलती है प्रेम गहरा होता जाता है।

इसके बाद हामिद ने बूढ़े नवाब साहब की बात चलाई। फिर मास्टर डेविड का उल्लेख हुआ। सुबोध चटर्जी की याद करना भी हम नहीं भूले। इस प्रकार अचानक इतने दिन बाद किशोरजीवन के वे दिन और

वे दृश्य मेरे सामने सजीव हो उठे। ऐसा लगा कि वे सब कल की बातें हैं। मैंने हामिद से कहा—लेकिन भाई, तुम्हारे सिर के बाल तो अभी से खिचड़ी हो गये हैं।

"चार बच्चों का बाप हो गया हूँ। तीसरी बीवी का शौहर हूँ। गजटेड अफसरों की लिस्ट में नाम है। अब भी क्या बछड़ा ही बना रहूंगा?" हामिद ने सहज हँसी में कहा।

कुछ रुककर फिर बोले—तुम्हारा क्या है। बरमचारी महराज हो तुम।

आवारा कहो—मैंने कहा।

"बरमचारी और आवारा में कोई फर्क नहीं होता। घर-गृहस्थी की फिक्र से दोनों ही मुक्त रहते हैं।" फिर हंसकर दरोगाजी से बोले—"लेकिन हजरत, पुलिस की डायरी में न दर्ज कर लेना खुदा के लिए।"

दरोगाजी ने होठों को विस्फारित कर कहा—पुलिस की डायरी में यह सब पहले से ही दर्ज है। पुलिस-कोड इतनी अहम बातों को अपने विचारक्षेत्र से बाहर कैसे रख सकता है?

सूर्य नीचे पश्चिम की ओर खिसक गया था। साढ़े चार बजे का वक्त होगा। हामिद ने कहा—चलो बरमचारीजी महाराज, तुम्हें शिकार खिला लायें। पास ही जंगल में बड़ी झील है। वहां शाम के वक्त शिकार की कमी नहीं रहती।

बन्दूकें कमरे में ही दीवार के सहारे टिकी थीं। एक दरोगाजी ने और दूसरी हामिद ने उठा ली। कारतूसों की एक एक पेटी लेकर गले में डाल ली।

दरोगाजी ने कहा—जनाब, एक बन्दूक आप भी ले लें।

"मुझे तो माफ कीजिए। शिकार में मेरी कतई दिलचस्पी नहीं।"

"तो तुम यहां ठहरोगे?" हामिद ने पूछा।

मैंने कहा—जरूर।

मैं बाहर निकल आया और एक ओर चल दिया। देखा सामने एक पेड़ की छाया में बतासी एक आदमी के साथ बैठी है। मुझे दूर ही से देखकर पुकार उठी—बाबूजी!

इसके बाद वह मेरे पास आगई और पैर पकड़ लिए। कहा—भगवान् आपका भला करें। आप न होते तो हमारी न जाने क्या दुर्गति हुई होती।

बतासी के मर्द ने भी कृतज्ञता की दृष्टि से मुझे देखा।

मैंने कहा—तुम जाओ। मैं डिप्टी साहेब से कहूँगा कि तुम लोगों का नाम जरायमपेशा की लिस्ट से हटा दिया जाय। आगे से तुम्हें अपने चालचलन को ठीक रखना होगा।

बतासी और उसके मर्द दोनों ने इस पर प्रसन्नता प्रदर्शित की।

आपको चलकर हम लोग पहुचा आयें—उन्होंने पूछा।

मैंने कहा—नहीं, मैं चला जाऊँगा।

मैं अपने रास्ते पर चल दिया।

सत्ताईस

मैं कहा जा रहा हूँ? मेरी यात्रा का क्या उद्देश्य है? ये दोनों ही बातें अनिश्चित होने से मेरा मार्ग बहुत सहज होगया है। जिधर पगडंडी सूझ जाती है या जिधर पैर ले जाते हैं उधर ही मैं चल पड़ता हूं।

लेकिन राह में जिस जिससे मिला, जिस जिसने मुझे रोका उससे यही मालूम हुआ कि मेरी तरह निरुद्देश्य इस धरती पर कोई नहीं भटकता है। जो भी निकलता है, भले ही उसे सिर्फ चार कदम जाना हो, वह गन्तव्य स्थान का लक्ष्य लेकर निकलता है। इस प्रकार मेरी यात्रा सबसे अनोखी है। न मुझे घर जाना है, न ससुराल जाना है। न बजार से कोई सामान खरीदने जा रहा हूँ, न नौकरी की तलाश के लिए निकला हूँ। मैं जहाँ चाहूँ पड़ रहूँ। जहाँ चाहूँ ठहर जाऊँ। चाहे धूप में चलूँ, चाहे छाया तले रात विताऊँ। चाहे नगर में डेरा डालूँ, चाहे जगल में किसी तालाब या झील के किनारे दो चार लकड़ियाँ जलाकर बैठे बैठे रात गुजार दूँ। मेरे लिए सभी रास्ते खुले हैं। मेरी यात्रा मेरी मनमौजी है।

मुझे पता नहीं था कि मेरे झोले में ही विशाखा ने इतना रख दिया है जो रास्ते में चोर और उचक्कों के लालच का विषय हो सकता है। मुझे मालूम तब हुआ जब मैं संध्या समय भूखा-प्यासा गाँव के कुत्तों से घेरा जाकर एक फूस और मिट्टी से बने मकान के दरवाजे पर जा गिरा। घर के मालिक गरीबी की व्यथा से पीड़ित अंधकार की चादर ओढ़े निराश कोने में पड़े थे। गृहिणी हाथ पर हाथ धरे रात्रि के आकाश में अपने दुर्भाग्य की लिपि का अर्थ लगा रही थी और सोच रही थी कि पूर्वजन्म के पाप-पुण्य का लेखा बराबर होने में अभी कितनी कसर है। उसी समय दुर्भाग्य के दूत-सा मैं उनके द्वार पर जा गिरा। जिस घर में संपत्ति के नाम पर ऊख के पुआल के दो तीन गट्ठों के सिवा कुछ नहीं था, उस घर में मैं पहुँच कर अयाचित अतिथि बन गया।

गृहिणी ने समझा भेड़िया आया है। कुत्ते उसका पीछा करते आ रहे हैं। वे बोलीं—साँझ पड़ते ही भेड़ियों का उपद्रव चालू हो जाता है। न जाने किसकी भेड़ बकरी उठा ले जायगा।

उनका कथन अक्षरशः सच था। मैं इस समय भेड़िये से क्या कम था? उनकी जर्जर गृहस्थी को एक समय के आतिथ्य में ही हड़प जाना मेरे लिए कुछ भी दुष्कर न था।

कुत्तों ने झपट्टे में मुझे ऐसा लिया कि मैं लड़खड़ाकर गिर गया और वे मेरा झोला खींचने लगे। मैं उनके इस असभ्य व्यवहार से चीख उठा। मेरी चीख ने घर के मालिक-मालकिन दोनों को सचेष्ट कर दिया। वे निकल आये, कुत्तों को ललकार मुझे बचाया। बोले—कौन हो?

मुसाफिर—मैंने अपना हाल कहा।

घर पर आगये मुसाफिर के साथ क्या बरताव करना चाहिए इससे सर्वथा अजान बनकर वे दोनों भीतर जाने लगे तो मैंने ही निर्लज्जतापूर्वक कहा—मैं बहुत थका हुआ हूँ और भूखा भी।

मैं नहीं जानता मेरी इस बात का उनके ऊपर क्या असर हुआ। अन्धकार में उनके चेहरों पर विचार आये और गये, पर थोड़ी दूर जाकर वे ठिठक जरूर गये और आपस में परामर्श करने लगे।

परामर्श क्या था। मेरे भोजन की व्यवस्था का कोई प्रबंध उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। मैंने कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। आखिर गृहिणी ने मेरे पास आकर कहा—बाबा, पुआल की एक गठरी खोलकर तुम्हारे पड रहने की जुगाड तो हो जायगी पर खाने का क्या होगा? दिन रहते आजाते तो हमारे साथ रूखी-सूखी में हिस्सा बँटा लेते। तो भी देखती हूं, कहीं कुछ हो सके।

गृहस्वामी ने जोर देकर कहा—धनिया की माँ, तू जा तो सही। कुछ जरूर हो जायगा। अतिथि और भगवान् कभी ही कभी आते हैं।

मेरा मस्तक शून्य हो रहा था तो भी इतना तो सोचे बिना मैं नहीं रहा कि इस गरीबी में भी इतनी आस्था लेकर ये लोग कैसे रहते हैं? सचमुच भारतभूमि के कण कण में दार्शनिकता और त्याग की गंध बसी हुई है।

धनिया की मां दो तीन चार न जाने कितने घरों में घूमकर खाली हाथ लौट आई। किसी ने भी अतिथि भगवान् के स्वागत सत्कार के लिए दो मुट्ठी आटा और दो कंकड़ी नोन नहीं दिया। उसने जब लौटकर अपने पति के कान में यह दु:संवाद सुनाया तो उसका रोम रोम आहत

होगया। अनायास उसके मुँह से निकल पड़ा—धनियां की मां, तू कहती है पुरखों की भूमि को कैसे छोड़ेंगे? अब देख ले। जहां हमें मांगने पर दो मुट्ठी आटा नहीं मिले वहां रहने से लाभ? रातदिन सर्दी-गर्मी को एक करके हम मेहनत करें, अपने शरीर को गलायें। हमारी कमाई से सब खायें-पहने और हमारे द्वार से अतिथि भूखा लौट जाय। हम अपने लिए तो नहीं मांगते।

धनियां की मां ने बुद्धिमती की भांति कहा—तुम तो बड़बड़ करने लगते हो। सब अपने अपने भाग का खाते हैं। हम सब मेहनत करने के लिए ही पैदा हुए हैं और वे खाने के लिए।

"तो अब क्या करेगी?"

"करूँगी क्या? पुआल रखकर उपले जला देती हूँ। तुम बकरे को निकाल लाओ। फिर किस दिन काम आयेगा?"

गृहस्वामी गृहिणी के मुँह की ओर ताकता रह गया। उसे विश्वास नहीं आया। जिस बकरे को बड़े जतन से पालकर उसने बड़ा किया था और जिसे बेचकर आगामी दो महीने निर्वाह की आशा थी उसे ही आज धनियां की मां कह रही थी कि भूनकर अतिथि को खिला दो।

मैंने कहा—भूख तो मुझे इतनी नहीं लगी जितना थका हुआ हूँ। पुआल डाल देने से काफी हो जायगा।

मेरी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। धनियां की मां ने पुआल रखकर आग जला दी। घर में उजाला हो गया। गृहस्वामी ने कौतूहल से कहा—देख तो री, वह क्या पड़ा है?

धनिया की मां ने साबुन, मंजन, तौलिया और शीशियों को उठाते हुए कहा—ये बाबा की चीजें हैं। कुत्तों ने बिखेर दी हैं।

सचमुच ही कुत्ते मेरा झोला ले गये थे। खाने को कुछ न पाकर थोड़ी दूर लेजाकर छोड़ दिया था।

यह और क्या रह गया—कहकर धनियां की मां ने नोटों की गड्डी उठाली।

मैंने कहा—ये नोट मेरे नहीं हैं।

धनियां की मां बोली—नहीं, बाबा, इसी तौलिया में से तो गिरे हैं। हमारे घर नोट कहां से आये ? हम गरीब आदमी। एक कौड़ी पास नहीं।

मेरे चलते समय विशाखा ने ही यह सारा प्रबंध कर दिया होगा, यह सोचकर मैंने कहा—तो भी रख लो माताजी। यह अतिथि भगवान् का प्रसाद है।

घर के मालिक की आखें खुल गईं। बोला—परीक्षा मत लो स्वामी!

मैंने कहा—मेरी इतनी बात मानो। रात भर के लिए रख लो। सवेरे जब जाने लगूँगा तो लेलूँगा।

उसने धोती के खूँट में बड़ी सावधानी से नोटों को बांध लिया और बकरे को बाहर लाने चला।

एक साल भर की उम्र के छोटे से दुबले पतले काले बकरे को वह खींचकर ले आया। रात में इस प्रकार आग के समीप लाये जाने से बकरा भयभीत हो उठा। वह में-में करता हुआ पीछे भागने का यत्न करने लगा। मैंने पूछा इसे क्यों लाये हो ?

उत्तर मिला—इसे अभी भूनकर तैयार कर देते हैं। अन्न का तो एक दाना भी घर में नहीं है।

मैंने कहा—लेकिन दादा, मैं तो मांस नहीं खाता। मेरे लिए यह सब करने की जरूरत नहीं।

"मांस नहीं खाते ?"

"नहीं। भूख भी ऐसी नहीं कि रातभर रहा न जाय। सवेरे देखा जायगा।"

"बिना-खाये पड़े रहोगे हमारे घर में ?"—धनियां की मा ने रुँधे कंठ से कहा। "न बाबा, ऐसे पाप का भागी हमें न बनाओ।"

मैंने कहा,"अगर पैसे से कोई चीज मिल सकती हो तो रुपया एक दादा से ले लो। मैं भूखा न रहूँगा। कुछ भी थोड़ा सा होने से मेरा काम चलेगा।"

इस बात को मानने के लिए दोनों लाचार थे। धनियां की मां रुपया कर थोड़े-से चावल और दाल लाई और मेरे लिए खिचड़ी चढ़ा दी।

खा-पीकर मैं बैठा तो धनियां की मां ने अपनी घर-गृहस्थी और उसकी था से मुझे परिचित कराना शुरू किया। उसने बताया जबसे वह बहू नकर इस घर में आई है कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह साल-छः महीने ानेपीने की चिन्ता से मुक्त हो जाय। दो दिन पेट भर मिल गया तो ासरे दिन की चिन्ता सामने खड़ी रहती है। इसी हालत में करते मरते सकी जवानी सपने की तरह चली गई। एक लड़की की मां बनी वह, ा सात महीने हुए, चेचक की भेंट हो गई। धनियां अब कहीं स्वर्ग में गी। उसकी स्मृति इतनी ही रह गई है कि घर-बाहर के सब उसे धनियां ा मां कहकर ही पुकारते हैं। खेती थोड़ी सी है। बाकी स्त्री-पुरुष दोनों हनत मजूरी करते हैं। गाँव में किसी बात की सुविधा नहीं है। जो पैदा र पाते हैं उसके लिए बनिया, साहूकार, नंबरदार, मुखिया, जात बिरादरी पंच सभी मुँह बाये रहते हैं। तीस पैंतीस रुपये के भारी कर्ज से वे बे हैं। उससे कभी छुटकारा नहीं होता। बाबा के समय का यह कर्ज है। सका सूद-ब्याज चुकाते चुकाते तीन पीढ़ियों के लोग पच मरे। न जाने कब उससे उद्धार होगा?

पेट में भोजन पड़ने से मुझे ऊँघ आने लगी, यह देखकर धनियाँ की मां ने एक कोने में पुआल की एक गठरी लाकर खोल दी। कहा—इसमें सो सकोगे बाबा?

मैंने कहा—सो सकूँगा।—और मैं उठकर पुआल पर पड़ रहा।

धनियां की माँ—हम लोग इधर ही हैं बाबा। जरूरत पड़े तो अवाज दे लेना।

गृहस्वामी ने उठते उठते कहा—ये रुपये झोले में ही डाल लो बाबा। मेरे पास रहेंगे तो मुझे रात भर नींद न पड़ेगी।

सबेरे ही दे देना।—कहकर मैं और गुड़मुड़ा गया।

पति-पत्नी जाकर सो रहे। मैं इन दंपति के जीवन की मीमांसा में रत

रहकर कब सोया पता नहीं। अँधेरे चार बजे के लगभग आँख खुल गई। पुआल पर पड़े पड़े देह अकड़ गई थी। उठकर बैठ गया और सोचा—यही समय चुपचाप चलने का है। मेरा क्या है जहां जाऊँगा खाने पीने का प्रबंध हो जायगा। फिर उन रुपयों के आसरे तो मैं निकला नहीं था। विशाखा की भेंट का इससे अच्छा उपयोग और क्या होगा ?

मैंने चुपचाप अपना झोला उठा लिया और घर के बाहर निकल आया। अँधेरा अभी छाया हुआ था। तारों की छांह मे बदन में चादर लपेटे और कधे पर झोला डाले मैं खेतों के बीच से होकर चल पड़ा। कोई इस समय रोककर मुझे पूछता कि इतने तड़के कहां जारहे हो तो मैं क्या उत्तर देता, मैं यह नहीं जानता। मुझे केवल एक ही धुन थी कि कहीं धनियां की मां के अनुरोध से विवश होकर उसका धर्म-भीरु पति अतिथि भगवान् की खोज में पीछे दौड़ा न आ रहा हो। नहीं तो सारा खेल खत्म हो जायगा। एक दो पीढ़ियों तक उनके परदादे का ऋण और आगे चलता जायगा।

यद्यपि अब डरने की बात नहीं थी। मैं काफी दूर निकल आया था। फिर भी चोरी करके भागे हुए आदमी की तरह आशका से काँपता हुआ चलता चला जा रहा था। धीरे धीरे आसमान की स्याही धुली। पश्चिम दिशा में सफेदी पुत गई। प्राची के सीमान्त पर कुंकुम छिड़की जाने लगी। हरियाली ने ओस में स्नान किया। पक्षियों ने प्रकृति के महोत्सव के गान गाये। उषा के अवतरण का ऐसा सुहावना समय सर्वदा ही मैं खो दिया करता हूँ, इस बात पर मुझे खेद होने लगा। जिन्हें उष:काल के इन रगीन और स्फूर्तिदायक क्षणों का साक्षात्कार हो चुका है वे मेरे अनुभव की सचाई के साक्षी होंगे।

विशाखा की बुद्धि की अनेक बार सराहना करने के अवसर जीवन में आ चुके हैं। आज भी मैं उस महा पुण्यशीला नारी की दूरदर्शिता के मन ही मन गुण गाता हुआ प्रभातकालीन सुखदायक धूप में उछलता कूदता चला जा रहा था। हृदय में कुछ ऐसा अभिनव उल्लास हिलोरें ले रहा था कि पृथ्वी पर मेरे पैर सीधे न पड़ते थे। सहसा इतने दिन बाद

स्मृति से वहिष्कृत चांद की मुझे याद आगई। मेरे राई से त्याग के साथ हिमालय समान उसके पृथुल त्याग को याद करना मेरे लिए कोई शोभा की बात नहीं थी। फिर भी आदमी का स्वाभाविक छिछलापन कहां जाये? मेरा मन बारंबार चाँद से ईर्षा करने लगा। इतना महनीय कार्य करने से ही उसके मुख पर शांति और सतोष की आभा विराजती है। उसकी एक किरण भर मेरे आचरण में झाँक पाई है कि मेरे उल्लास की सीमा नहीं है।

धूप में प्रखरता बढ़ चली। मेरी गति का प्रवाह जारी था। कहाँ ठहरना होगा, इसका अभी कोई विचार न था। मेरे मुँह के सामने दक्षिण दिशा को लक्ष्य करके यदि सीधी रेखा खींची जाये तो सामने से गुजरती हुई पक्की सड़क को काटते समय वह चार समकोण बनायेगी। वहीं पर घने वृक्षों की छाया में से एकाएक स्त्रियों के चीखने चिल्लाने की आवाज सुन पड़ी। मैं उधर ही जा रहा था। कुछ तेजी से बढ़ गया। देखा, एक बैलगाड़ी के पास दो स्त्रियां और तीन बच्चे रो रहे हैं। गाड़ी का परदा अलग जा पड़ा है। गाड़ी छोड़कर बैल न जाने कहाँ भाग गये हैं। गाड़ीवान का भी पता नहीं है।

पूछा—क्या बात है?

उत्तर मिला—चार लट्ठबंद आदमियों ने गाड़ी रोककर हमारे जेवर उतरवा लिए हैं। गाड़ीवान के भी दो एक लाठी लगीं। वह प्राण बचाकर कहीं भाग गया है। हमारे आदमी को गोली से उड़ा देने के लिए वे पकड़ ले गये हैं। थोड़ी देर हुई। ऊख के इसी खेत में से होकर वे गये हैं। भाई हम जनम भर तुम्हारी चाकरी करेंगी। जरा हिम्मत कर हमारे आदमी को तो बचाओ।

मैंने पूछा—उनके पास बन्दूक है?

"हां है। मेरे वीरन, तुम तनिक जाकर देखो तो। हाय हाय, हमारे इन बच्चों का क्या होगा? कहीं उन्हें कुछ होगया तो हम क्या करेंगी?"

मैंने कहा—धीरज धरो। मैं जा रहा हूँ।

मैं भागकर ऊख के खेत में घुसा। एक खेत को पार करके दूसरे को

पार किया। दूसरे को पार-करके तीसरे को। पांचवें खेत की मेड़ पर जब मैं पहुँचा तो खेत के भीतर आदमी के कराहने की आवाज सुनाई दी। मैं उसी को लक्ष्य करके खेत में प्रविष्ट होगया। भीतर जाकर देखता क्या हूँ कि एक आदमी जिसके लँगोटी छोड़कर सब कपड़े उतरवा लिये गये हैं, ज़मीन पर पड़ा है उसके हाथ पाव जकड़े हुए हैं।

मुझे देखते ही उसने बताया—सब कुछ लूट ले गये हैं।

मैंने बड़ी मुश्किल से उसे बंधन-मुक्त किया और अपने साथ लाकर गाड़ी के पास खड़ा कर दिया। दोनो स्त्रियों के जी में जी पड़ा। एक ने मेरे पांव पकड़ लिए और कहा—भगवान् तुम्हें जुग जुग जियाये भैया!

दो पत्नियों के लाड़ले पति का अभाव दूर हुआ तो उन्होने दूसरों की चिन्ता की। सब से पहले चंपा के लिए उनका माथा ठनका। किसानों और कमकरों से ब्याज मे कमाये हुए पैसो से जवान बेटी को गहनों और कपड़ों से लादकर मेला दिखाने लिये जा रही थीं कि रास्ते में यह प्रलय-कांड मच गया। लाला हरलाल अपनी दुर्दशा तो भूल गये। चंपा के लिए उनका जी व्याकुल हो उठा। उन्होंने कांपते हुए कंठ से कहा—तुमने यह भी नहीं देखा कि लड़की कहा गई। कहीं डाकू तो नहीं ले गये उसे?

किसी को कुछ पता नहीं कि गाड़ी पर डाकुओ का हमला होने के बाद वह कहा थी। सबको अपने अपने जान-माल की पड़ी थी। कौन उसकी सुधि लेता? दो हजार रुपये का सोना पहने हुए वह डाकुओं की नजर से बच गई होगी इसकी कोई संभावना नहीं थी।

सबकी आखें मेरी ओर उठ गईं। जैसे मैं ही उनकी लड़की का उद्धार कर सकता हूँ। मैंने कहा—परन्तु यह पता लगे बिना कि वह किधर गई है या डाकू किस ओर को भागे हैं कैसे तलाश किया जाय।

मेरे ध्यान में आया कि पास के पेड़ पर चढ़कर देखा जाय। यह सोचकर मैं पेड़ पर चढ़ गया। चारो ओर नजर घुमाकर देखा कहीं किसी स्त्री का पता न चला। पौन मील के फासले पर एक आदमी आता दिखाई पड़ा। वह हमारी ही ओर आ रहा था, और आखिर पता चला कि वह

उन्हीं का गाड़ीवान है। वह भागकर गांव के आदमियों की मदद लेने गया था। कई लोग लाठी ले लेकर डाकुओं के पीछे जा चुके हैं।

इस समाचार से कुछ राहत हुई लेकिन चंपा का कोई अनुसंधान न मिला। गाड़ीवान भी न बता पाया कि वह कहां गई। लाठी की चोटों से लालाजी की हड्डियाँ दुख रही थीं। उनकी दोनों स्त्रियों के कान और नाक से खींच खींचकर गहने उतारने के परिणाम स्वरूप खून निकल रहा था।

पूरब की ओर से गाड़ीवान अभी आया था। दक्षिण की ओर एक बड़ी लंबी चौड़ी झील थी। उत्तर की ओर सीधी सड़क चली जा रही थी। इन तीनों दिशाओं में चंपा के मिलने की संभावना न जानकर मैं पश्चिम दिशा की ओर चल पड़ा। लाला जी और उनकी दोनों स्त्रियों को अच्छी तरह समझा दिया कि यदि लड़की का पता लगा तो मैं लौट कर खबर दूँगा नहीं तो नहीं।

मैं चला और सांझ तक चलता रहा। बीचबीच में पेड़ों पर चढ़कर भी पता लिया परन्तु चपा का कहीं चिह्न दिखाई न दिया। जाने कौन खा गया उसे ? आज भी कभी कभी मैं सोचा करता हूँ कि आखिर चंपा अपने मां-बाप को मिल सकी या नहीं।

दिन बीतते बीतते मेरी यात्रा संध्या की भाँति ही उदास हो गई। उसमें वह सवेरे जैसा उल्लास और उत्साह न रहा। कुछ चपा के लिए भी हृदय खिन्न होरहा था। एक छोटे से कस्बे में, नाम ठीक याद नहीं, एक टूटीफूटी धर्मशाला के कोने मे मैं जाकर पड़ रहा। न आज पास पैसा था न कल जैसी क्षुधा। सोचा था रात इसी तरह बिता दूँगा। सवेरे देखा जायगा। लेकिन शरीर को आराम मिलने के साथ साथ भूख ने भी अपना रूप दिखाना आरंभ किया। मैं ज्यों-ज्यों सोने की चेष्टा करने लगा। नींद दूर दूर भागने लगी। भूख कहीं उसे भी न खा जाय शायद इसी डर से।

धर्मशाला में एक ओर बड़ी बेचैनी थी। कोई आता था कोई जाता

था। मैं चुपचाप पड़ा पड़ा उधर ताक रहा था पर कुछ समझ में न आया कि क्या बात है? मेरे पास एक दूसरा मुसाफिर ठहरा था। वह भी शायद कौतूहल वश उधर गया था जब लौट कर आया तो मैंने पूछा—क्या बात है भाई। क्यों भीड़ हो रही है?

"बड़े घर की औरतों के चोचले हैं, और क्या है? कहते हैं बीमार है। मेरे जान तो हट्टी कट्टी मस्त पड़ी है। मेरे से इलाज करायें तो दो लातें साली की कमर में लगाऊँ। अभी उठकर बैठ जाय। सब बीमारी छूमन्तर होजाय।"

मैंने कहा—कोई भीतरी पीड़ा होगी।

"हां जी, ऐसा ही कुछ है। किसी पड़ोसी से आँख लग गई होगी। सेठजी इस बात को समझे बिना ही जबरदस्ती उसे खींचे परदेश लिए जारहे हैं। मन भर की उनकी तोंद और मुट्टी भर मूँछों की मनमानी सहने के लिए नई उम्र की सेठानी तैयार नहीं जान पड़ती। इसीसे ये फैल मचा रक्खे हैं। अभी कोई नौजवान रँगीला वैद मिल जाय तो न कोई बीमारी रहे न कुछ।"

मैंने इस पर-आलोचना में दक्ष अपने पड़ोसी से कुछ भी कहना अनुचित समझा। कहने का मतलब कि वह फिर अपने अनुभव और अपनी धारणा के अनुसार व्याख्यान में प्रवृत्त हो जाता और इस प्रकार एक नारी के, जिसके जीवन की आतरिक दशा से उसे कोई परिचय नहीं था, कीचड़ उछालने लगता। केवल इसलिए कि वह नारी है, केवल इसलिए कि वह सुन्दरी है। केवल इसलिए कि वह कम उम्र है, और केवल इसलिए कि वह भारी भरकम प्रौढ़ आदमी की पत्नी है इतने सारे दोषारोपण कर डालना और थकना नहीं, बड़े साहस का काम है।

केवल चुप रहने से मुझे छुटकारा न मिल जायगा यह बताने के लिए वह फिर बोला—कहो क्या इच्छा है? कुछ जादू-टोना, झाड़-फूँक या इलाज-विलाज भी जानते हो या योंही बछिया के ताऊ हो? हो कुछ करामात पास में, तो उठकर जाओ न। सेठानी की नाड़ी परीक्षा करो।

मन्त्र चल गया तो सेठ जी साथ रख लेंगे। मजे करना, मजे। सारी जिन्दगी। कह दिया। पड़े टुकुर टुकुर ताक क्या रहे हो?

एक आदमी पास से गुजर रहा था। वह पूछ बैठा—क्या बात है?

"बात क्या है? ये मेरे पड़ोसी डाक्टर हैं। हाथों में अच्छा जस है। मैं कहता हूँ इनसे कि जाकर सेठानी को जरा देख आओ। पर ये मानते ही नहीं। कहते हैं बिना बुलाये नहीं जाता। तुम भाई उधर जा रहे हो। सेठजी से बोल देना। जरूरत समझें तो मेरे मित्र को बुला लें।"

"अच्छी बात है।"—कह कर वह चला गया और थोड़ी ही देर में हाथ में लालटैन लिए नौकर मुझे बुलाने आ पहुँचा। मेरी स्थिति कुछ मत पूछो। जी धड़कने लगा। माथे पर पसीना आगया पर मैंने इनकार नहीं किया। अपने को सँभालता और नौकर के साथ हो लिया। होमियोपैथी की जो चार पुस्तकें देख डाली थीं। उनके कारण कुछ बल अपने साथ था।

मैं गया। बीमार को देखा। रोग और रोगी का तमाम इतिहास सुना। सेठजी से कहा—मुझे कुछ समय विचार के लिए चाहिए। तब दवा दूँगा। लेकिन सबसे पहले रोगी के लिए एकान्त कर दीजिए। कमरे में कोई न रहे।

वही किया गया। आधी दरजन नौकरों की भीड़भाड़। डाक्टर वैद्यों, झाड़-फूँक, टोना टोटका करके वालों के अलावा सेठजी, उनकी मौसी और दो तीन घर के आदमी। सभी उस कमरे में भरे थे। सेठजी ने पहले मेरे आदेश का पालन किया। उसके बाद एक एक करके सब चले गये। कमरे में रात की ठंडी हवा आई। बीमार को इसका अनुभव हुआ। कमरे की बन्द खिड़कियों में से मैंने दो तीन को खोल दिया। बीमार की आखों के सामने तारों भरा शांत निर्मल आकाश उन्मुक्त होगया। इसके बाद मैं भी बाहर निकल आया। सेठजी ने मेरे पास आकर धीरे से पूछा—कैसा है?

मैंने कहा—ठीक है।

सेठजी—आप तो यहीं रहिए।

मैं—आवश्यकता पड़ने पर आऊँगा।

रात को सोने से पहले मैंने हामिद से बात चलाई—क्यों नहीं वह या दूसरे अफसर ऐसी कोशिश करते कि जरायमपेशा माने जाने वाले गिरोहों को शांतिप्रिय नागरिक स्वीकार कर लिया जाय और उन्हें उसी तरह का जीवन बिताने की सुविधा दी जाय जैसी कि दूसरे नागरिकों को है। मैंने बतासी और पारू व उनके गिरोह के बीच प्राप्त किये अपने अनुभव को उनके सामने रक्खा। मैंने यह भी कहा कि पुलिस के पंजे से मुक्त हुए बिना उनके सुधार की कोई आशा नहीं है।

हामिद ने मुझे आश्वासन दिया कि वे स्वयं इस काम को हाथ में लेंगे और देखेंगे कि कुछ हो सकता है या नहीं। लेकिन साथ ही उन्होंने बताया—हम अफसरों में अपने और सरकार के रोबदाब को कायम रखने की जितनी स्पिरिट रहती है उतनी लोकसेवा की नहीं। न सरकार की तरफ से हमें ऐसी हिदायत है। सरकार को यह विशेष पसन्द भी नहीं है कि कोई सरकारी अफसर सच्चे अर्थों में जन-सेवक बने। इस कारण बहुत से अहम मसले योंही पड़े रहते हैं। लोक-संस्थाएँ जब इतनी शक्तिशालिनी बन जायेंगी कि वे कुछ कर सकें तभी समाज का कल्याण होगा। उस समय सरकार भी अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए आगे आयेगी।

सवेरे मेरे चलने की बात थी पर खानम ने नहीं छोड़ा। कहा—यों भी कहीं भागा जाता है? इतमीनान से दो चार बातें भी तो नहीं हुईं।

खानम मेरे साथ इतमीनान से क्या बातें करेगी यह मैं नहीं सोच पाया पर पीछे मालूम हुआ कि हामिद की दुर्दशा की जायगी। वह अपनी नई जोरू के साथ क्या क्या बेहूदगियां करता है उनपर प्रकाश डाला जायगा, उनको मजाक उड़ाई जायगी। मेरे सहयोग से वह अपने शरारती शौहर को शर्मिंदा करेगी, उसे कहीं भागने का मौका नहीं देगी।

हामिद ने सुना कि मैं खानम के अनुरोध से रुक रहा हूं। आज किसी वक्त हम लोगों की कौंसिल बैठेगी और इतमीनान के साथ विचार-विमर्श होगा, तो वह बोला—तुम भी उसकी बातों में आगये? यह मेरा

तजुर्बा है कि किसी की पहली बीवी पर तो आंख मींचकर यकीन किया जा सकता है। दूसरी से धोखा ही धोखा होता है, और तीसरी तो माशाअल्ला—तीसरी से खुदा वास्ता न डाले।

चाय बनाती हुई खानम के कानों में ये बातें पड़ गईं। वह वहीं से बोली—रमेशबाबू, आप पंच की जगह हैं। दोनों तरफ की सुने बिना फैसला मत देना।

या खुदा, अब तो किसी तरह खैर नहीं है—कहकर हामिद ने अपना कान पकड़ लिया और शेरवानी को सँभालते हुए इस तरह भागे कि मैं जोर से हँस पड़ा।

खानम ने कहा—मियाँ भागने से पनाह थोड़े ही मिल जायगी। मेरी उज्रदारी का जवाब देना होगा। पहली औरत को बदनाम करने से वह कान मसल देती है। दूसरी के सिर तोहमत लगाना उससे आसान होता है, और तीसरी तो सिर पर बदनामी का ठीकरा लेकर ही आती है। नहीं तो इस तरह मुँह न चलता।

खानम चाय बना चुकने के बाद न जाने क्या उपद्रव करती पर एक विधवा ठकुराइन के अपनी फरियाद लेकर आ जाने से वह उसके साथ बातों में लग गई और मैंने व हामिद ने शांति से चायपान किया।

इस दरम्यान हामिद ने बताया कि सैकड़ों औरतें अपनी अपनी कहने खानम के पास आती रहती हैं। वह उनकी बातों में आकर अक्सर बड़ी बेतुकी ज़िद कर बैठती है। नतीजा है कि मेरे नब्बे फीसदी फैसले खानम की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। न्याय और कानून एक तरफ पड़े रह जाते हैं। मैंने यह शादी क्या की एक ज़हमत मोल ले ली है।

मैंने हँसकर कहा—तुम्हारे बराबर भाग्यशाली और कौन होगा? मियाँ घर बैठे स्वर्ग के मजे लूट रहे हो। हजारों साल से आदमी ने औरतों से गुलामी कराकर जो पाप कमाया था उस ऋण को बीबी के आज्ञाकारी खाविंद बनकर चुकाने का मौका खुदा ने तुम्हें इनायत किया है। तुम्हारे लिए तो यह बड़ी किस्मत की बात है। अहले आदम का रोआँ रोआँ

इसके लिए तुम्हारा शुक्रिया करता हूँ।

खानम ने आकर बताया—वह जो विधवा नौजवान ठकुराइन आई है, उसके ऊपर उसके घरवाले बड़ा अत्याचार करते हैं।

हामिद—आदमी तो सदा ही औरतों पर अत्याचार करने के लिए बदनाम है।

खानम—बदनाम है, अत्याचार करता नहीं, क्यों?

हामिद—करता थोड़ा है, बदनाम ज्यादा होता है।

खानम—यही सही। थोड़ा अत्याचार अत्याचार नहीं होता?

हामिद—होता क्यों नहीं, पर इस काबिल नहीं कि घर की औरतें उसकी शिकायत करने बाहर चली आयें। मजिस्ट्रेट की बीबी से मिलें और घरवालों के खिलाफ कानूनी चाराजोई करें।

खानम—पहले इस बात को कबूल करो कि अत्याचार आदमी ही करता है औरतें नहीं।

हामिद—गलत। अत्याचार आदमी भी करता है औरतें भी करती हैं। जो ताकतवर होता है वह जाने अनजाने हर तरह से अत्याचार करता है। जो कमजोर है वह रोकर-हँसकर जैसे भी हो उसे सहता है।

खानम—कोई मिसाल देकर बताओ।

हामिद—मिसाल के लिए दूर क्यो जाओ? सबसे बड़ी मिसाल तो हमीं दोनों हैं। कमजोर हामिद पर खानम हरवक्त सवार रहती है। नाराज़ मत होना खानम। तुम्हारे हाथ में मेरी नकेल है। जिधर घुमाती हो उधर चलता हूँ कि नहीं? जो कहती हो वह करता हूं कि नहीं? कानून के खिलाफ, न्याय अन्याय की परवाह किये बिना मैं तुम्हारी इच्छा के आगे झुकता हूँ? बोलो, झूठ कहता हूँ तो मेरे कान खींचो।

खानम—तुम्हारी अक्ल खराब होगई है।

हामिद—खराब नहीं गुलाम हो गई है। तुम अभी कहोगी कि वह ठकुराइन अपने नौकर को चाहती है। लेकिन बताओ उसे नौकर को चाहने का क्या अधिकार है?

खानम—क्योंकि दोनों हम-उम्र हैं। सुन्दर हैं। जवान हैं। आपस में एक दूसरे को प्रेम करते हैं।

हामिद—लेकिन ठाकुरों में भी तो कोई सुन्दर और जवान होंगे। उन्हें भी तो प्रेम किया जा सकता है। उन्हें छोड़कर वह एक नीच जाति और छोटी हैसियत के आदमी को क्यों पसंद करती है? वह यह क्यों नहीं सोचती, कि इससे उसके घराने में कलंक लगेगा और उसकी जिन्दगी भी आगे चलकर बरबाद हो जायगी। जवानी का मद उतर जायगा तब समझेगी कि घरवालों के जिस विरोध को आज वह अत्याचार मानती है वही उसके लिए जिन्दगी का सीधा और सरल रास्ता था।

खानम—लेकिन इन बड़ी जातों में विधवा के साथ नाजायज़ ताल्लुक ही रक्खा जा सकता है। इज्जत की जिन्दगी का कोई जरिया उसके सामने नहीं होता। ऐसी सूरत में नौकर के सिवा वह किसके पास जाये?

हामिद—और तुम मुझसे कहती हो कि मैं उसकी मदद करूँ। समाज से इस तरह विद्रोह करनेवाली औरतों को पनाह दूँ। इसका नतीजा एक ऐसी लहर होगी जो समाज की दीवारों को बहा ले जायगी। हजारों साल से बनाई हुई इमारत ढह जायगी। लेकिन खानम की इच्छा है, इसलिए हामिद विवश है। खानम के पास रूप और यौवन का वरदान है। हामिद उसका पुजारी है। खानम कहेगी, उसे वह करना पड़ेगा। क्या यह स्त्री का पुरुष पर अत्याचार नहीं है? आदमी लाठी, डंडे और हथियारों से बलात्कार करता है औरत तिरछी नजर, मीठी मुस्कान और मनमोहक हावभाव से वही काम करती है।

खानम ने हँसकर कहा—तब दोनों में फर्क है कि नहीं? किसका अत्याचार स्पृहणीय हुआ मर्द का या औरत का? रमेशबाबू, आप चुप बैठे हम दोनों को लड़ा रहे हैं। कुछ फैसला नहीं देते? आपको हमने पंच चुना है।

मैंने कहा—ये तो व्यर्थ बहस करते हैं। आदमी सदा ही औरतों से हारता आया है और हारता रहेगा, लेकिन उसके स्वभाव में जो हेकड़ी है

उससे वह बाज़ नहीं आयेगा।

मेरी बात सुनकर दोनों ही उछल पड़े और मुक्त हास्य से कमरे को भर दिया। हामिद ने खानम से पूछा—तुम्हारी वह सहेली गई या बैठी है?

खानम—बैठी है। इन्तजार कर रही होगी।

हामिद—तो जाकर उससे कह दो, उसे उसके यार से कोई अलग नहीं कर सकेगा। पुरुष पर नारी की विजय का इतिहास कभी झूठा नहीं हुआ, न होगा।

खानम उठकर बाहर चली गई। विजयगर्व से इठलाती हुई नारी की चाल में क्या अपूर्व सौंदर्य होता है यह हम दोनों बैठे निहारते रहे,—अवाक्, विमुग्ध!

उन्तीस

हामिद के यहां से रवाना होने से पूर्व दो चार औषधियां और लेकर मैंने झोले में डाल ली थीं। इस ख्याल से नहीं कि उनके द्वारा नाम दाम कमाना है बल्कि इस ख्याल से कि कहीं किसी का भला हो सके। परन्तु दुर्भाग्य तो देखिये मैं जिस भलेमानस गांव के मुखिया नंबरदार और सुधारक के दरवाजे पर सोया उसने ही उस झोले के आधे से अधिक भार को हलका कर दिया। उसे रात के समय झोला मैंने सौंप दिया था। सवेरे लेकर चल पड़ा, देखा तब जब संध्या समय एक पड़ाव पर पहुँचा और स्वयं

मुझे ही उसकी जरूरत पड़ी।

दुखिया के जीवन में आशा की किरणों के समान सुनसान बियावान में मुसाफिरों ने इस स्थान को अपनी पसन्द से पड़ाव बना लिया था। आसपास दूर तक कोई बस्ती नहीं थी। मुसाफिरों की इस इच्छापूर्ति के लिए लाला देवीदीन ने कहीं से आकर अपने सुख दुख की परवाह न करके दो चार लकड़ियों से घेरकर अपनी दूकान मकान घर गृहस्थी सब कुछ जमा रक्खी थी। देहात के मुसाफिर की हर तरह की जरूरत उनके पाँच सात वर्ग गज निवास से पूरी हो जाती थी। नोन-तेल, चना-चबेना, बीड़ी माचिस सबका ब्योपार वे कर लेते थे। जाड़ों में चाय का बंडल और अदरख की दो चार सूखी गाँठें भी औषधि के रूप में रहती थीं।

मैं जाकर हांफता हुआ जब पेड़ की छाया में पड़ रहा तो देवीदीन की विधवा लड़की गंगा मेरी खोजखबर लेने आई। मैं कहाँ से आया हूँ कहाँ जाऊँगा, इसकी अनंत जिज्ञासा से भरा हुआ उसका मुख म्लान होगया जब मैं कोई उत्तर न दे पाया। दो पहर से अब तक पानी न मिलने से और कड़ी धूप में चलते रहने से मैं इतना व्याकुल होगया था कि मुँह नहीं खुल रहा था। मुझमें इतनी शक्ति शेष नहीं थी कि मैं उससे कुछ बोलता। आँखें मींचे ही इशारे से उसे ठहर जाने को कहकर मैं पड़ा रहा। बड़ी देर इसी भाँति रहने पर जी कुछ ठिकाने हुआ और मैंने आंखें खोलीं। उस समय गंगा का आठ साल की अवस्था का भाई भी उसके पास आ गया था। दोनों मेरी दशा के प्रति चिन्तातुर होरहे थे।

उनकी चिन्ता का कारण यही था कि अभी कुछ दिन पहले एक बाबू इसी तरह बीमार इस पड़ाव पर आये थे। गंगा और उसके बप्पा के प्रयत्न के बावजूद वे अच्छे नहीं हुए। जिस पेड़ की छाया में मैं पड़ा था उसीके तले छटपटाते हुए उन्होंने प्राण छोड़े थे। गंगा और बप्पा ने कुछ यात्रियों की सहायता से उनके लावारिस शरीर को मिट्टी दी थी। आज दुर्भाग्य से उसके बप्पा भी मौजूद नहीं हैं, न कोई दूसरा राहगीर पड़ाव पर ठहरा है। केवल हम तीन ही प्राणी हैं।

गगा के दिये हुए जल से गला सींचकर मैंने बकरी का दूध पिया। शरीर में कुछ बल आया पर एक तरह की ऐसी ऐंठन और जलन का मैं अनुभव कर रहा था कि जी उठकर बैठने को नहीं होता था। गगा ने यह समझकर कहा—मेरे शरीर का सहारा लेकर चलो यह जगह छोड़ दो। उस पेड़ की घनी छाया में आराम भी ज्यादा मिलेगा।

मेरी आँखों के सामने मृत बाबू का ब्रह्मराक्षस अपनी कदाकार काया में खड़ा मुझे डराने लगा। कभी जिस पर भूलकर भी विश्वास नहीं किया था वही इस सुनसान कालीरात मे आँखें फाड फाड कर मुझे ताक रहा था। एक हलकी सिहरन से शरीर के रोंगटे खड़े होगये थे। बड़ी हिम्मत से गगा के मासल शरीर को बाहुवेष्ठित करके मैं खड़ा होगया। उस समय एक क्षण के लिए मेरे मन में यह विचार न उठा कि मैं पुरुष हूं और वह नारी है। मेरा मन चारों ओर से एक ही विचार पर केंद्रित होरहा था कि कैसे मैं घुमड़ रहे भय के वातावरण से निकल जाऊँ।

भला हो उस गगा का जिसने मुझ अपरिचित के प्रति इतना बड़ा कर्तव्य निबाहा कि मुझे वहा से लेजाकर अपने घर के द्वार पर खड़े विशाल वृक्ष की छाया में जा लिटाया। पेड़ से गिरी हुई पत्तियों का सुखद बिछौना मौसम ने बिछा ही रक्खा था। उसी पर मैं अशक्त और अवश होकर पड़ रहा। गगा ने कहा—बाबू, तुम्हारी देह तो तप रही है।

मैं—आज की रात बच गया तो कल मौत भी मुझे मार न सकेगी।

गंगा—जाड़ा तो नहीं मालूम पड़ रहा है ?

मैं—मालूम पड़ने से उसका उपाय भी क्या होगा ?

गंगा—दवाई है। कहो तो उसे तैयार कर दूँगी।

मैं—तुम्हारी इच्छा।

गगा ने दवाई की तैयारी की। लोटे में भरकर मुझे पीने को दी। क्या-दवाई है यह पूछे बगैर मैं उसे पीने लगा तो मालूम हुआ चाय तैयार की गई है। इस जगल मे इस मौसम में चाय मिल सकेगी इसकी आशा कौन कर सकता था ? मैंने पुलकित कठ से कहा—बोलो, तुम्हें इसके बदले क्या

देना होगा ? तुमने मेरे प्राण बचाये हैं। मेरे पास जो कुछ है तुम मांग सकती हो।

माँगने से कोई चीज मिलती है ? देने से कोई चीज दी जाती है ?—कह कर वह गंभीर होगई। अँधेरे में मैं मालूम न कर सका कि उस नारी के हृदय में कैसे विचार उठ रहे हैं। पीछे सहज कंठ से उसने पूछा—क्या दवाई दी है, तुमने जान पाई ?

मैं—तुम्हारी इस दवाई के जोर से ही तो मैं जीवित हूं। यह मेरी बचपन की साथिन है।

गंगा—चाय है।

मैं—हाँ, चाय है।

मैं धीरे धीरे घूँट घूँट पीता रहा। देर का रक्खा हुआ ठंढा बकरी का दूध पिया था। उसके ऊपर गर्म गर्म चाय पहुँचने से ऐसा लगा कि शरीर में नवजीवन का संचार होरहा है।

मैंने कहा—तुम जाओ। मेरे लिए अब तुम्हें जागने की जरूरत नहीं है।

गंगा बिना कोई उत्तर दिये ही चली गई।

आधी रात के समय गंभीर अंधकार में मैं पत्तों की शैया पर सुख की नींद सो रहा था। गंगा के हाथों के स्पर्श से मेरी आँख खुल गई। मैंने पूछा—क्या बात है ?

जरा उठकर मेरे भैया को तो देखो। क्या होगया उसे ? खा पीकर तो अच्छी तरह सोया था।—रोते रोते गंगा ने उत्तर दिया।

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। जाकर देखा तो लड़के की हालत बुरी होरही थी। जमीन पर इधर उधर के की हुई थी।

कितनी देर से ऐसा है ?—मैंने पूछा।

"पता नहीं। मेरी तो आँख लग गई थी।"

इसे हैजा होरहा है, कहकर मैं अपना झोला ले आया पर दुर्भाग्य, उसमें दवाओं का पैकेट नहीं निकला। अन्य चीजों के साथ वह पैकेट भी उस मनहूस इन्सान ने रात भर ठहरने के बदले में निकाल लिया था। मुझे

लगा जैसे मेरे हाथ कट गये हों। मैंने व्यथित और दग्ध हृदय से पापी तथा साहूकार और उपकारी के वेष में चोरों के सिरताज को अनेक बार कोसा।

दवाओं के अभाव में जो परिचर्या संभव थी मैंने की। उस अंधेरी रात में, अनजान सुनसान जगह में, मैं विशेष कर ही क्या सकता था? गगा मेरे आदेश के अनुसार भागभाग कर जो मैं मांगता उसे लाकर देती रही। भाग्य, भगवान् और पानी के भरोसे इतनी कठिन बीमारी को चलने दिया, जो प्राय. नब्बे प्रतिशत गरीबों के लिए साधारण-सी बात है।

रोगी 'पानी पानी' की रट लगाये था। इधर पीता उधर उलटता। उस छोटी सी तग जगह में इतनी गदगी फैल गई थी कि मैं घबड़ा गया। परन्तु वाह री गगा! क्षण क्षण पर सफाई करती। क्षण क्षण पर नई धूल लाकर बिछाती। बाहर थोड़ी सी आग जला रक्खी थी। उसीके उजाले में मैं उसके सुगठित यौवन के वरदान से सपन्न शरीर को चलता फिरता देखता था। अपनी समस्त शक्ति लगाकर वह लड़के की रक्षा में लगी थी। उसके मुँह में एक ही रट थी—बप्पा न जाने कहाँ रह गये? कब तक आयेंगे?

मैंने पूछा—तुम्हारे बप्पा कहकर नहीं गये हैं?

'नहीं। दो दिन में लौट आने की बात थी। आज तीसरा दिन बीत गया।"

लड़के की दशा बुरी होती जा रही थी! मैं भीतर भीतर भयभीत हो उठा था।

तुम्हें कैसा लगता है? उठ बैठेगा कि नहीं?—गगा ने पूछा।

मैं—भाग्य में होगा तो उठ बैठेगा।

इतनी हालत खराब है?—उसने घबड़ाकर पूछा।

खराब ही है। बस, भगवान् मालिक है!—मैंने कहा।

अब तक जो गंगा आशा की डोर से बँधी हुई पतग की भाँति हल-चल रही थी, निराश होकर गिर पड़ी।—हाय, तो मेरा बीरन अपनी जीजी

को छोड़ जायगा ? रात दिन 'अम्मा अम्मा' की रट लगाये था, आखिर अम्मा के पास पहुंच जायगा। पर मैं क्या करूँगी ? मैं कहाँ जाऊँगी ? बप्पा तुम कहां गये ? आकर बताते नहीं। गंगा कहां जाय ? तुम्हारी गंगा को कहां ठौर है ? सास गई, ससुर गये। आदमी गया। अम्मा गई। भैया चला। गंगा को जाने को ठौर नहीं। वह कहाँ जाय ?

इस तरह के उसके हृदय-विदारक विलाप से व्यथित हो मैंने कहा—आखिर समय तक आशा है। अभी से निराश क्यों होती हो गंगा।

"आशा है, तुम कहते हो आशा है ? जरा उसका मुँह तो देखो। आंखें कहाँ धँस गई हैं, आम की फाँक जैसी मेरे भैया की आँखें !"

सचमुच ही चेहरा इतना बिगड़ गया था कि पहचाना नहीं जाता था। आँखें अपने कोटरों में घुस गई थीं। उषा की सफेदी जो आसमान में पुत गई थी, उसमें भली भाँति इतना देखा जा सकता था।

मैंने कहा—देखो कुछ मत। राम-राम करो। वही मालिक है। वह चाहेगा तो—

"नहीं। अब उसके चाहे भी कुछ न होगा। लाओ थोड़ी देर अपने भैया को गोद में तो सुला लें।"

मैंने रोककर कहा—उसे छेड़ो नहीं। आराम से पड़ा रहने दो।

कैसे आदमी हो ? जीजी की गोद से भी अधिक धरती पर आराम मिलता है ?—कहकर उसने रोगी का अशक्त सिर अपनी गोद में रख लिया। फिर बोली—मेरा लाल, मेरा गुलाब, एक रात में ही मुरझा गया।

सवेरा होगया था। रोगी ने अन्तिम सांस ली। मैंने उसकी नाड़ी टटोलकर कहा—गंगा, लाओ गोद से उतार दो उसे। अब यह मिट्टी है।

गंगा आंखें खोले भी स्वप्नलोक में विचर रही थी। बजाय उसे गोद से अलग करने के वह खुद मेरी गोद में गिर पड़ी। बाहर से बप्पा ने प्रवेश किया।

गंगा की विस्फारित आंखों ने बप्पा को देखा। बप्पा ने मेरी गोद में

पड़ी गगा को। दोनों अवाक्, दोनों निस्पद, दोनो विजड़ित !

मैंने कहा—विमूढ़ से क्या खड़े हो। उसकी गोद से बालक के शव को हटाओ।

मेरे वाक्य ने निस्तब्धता को भग कर दिया। बप्पा की काया में जीवन की हलचल प्रतीत हुई। वे आगे बढ़कर बालक की मृत देह को उठाने का उपक्रम कर ही रहे थे कि पीछे से एक नारी कंठ ने गरज कर कहा—क्या कर रहे हो ? मुझे ऐसे हैंजे के घर में ही जाकर डालना था तो पहले ही बता देते। मैं तुम्हारे साथ आने से पहले चार बार सोच समझ लेती।

बप्पा का बढ़ा हुआ पग रुक गया। नारी-कंठ की इस घोर गर्जन से गगा का चेत लौट आया। उसने पुतलिया फिराकर मुझे, बप्पा को, फिर बाहर खड़ी हुई नवागत स्त्री को देखा।

मैंने धीरे से सहारा देकर उसका सिर ऊँचा करके उसे बिठा दिया। अब मैंने अच्छी तरह देखा और समझा कि बप्पा वृद्धावस्था के एकाकीपन को दूर करने के लिए एक औरत ले आये हैं। उसकी पीली ओढ़नी, लाल लहँगा, माथे की बेंदी, नाक की नथ, कलाई की चूड़ियां बताती थीं कि वह सुहाग का स्वांग भरकर नई गृहस्थी चलाने आई है।

अपनी स्थिति और अधिकारों के प्रति सजग उस स्त्री ने बप्पा को संशय की दशा से मुक्त करने की खातिर कहा—ऐसा ही था तो पहले बताया होता कि दो बिलांत की झोपड़ी में दो दो गृहस्थी रहेंगी।

बप्पा बाहर निकलकर उसे समझाने लगे। मैंने लड़के का शव गंगा की गोद से उतारकर जमीन पर रख दिया। गगा की आखो में आँसू सूख गये। ताजी मृत्यु का शोक आशका, सदेह और भय में लीन होगया।

बप्पा ने उसे क्या क्या कहा यह तो मैं सुन नहीं पाया पर उस कालिका के फूले हुए नथनो,लपलपाती हुई जीभ से निकले हुए इन शब्दों से सारा वातावरण गूंज उठा—बड़े समझाने वाले आये। कैसे मानलूँ वह कोई नहीं है। डाक्टर है लड़के को देखने आया होगा। डाक्टर आता है

तो उसकी गोद में बहू बेटियां पड़ जाती होंगी। न बाबा, इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस स्त्री के अशोभन हल्लेगुल्ले को सुननेवाला यद्यपि वहां हम लोगों के सिवा कोई नहीं था तो भी लज्जा से मेरा सिर जमीन में गड़ गया। जी में आया कहीं ऐसी जगह जाकर छिप जाऊँ जहाँ नारी का ऐसा अभद्र रूप दिखाई न पड़े जिसकी मैंने अपने जीवन में कभी कल्पना न की थी।

बप्पा की नई बहू तिनककर चार हाथ दूर जा खड़ी हुई। गंगा वज्राहत सी मुँह झुकाये बैठी यह नाटक देख रही थी। इतनी देर में अपने को बटोरकर वह शांत भाव से बोली—उसकी बातों का भी तुम विचार करोगे बाबूजी, तब तो बालक की देह की ख्वारी हो जायगी।

गंगा के इस साहस से मुझे धैर्य बँधा। मैंने कहा—तो क्या करना होगा?

गंगा—यह चादर देती हूं। इसमें लपेटकर इसे ले चलेंगे।

उसने चादर निकालकर बालक की मृत देह पर डाल दी। बप्पा से जैसे सरोकार ही न रह गया हो और जैसे मैं ही उसकी गृहस्थी का मालिक होऊँ इस तरह वह मुझसे बरतने लगी। मुझे भी वर्तमान परिस्थिति में यह कोई अयुक्त न प्रतीत हुआ।

गंगा का आदेश पाकर मैंने बालक के शरीर को चादर में लपेटा। यह दृश्य बप्पा से देखा न गया। आखिर उनके ही कलेजे का टुकड़ा तो था। वे एक बार डिडकारी मार कर रो उठे और मृतक की ओर दौड़े। एक कदम ही बढ़े होंगे कि उनकी नव वधू ने आगे आकर हाथ झटक दिया और चिंघाड़ कर बोली—तुम्हें हो क्या गया है? वह हैजा से मरा है। उसे छूकर तुम मुझे भी लगाओगे। जाओ उधर बैठो। यह रोने धोने का नाटक रहने दो। बड़े मर्द बने हो। लुगाइयों की तरह रोते शर्म नहीं आती।

मैंने अच्छी तरह मुर्दे को चादर में लपेट कर गंगा की ओर देखा। वह बोली—अब देर क्यों करते हो? ले चलो उसे।

मैंने उसे दोनों बाहों पर ले लिया। मैं आगे आगे और गंगा पीछे

इस घर में मेरा रहना अब बनेगा नहीं, और कोई जगह सूझती नहीं जहाँ चली जा सकूँ।"

नई अम्मा और बप्पा कब नहा कर लौट आये थे इसका संधान हम में से किसी को नहीं था। पर जब हमारे बीच चल रही बातों में एक तीसरा अनिमन्त्रित कंठ शामिल होगया तो हम समझ गये कि हमारी बातचीत हम दोनों तक ही नहीं रहने पाई है।

वे बोलीं—यही बात तो मैं तुम्हारे बाप से कह रही थी। जवान लड़की का बाप के घर कैसे निभाव होगा? तुमने इन भैया से मन मिलाकर बेटी कोई ऐसी बात नहीं कर डाली है जो तुम्हारी उमर की मेहरिया के लिए अनहोनी हो या अँगुली उठाने लायक हो। तुम पहली बार ही मिले हो सही पर तुम दोनों को देखकर लगता है जैसे तुम्हारा हेलमेल बहुत पहले से हो। तुम दोनों मेरी बात का बुरा मत मानना। तुम्हारे बाप बहुत कह सुनकर मुझे ले आये हैं। इस जरा सी झोपड़ी में हम दोनों के लिए ही ठौर नहीं है। सब रहें भी तो कैसे रह सकेंगे? तुम्हें भी आराम नहीं, हमें भी आराम नहीं। तुम्हारे हँसी-खेल के दिन। अपने अकेले घर में रहो हँसो, खेलो, बोलो। हमारे साथ रहे तो मन की मन में लिये रहोगी। लाज, सरम, सकोच में मरती रहोगी। सो बेटी हमारी बात कड़वी चाहे लगे पर फल मीठा लायेगी। आज नहीं तो कल तुम इसे मानोगी।

गगा मेरे से जो कह रही थी वह उसके गले में ही अटक रहा। वह एकटक दृष्टि से इस व्यवहार-कुशल और मुहफट स्त्री के चेहरे की ओर ताकती रह गई।

जब वह अपना उपदेश समाप्त कर चुकी, तो गगा से न रहा गया। बड़ी देर से वह भीतर ही भीतर उबल रही थी, इसलिए कुछ झुंझलाहट के साथ बोली—मुझे किससे नाता करना है क्या यही निर्णय कराने के लिए बप्पा तुम्हें यहा लाये हैं? यदि यही बात हो तो उन्होंने बड़ी भूल की। मैं किसी की राय से बँधी नहीं हूँ। इस घर में

जगह नहीं होगी। दूसरा देख लूंगी।

"घर-जमाई रखने की हमें भी सामर्थ्य नहीं है। जितनी जल्दी हो तुम अपना किनारा कर लो।"

बड़ी कड़ी बात थी। गंगा का कलेवर नीचे से ऊपर तक फुंक गया। वह प्रज्ज्वलित होकर बोली—तुम मेरी मां बनकर इस घर में आई हो इसी का लिहाज करके इन गालियों को मैं सह लेती हूँ। बप्पा, तुम भी यह सुन लो।

गंगा फफक फफक कर रोने लगी। अधगुंदा आँटा उसने थाली में ही छोड़ दिया।

"हाय राम! मैं तुम्हें गाली देती हूँ। तुम बड़ी छुईमुई हो। छूते ही मुरझा जाओगी।"

बप्पा किंकर्तव्य विमूढ़ थे। औरत लाने से पहले इस महाभारत की कल्पना उन्हें स्वप्न में भी न रही होगी। दूसरे थोड़ी ही देर पूर्व उनके अपने रक्त मांस का अंश, जो कल तक उनके प्यार और दुलार का केन्द्र था, वह इस दुनियां से उठ गया था। जो बुढ़ापे में सहारा होता वह बीच में ही दगा देगया था। इतनी बड़ी दुर्घटना घट गई थी, मातम की उस अशुभ घड़ी में घर में जो नया हङ्गामा खड़ा होगया, वह अवसर के बिलकुल प्रतिकूल था। उसे देखते पता नहीं चलता था कि इस घर में ऐसी कोई अशुभ बात होगई होगी। मानव-चरित्र की जिस दुर्बलता ने, वासना की जिस भूख ने, उन्हें इस नई परिस्थिति में डाला था उसमें वे एक पराजित योद्धा थे। विजय अपने हाथों से वे उस नारी के चरणों पर चढ़ा चुके थे जो संसार के ऊँच-नीच में बहुत कुछ भटक चुकी थी और स्वार्थ संघर्ष में ठोकरें खा चुकी थी। गंगा की तरह उसका व्यावहारिक ज्ञान घर की सीमा से बँधा नहीं था।

अब तक मैं चुप था। पर जब मुझे लेकर ही इतनी कटुता का प्रसार होने लगा तो मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—इस बात की भूल कोई मत करे कि मैं इस घर के दुर्भाग्य में अनायास आकर शामिल होगया हूँ। न

कल सध्या से पहले कोई विचार था कि मैं जहाँ शरण लेने चला हूँ उस घर से मेरा किसी भांति का स्थायी सपर्क होना है न दो एक घटे बाद रहेगा। मैं जैसे आगया था, वैसे ही जा रहा हू पर एक प्रार्थना है सब लोगों से कि उस बालक के नाम पर आज इस घर में कम से कम एक दिन और रात भर थोड़ी शांति रहने दो जिस शाति के साथ कुछ देर पहले उसने आखिरी सासें ली थीं। उस शांति को कुछ देर तो बनी रहने दो। पीछे हल्ला गुल्ला लड़ाई झगड़ा जो चाहे कर लेना।

मेरी बात बेअसर रही हो सो तो नहीं। थोड़ा बहुत असर हर एक पर हुआ। गगा की नई अम्मा को ही उत्तर देना था। वे बोलीं—भैया,मैं जीभ में खाड घोल कर तो कोई बात कहती नहीं। खरी और सच्ची बात को कहने से रहती नहीं। तुम्हीं बताओ जवान लड़की को कौन कितने दिन घर रखता है ? तुम्हारा उससे कैसा सबंध है, कब का संबध है यह मैं कैसे जानूँगी ? मैंने तो तुम्हारे सामने इस घर में कदम रक्खा है। मैं नहीं कह सकती कि वह सारी रात तुम्हारी गोद में सिर रक्खे थी या जब मैं आई तभी।

मैं—फिर से वे बातें मत उठाओ।

वे—बातें नहीं उठा रही हू। मान लो मुझसे भूल हुई पर देखकर ही तो हुई। और फिर चाहे जिस हालत में वैसा हुआ हो, उस पर विश्वास कौन करेगा ? स्त्री के सदाचार की मर्यादा इतनी विस्तृत नहीं है कि वह पर-पुरुष की गोद में सिर रखकर भी सती बनी रहे, चाहे वह सीता ही क्यो न हो ?

मैं—यह सब तुम जानो।

वे—खैर, मैं गगा को तुम्हें सौंपती हू उसे लेकर गृहस्थी बनाओ। सुखी रहो। मैं आज आई हू सही। पर आखिर हू तो उसकी माँ ही। इससे ज्यादा मैं क्या चाहूँगी कि मेरी बेटी सुखी रहे।

गंगा बीच ही में बोली—तलैया में पानी नहीं रहेगा तब मैं तुम्हारी सीख मान लूँगी।

"राम राम ! यह क्या कहती हो बिटिया !"

"मैं किसी की बिटिया नहीं हूं। जिसकी थी उसने कभी दो बात भी नहीं कही थीं। वह आज स्वर्ग में बैठी मेरी दुर्दशा देख रही होगी।"

"तब तुम्हारा जी चाहे सो करो। बच्ची तो हो नहीं।"

अच्छी तरह साहस बटोर कर बूढ़े बप्पा ने बीच में दखल दिया, बोले—चुप भी रहो। यह वखत लड़ाई-झगड़ा का है ?

इतना कहकर और ठंडी गहरी सांस लेकर वे चुप होगये। कुछ देर के लिए वातावरण में शांति छा गई।

चूल्हे पर चढ़ी दाल जलने लग गई थी। उसे कोई सँभालने नहीं उठा। अधगुंदा आटा जहाँ पड़ा था वहीं पड़ा रहा। ढेर की ढेर मक्खियाँ इकट्ठी होकर उस पर भनभनाने लगीं।

गंगा उठकर न जाने कहाँ रोने-धोने चली गई। मैंने भी अपना झोला समेटा और अगली किसी बस्ती में खाने-पीने की जुगाड़ करने की सोच कर उठ खड़ा हुआ। किसी ने मुझे रोका नहीं। रोकने का कारण भी नहीं था।

घर से बाहर पगडंडी पर हो लिया। खिन्न, उदास और थका हुआ मैं चुपचाप घने पेड़ों के नीचे से होकर जाने लगा। अभी अभी इधर ही लेजाकर मैंने और गंगा ने मृतक की अंतिम क्रिया की थी।

अचानक मेरे कानों को गंगा की इस बात ने छेद दिया—मेरा ठौर-ठीक किये बिना ही चले जाओगे ?

मैं घूम कर खड़ा होगया। बोला—तुम्हारा ठौर-ठीक मैं करूँगा या भगवान् ?

गंगा पेड़ के एक तने के सहारे बैठी थी। उसका मलिन मुँह, फीका चेहरा, भरी आँखें उसकी विपन्नता की साक्षी थीं। बोली—भगवान् मेरी खबर लें, इतनी भाग्यवान मुझे समझते हो ?

भाग्यवान को भगवान् की सहायता की दरकार नहीं होती। तुम्हारी अम्मा इस समय भाग्यवान है। बप्पा उसके सहायक हैं। भगवान् की उसे क्या दरकार है ?

गंगा सिसक सिसक कर रोने लगी। मैंने कहा—धूप तेज होरही है। मैं ठहरूँगा नहीं गंगा। विश्वास रक्खो, भगवान् तुम्हारे लिए कोई मार्ग निकाल देंगे।

मेरी बात उसकी सिसकियों में लीन होगई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। किसी तरह का प्रतिवाद नहीं किया। मैं जी कड़ा करके अपने रास्ते पर चल पड़ा। मेरा रास्ता, जीवन पथ की भांति, सुख दुख आकर्षण-विकर्षण, त्याग और प्रलोभन से भरा हुआ है। यदि हर एक के लिए मैं ठहरने लगूँ तो यात्रा पूरी कैसे हो? निठुर, निर्मोही बने बिना मेरा काम कैसे चलेगा? कितनों को छोड़ आया हूँ। कितनों को छोड़ता जाऊँगा। गंगा तू रोती रह, पारू तू याद किया कर, विशाखा तू प्रतीक्षा में बैठी रह, कल्याणी तू आंसू पिया कर, मैं तो चला जा रहा हू। मेरा मार्ग बहुत लबा है, किस पड़ाव पर फिर किस दिन पहुँचना होगा। यह घटनाओं के चक्रव्यूह में कौन जान सकता है? कहां कब किसके साथ बँध रहना होगा, कहां जाकर यह प्रवाह रुक जायगा, इसका कुछ पता नहीं। कुछ निश्चय नहीं।

एक किसान परिवार खेत में झोंपड़ी डाले था। ठीक दोपहरी में मेरे जैसे अतिथि को पाकर उसने अपने को धन्य माना। अपने खाने की मोटी रोटी और मट्ठा में बड़ी आवभगत से मुझे साझीदार बना कर उसने आतिथ्य भी किया और उपकार भी। ऐसा तृप्तिकर भोजन बहुत दिनों में मिला था। खा-पीकर मैं निश्चिंत हुआ। जब दूसरे दिन चला तो उसने पैदल न जाने देकर अपनी बैलगाड़ी जोत दी, कहा—कब कब ऐसे भागवान हम गरीबों के घर आते हैं। पैदल आपको कैसे जाने देंगे। घर के बैल हैं, घर की गाड़ी है। इसी पर आपको पहुँचायेंगे।

इस सत्कार और अनुरोध का विरोध मैं न कर सका। बैलगाड़ी पर चढ़कर बैठ गया। इस बैलगाड़ी पर आगे जो दुर्घटना घटित हुई वह मैं बहुत पहले ही बता चुका हूँ। न जाने मैं अपने साथ कौन-सा अपयश लेकर निकला हूं कि जहां जाता वहीं एक विपत्ति ही बन जाता हू। बीमार

बनकर गंगा की सेवाएँ लीं और बदले में उसे कुछ भी न दे पाया। यहाँ हरिहर ने आगे दौड़कर मुझे प्रश्रय दिया, खिलाया-पिलाया, सत्कार-आतिथ्य किया और पहुँचाने गाड़ी लेकर खुद चला। दुर्भाग्य देखिए गाडी, सवार और बैल सब के सब खड्ड में जा पड़े। दोनों बैल ठौर रहे। हम दोनों मौत के मुँह से बचे, तो दस्युपत्नी के शिकार बने।

मेरे लिए बैलों को गँवाकर हरिहर असहाय होगया। यह मैंने अनुभव किया। यह तो दस्युपत्नी की कृपा का परिणाम समझिये कि उसने हमारा सब कुछ लौटा दिया। उसमें वे चार सौ से कुछ अधिक रुपये भी थे जो मुझे एक रात की डाक्टरी के फलस्वरूप मिले थे। उन रुपयों से मैं हरिहर के अनंत उपकार भार को उतार सकने में समर्थ हुआ। यदि इस समय मैं खाली हाथ होता तो भगवान जाने मुझे ताजिंदगी किस कदर मानसिक कष्ट रहता। हरिहर ने मेरे साथ जाकर बैलों की जोड़ी खरीदी। टूटी गाड़ी की मरम्मत कराई और तब हम विलग हुए। इससे मेरे हृदय का भार बहुत कुछ हल्का होगया।

कलकत्ते के किसी सेठ का यह विनोद ही समझो कि वह हजारों मील की दूरी पर जंगल में एक धर्मशाला खड़ी करवा रहा था। पचास साठ मजदूर काम पर लगे थे। कुछ इधर उधर गावों से सवेरे आजाते और शाम को चले जाते। कुछ ऐसे भी थे जो मेरी तरह खाली हाथ उधर से आ निकले थे और काम में लग गये थे। ईंट-चूना ढोकर आजीविका कमाने का काम मैंने कभी तो किया नहीं था, सोचा भी नहीं था कि कभी मेरे ऊपर ऐसा दुर्दिन भी आयेगा, जब मेरी विद्या कोई काम नहीं आयेगी। विद्या के निकम्मेपन का बदला शरीर को चुकाना पड़ेगा। एक नौजवान, जो वहीं काम में लगा था, मुझे कुछ अपनी कोटि का समझकर मेरी ओर विशेष सहृदयता दिखाकर बोला—पेट भरना ही है तो मेहनत किये बिना नहीं बनेगा।

जिस देश में मेहनत का इतना अपमान किया जाता है कि सारे दिन परिश्रम करने के बाद शाम को केवल सात आने पैसे देकर आदमी के सारे

दिन के कठिन श्रम का बदला चुका दिया जाय वहां श्रम के प्रति लोगों में नीची भावना क्यों न हो ? तो भी उस युवक के प्रोत्साहन से मैंने सोचा, हर्ज क्या है इन लोगों के जीवन को समीप से देखने के लिए फिर कब समय मिलेगा ? मैं तैयार होगया। उसके साथ मैंने भी फावड़ा उठा लिया। मिट्टी पर फावड़े को आजमाया। थोड़ी देर तक विनोद मालूम पड़ा। जिन हाथों में सदा कलम ही पकड़ी थी। उनमें फावड़ा कितनी देर तक आनंद का कारण बन सकता था ? मैं थोड़ी ही देर में हांफ गया। हाथों की चमड़ी दुखने लग गई और मैं बार बार हथेलियों को देखने लगा कि छाले तो नहीं पड़ गये हैं। मेरा साथी युवक मुझसे भी शरीर में कोमल था पर वह इस कार्य से अभ्यस्त होगया था। वह इधर उधर ध्यान दिये बिना अपने कार्य में लगा था। मैंने पूछा—तुम यहीं के हो ?

"नहीं—एक संक्षिप्त सा उत्तर मिला।"

"यहां कितने दिन से काम करते हो ?"

"ग्यारह दिन से।—अपना काम किये जाओ। गुमाश्ता जी देखने आयेंगे। उन्हें काम दिखाई पड़ना चाहिए।"

मैंने कहा—यह काम मेरे वश का नहीं है।

मेरी बात सुनकर उसने एक बार गर्दन टेढ़ी करके मेरी ओर देखा। मुझे लगा कि उस दृष्टि में एक शीतल मरहम है जिसके स्पर्श से आदमी को थोड़ी राहत मिल सकती है। उसने फिर अपने आपको काम में लगा लिया।

मैंने कहा—बड़ा कठिन काम है।

इस बार उसका मुँह खुला। बोला—तुम पुरुष हो कि नहीं ?

मैं—पुरुष होने से ही क्या सब काम करने की क्षमता आजाती है ?

"आजानी चाहिए। ऐसा कौन सा काम है जो आदमी के किये नहीं होता ? थोड़ी बहुत मेहनत, थोड़ी बहुत तकलीफ। काम न होने की क्या बात ?"

इतनी छोटी उम्र में इस स्नेहशील युवक ने दुनियां का इतना ज्ञान पा

लिया है ! मुझे तो अचरज हुआ। अभी तो रेखें तक भीजी नहीं है। चेहरे और तरल-सजल आंखों में भोलापन बरस रहा है। मध्यम कद, छरछरी देह, ढीले-ढाले कपड़े, कछोटा कसे, बड़े इतमीनान से अपने काम में रत।

उसकी बातों से थोड़ा उत्साह पाकर मैंने कुछ देर और फावड़ा चलाया। शीघ्र ही हार गया। हाथ जकड़ गये। हथेलियां छिल गईं। उनसे आग निकलने लगी। मैंने फावड़ा एक तरफ फेंक दिया। "मुझसे यह सब नहीं होगा।"—कहकर मैं गिर पड़ने जैसी दशा में धरती पर बैठ गया।

उसने इस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। दूसरे कमकरों की प्रतिद्वंदिता में मुस्कराता हुआ लगा रहा। गुमाश्ताजी आये। एक हलचल मच गई। सब अपनी अपनी मुस्तैदी दिखाने के लिए भरसक फुर्ती से काम करने लगे। गुमाश्ता जी ने इधर से उधर एक चक्कर लगाया। कहीं कहीं रुककर काम देखा, 'यह करो, वह करो' आदेश दिया। 'यह मजदूर सुस्त है, उस आदमी का शरीर नहीं चलता। यह काम तुम्हें इस तरह करने को किसने कहा ?' इत्यादि बड़बड़ाते वे मेरे सामने आ खड़े हुए। एक नजर ऊपर से नीचे तक डालकर बोले—कभी और फावड़ा नहीं चलाया है ?

मैंने सिर हिलाकर जताया—नहीं।

"तो यहां ठहर कर नाहक समय खराब करना है।"

वे थोड़ी दूर आगे चले गये। फिर लौटकर आये, पूछा—पढ़-लिख सकते हो ?

"हां, थोड़ा-बहुत।"

"बाईस रुपया महीना तलब मिलेगी। सबकी हाजिरी लगाना। निगरानी करना और सामान आये उसे मुस्तैदी और ईमानदारी से दर्ज कर लेना। यही सब काम होंगे। कर लोगे ?"

मैंने कहा—कर लूंगा।

यह लो चोपड़ी सँभालो—कहकर उन्होंने एक खादुआ चढ़ी चौपनियां, जिसमें एक पेंसिल का टुकड़ा बँधा था, मुझे पकड़ा दी। इसके बाद बोले—

दिन के कठिन श्रम का बदला चुका दिया जाय वहां श्रम के प्रति लोगों में नीची भावना क्यों न हो ? तो भी इस युवक के प्रोत्साहन से मैंने सोचा, इसमें क्या है इन लोगों के जीवन को समीप से देखने के लिए फिर कब समय मिलेगा ? मैं तैयार होगया। उसके साथ मैंने भी फावड़ा उठा लिया। मिट्टी पर फावड़े को चलाना। थोड़ी देर तक विनोद मालूम हुआ। जिन हाथों में सदा कलम ही पकड़ी थी। उनमें फावड़ा कितनी देर तक आनंद का कारण बन सकता था ? मैं थोड़ी ही देर में हांफ गया। हाथों की नसें दुखने लग गईं और मैं बार बार हथेलियों को देखने लगा कि छाले तो नहीं पड़ गये हैं। मेरा साथी युवक मुझसे भी शरीर में कमजोर था पर वह इस कार्य में अभ्यस्त होगया था। वह इधर उधर ध्यान दिये बिना अपने कार्य में लगा था। मैंने पूछा—तुम यहीं के हो ?

‘नहीं—एक संक्षिप्त सा उत्तर मिला।”

‘यहां कितने दिन से काम करते हो ?”

‘ग्यारह दिन से।—अपना काम किये जाओ। गुमाश्ता जी देखने आयेंगे। उन्हें काम दिखाई पड़ना चाहिए।”

मैंने कहा—यह काम मेरे बस का नहीं है।

मेरी बात सुनकर उसने एक बार गर्दन टेढ़ी करके मेरी ओर देखा। मुझे लगा कि उस दृष्टि में एक शीतल मरहम है जिसके स्पर्श से आदमी को थोड़ी राहत मिल सकती है। उसने फिर अपने आपको काम में लगा लिया।

मैंने कहा—बड़ा कठिन काम है।

इस बार उसका मुँह खुला। बोला—तुम पुरुष हो कि नहीं ?

मैं—पुरुष होने से ही क्या सब काम करने की क्षमता आजाती है ?

“आजानी चाहिए। ऐसा कौन सा काम है जो आदमी के किये नहीं होता ? थोड़ी बहुत मेहनत, थोड़ी बहुत तकलीफ। काम न होने की क्या बात ?”

इतनी छोटी उम्र में इस स्नेहशील युवक ने दुनियां का इतना ज्ञान पा

साँझ को काम खतम करके मजदूर अपने अपने घरों को चले गये। कुछ आदमी, जो दूर के थे, रह गये। उन्होंने आग सुलगाकर अपनी अपनी रोटी सेंकने की व्यवस्था की। मेरे और अपने दोनों के लिए रोटी उस युवक ने बिना कहे ही बना लीं। रोटी बनाने की उसकी निपुणता देख मुझे उससे ईर्षा होने लगी।

मैंने सराहना करते हुए कहा—यह विद्या तुम्हें किस गुरु ने सिखाई है?

भाभी ने—कहकर वह मुस्करा दिया।

मैं—भाभी ने सिखाई होगी अपने आराम के लिए। सोचा होगा, कभी दुखे-पिराने सहारा लगवाओगे। सो तुम यहां भाग आये।

मेरे ऊपर एक गहरी नजर डालकर उसने पूछा—किसने कहा है भाग आया हूँ?

"मन से ही सोच रहा हूँ। भाभी तो ऐसे कमीले देवर को घर से निकालने से रही।"

वह हँस दिया।

मैंने पूछा—मेरा अनुमान सही है?

"कुछ दूर तक।"

सुनसान रात्रि की गंभीरता घनी हो रही थी। एक पेड़ की छाया में थोड़े फासले से हम दोनों पड़ रहे। रात्रि के अंतिम पहर में शीत से व्याकुल होकर मैंने विशाखा की याद की। काश, मैं उसका बांधा हुआ बिस्तर और कंबल साथ ले आया होता। मैं उठकर बैठ गया। मैंने अपने साथी को पुकारा—लोचन भाई!

उसने अँगड़ाई लेकर लेटे ही लेटे पूछा—क्यों? क्या है?

"सर्दी बहुत है।"

"कोई अधिक नहीं है।"

"मुझे तो लग रही है।"

'यह लो, मेरा कपड़ा डाल लो'—कहकर उसने कपड़ा मेरे ऊपर फेंक दिया।

मेरे साथ आओ मैं तुम्हें यहां से वहां तक सारा काम दिखा दूँ ।

मैं उनके पीछे पीछे हो लिया। घूम घूम कर उन्होंने सब जगह, जहां जहां काम होरहा था, दिखाया। वह नक्शा भी दिखाया जिसके मुताबिक धर्मशाला का निर्माण होना था। मजदूरों और कारीगरों को भी इस बात का पता उन्होंने लगवा दिया कि अब उनके ऊपर एक ऐसे अफसर की नियुक्ति होगई है जो हर समय छाती पर सवार रहकर उनका काम देखेगा। जो नमकहरामी करता सुना जायगा, वह तुरन्त हटा दिया जायगा।

इस प्रकार एक ही चक्कर में मेरा रोब जमा देने की चेष्टा करके वे चले गये। मजदूर और कारीगर कनखियों से मुझे देख देखकर कानाफूसी करने लगे। केवल वह युवक पूर्ववत् निर्विकार भाव से अपने काम में लगा रहा।

गुमाश्ता जी को सौ काम हैं। काम की देख-रेख, हिसाब की जाँच पड़ताल, घरू सट्टा-फाटका और न जाने क्या क्या। इसीसे वे ठहर नहीं पाते। आंधी से आते हैं और तूफान से चले जाते हैं। मजदूरों और कारीगरों को यह उनकी कमजोरी मालूम है। इसलिए उनके आने के समय काम की जो रफ्तार रहती है वह उनकी पीठ फिरते ही अपनी साधारण गति पर आजाती है। मेरी नियुक्ति, इसलिए मेरी समझ में किसी को रुचिकर नहीं हुई। दूसरे एक नवागत को, जो थोड़ी देर पहले तक उन्हीं की श्रेणी का एक मजदूर था, बल्कि उस काम में भी जो असफल ही था, एकाएक अपने निरीक्षक के रूप में स्वीकार करते हुए उन्हें असंतोष होना स्वाभाविक था।

मैं घूमता-फिरता जब अपने उस परिचित युवक के समीप आया। तब उसने पूर्ववत् अपने हाथ के काम को करते करते कहा—यह काम भी तुम्हारे वाले नहीं आयेगा।

मैंने पूछा—क्यों?

"क्यों क्या? देख लेना।"—कहकर वह चुप होगया।

मैंने मन ही मन कहा—यह कौन बड़ा काम है?

वही। जिससे तुमने अभी बातें की थीं।—उसने हाथ के इशारे से लोचन की ओर संकेत किया।

मैंने कहा—वह औरत नहीं है बाबा।

"औरत नहीं है। देखो उसकी चाल। चाल से ही मरद औरत का पता चल जाता है।"

"चल जाता होगा, लेकिन वह औरत नहीं है। उसे मैं जानता हूं।"

"जानते खाक हो। मुझे तो क्या औरत हो कि मर्द। मेरे लिए तो दोनों बराबर हैं, पर तुम मर्द-जवान कैसे हो जो एक औरत को नहीं चीन्ह पाते?"

मैं विचार में पड़ गया। कल से आज तक की लोचन से हुई सारी बातचीत की मीमांसा मन ही मन करने लगा। उसकी आंखों की तरलता, उसकी भोली सूरत, उसकी मीठी हँसी, उसकी जनानी ओढ़नी! तो क्या वह स्त्री ही है?—नहाना मुझे कठिन होगया। जल्दी जल्दी स्नान समाप्त करके मैं लौट आया। लोचन ने रोटी सेंक रक्खी थीं। मेरी प्रतीक्षा में वह बैठा गुनगुना रहा था।

पहुंचते ही मैंने कहा—यहां मेरा रहना नहीं हो सकेगा।

उसने मुँह ऊँचा करके साश्चर्य पूछा—क्यों?

"यहां का काम मेरे वाले नहीं आयेगा।"

"कल जब मैंने यही बात कही थी तब तो तुम कुछ और ही कह रहे थे।"

"हां, पर और भी बातें हैं।"

"और क्या बातें हैं?"

"यह जगह अच्छी नहीं है।"

"यहां का पानी खराब है?"

"पानी तो खराब नहीं है, साथी खराब हैं।"

"कैसे?"

"कोई किसी का विश्वास नहीं करता। कोई किसी को जी की बात

मैंने कहा—तुम क्या ओढ़ोगे ?

"मुझे नहीं चाहिए।"

"क्यों, सर्दी नहीं लगती तुम्हें ?"

"नहीं।"

"तब तो अच्छी बात है" कहकर मैंने कपड़ा बदन पर डाला और पड़ रहा। सवेरे कुछ उजाला होने पर देखा कि मैं एक जनानी ओढ़नी लपेटे पड़ा हू। मैंने पूछा— यह ओढ़नी किसकी है भाई ?

लोचन पहले ही वहां से उठकर चला गया था। मेरी बात का कोई उत्तर नहीं मिला। मैंने ओढ़नी तह करके उसके सामान पर रखदी और पास की नहर में नहाने-धोने चल पड़ा।

नहाकर लौट रहे लोचन से मैंने पूछा—जनानी ओढ़नी किसकी साथ लिए फिरते हो ?

ओठों पर सदा खेलनेवाली मुस्कान के साथ उसने उत्तर दिया—भाभी की।

'तब तुम भाभी को पूरा पूरा धोखा दे आये हो।"

"कैसे ?" उसने सहास पूछा।

"खुद भाग कर। उनकी चीजें चुरा लाकर।"

"और जो उन्होंने ही दी हो ?"

"वे क्यों देने लगीं ? भगोड़े आदमी को कोई कुछ क्यों देगा भला ?"

"निशानी भी नहीं देगा ?"

"तो भाभी की निशानी लिए फिरते हो ?"

मेरी बातों से वह कुछ परेशान दिखाई दिया, बोला—नहाने जा रहे हो, जाओ। मैं चलकर दो एक रोटी सेंक लेता हूँ।

भोले भाले लोचन की बातों में कोई छलछद होगा, इस पर विश्वास न करके मैं नहाने चला गया। नहर पर एक वृद्ध खड़ा मुझे आते देख रहा था, पूछ बैठा—मरदाने कपड़ों में वह औरत कौन जा रही है भाई ?

मैंने चकित भाव से पूछा—कहाँ ?

वही। जिससे तुमने अभी बातें की थीं।—उसने हाथ के इशारे से लोचन की ओर संकेत किया।

मैंने कहा—वह औरत नहीं है बाबा।

"औरत नहीं है। देखो उसकी चाल। चाल से ही मरद औरत का पता चल जाता है।"

"चल जाता होगा, लेकिन वह औरत नहीं है। उसे मैं जानता हूं।"

"जानते खाक हो। मुझे तो क्या औरत हो कि मर्द। मेरे लिए तो दोनों बराबर हैं, पर तुम मर्द-जवान कैसे हो जो एक औरत को नहीं चीन्ह पाते?"

मैं विचार में पड़ गया। कल से आज तक की लोचन से हुई सारी बातचीत की मीमांसा मन ही मन करने लगा। उसकी आंखों की तरलता, उसकी भोली सूरत, उसकी मीठी हँसी, उसकी जनानी ओढ़नी! तो क्या वह स्त्री ही है?—नहाना मुझे कठिन होगया। जल्दी जल्दी स्नान समाप्त करके मैं लौट आया। लोचन ने रोटी सेंक रक्खी थीं। मेरी प्रतीक्षा में वह बैठा गुनगुना रहा था।

पहुचते ही मैंने कहा—यहां मेरा रहना नहीं हो सकेगा।

उसने मुँह ऊँचा करके साश्चर्य पूछा—क्यों?

"यहां का काम मेरे ताबे नहीं आयेगा।"

"कल जब मैंने यही बात कही थी तब तो तुम कुछ और ही कह रहे थे।"

"हां, पर और भी बातें हैं।"

"और क्या बातें हैं?"

"यह जगह अच्छी नहीं है।"

"यहां का पानी खराब है?"

"पानी तो खराब नहीं है, साथी खराब हैं।"

"कैसे?"

"कोई किसी का विश्वास नहीं करता। कोई किसी को जी की बात

नहीं बताता। कपट ही कपट है।"

"यह तो कोई नई बात नहीं है। जहा आदमी है वहीं कपट है, वहीं अविश्वास है। वहीं धोखा और वहीं छल है। इसके बिना आदमी का काम जो नहीं चलता है।"

"घरों में बंद। छतों के नीचे अपने स्वार्थ के लिए वह जो भी करे लेकिन खुले आसमान के नीचे, पवित्र वायुमडल के बीच, अकारण वैसा करने की क्या आवश्यकता है?"

"भेड़िया सब जगह है। आसमान हो चाहे जमीन। मदिर हो चाहे बूचड़खाना। तीर्थ हो चाहे दूकान स्वभाव किसी का बदलता नहीं है। पर यह सब इसी समय सोचने की जरूरत क्यों पड़ी?"

"इसलिए कि तुम्हारे प्रति मेरे मन में किसी ने सशय पैदा कर दिया है। तुम स्त्री हो चाहे पुरुष यह जानकर मेरा कुछ आता जाता नहीं है तो भी उस बुड्ढे की बातों ने मेरे मन में एक अशाति पैदा करदी है। मेरे लिए अब यहा ठहरना ठीक नहीं है।"

मेरी इस बात ने उसके चेहरे के सहजभाव को एक दम बदल दिया। उस पर कुछ देर में काबू पाकर उसने कहा—तब तो तुम्हारे लिए नहीं मेरे लिये यहां से भाग जाना आवश्यक है। स्त्री स्त्री के रूप में पहचानी जाकर क्या कहीं एक क्षण के लिए भी निरापद है?

"सो तो ठीक है, परन्तु—"

"तुम यह कहोगे कि तुम इसीलिए तो चले जाना आवश्यक समझते हो कि मेरा रहस्य बना रहे। लेकिन ऐसा नहीं हैं, जिसकी गन्ध एक आदमी को मिल गई है वह सारे वातावरण में फैल गई होगी।"

'ऐसा कुछ नहीं है। निश्चय ही ऐसा कुछ नहीं है। तुम रहो मैं ही जा रहा हू। तुम हर प्रकार से निरापद हो, यदि तुम अपने को वैसा रख सको।"

"तब हम तुम दोनों ही चलेंगे। कोई आपत्ति तो न होगी?"

"मुझे आपत्ति क्यों होने लगी?"

"अच्छा, पहले रोटी खा लो। बनी रक्खी है।"

खा पीकर हम दोनों एक पगडंडी पर चल पड़े। चलते चलते मैं सोच रहा था कि मैंने यह सब क्या कर लिया है? जानबूझ कर एक बोझा सिर पर क्यों ले लिया है? जीवन मे हसीना से लेकर गंगा तक को पार करता आया। कहीं अटक नहीं हुई। आज अपने पैरों के पीछे पीछे एक नारी को लेकर मैं कहां चल पड़ा हूँ? अपने रहस्य मे लिपटी हुई वह छद्मवेशिनी मेरा अनुसरण करती चली आ रही है। क्यों? मुझसे उसे क्या पाने की आशा है?

अनन्त तक व्याप्त अखंड नीरवता को भंग करते हुए उसने कहा—सोच-विचार की बात नहीं है। कंवल की धूल को जहां झाड़ दोगे वहीं वह पड़ी रह जायगी।

मैंने बात को बदलकर कहा—मेरे सोचने का दूसरा ही विषय है। मैं सोच रहा हूँ कि रत्नों को धूल में रलने के लिए छोड़ देनेवाले कैसे मूर्ख होते हैं।

हँसकर वह बोली—और अनायास धूल में से उनको उठा ले चलने वाले कितने भाग्यशाली होते हैं यह भी तो सोच रहे होगे?

"अवश्य। यह क्यों न सोचूँगा?"

"तब तो भाग्य जागा है तुम्हारा।"

"मेरा भाग्य?"

"हां, क्यों?"

"रत्नों को उपलब्धिवाला मेरा भाग्य नहीं है। मैं तो अकारण उनकी कृपा का पात्र बनता आया हूँ। मुझे निरीह निराधार मानकर सदा ही उन्होंने आवश्यकता से अधिक दिया है। केवल दिया ही है, लिया कुछ भी नहीं है। जहां प्रदान ही प्रदान है आदान बिलकुल नहीं। वहां बराबरी का विनिमय नहीं दया का दान ही विशेष है।"

"कैसे?"

"एक भिखारी की झोली में कब से अब तक अपनी कृपा की भीख

ी उससे तुम्हें संतोष न होगा।"

"मैंने वापस ले लिया। तुम अपनी बात कहो। सुलोचने, तुम पनी कहानी सुनाओ।"

"सुनो, मेरे पिता की अकाल मृत्यु ने मेरे मामा के सामने यह-समस्या ख दी थी कि वे कहां से दान-दहेज लायें और कैसे मेरे भार से मुक्त हों। पेता के यक्ष्मा रोग में, घर में जो कुछ था, वह लगाकर मेरी मां खाली हाथ होगई थीं। मामा पहले से ही ऋणग्रस्त थे। बरसों की दौड़ धूप और परिश्रम के बाद उन्होंने मेरा ब्याह तय किया। घर-मकान सब कुछ बंधक रखकर भी मेरे ससुर और पति को वे सन्तुष्ट न कर सके। उनके पेट भरे नहीं। ब्याह के आधे मंत्र पढ़े गये, आधी भावरें घूमी, प्राप्य पूरा न पाने से विवाह अधूरा ही रह गया। ऐसा ब्याह किसी का कभी न हुआ होगा। वर और बराती लौट गये, उन्हें संतुष्ट करने लायक धनराशि न पाकर मामा मन मसोसकर गये। घर में और कुछ मिला नहीं तो काँच कूट कर उन्होंने पी लिया। अम्मा ने भीतर कोठरी में अपने को बंद करके फांसी लगाली। मैं अकेली—बिलकुल अकेली रह गई। मां और मामा के जीते जी विधवत् ब्याह करके कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं था। मैं सदा ऐसा ही सुना करती थी कि योग्य और अयोग्य कैसा भी तो वर नहीं मिल रहा है। यदि भाड़ में झोंकने की सुविधा होती तो उसी में झोंककर मां सन्तुष्ट हो जातीं। किन्तु मा और मामा के मरते ही मेरे इच्छुकों की संख्या का पार नहीं रहा। अठारह-बीस बरस से लगाकर पचास और पचपन बरस के वयस्कों में मेरे लिये सिर फूटने की नौबत आ गई। मैं चकित थी। यह सब क्या हो रहा है? क्या मेरे मामा अन्धे थे जो इनमें से एक को भी देख न पाये थे। पर असल बात यह थी कि मैं अब लावारिस संपत्ति थी। विधिवत् ब्याह जैसी कोई मर्यादा न होने से भौंरों की भीड़ मेरे चारों ओर घिर आई थी। जो मुझे अधब्याही छोड़ गये थे, वे भी इस लूट में साझीदार होने के लिए दौड़ आये। पहले उनकी बहिन आई, फिर मौसी आई, मुझे समझाया—रुपये पैसे की बात तो मामा और मां के सामने थी।

जो दे सकते हैं उन्हींसे मांगा जाता है। वह झगड़ना भी तो तुम्हारे ही लिए था। उन्होंने नहीं माना। ब्याह नहीं हुआ। तब भी तुम्हें छोड़ थोड़े ही देंगे हम लोग। तुम्हारे गुजारे का प्रबंध हम सब करेंगे। तुम रहो चलकर। रहने के लिए अलग मकान मिलेगा। यहां रहकर ऊँचे-खाले पैर पड़ गया तो हम मुँह दिखाने लायक न रहेंगे। बड़ा और इज्जतदार खान्दान है।

मैंने उत्तर दिया— संबंध और सरोकार सब मामा और मां के साथ चला गया। मुझे न किसी की इज्जत से काम है न खान्दान से। जिसने मेरे सर्वस्व को धूल में मिलाया है उसकी रक्षा की बात कहने के लिए तुम इतनी दूर चलकर मेरे पास आई हो?

मेरे उत्तर ने उन्हें निरुत्तर और निराश कर दिया।

यह था कुल-वधू का मान्य पद जो मेरे सामने पेश किया गया था और जिसे छोड़कर मैं चली आई। तुम्हारी राय है कि मैं जाकर उस पद को फिर लौटा लूँ? विवाहिता तो कहला नहीं सकूँगी। धर्षिता जरूर बन सकती हूं। जब यही बनना है तो वहीं क्यों जाऊँ? देश बहुत बड़ा है और कहीं भी इसके लिए अवसर सुलभ हो सकता है।"

"यह तो निश्चय है कि तुम इस तरह अपने को छिपाकर नहीं रख सकतीं। छिप नहीं सकतीं तो बच नहीं सकतीं। पगपग पर भेड़िये मुँह बाये बैठे हैं। उन्हें पता नहीं लगता तभी तक खैर है। पता लगते ही वे तुरत तुम्हें निगल जायेंगे। तुम्हारा वश नहीं चलेगा।"

'तभी तो तुम्हारी आड़ लेकर चल रही हूँ। तुम कंधे झाड़ दोगे तो कोई दूसरा उपाय देखूँगी। तुम्हें अभी जल्दी तो नहीं है?"

"नहीं, जल्दी ऐसी नहीं है।"

"बहुत दूर तक हम साथ साथ चल सकेंगे, क्यों न?"

"हां, एक बात पूछूँ?"

"पूछो, पूछो क्यों नहीं।"

"इतने सारे प्रस्तावकों में एक भी ऐसा नहीं मिला जिसके ऊपर तुम भरोसा कर सकतीं?"

"लूट का माल झपटने की होड़ाहोड़ी में जो प्रवृत्त हों उन्हें अपने भरोसे और विश्वास का पात्र समझना ही कुछ अशोभन सा है। मेरे पिताजी ने बचपन से मेरे मन को अपने सुसंस्कृत विचारों में इतना डुबो दिया है कि किसी बात के व्यावहारिक और उपयोगी पहलू तक ही सोचकर मैं नहीं रह जाती उसकी शोभनता अशोभनता को लेकर भी थोड़ीबहुत उधेड़बुन किया करती हूँ यद्यपि उनकी यह देन मेरे सुख दुख दोनों को बढ़ाने का कारण बनी है।

सौंदर्य-बोध की इसी भावना ने मुझे ऐसा करने से वर्जित कर रक्खा और इसी कारण मैं वहां से निकल भागी। स्त्री का जीवन योंही पत्थर पर जमी लता की भांति अस्थाई और अदृढ़ है। फिर यदि वह समाज द्वारा स्वीकृत परंपरा के अनुसार भी न हो तो उसकी बराबर दुर्दशा, अवहेलना और अपमान की वस्तु इस दुनियां में दूसरी नहीं है। कम से कम मैं उसकी कल्पना नहीं कर सकती।"

"यह बिल्कुल सच है। तो भी ऐसे उदाहरण हैं जो समाज की परंपराओं को तोड़कर भी सुखी हैं। प्रेम, सद्भावना और समझदारी से काम करनेवाले को पछताना नहीं पड़ता है।"

"सुखी वही हैं जो प्रेम की खातिर या आदर्श के लिए त्याग के पथ पर चल पड़े हैं, और मान अपमान की जिन्हें चाह नहीं तथा दुख को भी सुख मानकर ग्रहण करते हैं।"

"यह तो हई है।"

"इस मिट्टी का बना तो उनमें एक भी नहीं था। दुर्दशाग्रस्त निरुपाय नारी से अपने शरीर की भूख मिटाकर उसे सड़े गले चिथड़े की भांति फेंक देने के लिए ही वे तत्पर थे।"

संध्या समीप थी और हमें रात कहीं ऐसी जगह बितानी थी जहां खाने पीने का ठौरठीक हो सके। इसलिए पीपल की छाया छोड़कर हम चल पड़े।

मैंने सुलोचना से कहा—लोग कहते हैं स्त्री को आदमी का सहारा

चाहिए।

"और तुम्हारी क्या राय है ?" उसने पूछा।

"मेरी राय ठीक इससे उल्टी है। मैं अकेला होता हूं तो खाने पीने सोने बैठने, ठहरने-चलने हर बात की चिन्ता समय से पहले ही सताने लगती है। तुम्हारे साथ बेफिक्र हूं। मैं जानता हूं सब कुछ ठीक हुआ रहेगा।"

मेरी बात से सुलोचना के होठों पर हल्की मुस्कराहट खिल उठी। उसने इस प्रकार मेरे ऊपर एक दृष्टि डाली जैसे मेरे कथन की सचाई की परीक्षा कर रही हो।

परन्तु किसी गांव में शरण लेने से पहले ही हम आंधी पानी के आकस्मिक दैवी कोप के शिकार हुए। पहले क्षितिज के किनारे पर छोटा सा एक भूरा धब्बा दिखाई दिया जो देखते ही देखते सारे आकाश में छागया। हवा सनसनाई और एक विकट हलचल से वातावरण कांपने लगा। भयंकर अंधड़। वृक्ष उखड़ उखड़कर धराशायी होने लगे। सुनसान जंगल में हम दोनों पेड़ों से दूर, एक मैदान में, जमीन से सट रहे।

"मैं तो उड़ी जा रही हूं !" घबराहट के साथ सुलोचना चिल्लाई।

"जोर से जमीन को पकड़ रक्खो।"

पर जमीन को कहीं पकड़ा जा सकता था, तो भी वह धरातल से चिपट रही। अब ऊपर से पड़ने लगा पानी—मूसलाधार पानी। ठंडी हवा, ठंडा पानी, साथ साथ ओलों की बौछार ! बिजली की गर्जन से हृदय दहल दहल जाता था। हम दोनों ने बहुत चाहा कि उठकर पेड़ों की छाया में भाग जाँय। लेकिन प्रलयकारी हवा के झोंके उठने न देते थे। लगता था जैसे खड़े हुए नहीं कि ऊपर का धड़ कमर से उखड़ा। यह तो खैर रही कि ओलों की वर्षा बहुत नहीं हुई, पर थोड़ी देर भीगने से ही हमारे दांत बजने लगे।

मैंने कहा—आज खैर नहीं है।

सुलोचना—बहुत बुरी घड़ी में चले थे।

मैं—लेकिन आंधी कम होरही है।

'और सरदी बढ़ रही है'—उसने कहा।

उसका कथन सत्य था। सरदी के कारण खून जमता मालूम होता था।

मैंने कहा—जो भी हो अब वृक्षों की छाया तले पहुँच जाना चाहिए।

सुलोचना—तो मुझे अपना हाथ दो। गिरने से मेरे घुटने में चोट आगई है। बिना सहारे के चलना कठिन है।

अँधेरे में अन्दाज से मैंने उसकी ओर यह कहते हुए अपना हाथ बढ़ा दिया—चोट कब लगी थी? तुमने बताया तो नहीं।

"बताने से इस आंधी-पानी में कोई इलाज हो सकता था?"—कहकर अपने दोनों हाथों से उसने मेरी बांह का सहारा लिया पर मुझे मालूम होगया कि इतने पर भी वह उठकर चल सकने में समर्थ नहीं है।

मैंने पूछा—अधिक कष्ट है? चल न सकोगी?

कोई उत्तर न देकर एक बार पूरी शक्ति से उसने उठने का प्रयास किया पर न उठ सकी। पीड़ा से व्याकुल उसने मेरी बांह छोड़ दी और धड़ाम से पृथ्वी पर जा पड़ी। चोट पानी और सरदी के संयोग से और भी दुखदायी हो उठी थी।

मैंने कहा—यों न होगा। मैं तुम्हें उठाकर ले चलूँगा।

उसने रोककर कहा—रहने दो। इस बहादुरी से तुम्हारे भी कहीं लग जायगी।

चिन्ता मत करो—कहकर मैंने कसमसाकर अपनी दोनों बाहों पर उसे ले लिया। लेकिन कुछ कदम चलने के बाद ही लगा कि इस प्रकार से चलना सहज नहीं है। आखिर जिस कठिनाई और परिश्रम से गोद में भरकर मैं उसे गंतव्य स्थान तक ले गया वह मैं ही जानता हूँ। कहां तो शीत से शरीर जमा जा रहा था। कहां पसीने से तर बतर होगया। पेड़ की छाया तले पहुंच कर लगा कि आज अपने पुरुषार्थ को सार्थक कर पाया हूं। एक नारी को हृदय के इतने निकट लगाकर रखने का आज पहिला ही अवसर था परन्तु मैं अपने कर्तव्य में इतना लीन था और परिश्रम से इस

क्दर परास्त होगया था कि मन में किसी प्रकार की दुश्चिंता को स्थान ही न मिला।

पानी अब भी बरस रहा था। आंधी अब भी झकझोर रही थी। इतनी दूर चलकर लाने में कब उसकी बाँहें मेरे गले में हार बनकर पड़ गईं यह मैं तभी जान पाया जब गीली भूमि पर उसे उतारकर बैठाने की चेष्टा की। धीरे से अपनी गरदन को मैंने उसकी बाहों से मुक्त करके पूछा—मेरे साथ आकर तुमने क्या पाया ? देख लिया न ?

पैर की पीड़ा से कराहकर उसने उत्तर दिया—आशा से तो अधिक ही पाया। तुम्हारा पता नहीं तुमने क्या क्या खो दिया ?

"मेरे पास खोने को रक्खा ही क्या था ? यह तो कहो इस दुर्दिन में तुम्हारी पीड़ा का क्या उपचार किया जाय ?"

"उपचार का प्रबंध बहुत थोड़े भाग्यवानों को बदा होता है। उन्हीं में से एक मुझे रहने दो। तुम्हें इस अवस्था में और अधिक कष्ट देने की आवश्यकता नहीं देखती।"

"लेकिन तुरन्त कुछ न किये जाने से कष्ट बढ़ सकता है।"

"यहाँ कौनसी औषधि रक्खी है, और कौन से डाक्टर हैं ? एक सूखा कपड़ा भी तो भीगने से बचा नहीं होगा ?"

"नहीं बचा है सही, पर मेरे हाथ तो हैं।" कहकर मैंने उसकी टाँग को पकड़ लिया। आकाश से बूँदाबांदी अब भी हो रही थी पर हवा का वेग कुछ कम हुआ था और क्षितिज के एक कोने से बादल छँट गये थे। आधा चंद्रमा उनके बीच से झांकने लगा था। बर्फ की भाँति शीतल उसके घुटने पर हाथ रखकर मैंने दबाया और पूछा—यहीं दुखता है ?

उसने रोकने का यत्न किया पर मैंने ध्यान न दिया। बल्कि मसलना जारी रक्खा। थोड़ी देर में इस प्रक्रिया से गर्मी बढ़ी और रक्तसंचार होने लगा।

"कहो अब कैसा है ?" मैंने पूछा।

"इतनी मेहनत का भी फल न होगा क्या ? अब तो शायद उठकर

खड़ी हो सकूँ ?" उसने कहा।

"थोड़ी देर ठहर जाओ।" कहकर मैंने मसलना जारी रक्खा। घड़ी डेढ़ घड़ी में उसे उठकर खड़े होते और चलते देखकर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। सेठानी की चिकित्सा कर यश और पैसा पाया था पर आत्मानद नहीं। आज अपनी युक्ति को सफल होते देखकर रोम रोम खिल उठा। थोड़ी देर पूर्व जिसे हृदय विदारक पीडा से व्याकुल पाकर जी व्यग्र हो रहा था अब उसके ओठों पर खिल उठी मुसकान से मन प्रसन्न हो गया।

मैंने पूछा—सरदी अब भी लग रही है ?

"हां थोड़ी थोड़ी।"

मैंने कहा—एक उपाय करो। चादर लपेट लो। ये भारी कपड़े खोल कर सुखा डालो।

पेड़ की ओट में जाकर उसने कपड़े बदले। घाघरे के ऊपर ओढ़नी ओढ़कर जब मेरे निकट आई तो नारी की सहज मोहनी से उसकी काया अपूर्व हो उठी थी। उसे देखते ही मुझे उस दिन की चाँद का स्मरण आगया। अचानक मेरे मुँह से निकल गया—जाओ तुम वही कपड़े पहन लो।

"क्यों ?"

"मेरे साथ रहना है तो बहस नहीं चलेगी। मैं जो कहूँ उसे मानो।"

"तुमने कहा था तभी तो बदले हैं।"

"मैं ही फिर कहता हू, जाओ कपड़े बदल डालो।"

"बारबार कवायद मुझसे न होगी। बिना कारण, बे बात।"

"तो हम तुम साथ न रह सकेंगे।"

"मुझे छोड़कर चले जाओगे ?"

"हाँ।"

"इसी दशा में, यहीं ?"

"हाँ।"

"क्यों, अपने ऊपर भरोसा नहीं रहा है ?"

"सुलोचना मैं भी आदमी हूँ। आदमी की कमजोरियाँ मेरे साथ भी हैं। तुम्हें इस तरह अपने इतने समीप पाकर मेरी मुक्ति का एक ही मार्ग है कि या तो तुम उसी तरह रहो या मैं यहाँ से भाग जाऊँ।"

"कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है, तब मैं क्या कहूँ?"

"तुम्हीं बताओ दूसरा मार्ग। अपने ऊपर विश्वास खोकर तुम्हारे साथ बना रहना अनुचित समझता हूँ।"

"परन्तु हमारे बीच में बाधा कौन-सी है?"

"तुम्हारे जैसा साहस मुझमें नहीं है। यह साहसहीनता ही यही बाधा है। पृथ्वी पर से उखाड़कर एक लता को पत्थर पर रोपने की भूल विनाशक ही हो सकती है।"

"मैं साहस साथ लेकर पैदा नहीं हुई हूँ। दुख-दर्दों की मारी जो समझ पड़ा वही कर डाला। यही मेरे साहस की कथा है। वैसे साहस से शून्य तुम भी नहीं हो। कोई भी नहीं होता।"

"मैं शून्य हूँ, बिल्कुल शून्य। तुम इस पर विश्वास करो। मेरे सामने कोई समस्या आ जाती है तो उसे सहज रीति से निबटाना मेरे लिए कठिन हो पड़ता है।"

"यह तो ऐसी कोई बाधा नहीं है। स्त्री की सहज ईर्षा से नहीं यों ही मेरे मन में एक बात आरही है कि इसका कोई दूसरा ही कारण होगा।"

"हो सकता है परन्तु मैं स्वतः उसे नहीं जानता। इस पर विश्वास करो।"

अविश्वास क्यों करूँगी?—कहकर वह उठी और मेरी आज्ञानुवर्तिनी बनकर फिर मर्दाने वस्त्र पहनने चली गई।

आज मैं सोचता हूँ कि मैंने ऐसा हठ क्यों किया था? दुर्दिन और दुर्भाग्य हम दोनों के सिर पर नाच रहा था। दुर्दैव ने हम दोनों के ज्ञान को हरण कर लिया था।

तीस

प्रातःकाल हुआ। डालों डालों पर सोने की वर्षा हुई। जीवन के स्पन्दन से मुरझाये हृदय करवटें बदलने लगे। जबकि मैं सुलोचना की प्राण हीन देह को अपनी गोद में लिए बैठा था। मेरे हठ की पूर्ति करने के लिए जब वह वृक्ष की ओट में जाकर कपड़े बदलने लगी तो उसका पैर एक विषधर भुजग पर पड़ गया। हम दोनों की तरह ही वह भी आंधी पानी से बचने के लिए वहाँ आ पहुचा होगा। उसने फुंकार के साथ फन उठाया और मुंह भरकर उसे डस लिया। वह भयंकर, चीत्कार के साथ धरती पर लोट गई। मैं झपटकर गया और उसकी अर्धनग्न देह को गोद में उठा लिया। भाग कर उसे चांद के उजाले में ले आया पर अब क्या हो सकता था? सर्प-दंश का विष उसके शरीर पर असर करने लगा था।

सुनसान निर्जन में मैं सर्वथा निरुपाय था। कोई उपचार सभव नहीं था। विष बड़ी तेजी से चढ़ा और उसकी कुंदनवर्ण देह-लता देखते ही देखते नीली और निर्जीव पड़ गई। क्रमशः लोप होती हुई उसकी जीवन-लीला को पत्थर की मूर्ति बना बैठा मैं ताकता रहा। वस्त्र उसने पूरी तरह बदल नहीं पाये थे। वही उसका शरीर था जिसे दो क्षण पहले एक झलक देखने के साथ ही लोभ हो आया था। संपूर्णरूप से अब मेरी गोद में पड़ा था, पर अब मन का लोभ कहां चला गया था? लोभ के स्थान पर व्याकुल करुणा घिर आई थी। इतने दिन मेरे पथ में अनिमंत्रित

, सेवा, सहानुभूति, अपनापा और प्रेम बखेर कर यह सोन-चिरैया
भर में उड़ गई ? मैं विजड़ित, विमूढ़ और वेदनादग्ध बैठा था।
दिन पहले गंगा के अनुज की मृत्यु का दृश्य देखा था और इतने ही
से, परन्तु हृदय इतना प्रज्ज्वलित न हुआ था। उसके समीप पहुंच
भी कुछ दूरी रह गई थी जिसके कारण दुख की ऐसी यथार्थता का बोध
हुआ था। सुलोचना के सहज सामीप्य ने मुझे उसके अभाव
और अधिक दुखदायी बना दिया। उसीमें डूबा मैं चुपचाप बैठा
—एक विस्तृत शून्य संसार मेरे सामने फैला था।

अचानक मेरे कानों में ये शब्द पड़े—धन्य हो भगवन् ! तेरी लीला
र है। तेरी बाहें बड़ी बड़ी हैं। कहीं रात का प्रलय-तांडव और कहीं
शांत सौम्य सुनहला प्रभात !

ऐसा कहते हुए दंडधारी, भगवा वस्त्र धारण किये, स्वामी ब्रह्मचारानंद
सामने अचानक आ खड़े हुए। इस प्रकार एक निष्प्राण शरीर को गोद
लेए मुझे देखते ही वे उछलकर दो कदम पीछे हट गये और एक
शकुन-सा मानकर बड़बड़ाये—राम-राम ! शिव-शिव !!

मैंने पथराई आँखों से उनकी ओर देखा। कुछ कहने की मेरी इच्छा
हुई। तब तक शायद स्वामी जी की शिष्य मडली भी आकर उपस्थित
। एक ने दूर से ही आवाज दी—कुशल तो है गुरुदेव ?

दूसरे ने कहा—स्यात् व्याघ्र हो।

ब्रह्मचारानंद—नहीं रामदास, ठहरो। आज अब आगे चलना नहीं
ा।

उन्होंने हाथ ऊँचा करके सब को जहाँ का तहाँ रोक दिया।

"हमारे मार्ग में कोई बाधा है गुरुवर ?"

"बहस मत करो, रामदास। रास्ते में मुर्दा पड़ा है।"

"मुर्दा पड़ा है, तो क्या उसे देखना भी वर्जित है, गुरुदेव ?"

"वर्जित न हो पर अपना काम तो सिद्ध न होगा।"

एक शिष्य—"निश्चय ही सिद्ध न होगा। उस दिन भी भगवन्

हम लोगों को खाली हाथ और खाली पेट ही लौटना पड़ा था। आश्रम में पहुँचने पर भोजन नसीब हुआ था, वह भी संध्योपरात।"

रामदास—"परन्तु मुझे तो वहाँ जाने की आज्ञा दीजिए भगवन्।"

"मैं जानता हूँ तुम मानोगे नहीं रामदास। अच्छा तुम जाओ। हम लोग आश्रम में चलते हैं।"

स्वामी जी लौट गये। रामदास दौड़कर कौतूहल से भरा मेरे सामने पहुंचा। मेरी गोद में सुलोचना का निर्जीव शरीर रक्खा था। उसने पास आकर पूछा—इन्हें क्या रोग हुआ था महाशय?

मैं—कोई रोग नहीं हुआ था भाई।

"तब यह दशा कैसे हुई?"

"साँप ने डस लिया।"

"सर्प दंश से शरीर ऐसा हो जाता है?"

"हाँ, भाई।"

"आपके पास कुछ रुपया हो महाशय तो शायद आपकी स्त्री के लिए कुछ हो सके। हमारे स्वामी जी सर्प का विष मंत्रों से उतारते हैं। मन्दिर के नाम पर सौ-पचास रुपये भेंट करने से वे प्रसन्न हो जायँगे और—और शायद—।"

"रुपया मेरे पास नहीं है भाई!—और यह शरीर भी अब मिट्टी हो चुका है।"

"रुपया न होने से हमारे गुरुदेव किसी को सुलभ भी नहीं हैं।"

"रुपयों का इतना लोभ?"

"सब सुखों का मूल तो रुपया ही है। आपका घर आसपास में तो नहीं मालूम पड़ता?"

"नहीं।"

"तभी।—और तुम कितनी देर तक इस मिट्टी को लिए बैठे रहोगे?"

यही प्रश्न मैं अपने आपसे कितनी बार कर चुका था। उत्तर क्या हो सकता था, यही सूझता न था। ममता ने हृदय का रोम रोम भर

रक्खा था। उससे विजड़ित और विमूढ़ मैं बैठा था, और पता नहीं कब तक बैठा रहूंगा।

ब्रह्मचारी रामदास बिजली की भांति चपल और कर्तव्यशील था। उसकी सेवापरायण वृत्ति ने मुझे सहारा दिया और सुलोचना के अंतिम संस्कार के लिए वहीं निर्जन में जो कुछ मिल सकता था वह उसने जुटा दिया। ऐसे कठिन दुर्योग में इतने बड़े सुयोग का सजोग उपस्थित होना किसी अलक्ष्य शक्ति की अनुकंपा के बिना नहीं हो सकता, यह मानकर अपनी कुछ दिन की सहचरी को विषण्ण मन से चिता की भेंट कर मैं किसी प्रकार निवृत्त हुआ।

मेरी पलकों पर उमड़ आये जलबिन्दुओं को अपने उत्तरीय से ब्रह्मचारी रामदास ने पोंछते हुए मुझे धैर्य बँधाया—महाशय, दुनियाँ में मरना जीना नित्य हुआ करता है पर शोक आपकी पत्नी ने बीच रास्ते में औ अचानक ही आपका साथ छोड़ दिया। स्त्री का वियोग जिसे सहना पड़ा है वही जानता है। मैं आपके लिए बहुत दुखी हूं। आप हमारे 'सत्प आश्रम' में चल सकते हो तो चलिए। वहाँ थोड़ी देर शांति से विश्रा करने को मिलेगा। परन्तु 'सत्पथ आश्रम' जैसे पवित्र स्थान पर इत देर मुर्दे के साथ बिता लेने के कारण रामदास के लिए भी स्थान न गया था। स्वामी जी के एक शिष्य ने हम दोनों का अवज्ञा के साथ उ प्रवेश निषिद्ध ठहरा दिया।

मेरी अपनी कोई बात नहीं थी। मेरे दुख में कूद पड़ने के स्वरूप रामदास पर यह विपत्ति आई, यह सोचकर मैं शोकाकुल हो मैंने अनुनय के स्वर में उस प्रहरी शिष्य से स्वामी जी की सेवा में आवेदन पहुँचाने की चेष्टा करते हुए कहा—कृपा कर मुझ आगन्तु ओर से स्वामी जी महाराज से जाकर कहिये कि ब्रह्मचारी रामदा किसी प्रकार का अशौच नहीं लगा है। उन्होंने मेरी सहायता अवश् परन्तु मृत शरीर का स्पर्श नहीं किया है।

मेरा निवेदन निरर्थक ही हुआ। स्वामी जी के आज्ञाकारी शिष्य ने

प्रकार मेरी बात को नहीं माना। 'सत्पथ आश्रम' का द्वार रामदास के लिए बन्द ही रहा।

इससे रामदास को कोई विशेष क्षति नहीं हुई, ऐसा कहना ठीक न होगा। विद्या और भोजन का निःशुल्क प्रबंध आश्रम में था। वह सरचकहीन रामदास जैसे ब्रह्मचारियों के लिए छोटी सहायता न थी। परन्तु आश्रम में रहकर और वहां के रहस्यों से अवगत हो जाने से रामदास उसके अणुअणु से परिचित होगया था और मन में वहां की प्रत्येक बुराई के प्रति विद्रोह की भावना उसके भीतर घुमड़ रही थी। उसने मेरा हाथ झटक कर कहा—आप इस तरह अनुनय क्यों कर रहे हैं महाशय? उसकी कद्र करनेवाला इस गोशाला में एक भी नहीं है। मैं इन जानवरों के बीच में अधिक रहना नहीं चाहता।

इस हल्ले-गुल्ले को सुनकर आश्रम के भीतर से कई शिष्य और उनके पीछे खड़ाऊँधारी स्वयं स्वामी जी आकर उपस्थित हुए। उन्होंने बड़ी गंभीरता से मुँह खोला, बोले—रामदास, अभी सबेरे तक तू भी इन्हीं बैलों में से एक था। रास्ता भूल कर घास के बजाय चावल खाजाने से तुझे थोड़ी अक्ल आगई है। तू घर और बाड़े को पहचानने लगा है।

रामदास—आपकी कृपा से गुरुदेव, 'आज से नहीं बहुत पहले से मैं पहचान गया था। उस दिन जब आपने गरीब मोची के दोनों नेत्र सदा के लिए प्रकाशहीन कर दिये थे और सारे जीवन की उसकी कमाई, एक सौ इक्यावन रुपये बारह आने, छीनकर कोष में जमा कर ली थी और उस अभागे को आश्रम से बाहर निकाल दिया था, तभी मैंने समझ लिया था कि यह आश्रम सत्य ही सत्पथ आश्रम है। इसके बाद सर्प-दंशित बालक को लानेवाली विधवा धोबिन को जैसी सान्त्वना आपने दी थी वह इस आश्रम के ही योग्य थी। यदि इस आश्रम में इतने बैलों में से एक भी मानव का जाया होता तो वह तत्क्षण इसमें आग लगा देता—इसे उजाड़ देता।

रामदास की इन बातों ने स्वामी ब्रह्मचारानंद को भीतर से बाहर तक प्रज्ज्वलित कर दिया। लाल पीले होकर वे गरजे—अरे गोबर के पिल्लो,

खड़े खड़े क्या ताकते हो। आश्रम और उसके अधिपति का इस प्रकार अपमान करनेवाले इस कुलांगार को अक्षत चला जाने दोगे?

इतना कहना था कि आश्रम के भीतर से उद्दंड ब्रह्मचारी बड़े बड़े दंड लेकर निकल आये। रामदास ने निर्भीक भाव से कहा— हां हां, गुरुदेव की आज्ञा को पूरा करो। मारो, रामदास खड़ा है।

क्षणभर इसका प्रभाव पड़ा। सब रुक गये पर एक ब्रह्मचारी ने पैंतरा बदलकर लाठी रामदास पर चला ही दी। उसके बाद उसके शरीर पर लाठियों की एक बौछार हो गई। दौड़कर मैंने अपनी देह से उसके लहूलुहान शरीर को ढक लिया।

इसके बाद पुलिस आई। रामदास गिरफ्तार कर लिया गया। उसके ऊपर दुराचरण का अभियोग लगाया गया। एक नाबालिग लड़की ने न्यायाधीश के सामने बयान दिया कि रामदास ब्रह्मचारी ने उससे बलप्रयोग की चेष्टा की थी।

डाक्टर की रिपोर्ट। आश्रम के अध्यक्ष का बयान कि उन्होंने ही अचानक लड़की की चीख सुनी और दौड़कर उसे बचाया। रामदास खूंखार दुराचारी और समाज का शत्रु सिद्ध होकर दो साल के कठिन कारावास के लिए दंडित हुआ। मैं बराबर वहां रहकर प्रयत्न करता रहा कि उसे कुछ सहायता पहुँचाऊँ पर न तो रामदास ने ही स्वीकार किया और न 'सत्पथ आश्रम' के अधिष्ठाता के विरुद्ध कुछ कहने को कोई तैयार हुआ। आधी दुनियां तो स्वामीजी के ऋण-भार से दबी है। एक या दो रुपया सैकड़ा माहवारी ब्याज लेकर स्वामी जी न जाने कितनी प्रजा के अन्नदाता बने हैं। मूल और ब्याज के साथ कइयों की बहू-बेटियों की मुफ्त सेवा भी उन्हें उपलब्ध है। इसके अलावा स्वामी जी आयुर्वेद में निष्णात हैं। नाड़ी ज्ञान और रोग-परीक्षण द्वारा अनेकों को उपकृत किया है। तंत्र शास्त्र, मंत्र शास्त्र, झाड़-फूँक आदि न जाने कितने आडंबर रच रक्खे हैं। मील-दो मील के घेरे वाले अपने आश्रम के हृदय में अवस्थित अतलगृह में, जहां बिना सूचना के कोई जाने नहीं पाता, वे बाँझों को सन्तान देते हैं, युवतियों

की अभिलाषाएँ पूरी करते हैं, प्रौढ़ाओं को गृहकलह निवारणार्थ तावीज बना देते हैं। किसी के हिस्टीरिया रोग का उपाय करते हैं, किसी के भूत उतारते हैं। ऐसे बड़े योगिराज सिद्ध चिकित्सक महात्मा के सबंध में कौन मुँह खोले ? आज कोई कहे, तो कल ही उसे बीमार पड़कर स्वामी जी की शरण में जाना है !

इसका विचार कोई न भी करे तो भी स्वामी जी के पाले हुए साडों का एक गिरोह है। सींग-पूछ न होते हुए भी जिसके बल का पार नहीं है। स्वामी जी के एक इशारे से वे किसी का भी मुँह बद कर सकते हैं, किसी की भी हस्ती को मिटा सकते हैं। फिर भला कौन स्वामी जी की वक्रदृष्टि को किसी दूसरे के लिए निमत्रण दे।

अहिंसा के प्रतीक एक महात्मा का इतना बड़ा आतक देखकर मैं सिहर उठा।

सुलोचना को मौत ले गई। मैं कुछ कर नहीं पाया। रामदास को समाज ने पजे में दबोच कर कानून के शिकजे में दे दिया। मैं देखता रहा—सिर्फ देखता रहा ! मैं निरुपाय प्राणी !

रामदास जेल चला गया। मेरा काम समाप्त हुआ। मैंने आगे का रास्ता लिया। पृथ्वी अनत है, मार्ग का भी कोई पार नहीं है। पथिक चाहिए जो तन में खाक रमाकर घर से निकल पड़े। बधनहीन,मोहममत्व से रहित, सर्वाधिक एकाकी ! वही यात्रा का आनद उठा सकता है। वही आतिथ्य का सच्चा अधिकारी है।

साधारणत. समझदारी और विचारवान होना ये दो ऐसी बातें हैं जिनके कारण लोग जीवन में असफल रहते हैं और समझदार एव विचारवान को इसीलिए सब बेकार आदमी समझा करते हैं। इसके विपरीत मूर्ख किन्तु वाचाल अपनी योग्यता का ढका पीटते हैं और निर्लज्ज सफलता का सेहरा बाधकर घूमते हैं। इस बार ऐसे ही एक महाशय से मेरी भेंट हो गई। लगभग तीस बत्तीस साल से परीक्षा के पीछे पड़े हैं। कोई भी कक्षा दो तीन साल से पहले पास करना उनके भाग्य में भगवान् ने नहीं लिखा है।

आधी से ज्यादा उम्र गंवा देने पर भी वे किसी उपाधि के अधिकारी नहीं हुए। कम से कम तीन बार परीक्षा की लाटरी में टिकट डाला और हर बार असफल रहे। परीक्षक जाने कौन-सी भांग खाकर बैठते हैं। इतना बेचारे लिखते हैं पर उन्हें नहीं जँचता।

प्रकाश जी की मूर्खता की कहानी इतनी रोचक है कि कुछ मत पूछो। अपनी प्यारी संतान का भविष्य उनके हाथों में सौंप देना लोगों की खामख्याली नहीं तो और क्या है? उनकी योग्यता-अयोग्यता, उनकी कुलीनता, उनकी घरेलू अवस्था कुछ भी थोड़े से परिचय में ही मेरे से अप्रकट न रही। उन्होंने बातों की झोंक में इतना अधिक मुझे बता दिया कि उनकी बुद्धिहीनता पर मुझे तरस आता है। मजे की बात तो यह है कि वे अपनी प्रत्येक बात को सुकरात और अफलातून की बात से कम महत्त्व नहीं देते। साधारण परिचय से ही ज्ञात होगया कि वे सदा मिलाया हुआ सितार बने रहते है जहां उंगली फेरी कि स्वर अलापने लगा। कई दिनों से दुर्घटनाओं और दुश्चिंताओं के बीच से गुजरते गुजरते यह नौबत आ गई है कि कुछ मनोरंजन की सामग्री पा लेने के लिये हृदय लालायित हो रहा है। ठीक उसी समय संजोगवश प्रकाश जी से मेरा मिलना होगया। वे किसी छात्रा को पढ़ाकर आ रहे थे। मेरा स्थान की खोज में उन्हें रोककर इतना पूछ लेना ही गजब होगया कि इधर कोई ठहरने योग्य अच्छा स्थान है?

उत्तर में आपने तमाम दुनियां का दास्तान उठा लिया। कहने लगे—आजकल कहीं ठहरने की समस्या बड़ी कठिन है महाशय। यों अनेक धर्मशालाएँ हैं पर वहां मुश्किल से ही स्थान मिल पायेगा। लाखों के व्यय से ये धर्मशालाएँ खड़ी की गई हैं। सेठ-साहूकारों का ही कलेजा है जो इतनी बड़ी बड़ी इमारतें बनवा देते हैं। फिर भी आदमी इस कदर टिड्डीदल की तरह टूटते हैं कि तिल रखने को जगह नहीं मिलती।

मैंने कहा—आप सच कहते हैं श्रीमान् जी।

"हां जी, मैं साधारण आदमी नहीं हूं। मैं अध्यापक हूं। इस तरह से

मेरी बातों से उन्हें शक होगया कि शायद मैं उनकी धारणाओं से सहमत नहीं हूं। अतः वे बोले—आप चाहें मेरी बातों को कुछ भी महत्व न दें महाशय, पर यह आपको मानना ही पड़ेगा कि धन की बड़ी महिमा है। आज जिस आलीशान भवन में आप शय्या ग्रहण किये हुए हैं वह धन का ही प्रताप है। धन से ही धर्म-पुण्य सभी कुछ होता है। ये बड़ी बड़ी धर्मशालाएँ, ये पारमार्थिक चिकित्सालय और ये विधान-सभाभवन धन की महिमा से ही खड़े हैं।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, किसने आपसे कहा है कि इस दास को आपकी वाणी पर अविश्वास है? मैं तो पूरी तरह उसका कायल हूं। जो कुछ शंका थी भी वह आपसे मिलने के साथ ही दूर होगई।

इस प्रकार मैंने रामराम करके उनसे पीछा छुड़ाया। एक दिन मिलते ही प्रश्न किया—आप इन पैसेवालों को कैसा समझते हैं?

मैंने कहा—देवता।

यह सुनकर वे मेरे मुँह की ओर ताकने लगे और बोले—आप हँसी करते हैं?

मैं—हँसी क्यों करूँगा? ऐसा ही तो शास्त्रों में लिखा है।

"सच, कहाँ?"

"आपने पढ़ा नहीं है कि पूर्वकृत पुण्यों से ही इस संसार का वैभव किसी को मिलता है।"

"यह तो मैं भी मानता हूँ पर ऐसे भी लोग हैं जो इससे विपरीत राय रखते हैं।"

"वे क्या कहते हैं?"

"वे कहते हैं कि पैसेवाले सब भेड़िये हैं?"

"आप उनसे पूछिये कि अगर वे भेड़िये हैं तो बड़ी बड़ी पारमार्थिक संस्थाएं क्यों खड़ी करते हैं?"

"यही तो मैं भी उनसे कहूंगा।"

"भेड़िये तो धर्म-पुण्य नहीं करते। उन्हें उसकी जरूरत भी नहीं

है, लेकिन इन सेठ साहूकारों में तो दया-मया सभी कुछ है। चाहे इसीलिए सही कि इससे उन्हें परलोक में सुख-शांति की आशा है या इहलोक में कीर्ति की कामना है।—एक बात और भी है। पूँजीवाद केवल धन का ही नहीं है, नाना प्रकार का पूँजीवाद दुनियां में छाया हुआ है। यों तो सभी भेड़िये हैं। आप जैसे योग्य अध्यापक ज्ञान के पूँजीवाद से दूसरों को आत्मसात् कर लेना चाहते हैं। किसी समय ब्राह्मणों ने सांस्कृतिक पूँजीवाद से आधी दुनियां को त्रस्त कर डाला था। छत्रियों ने शक्ति के पूँजीवाद से सभ्यता को रौंदा था। वैश्यों ने संपत्ति पर एकाधिकार करके वही किया। वह लूट का समय था, और अभी तक लूट का वह युग बड़े मजे से चला जा रहा है। जिनके पास पूँजी है,—धन, शक्ति, ज्ञान, संस्कृति किसी भी तरह की पूँजी, वह शेष समुदाय को पददलित करता जा रहा है। पूँजी के सुफल मंदिर, मस्जिद, विश्वविद्यालय, उद्योगशालाएँ, रसायनशालाएँ, मिलिटरी एकाडेमी, दफ्तर, कचहरी, न्यायालय अपने अपने वर्ग को शक्तिशाली बनाने के लिए ही हैं। किसी भी तरह जो इनके संपर्क में आकर योग्यता संपादित कर लेता है वह शेष मानव-समाज से अपने को पृथक कर लेता है और इसी वर्ग में मिलकर इसी चक्र में शामिल हो जाता है।"

प्रकाशजी—आप इतने ऊहापोह के बाद जिस नतीजे पर पहुंचे हैं मैं अप्रयास ही वहां पहुँच गया। मैं तो इसे पसंद करता हूं। छोटे बड़े, अमीर गरीब का भेद बताने के लिए कुछ तो रहना ही चाहिए। सब बराबर हो जायँगे तो घिनौने और नीच काम कौन करेगा? हम लोग तो यह करने से रहे।

मैं अबतक पूरी तरह गंभीर बना आ रहा था। इस बात से हंस पड़ा। मुझे हँसता देख वे कुछ सकपकाये। बोले—छोड़ो इस झंझट को। न दुनियां कभी बदली है न बदलेगी।

मैंने अपने को दबाकर कहा—हां जी, आदम का बेटा आदम ही रहेगा।

इसके बाद फिर इधर उधर की बातों में उलझ गये। मैंने पूछा—

यह जेब में से क्या झांक रहा है ?

उन्होंने हाथ डालकर तीन चार परचे बाहर निकाल लिए और हँसकर बोले—क्या बतायें भाई । परमिटों के इस जमाने में जेब में और क्या होगा । यह लकड़ी का, यह तेल का, यह चावल का, यह दियासलाई का, यह कपड़े का, यह साबुन का, पांच सात सांट लिये हैं । लोगों को चीजें हाथ नहीं आतीं । आपकी दया से अपने राम को यह दिक्कत नहीं । फिर भी घर में औरत खाये जाती है । अपना पेट भरा रहता है । तो भी कभी कभी सोचता हू कि दुनिया की ये सारी चीजें कहां गायब होगई हैं ?

"युद्ध के कारण चीजों की कमी जरूर हो गई हैं पर ऐसी बात नहीं है कि हर एक चीज का अकाल ही हो । प्रतिबंधों की बहुतायत से लोगों में ऐसा भय छा गया है कि कुछ भी नहीं मिलेगा । सरकारी अफसरों के हाथ में बहुत दिनों के बाद ऐसा सुयोग आया है । वे जनता की हर एक मांग की अपने द्वारा पूर्ति देखना चाहते हैं और उनके अमले को इस बात में प्रसन्नता होती है कि लोग उसके सामने हाथ पसारकर गिड़गिड़ाते हैं । वे अपने इन विस्तृत अधिकारों का अन्त देखना नहीं चाहते । वे मनाते हैं कि यही स्थिति स्थायी होजाय । युद्ध के ये काले कानून ही दुनियां में साधारण जीवन की व्यवस्था का स्थान ग्रहण करलें । यही कारण है कि सरकार के सामने हर एक वस्तु की कमी की रिपोर्टें दिन रात उपस्थित की जा रही हैं । जैसे भृंगी किसी भी जाति के कीड़े को अपनी भनभनाहट से अपने सरीखा बना लेता है उसी तरह वस्तुओं की कमी के आन्दोलन ने सबको उसी धारा में सोचने के लिए बाध्य कर दिया है । दुनिया में ऐसे भूभाग हैं जहाँ वास्तविक कठिनाई और कमी है, परन्तु भारतवर्ष में वैसा नहीं है । सरकारी आंकड़े अगर सही होते तो निश्चय ही देश की बहुत बुरी दशा होजाती । बंगाल में इतना बड़ा अकाल पड़ गया, अनाज की कमी से ? कभी नहीं । उसी बंगाल में अकाल के दिनों में सेना में इतना चावल बरबाद होता था कि उसे खच्चर भी नहीं सूँघते थे । घी के कुप्पे जमीन में ढुलते थे ।

इस देश ने जहाँ एक महात्मा (गांधी) को जन्म दिया है वहीं एक दिव्यद्रष्टा महर्षि (टैगौर) को पैदा किया था। वह अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े पड़े पहले ही यह सब देख चुका था। उसके वे शब्द अमर हैं कि अंग्रेज हिन्दुस्तान से जाते जाते अपने पीछे धूल, कीचड़ और सड़ाईंध छोड़ जायँगे। अखंड हिन्दुस्तान आज नियंत्रणों के कारण खंड खंड हो गया है। यह चीज यहाँ से वहाँ नहीं जा सकती। एक गज कपड़ा और एक सेर चीनी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का अधिकार आज हिन्दुस्तान के सभ्य नागरिक को नहीं रह गया है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे देश की भलाई का सारा ठेका अधिकारियों और अफसरों ने ही ले लिया हो। नागरिक तो सभी उचक्के, स्वार्थी और देशहित से शून्य हैं। मजा यह है कि नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद जैसे स्वतंत्र चेता नेताओं के हाथ में सरकार की बागडोर है परन्तु वे भी वजाय आश्वासन के हर एक वस्तु की कमी का भय खड़ा करते हैं। क्यों, इसलिए कि वावेल-भृंगी ने उन्हें अपनी भन्नाहट में परिस्थिति का भान भुला दिया है। जो सैनिक-कानून उसने लागू किये थे वे अभी चले जा रहे हैं। नागरिक स्वतंत्रता आज सपना होगई है, और हमें कहा जाता है कि स्वतंत्रता देवी का स्वागत करने के लिए हम तैयार हो जायँ।"

"महाशय जी आपका भाषण जरूरत से ज्यादा लंबा हो गया है।"—कहकर प्रकाशजी मुस्कराने लगे।

मैंने कहा—यह तो ठीक है। ये परमिट जेब में लिए घूमा करो। मरने जीने के पासपोर्ट की व्यवस्था को चिरस्थायी वनाये रखनेवाली वर्तमान सरकार चिरजीवी हो।

प्रकाशजी—अच्छा महाशय, मान लो आपको सब अधिकार दे दिये जाँय तो आप क्या करेंगे? क्या आप तुरन्त सब नियंत्रण हटा देंगे?

"यह कैसे संभव है? मेरे सामने भी तो सरकारी रिपोर्टें होंगी। इनके खिलाफ जाने की जिम्मेदारी मैं कैसे ले सकूँगा? फिर कई सहस्र आदमी नौकरी से लगे हैं उन्हें एकाएक अलग करके बेकारी से टक्कर

चलने देना कौन चाहेगा ? जिनके अधिकार छिनेंगे, जिनकी नौकरियां जायंगी, वे क्या मुझे जिन्दा रहने देंगे ?"

"आप कुछ भी करने को तैयार नहीं है।"

"तैयार हूं, पर मैं जानता हूँ कि कर नहीं सकूंगा।"

"तो चुप रहिये। अपने तो रसूक बहुत है। हर चीज का परमिट सहज ही मिल जाता है। और थोड़ी दौड़धूप के बाद आवश्यकता की चीजें भी प्राप्त हो जाती हैं।"

"एक आपको प्राप्त हो जाती हैं।"

"मैं तो अपनी ही जानता हूँ। आजकल दूसरों की चिंता कौन करता है ?"

"ठीक है, अध्यापकों का ऐसा ही आदर्श होना चाहिए।"

"आदर्श, आज आदर्श की बात करते हो ? आप एक आदर्श के पीछे घूमते रहो। न खाने को मिलेगा, न पहनने को, न रहने को। धन नहीं है तो धनवानों की पूजा करो। निर्बल हो तो शक्तिमानों की शरण जाओ। ऐसा करना कुछ बुरा भी नहीं है। हमेशा से दुनिया में यही होता आया है। आगे भी यही होता रहेगा। धन और शक्ति यही दो पूजा की चीजें हैं। पूजते हैं वे सुखी रहते हैं। नहीं पूजते हैं वे कुढा करते हैं।"

अच्छी बात, आपकी राय मानूंगा—मैंने कहा।

"मानते कहां हैं ?"—उन्होंने शिकायत की। "मानते तो उठाऊ चूल्हे की तरह इस जमाने मे फिरते नहीं होते। किसी न किसी सेठ साहूकार के दो चार लड़कों को घेरकर शिष्य बनाकर जम जाते। मुनाफाखोरी से जो कुछ आता है उसमें से कुछ बँटाते। मजे करते। जिनके नसीब नहीं हैं वे कन्ट्रोलों और नियन्त्रणों को कोस रहे हैं। हम तो इनमें उल्टे सुखी हैं। शर्त यही है कि पैसा जेब में हो। वह अंधाधुंध मिल रहा है।"

"यह तो अच्छा अनुभव होरहा है मुझे। इस मुनाफाखोरी से अध्यापक

तक नहीं बचे हैं। परन्तु इसका अन्त कहाँ होगा ?" मैंने कहा।

"यह आप लोग सोचा करें। हम लोग सोचने लगें तो कोरे आदर्श ही हमारे हाथ रह जायँ ?" यह कहकर अपने परमिट सहेजते हुए वे मेरे उत्तर को सुने बिना ही चल पड़े।

मैंने जोर से पुकारकर कहा—आप तो जारहे हैं ?

"हाँ जी, बहुत देर सिरपच्ची कर ली। अब घर-बार की चिन्ता करने दो।"

इस प्रकार प्रकाशजी से भेंट हो जाने के बाद मेरे सामने यह अहम बात थी कि खाने पीने की अब आगे क्या व्यवस्था होगी। पास की पूँजी ने सवेरे ही जवाब दे दिया था। मुझे लगा कि प्रकाशजी के बताये मार्ग के सिवा अब कोई अवलंब नहीं है। लेकिन उन जैसी शेखी और आत्मप्रशंसा की बान कहां से लाऊँगा ?

यही सोचता सोचता मैं नगर से बाहर दूर निकल आया। मेरे पैर एक अपरिचित मार्ग पर मुझे लिए चले जारहे थे। जब ध्यान में यह बात आई तो मैं इतनी दूर निकल आया था कि वहाँ से फिर लौट कर अपने थोड़े से सामान के लिए शहर में जाना कोई बुद्धिमानी की बात न होती। अतः मैं अपनी आदत के अनुसार ईश्वराधीन चलता रहा। मिनट, घंटे और पहर बीत गये, मेरे पैर रुकते न थे। कोई एक अन्तर्प्रेरणा मुझे लिये जा रही थी। सवेरे का चला करीब करीब संध्या समय में एक बड़े गाँव के एक भद्र परिवार के दरवाजे पर जाकर लगभग गिर पड़ा। यह बात वहाँ पर उपस्थित मर्द, औरतें और बच्चे सब बिना बताये ही जान गये। गृहस्वामी वृद्ध गुरुचरन ने आतिथ्य-सत्कार की सहज वाणी में कहा – जमीन पर नहीं महाशय, आप उस खाट पर आराम करिए। कितनी दूर से आप आरहे हैं ? आप थक गये से लगते हैं।

मैंने इशारे से बताया, आपका अनुमान सत्य है। इस पर वे बोले— यह घर अपना ही समझिये। आज रात यहीं विश्राम कीजिए।

मैंने इसके लिए उन्हें मन ही मन धन्यवाद दिया। चारपाई पर मैं

पड़ रहा। एक स्त्री लोटे में ठंढा पानी ले आई। उठकर मैंने आचमन किया। अतिथि के योग्य सुन्दर स्वादिष्ट भोजन पाकर मेरा मन प्रसन्न होगया।

इस सुखी सम्पन्न परिवार में मेरे पहुच जाने से एक संतोष-सा छा गया। पूछने पर पता लगा कि वृद्ध के दो बेटे कई दिन पूर्व व्यापार के सिलसिले में घर से गये हैं। दो तीन दिन पहले ही आजाने चाहिए थे पर वे आज तक नहीं आये। वे भी शाम को थके मादे मेरी ही तरह कहीं आश्रय तलाशते होंगे। इसी ख्याल में सारा परिवार मेरे आतिथ्य में सुख मान रहा था।

मुझे विश्राम करते कुछ ही समय बीता था कि वृद्ध गुरुचरन के दोनों बेटे सकुशल आ पहुँचे। सारे घर में आनद की एक लहर दौड़ गई। गुरुचरन अपने दोनों बेटों, शिवचरन और रामचरन, को बाहों में लपेटे मेरे सामने खींच लाये, बोले—अतिथि भगवान्, आपकी कृपा से मेरे दोनों बच्चे घर आ गये हैं।

ऐसा कहते हुए उन्होंने बारी बारी से दोनों के सिर पर प्यार से इस तरह हाथ फेरा कि मेरा जी गद् गद् हो गया। मैंने पुलकित होकर कहा—बाबाजी, यह आपके पुण्य का प्रताप है।

दोनों लड़कों को भीतर भेजकर वृद्ध मेरे समीप ही बैठ गये। कहने लगे—हम दोनों ने दुनियां में आकर जो इच्छा की वही पाया। आज तक कभी हमारी इच्छा अपूर्ण नहीं रही।

मैंने कहा—आप महात्मा हैं। आप भाग्यशाली हैं। आगे भी आपकी सब इच्छाएँ इसी तरह पूर्ण होंगी।

गुरुचरन—आप जो चाहें कहिये। बात सच है। अब केवल हम दोनों की एक ही इच्छा शेष है—शकुन्तला का ब्याह। हमारी शकुन्तला को आपने देखा ही है।

मैंने श्रद्धापूर्वक सिर हिलाकर जताया—देखा है।

गुरुचरन—कैसी है?

वृद्ध की अनिंद्य सुन्दरी कन्या को देखकर मैं थोड़ी देर पहले ही अपनी दृष्टि पवित्र कर चुका था। मैंने कहा—कुछ मत पूछिये बाबाजी, आपकी कन्या आपके अनंत पुण्य का प्रसाद है। जिस घर में वह पहुँच जायगी वह धन्य होजायगा।

वृद्ध इस बात से खिलकर खीलें होगया। थोड़ी देर मेरे साथ हिलमिल कर बातें करने के बाद वह सोने चला गया। मैं भी लेटा और निद्रामग्न होगया।

आधीरात के समय अचानक बन्दूकों की धांय धांय से मैं अपनी चारपाई पर उछल पड़ा। घर के स्त्री बच्चे चीखने-रोने लगे। पुरुषों में हल्ला मच गया। मैं झपटकर उठा, दरवाजे के पास गया पर वह बाहर से बंद! मैंने किवाड़ों को भड़भड़ाया पर हल्लेगुल्ले में कौन सुनता था। थोड़ी देर में मेरी कोठरी के आगे ही मारधाड़ आरंभ होगई। केवल बीच बीच में एक गंभीर आवाज सुनाई देती थी। किसी को बेजा तौर से सताया न जायगा। हमारी माँग पूरी होनी चाहिए।

मैं कमरे में तड़प रहा था। बाहर लोग सताये जा रहे थे। उन्होंने जो कुछ दिया वह काफी नहीं था। इतने बड़े डाके में इतनी थोड़ी रकम लेकर डाकू छोड़ने को तैयार न थे। उन्हें इस घर से अभी और अधिक लेना था।

मैं किवाड़ से लगा खड़ा था। द्वार पर बुड्ढे गुरुचरन अड़कर खड़े होगये, और बोले—जो कुछ था वह हमने दे दिया। अब हमारे पास देने को कुछ नहीं है।

"हम यह कोठरी देखेंगे"—एक दबंग और डपटभरी आवाज ने कहा।

गुरुचरन—बात मानों। इसमें कुछ नहीं है। इसमें हमारे मेहमान ठहरे हैं। उनकी देह पर जीते जी हाथ न लगाने देंगे।

"यह कुछ नहीं, चौधरी। तुम्हारी यह चाल न चलेगी। इसीमें तुम्हारा खजाना है। सिर्फ साढ़े सात हजार रुपया लेकर हम इस घर से जायँगे? तीन सौ गांवों में अकेला तुम्हारा घर। कम से कम पचास हजार

रुपया नकद होना चाहिए।"

"अब हमारी खाल उतार लो तो भी एक कौड़ी बेशी न पाओगे। चाबिया तुम्हारे आदमियो के पास है। उन्होंने कोना कोना झाड़ लिया है।"

"अच्छा तो दरवाजे के सामने से हट जाओ। हरदेव, चौधरी को धक्का देकर अलग करो और दरवाजा तोड़ दो। हम भी इनके मेहमान को देखें, कैसे हैं।"

गुरुचरन—भगवान् के नाम पर अतिथि को छोड़ दो। मैं बूढ़ा तुम्हारे आगे भीख मागता हूँ।

'हरदेव, इतनी देर क्यों, लाठी का हुदा मार और दरवाजे को पटक दे।"

"तोड़ने की जरूरत नहीं है। दरवाजा भीतर से खुला है।"—मैंने चिल्लाकर कहा।

परन्तु चौधरी गुरुचरन दरवाजे से चिपट गये थे, और हटाने पर भी न हट रहे थे। दस्यु सरदार ने अपने आदमी को ललकारा – यह बुड्ढा नहीं पागल कुत्ता है। शूट करदे, शूट।

तत्क्षण पिस्तौल भभक उठा और वृद्ध गुरुचरन का शरीर देहरी पर लोट गया। खून का एक फुहारा कमरे के भीतर पहुँचने का मैंने अनुभव किया। मैंने अपनी पूरी ताक़त से शेर की भाँति दरवाजे को भीतर से झकझोर डाला। ठीक इसी समय भीतर जनाने में हो-हल्ला मच उठा। उसके बाद उधर भागने की धपधप आवाजें सुनाई दीं।

मेरे दरवाजा भड़भड़ाने से न जाने किस तरह बाहर की कुंडी अलग आ पड़ी। द्वार खुल गया। मैं बाहर निकला। निकलते ही दौड़कर जनाने घर की ओर भागा। वहां जाकर देखता क्या हूँ कि एक नौजवान अपने जैसे एक अन्य युवक को गिराकर उसकी छाती पर सवार है और पिस्तौल की नली उसके कपाल से अड़ाये है। थोड़ी दूर पर शकुन्तला खड़ी सिसक रही है।

नीचे पड़ा युवक गिड़गिड़ाने की मुद्रा में कह रहा था—माफ करो सरदारजी।

सरदार—नहीं, तू नापाक है, कमीना है, पापी है। इतने दिन हमारे गिरोह में रहकर भी नहीं समझा कि हमारे उसूल क्या हैं।

'मैं आपके पैर छूता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ। मैं अपनी भूल के लिए शर्मिंदा हूँ।"

"अच्छा, हाथ जोड़कर इस बहिन से माफी माँग। यह मेरी तेरी और हम सबकी बहिन है।"

धीमी और काँपती आवाज में उसने सरदार की आज्ञा का पालन किया। वृद्ध गुरुचरन की स्त्री ने आगे बढ़कर सरदार का माथा चूम लिया और बोलीं—तुम तो देवता हो भैया। तुम्हें डाकू किसने बनाया है?

सरदार अपने साथी की छाती पर से उतरकर खड़ा होगया। एक स्वस्थ सलोना नौजवान, पंजाबी लहजे में बोला—हम डाकू तो हैं, पर माँ बहनों की अस्मत पर हाथ नहीं डालते। हमें रुपये चाहिए। हमारे सामने बहुत बड़े बड़े काम हैं उसके लिए हमें रुपयों की दरकार है। धन की कमी से हमारा काम रुक जाता है तब हम अमीरों के धन पर कब्जा करके अपना काम चलाते है। गरीबों को नहीं सताते। कमजोरों की रक्षा करते हैं।

इसके बाद सिसक रही शकुन्तला की ओर मुँह करके उसने कहा—बहिन, तू रो मत। बोल तुझे क्या चाहिए?

उत्तर शकुन्तला की माँ ने दिया—तुमने मेरी बेटी को बहिन बनाया है भैया। याद रखना भगवान् तुम्हारा भला करेंगे। तुम जिस काम के लिए इतना बड़ा खतरा उठाते फिर रहे हो, वह कोई साधारण काम नहीं होगा। वह कुछ भी हो उसमें तुम सफल हो, यही मेरा आशीर्वाद है।

सरदार—मैं तुम्हारे आशीर्वाद का पात्र नहीं हू मालाजी। मैं डाकू तुम्हारे घर को लूट खसोटकर जा रहा हू। मेरी इस बहिन को मेरे एक मनहूस साथी ने अपमानित करने की चेष्टा करके मेरे काम और उद्देश्य

को कलङ्कित कर दिया है। इसके लिए मैं दुखी हूँ। निहायत दुखी हू। मैं किसी तरह उसे क्षमा न करता बल्कि उसके भेजे को उसके कपाल से बाहर निकाल देता यदि वह मेरी बात मानने में एक क्षण को भी देरी करता। अपनी समझ में अच्छे उद्देश्य में लगे रहने पर भी हम लोगों के हाथ खून से रँगे रहते हैं। इसके बिना हमारा काम नहीं चलता।—

बाहर बारबार सीटी की आवाज होरही थी। मालूम पड़ता था यह उनके इकट्ठे हो जाने का सिगनल था!

सरदार ने एक दफा फिर कहा—बहिन, तू बोल नहीं रही है? एक भाई के सामने कहने में तो सकोच न होना चाहिए।

इस बार भी शकुन्तला की माँ ने ही उत्तर दिया।—वह बहुत शर्मीली लड़की है। वह न बोलेगी भैया। तुम बड़े भैया की तरह यही आशीर्वाद दे जाओ कि उसके लिए हमारे हाथ पांव न रुकें।

सरदार ने शकुन्तला की मा की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। यह देख वे बोलीं—इस समय तो हमारे हाथ कट गये हैं भैया। कुछ बचा नहीं है, पर तुम भी तो किसी अच्छे काम में ही लगाओगे। इसीसे चुप हूँ। मुझे अपनी शकुन्तला को ब्याहना है। यही एक बड़ा काम है हमारे सामने।

"तुम्हें इसका विश्वास है कि हम यह रुपया किसी अच्छे काम में ही लगायेंगे?"

"क्यों न होगा?"

"तो बोलो तुम अपनी लड़की के ब्याह में कितने से काम चला सकोगी?"

"दो हजार से।"

"इसके लिए मैं तीन हजार छोड़े जा रहा हू। इतने से तो काम चल जायगा?"—कहकर उसने इशारा किया। तत्काल तीन थैलियां आकर पड़ीं।

फिर भी काम न चले तो फतेसिंह अकाली को याद कर लेना,

माता जी ! कहता हुआ वह युवक रिवाल्वर हाथ में लिए हमारे सामने से शेर की तरह निकल गया। उसके साथी भी उसके आगे पीछे निकल गये।

शकुन्तला की माँ आश्चर्य से अवाक् वहां खड़ी रह गई। शकुन्तला ने भी संकोच और भय से मुक्त-सी होकर उधर देखा जिधर सरदार फतेसिंह गया था।

क्षणभर में बाहर रास्ते पर आदमियों के भारी पैरों की धमक भर सुनाई पड़ती पड़ती शून्य में विलीन होगई।

उसके बाद मैं वहां क्षणभर भी नहीं ठहर सका। सरदार फतेसिंह अकाली की वीरोचित बातें मेरे कानों में गूँजती रहीं। आज भी उस रात की दिल दहला देने वाली घटनाओं के बीच में इस नाटक का मनोमुग्धकर दृश्य आँखों के सामने सजीव हो उठता है। उसे किसी तरह भूल नहीं पाता हूं।

सारा गांव चौधरी गुरुचरन के घर पर उमड़ आया। डाकुओं के भय से लोग घरों में छिप गये थे या बाहर भाग गये थे वे सब इकट्ठे होगये।

शेष रातभर इस अनहोनी घटना की चर्चा ही होती रही पर चौधरी गुरुचरन इस गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए वहां न थे। उनकी अंतिम क्रिया में अपना सहयोग देकर एक मनहूस अतिथि की भांति चुपचाप मैं अपने पथ पर हो लिया।

इकतीस

इस दुनियां में कितने दुख हैं, क्या इनकी गिन्ती कभी हो सकेगी ?

संभवतः नहीं। इनका पूरा लेखा तैयार करनेवाला मुनीम प्रकृति के दरबार में भी शायद नहीं है। और इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि दुखों की इस विपुल राशि का अधिकांश स्त्रियों के हिस्से में पड़ा है। इसीसे नारी जाति मेरे निकट और उन लोगों के निकट, जो कष्टसहन को तपस्या का गौरव प्रदान करते हैं, महनीय और पूजनीय है। उसकी विकृतियों, विरूपताओं और त्रुटियों को इसीसे घृणा की नहीं सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन ऐसे नर-पिशाचों की कमी नहीं है जो सदा ही इस संबंध में हृदयहीनता का परिचय देते हैं। तपस्विनी नारी के ऊपर उनके अत्याचारों का अन्त नहीं होता।

मुझे याद आती है कि वह पतिता विन्ध्येश्वरी जो दुनियाँ की लानत-मलामत को अपने सिर पर ओढ़कर भी अपने प्रेमपात्र के लिए घर-बार छोड़ उसके पीछे हो ली थी। भाई-चारे, बन्धु-बिरादरी सबने उसके नाम पर थूका था। एक कुलीन घराने में जन्म लेकर भी भाग्य ने उसे पतन की ओर ढकेल दिया था। फिसलती हुई वह एक कठोर चट्टान से आ टकराई और उसे ही अपनी समस्त ममता के साथ जकड़ लिया था। उसके ऊपर अपना सर्वस्व होम देने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

यह तो स्त्रियों की स्वाभाविक कमजोरी है कि वे स्वभावतः अपने समीपी पुरुष के ऊपर अपने मोह का विस्तार करने के लिए उसी तरह विवश होजाती हैं जिस प्रकार एक लता पास के वृक्ष को आवेष्ठित किये बिना नहीं रहती। परन्तु सदीप विन्ध्येश्वरी का न तो समीपी था और न उसके हृदय में उसके लिए कोई विशेष स्थान था। फिर भी वह उसे जब किसी तरह पा गई तो उसे ही संसार सागर का जहाज समझ उसके सुख दुख की अनन्य सहचरी बन गई। वह दिन मैंने देखा तो नहीं पर सुन चुका हूँ कि जब सदीप सब आशाएँ खोकर रोग-शय्या पर पड़ा था और डाक्टर ने उसे रक्त देने की व्यवस्था की थी। उस समय विन्ध्येश्वरी ने डाक्टर से कहा था—कोई चिन्ता नहीं है डाक्टर साहब। मेरे शरीर में काफी खून है। आप जितना चाहिए लीजिए।

डाक्टर—तुम बरदाश्त नहीं कर सकोगी।

विन्ध्येश्वरी—बरदाश्त की कौनसी बात है। आप बेफिक्र होकर अपना काम करें। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।

डाक्टर—अच्छी बात है।

इसके बाद एक बार नहीं तीन तीन बार काफी मात्रा में रक्त लेकर संदीप के शरीर में पहुँचाया गया। वह नीरोग हुआ। बेचारी विन्ध्येश्वरी का सुकुमार शरीर इस रक्तदान से इतना अशक्त होगया कि जब बैठे बैठे खड़ी होती तो आंखों के आगे अन्धकार छा जाता।

वे सब कष्ट उठाकर संदीप को उसने प्राप्त किया था। वह उसे आधीरात के समय कुछ रुपयों में एक राक्षस को बेच गया। उस नरभक्षी बकासुर ने उसका अंगभंग करके उसे फुटपाथ पर डाल दिया, जहाँ दुर्गन्ध को बहाती हुई नाली उसकी सहचरी बनी है। अचानक उस विन्ध्येश्वरी ने मेरा ध्यान खींच लिया। साधनहीन मुझ परदेशी की सहायता से उसे जो लाभ हुआ, सो हुआ, मेरे लिए मेरा यह दया-दान अनंत पुण्यों का प्रतिफल बन गया। यदि मेरी दृष्टि उसपर न पड़ती और मैं यों ही निकल जाता, या देखकर भी सहज करुणा का उद्रेक न होता तो मैं क्यों वहां ठहरता? अपने रास्ते चला जाता और भाग्य की रेखा पर जैसे चलता आया था वैसे ही चलता रहता।

मैं विन्ध्येश्वरी के पास बैठ गया और अपने झोले में से थोड़ा सा कपड़ा निकालकर उसके घावों की मरहम पट्टी करने लगा। एक कठोर निर्मम कंठ ने गुर्राकर पिछले मकान की छत से धमकाया—ओ डाक्टर के बच्चे, खैर चाहता है तो अपना रास्ता ले।

मैंने घूमकर देखा। दो लाल-लाल आंखें मेरी ओर आग बरसा रही थीं। मैंने उनकी ओर स्थिर दृष्टि से ताकते हुए उत्तर दिया—बिना फीस लिए जो डाक्टरी करने चलता है वह अपना कर्तव्य पूरा करता है। लाल पीली आंखों की वह परवाह नहीं करता।

विन्ध्येश्वरी ने सकरुण दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—मुझ

मेरी बातें सुनकर उसने कुछ कहा नहीं। केवल मेरी ओर देखता रहा। मैंने फिर कहा--लेकिन भाई, जिस चीज के लिए तुमने रुपया खर्च किया है, जिस चीज को तुम अपने आनन्द का आधार समझते हो, उसकी ऐसी दुर्दशा क्यों ? क्या फूलों के हार को मसल डालने में कोई आनंद है ?

किसी भलेमानस को कभी इस तरह दया दिखाते हो तो मैं मानूँ। जहां देखा वहां स्वारथ के सिवा कुछ नहीं। एक नौ जवान औरत की जगह पर किसी बुढ़िया का पंजर होता बाबूजी आपको भी दया शायद ही आती ?—कहकर गनपत एकबार ठठाकर हँसा और मेरी भर नजर देखा।

मैंने अपने मनको टटोला और उसके आरोप में बहुत कुछ तथ्य पाया। वह अपनी इस बात में दुनियां के व्यवहार की सचाई के व्यक्त कर गया था। क्षणभर उस गँवार और उद्दंड मनुष्य की स्पष्टोक्ति ने मुझे चुप कर दिया। उसके बाद अपने को बटोर कर मैंने कहा—तुम्हारी बात ठीक हो सकती है। पर दुनिया में ऐसे आदमियों की बिलकुल ही कमी नहीं हो गई है जो—

उसने मुझे आगे कहने नहीं दिया। बीच ही रोककर बोला—रहने दो बाबूजी, रहने भी दो। ऐसे अदमियों की दुहाई मत दो। इसमें कुछ सार नहीं है। मैं उन सब की असलियत जानता हू। जिस काम को शंकर भगवान जीत नहीं सके, उसे हाड़मास के पुतले जीत लेंगे ? लेकिन सचाई पर मैं सदेह करता।

मैंने कहा—धन्यवाद।

गनपत—नहीं नहीं बाबूजी, आप इसे अपने ही पास रखिये। इससे मैं बहुत डरता हू। आप मेरे सौ रुपये लौटा देते तो मैं खुशी खुशी उन्हें रख लेता, फिर वह कुतिया जहन्नुम में जाती। आपका यह धन्यवाद मुझे नहीं चाहिए।

मैंने खीझ कर कहा—मुझे तुम्हारे साथ बात करने की फुरसत नहीं है।

गणपत—फुरसत नहीं है तो जाइये यह रास्ता पड़ा है। अगर आप ले जाना चाहते हों तो मैंने उसे बख्श दी। अब खुशी से लेते जाइये।

मुझे क्रोध आगया। मैंने कहा—तुम जानवर हो। तुम नहीं जानते कि सौ रुपये में एक औरत को खरीदकर उसके मालिक बन जाना चाहते हो। उसके ऊपर मनमाना अधिकार चलाना चाहते हो ?

"मैं क्या चलाना चाहता हूँ। सारी दुनियां में रुपये की हुकूमत चलती है। आप नाराज न हों बाबू साहेब ! मैं ठीक बात कह रहा हूं।"

मैंने देखा वह सचमुच ही ठीक बात कह रहा था। कोई भी तो ऐसी जगह नहीं है जहाँ रुपये का जोर न हो। मैंने अपने क्रोध को दबाया, कहा—मैं समझता हूँ तुम निरे राक्षस नहीं हो। तुम उस औरत के प्रति हमदर्दी का बर्ताव करोगे।

उसने मेरी बात को मान लिया। बोला—ऐसा ही करूँगा बाबू साहेब। मैंने सौ रुपये यों ही नहीं गँवाये थे। उसे लेकर सोचा था कि अब एक किनारे पर लग गया। तमाम जिन्दगी आवारगी में बिताकर अब वह सुख पाऊँगा जिसको भलेमानसों की जिन्दगी कहा जाता है, पर वह ऐसी चुड़ैल निकली कि मेरे रोमरोम में आग लगा गई। अभी भी क्या पता उसे समझ आई या नहीं ?

मैंने समझाया—देखो गणपत, तुम थोड़ी देर के लिए उसको अपनी जगह और अपने को उसकी जगह रक्खो। फिर सोचो तुम ऐसी हालत में क्या करते ?

गणपत—वह औरत है, मैं मर्द-बच्चा हूं बाबू साहेब !

"इसमें शक नहीं"—मैंने कहा, "पर औरत भी तो आदमी की तरह ही दिल रखती है।"

मेरी बातों से वह कुछ देर सोच में पड़ा रहा। उसके बाद बोला—अच्छी बात मैं मान लेता हूँ। दो एक दिन में उसे घर ले जाऊँगा। जहां चाहेगी वहाँ उसे पहुँचा दूँगा।—परन्तु संदीप के पीछे फिरेगी तो वह उसे फिर किसी के हवाले कर देगा। वह आदमी के रूप में राक्षस का बच्चा है।

सचमुच वह इससे भी कुछ अधिक है—कहकर मैंने उसकी बात का

संभवतः नहीं। इनका पूरा लेखा तैयार करनेवाला मुनीम प्रकृति के दरबार में भी शायद नहीं है। और इसमें तो कोई सदेह नहीं है कि दुखों की इस विपुल राशि का अधिकाश स्त्रियों के हिस्से में पड़ा है। इसीसे नारी जाति मेरे निकट और उन लोगो के निकट, जो कष्टसहन को तपस्या का गौरव प्रदान करते हैं, महनीय और पूजनीय है। उसकी विकृतियों, विरूपताओं और त्रुटियों को इसीसे घृणा की नहीं सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन ऐसे नर-पिशाचो की कमी नहीं है जो सदा ही इस संबध में हृदयहीनता का परिचय देते हैं। तपस्विनी नारी के ऊपर उनके अत्याचारों का अन्त नहीं होता।

मुझे याद आती है कि वह पतिता विन्ध्येश्वरी जो दुनियाँ की लानत-मलामत को अपने सिर पर ओढ़कर भी अपने प्रेमपात्र के लिए घर-बार छोड़ उसके पीछे हो ली थी। भाई-चारे, बन्धु बिरादरी सबने उसके नाम पर थूका था। एक कुलीन घराने में जन्म लेकर भी भाग्य ने उसे पतन की ओर ढकेल दिया था। फिसलती हुई वह एक कठोर चट्टान से आ टकराई और उसे ही अपनी समस्त ममता के साथ जकड़ लिया था। उसके ऊपर अपना सर्वस्व होम देने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

यह तो स्त्रियों की स्वाभाविक कमजोरी है कि वे स्वभावतः अपने समीपी पुरुष के ऊपर अपने मोह का विस्तार करने के लिए उसी तरह विवश होजाती हैं जिस प्रकार एक लता पास के वृक्ष को आवेष्ठित किये बिना नहीं रहती। परन्तु संदीप विन्ध्येश्वरी का न तो समीपी था और न उसके हृदय में उसके लिए कोई विशेष स्थान था। फिर भी वह उसे जब किसी तरह पा गई तो उसे ही ससार सागर का जहाज समझ उसके सुख दुख की अनन्य सहचरी बन गई। वह दिन मैंने देखा तो नहीं पर सुन चुका हूँ कि जब सदीप सब आशाएँ खोकर रोग-शय्या पर पड़ा था और डाक्टर ने उसे रक्त देने की व्यवस्था की थी। उस समय विन्ध्येश्वरी ने डाक्टर से कहा था—कोई चिन्ता नहीं है डाक्टर साहब। मेरे शरीर में काफी खून है। आप जितना चाहिए लीजिए।

डाक्टर—तुम बरदाश्त नहीं कर सकोगी।

विन्ध्येश्वरी—बरदाश्त की कौनसी बात है। आप बेफिक्र होकर अपना काम करें। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।

डाक्टर—अच्छी बात है।

इसके बाद एक बार नहीं तीन तीन बार काफी मात्रा में रक्त लेकर संदीप के शरीर में पहुँचाया गया। वह नीरोग हुआ। बेचारी विन्ध्येश्वरी का सुकुमार शरीर इस रक्तदान से इतना अशक्त होगया कि जब बैठे बैठे खड़ी होती तो आंखों के आगे अन्धकार छा जाता।

वे सब कष्ट उठाकर संदीप को उसने प्राप्त किया था। वह उसे आधीरात के समय कुछ रुपयों में एक राक्षस को बेच गया। उस नरभक्षी बकासुर ने उसका अंगभंग करके उसे फुटपाथ पर डाल दिया, जहाँ दुर्गन्ध को बहाती हुई नाली उसकी सहचरी बनी है। अचानक उस विन्ध्येश्वरी ने मेरा ध्यान खींच लिया। साधनहीन मुझ परदेशी की सहायता से उसे जो लाभ हुआ, सो हुआ, मेरे लिए मेरा यह दया-दान अनंत पुण्यों का प्रतिफल बन गया। यदि मेरी दृष्टि उसपर न पड़ती और मैं यों ही निकल जाता, या देखकर भी सहज करुणा का उद्रेक न होता तो मैं क्यों वहां ठहरता? अपने रास्ते चला जाता और भाग्य की रेखा पर जैसे चलता आया था वैसे ही चलता रहता।

मैं विन्ध्येश्वरी के पास बैठ गया और अपने झोले में से थोड़ा सा कपड़ा निकालकर उसके घावों की मरहम पट्टी करने लगा। एक कठोर निर्मम कंठ ने गुर्राकर पिछले मकान की छत से धमकाया—ओ डाक्टर के बच्चे, खैर चाहता है तो अपना रास्ता ले।

मैंने घूमकर देखा। दो लाल-लाल आंखें मेरी ओर आग बरसा रही थीं। मैंने उनकी ओर स्थिर दृष्टि से ताकते हुए उत्तर दिया—बिना फीस लिए जो डाक्टरी करने चलता है वह अपना कर्तव्य पूरा करता है। लाल पीली आंखों की वह परवाह नहीं करता।

विन्ध्येश्वरी ने सकरुण दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—मुझ

अभागिनी के लिए अपने को संकट में डालनेवाले तुम कौन हो भैया ! तुम जाओ, अपना रास्ता लो। मैं तो भाग्य में यही लिखा लाई हू। वह सब भोगे विना निस्तार नहीं है।

मैंने कहा—तुम चिन्ता न करो। सकट मेरे कपड़ों को भी नहीं छू पाते। मैं निरन्तर उनके सम्पर्क में आकर भी ज्यों का त्यों बना हू।

वही हुआ। इस प्रकार शेर की तरह दहाड़नेवाली वह आवाज बन्द होगई। मेरे कार्य का फिर किसी ने विरोध नहीं किया। जैसे जी चाहा मैंने विन्ध्येश्वरी की चिकित्सा की। परन्तु इतने बड़े शारीरिक उत्पात को क्या यों शमन किया जा सकता है ? किसके वश की बात है ?

अपना काम समाप्त करके मैंने कहा—कुछ तो हुआ है, पर यह पर्याप्त नहीं है। तुम्हें अस्पताल में रहना ही होगा। तुम्हारा अपना कोई यहां मालूम नहीं पड़ता है ?

विन्ध्येश्वरी—यहा क्या, आज कहीं भी अपना कहलानेवाला कोई नहीं है, परन्तु जिसके लिए तुम्हारे जैसे बटोही अपने हृदय की ममता को उदारता से उँडेल सकते हैं वह एक दम अभागी भी नहीं कही जा सकती।

"हां, इसलिए तो तुम्हें अस्पताल ले चलना होगा।"

"जैसी इच्छा"—कहकर विन्ध्येश्वरी गद्‌गद्‌ होगई।

एक सस्ती किराये की गाड़ी पर बड़ी कठिनाई से उसे डालकर मैं अस्पताल ले गया। वहां पहुँचते पहुचते कष्ट से वह बेदम होगई। मुफलिसी और गरीबी के कारण उसे भर्ती कराने में काफी परेशान होना पड़ा, पर एक सहृदय डाक्टर की कृपा से किसी तरह काम बन गया और मैंने समझा कि जीवन में यह भी एक सफलता पाई।

अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए निकल कर कैसे कैसे झंझट मोल लिये यह सोचता हूं तो अपने ऊपर ही क्रोध होने लगता है। कोई गृह त्यागी सन्यासी गृहस्थी बसाकर बैठ जाय और उसके कच्चे बच्चे उसे चारों ओर से घेर लें तो उसकी आत्मा ग्लानि के दाह से प्रज्ज्वलित हुए बिना न रहेगी। मेरी भी लगभग वैसी ही हालत थी।

मालूम पड़ता है अस्पताल के बाहर ही वह कृष्णकाय यमदूत मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। सड़क पर पग रखते ही मेरा रास्ता रोककर खड़ा होगया और कठोर स्वर में बोला—सौ रुपये इधर निकालकर रक्खो फिर आगे कदम बढ़ाना।

मैंने इस तरह उसकी ओर देखा कि वह मेरी सूरत अच्छी तरह देख ले। किसी दूसरे के धोखे में मेरे प्रति अन्याय न करे। इस प्रकार मुझे ताकते देखकर वह और भी कठोर हो उठा, गरजकर बोला—कहां रख आये हो उसे? जानते हो उसके लिए मैंने अपनी पसीने की कमाई के एक सौ रुपये खर्च किये हैं। मुफ्त में नहीं पड़ी पाई है।

उसकी गोलमटोल काली आंखों में छा उठी लाली को उमड़ते देखकर मुझे याद आगया कि इन आँखों की ज्वलन्त दृष्टि मैं दो घन्टे पहले देख चुका हूँ। उसकी बगल में दबे हुए लोहे के छड़ से मुझे स्थिति की गम्भीरता का पता चल गया।

मैंने सहज भाव को बनाये रखने की चेष्टा करते हुए उत्तर दिया—तुम उस लड़की के लिए कह रहे हो? अगर वह तुम्हारी है तो कहीं न जायगी। मैंने तो उसे मरने से बचाने की चेष्टा भर की है। कोई अपराध नहीं किया है?

वह बोला—मेरा नाम गनपत है। अगर मगर का कानून मैंने दूसरों के लिए छोड़ दिया है। इसलिए वह कानून मेरे सामने न बघारो। सौ रुपया उसका मुँह देखने के लिए मैंने नहीं दिये थे।

मैंने उत्तर दिया—देखो गनपत, तुमने रुपये खर्च करके उसे लिया था या कैसे, इससे मुझे वास्ता नहीं। मैं यह भी नहीं कहता कि रुपये से खरीदकर तुम किसी पर इस तरह राक्षसपन कर सकते हो या नहीं? मैंने तो एक दया की पात्र नारी को रास्ते में पड़ा पाया और उसके प्रति आदमी के कर्तव्य को पूरा किया। वह अस्पताल में है। शीघ्र चंगी हो जायगी। तुम्हारी चीज तुम्हारे पास ही होगी। इसमें अगर मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया हो तो कहो।

मेरी बातें सुनकर उसने कुछ कहा नहीं। केवल मेरी ओर देखता रहा। मैंने फिर कहा--लेकिन भाई, जिस चीज के लिए तुमने रुपया खर्च किया है, जिस चीज को तुम अपने आनन्द का आधार समझते हो, उसकी ऐसी दुर्दशा क्यों ? क्या फूलों के हार को मसल डालने में कोई आनद है ?

किसी भलेमानस को कभी इस तरह दया दिखाते हो तो मैं मानूँ। जहां देखा वहां स्वारथ के सिवा कुछ नहीं। एक नौ जवान औरत की जगह पर किसी बुढ़िया का पजर होता बाबूजी आपको भी दया शायद हो आती ?—कहकर गनपत एकबार ठठाकर हँसा और मेरी भर नजर देखा।

मैंने अपने मनको टटोला और उसके आरोप में बहुत कुछ तथ्य पाया। वह अपनी इस बात में दुनियां के व्यवहार की सचाई के व्यक्त कर गया था। क्षणभर उस गँवार और उद्दड मनुष्य की स्पष्टोक्ति ने मुझे चुप कर दिया। उसके बाद अपने को बटोर कर मैंने कहा—तुम्हारी बात ठीक हो सकती है। पर दुनिया में ऐसे आदमियो की बिलकुल ही कमी नहीं हो गई है जो—

उसने मुझे आगे कहने नहीं दिया। बीच ही रोककर बोला—रहने दो बाबूजी, रहने भी दो। ऐसे अदमियों की दुहाई मत दो। इसमें कुछ सार नहीं है। मैं उन सब की असलियत जानता हू। जिस काम को शंकर भगवान जीत नहीं सके, उसे हाड़मांस के पुतले जीत लेंगे ? लेकिन सचाई पर मैं सदेह करता।

मैंने कहा—धन्यवाद।

गनपत—नहीं नहीं बाबूजी, आप इसे अपने ही पास रखिये। इससे मैं बहुत डरता हू। आप मेरे सौ रुपये लौटा देते तो मैं खुशी खुशी उन्हें रख लेता, फिर वह कुतिया जहन्नुम में जाती। आपका यह धन्यवाद मुझे नहीं चाहिए।

मैंने खीझ कर कहा—मुझे तुम्हारे साथ बात करने की फुरसत नहीं है।

गणपत—फुरसत नहीं है तो जाइये यह रास्ता पड़ा है। अगर आप ले जाना चाहते हों तो मैंने उसे बख्श दी। अब खुशी से लेते जाइये।

मुझे क्रोध आगया। मैंने कहा—तुम जानवर हो। तुम नहीं जानते कि सौ रुपये में एक औरत को खरीदकर उसके मालिक बन जाना चाहते हो। उसके ऊपर मनमाना अधिकार चलाना चाहते हो?

"मैं क्या चलाना चाहता हूँ। सारी दुनियां में रुपये की हुकूमत चलती है। आप नाराज न हों बाबू साहेब! मैं ठीक बात कह रहा हूं।"

मैंने देखा वह सचमुच ही ठीक बात कह रहा था। कोई भी तो ऐसी जगह नहीं है जहाँ रुपये का जोर न हो। मैंने अपने क्रोध को दबाया, कहा—मैं समझता हूँ तुम निरे राक्षस नहीं हो। तुम उस औरत के प्रति हमदर्दी का बर्ताव करोगे।

उसने मेरी बात को मान लिया। बोला—ऐसा ही करूँगा बाबू साहेब। मैंने सौ रुपये यों ही नहीं गँवाये थे। उसे लेकर सोचा था कि अब एक किनारे पर लग गया। तमाम जिन्दगी आवारगी में बिताकर अब वह सुख पाऊँगा जिसको भलेमानसों की जिन्दगी कहा जाता है, पर वह ऐसी चुड़ैल निकली कि मेरे रोमरोम में आग लगा गई। अभी भी क्या पता उसे समझ आई या नहीं?

मैंने समझाया—देखो गणपत, तुम थोड़ी देर के लिए उसको अपनी जगह और अपने को उसकी जगह रक्खो। फिर सोचो तुम ऐसी हालत में क्या करते?

गणपत—वह औरत है, मैं मर्द-बच्चा हूं बाबू साहेब!

"इसमें शक नहीं"—मैंने कहा, "पर औरत भी तो आदमी की तरह ही दिल रखती है।"

मेरी बातों से वह कुछ देर सोच में पड़ा रहा। उसके बाद बोला—अच्छी बात मैं मान लेता हूँ। दो एक दिन में उसे घर ले जाऊँगा। जहां चाहेगी वहाँ उसे पहुँचा दूँगा।—परन्तु संदीप के पीछे फिरेगी तो वह उसे फिर किसी के हवाले कर देगा। वह आदमी के रूप में राक्षस का बच्चा है।

सचमुच वह इससे भी कुछ अधिक है—कहकर मैंने उसकी बात का

गया है। इसलिए उसकी काफी छानबीन हुई है। यहां तक कि सरकारी जासूस मेरे पीछे भी लगे हैं। गणपत से छुटकारा पाने के बाद एक भोजनगृह में मेरी ऐसे एक जासूस से बड़ी मजेदार बातचीत हुई। उसे अन्य बातों के साथ मैंने यह भी बता दिया कि संयोग से ही उस दिन मैं वहां पहुंच गया था, परन्तु अपनी बात का सरकार को यक़ीन दिलाने के लिए मुझे तीन महीने तक एक स्थान से दूसरे स्थान पर पुलिस की कड़ी निगरानी में रहना पड़ा। प्रायः प्रति सप्ताह मेरी नाना प्रकार से जांच की जाती रही। अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं के बावजूद वे मुझसे कुछ नहीं पा सके तो तंग आकर एक दिन छोड़ दिया।

मैं कोई नेता नहीं, कोई लेखक नहीं, कोई सेठ साहूकार नहीं। फिर किसी को क्यों मेरे साथ घटी इस घटना का उल्लेख करने की आवश्यकता होती। मैं चुपचाप पुलिस के नियन्त्रण में गया था और चुपचाप ही उससे मुक्त होकर फिर एक बार अपनी इच्छा से जहां तहां घूमने को स्वतंत्र होगया। लेकिन इतने कटु अनुभव के बाद आज जी शांत, स्थिर घरेलू जीवन के लिए ललक उठा। इन नित्य की विपत्तियों, दुश्चिन्ताओं और अनिश्चितताओं में कोई सार दिखाई नहीं पड़ने लगा। एक आदमी अपने घर-बार को ध्वस्त करके चला जा रहा हो और चलते चलते वीरान बियाबानों को पार करने में धैर्य खोकर पीछे लौट पड़ने के लिए घूमकर देखे और उसे कांटों से भरे पथ के उस पार बहुत दूर पर अपना घर धराशायी दिखाई पड़े, तब उसकी जो दशा होती वही दशा मेरी हुई। कभी अपने ठीक-ठिकाने के लिए मैंने यत्न नहीं किया। किसी ने किया या उसकी चर्चा चलाई तो उसे हँसी में उड़ा दिया। अब आगे पीछे कहीं भी स्थिर हो रहने को स्थान नजर नहीं आता। विशाखा है, कल्याणी है, भैया-भाभी हैं, बुआ हैं। इनमें से किसी के पास चले जाने पर स्थान मिलेगा, राहत मिलेगी परन्तु स्थायी शांति के स्थल वे बने रह सकेंगे इसमें संदेह है।

दुश्चिंताओं के भार को मस्तिष्क नहीं सँभाल सका, नजरबंदी की अवस्था में मिली यंत्रणाएँ शरीर के लिए दुर्वह हो उठीं। मैं मुक्त होकर

हिचकियों में उसकी शेष बात खो गई। मैंने कहा—खैर, जाने दो। मेरे लिए तो तुम्हारी शरण आना अब भी एक वरदान है।

उसने अपना सिर मेरी छाती में छिपा लिया। फफक फफककर रोते हुए बोली--हाय, तुम नहीं जानते। तुम्हे पता नहीं, मैं कहा हूं और कैसी हूँ।

मैंने एक हाथ से उसे समेटकर कहा—तुम्हारी जैसी दुखियारी कोई दूसरी नहीं है। मैं जानता हू, तुमने बड़े दुख उठाये हैं बिट्टो!

"नहीं, तुम नहीं जानते। वे कुछ भी नहीं थे। आदमी की देह धर कर वैसे दुखों से तो भागा नहीं जा सकता, पर ये राक्षसी संकट, जिनका अंत न जाने कब होगा, जिनकी याद आते ही शरीर काप उठता है। आततायियो की एक भीड़ ने उमड़कर बच्चों से लगाकर बुड्ढो तक को काट डाला, और घरों में आग लगा दो। मा के सामने बेटा की दुर्दशा की। बेटी के सामने मा का अग भग किया। गाव भर के हजार-नौ सौ स्त्री पुरुषो मे हम दो दरजन अभागो लड़किया बची हैं। अम्मा तो मेरी आखों के सामने गाय की तरह जिबह होकर चली गईं। मैं यह नारकी जीवन जीने को बच गई। लारी मे डालकर हम यहा लाई गईं। जिन हाथो में गंगाजल लेकर तुलसी का पूजन नित्य नियम था उनसे गोमास पकाकर उन अपने मुल्ला जी को सतुष्ट करना पड़ा है जिन्होंने दया करके उन लुटेरों के प्रतिदिन के अत्याचार से हम दो चार को बचाकर अपनी भूख मिटानेतक ही सीमित रक्खा है। एक महीने से कुछ अधिक हुआ होगा पर लगता है कि मैं सौ बरस की बुढ़िया हो गई हूं।"

मेरी अशक्त देह क्रोध और आवेश से झनझना उठी। मैं बलपूर्वक उठकर बैठ गया। बिट्टो ने मुझे पकड़ लिया, हाथ जोड़कर बोली—लड़कपन मत कर बैठना।

"मैं उन राक्षसों को मजा चखाऊँगा"—मैंने कहा।

"मैंने कुछ घंटो के लिए तुम्हारे प्राण उनसे भीख में मांगे हैं। सबेरे रास्ते के किनारे जाते जाते तुम लड़खड़ाकर गिर पड़े थे। तभी न जाने वे

क्या कर डालते यदि लूट का नया सामान न आ जाता। वे उसमें लग गये और मैंने तुम्हें लाकर इधर छोड़ दिया। बुड्ढों में से अनुनय करके तुम्हें सबेरे तक के लिए प्राप्त किया है। इसलिए इसी अँधेरी रात में अपने प्राणों को बचा लो। जाओ, उठो।

मैंने उसे डपटकर कहा—"छि: प्राणों के डर से तुम्हें छोड़कर मैं भाग जाऊँगा? बिट्टो, तुम भी कैसी बात कहती हो?"

"तुम्हें भागना होगा। अपने प्राणों की रक्षा करनी होगी।"

"किसलिए? तुम्हें क्या होगया है बिट्टो? तुम कहती हो तुम्हें यहाँ छोड़कर मैं प्राणों के भय से चला जाऊँगा?"

"ठहरकर क्या कर लोगे? एक दो हों तो उनसे पेश आ जाओ।"

"कुछ भी हो। इन प्राणों को यहीं छोड़ना हो तो छोड़ दूँगा, तुम्हें भेड़ियों के मुँह में देकर जाना मुझसे न होगा।"

"मेरी रक्षा जिन्हें करनी चाहिए वे ही न कर पाये। जब मेरे भाग्य में यही दिन लिख दिया था तो उसे मिटा सकना क्या किसी की सामर्थ्य में है?"

"यहाँ से जायँगे तो हम दोनों जायँगे बिट्टो, यह क्या तुम्हें समझाना होगा? संजोगवश ही सही, तुम्हें यहाँ छोड़कर चले जाने के लिए ही मेरा आना हुआ है क्या?"

"आखिर समय इन चरणों की धूल मुझे नहीं थी वह मिल गई। अब मेरा कर्तव्य मेरे सामने है।"

"इन बातों को छोड़ो—यही बताओ हम दोनों को यहाँ से किधर और कैसे चलना होगा?"

"कुछ पता नहीं और अपनी यह कलंकित देह लेकर मैं किस ठौर जाकर समाऊँगी?"

"राम राम तुमने आज तक नहीं जाना। मेरे निकट आज ही तो तुम्हारा चरित्र पावनता की अन्यतम मूर्ति बन सका है। विपत्तियाँ, और अनाचार ही तो मानव-चरित्र की स्वर्ण प्रतिमा गढ़ते हैं।"

"मैं जानती हूं तुम्हारा हृदय विशाल है परन्तु जहाँ तुम मुझे ले चलोगे उस दुनियां की संकुचित दृष्टि सारे जीवन भर सहने की शक्ति क्या मुझमें बची है?"

समाज की परवाह मत करो। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की। और भी कितने ही हैं जो उसकी परवाह नहीं करते। भाभी कल्याणी, चाँद, गगा और कितनी ही ऐसी हैं। उन सबको जिसकी वक्र दृष्टि नहीं डरा सकी वह तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।"

उसने सिसक कर कहा—नहीं मुझमें वैसा साहस नहीं है। न अब इस दुर्दशाग्रस्त जीवन का सुन्दर अभिलाषाओं से शृंगार करना है। यदि भगवान् ने चाहा, तो अगले जन्म में वे मुझे वह सब देंगे जिसकी कामना बचपन की भोली घड़ियों में कभी की थी। इस पर मेरा अटल विश्वास है।

मैंने उसे समझाने की गरज से कहा—प्यारी बिट्टो!...

मैं जो कहने जा रहा था वह असमाप्त ही रह गया। एक फौजी गाड़ी की घड़घड़ाहट के साथ ही बन्दूकों के कुछ फायर सुनाई दिये और थोड़ा सा संघर्ष हुआ—पुलिस हमारी रक्षा को आ पहुंची थी। कुछ मिनटों की प्रतीक्षा के बाद हमने अपने को आततायियों से मुक्त पाया। मैंने बिट्टो से कहा—भगवान् की बड़ी बड़ी बाहें हैं, इस पर अब तो विश्वास करोगी?

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह किसी दुर्वह विचारधारा में डूबी थी। केवल उसकी वे दोनों बड़ी बड़ी चिरपरिचित आखें, जिन्होंने सोहनपुर में बुआ के यहाँ एक दृष्टि में मुझे पालतू बना लिया था, मेरी ओर एकटक ताक रही थीं। उनमें कौन-सा मर्म भरा था यह मैं जान न पाया।

मैंने उसके कंधे को हिलाकर पूछा—बिट्टो, क्या सोच रही हो? कहां खो गई हो तुम?

मैं सोच रही हूं—कहकर वह चुप हो गई, आगे कुछ कहा नहीं। दो तरल मोती उसकी आँखों से निकलकर पलकों पर प्रकट हो गये।

बाहर पुलिसदल शीघ्रता कर रहा था। मैंने बिट्टो से कहा—तुम्हें क्या डर है वह मैं जानता हूं। उसे त्याग, बिट्टो। यह तुम्हारा डर मिथ्या है। क्या तुम मुझ पर भी भरोसा नहीं कर सकतीं? यदि समाज तुम्हें बुरी दृष्टि से देखेगा तो हम उसे त्याग देंगे और किसी देश में जाकर रहेंगे जहां सतक्षों की दशा पर कटाक्ष नहीं किया जाता। उन पर रुदन किया जाता है। उन्हें प्रेम के साथ हृदय से लगाया जाता है।

मेरी बातों से वह उत्साहित नहीं हुई। मिट्टी की प्रतिमा की भांति विजड़ित बैठी रही। केवल उसकी आंखों से निःसृत अश्रुधार ही बता रहा था कि अभी तक उसकी काया में जीवन का स्पन्दन शेष है।

पुलिस रक्षक-दल अपने कार्य में व्यस्त था। बिट्टो की तरह ही दुर्भाग्य की सताई जो लड़कियां उसे मिलीं उन्हें गाड़ी में चढ़ाना एक समस्या थी। उनमें से अधिकांश यह निश्चय नहीं कर पा रही थीं कि इस प्रकार ले जाई जाने पर उनका भविष्य क्या होगा? उन्हें समाज स्वीकार करेगा? घर के लोग उन्हें दुरदुरायेंगे तो नहीं? असमंजस की दशा में ही उन्हें गाड़ी पर चढ़ाया गया। मैं भी बिट्टो का हाथ खींच कर उसे गाड़ी तक लेगया और बलपूर्वक चढ़ा दिया।

पत्थर की प्रतिमावत् वह अपने स्थान पर बैठ गई। मैंने गाड़ी के भीतर की घुटन को दूर करने के लिए कहा—बिट्टो, देखो एकाएक आसमान कैसा निर्मल होगया है।

बिट्टो की आंखों की जड़ता को मेरी बात दूर न कर सकी परन्तु समीप बैठी कौशल्या का मुंह आकाश की ओर उठ गया। क्षणभर क्षितिज पर टकटकी लगाने के बाद वह बोली—सच ही तो, सारे दिन की धूमिल छाया कहां चली गई?

मैंने कहा—आकाश हमारे भावी जीवन का दर्पण हो रहा है।

दूसरी लड़कियां भी हमारी बातचीत से खिंचकर अपने भावों की जड़िमा से जाग उठीं। उन्होंने जैसे आकाश की प्रसन्नता और उल्लास को पढ़ लिया। उनके चेहरों पर छायी सघन उदासी का आवरण क्षणभर के

लिए हट गया। बिट्टो का म्लान मुख परन्तु ज्यों का त्यों घटाच्छादित बना रहा।

अपना प्रयत्न विफल होते देखकर मैं चुप होरहा। मुझे समझ में नहीं आने लगा कि कैसे अपनी बाल्य सहचरी को मैं उस अवस्था से बाहर निकालूँ।

मैंने उसके कान के समीप अपना मुंह करके आश्वासन के तौर पर कहा—अपनी गाडी के पहिए की ही भांति जीवन का चक्र भी घूम रहा है। इस दुनियां में जो कुछ है वह सभी ऊंचा-नीचा होता रहता है। किसी एक अवस्था पर विश्वास करके उसे स्थायी मान लेना भूल है। जीवन की यह सबसे बड़ी विडबना है।

निरुत्तर खामोशी में मेरी शब्दावली लीन होगई। कौशल्या यह देखकर व्यथित हो उठी। उसने बिट्टो के कंधे पर हाथ रखकर मृदु कंठ से कहा—बहिन, चिन्ता क्यों कर रही हो? इस तरह हमारी जिंदगी कैसे कटेगी?

बिट्टो जैसे सोते से जाग पड़ी। वह कौशल्या के मुंह की ओर स्थिर दृष्टि से अवलोकन करती रही। उसकी इस समय की मुद्रा को देखकर मुझे भय होने लगा।

तेजी से चलती हुई हमारी गाड़ी बांई ओर मुड़ गई। अचानक सामने से आता हुआ शीतल हवा का झोंका हम सबको झकझोर गया। बिट्टो में भी जैसे जीवन का स्पदन आया। उसने एक बार गाड़ी में बैठी सब मूर्तियों पर दृष्टि डाली, फिर मेरे म्लान मुख की ओर देखा, उसका अन्तर जैसे आहत होगया। विगत जीवन की रुद्ध वेदना से उन्मथित उसका मन काबू में न रह सका। उसने अपनी देह को अवश छोड़ दिया। मेरे कंधे पर अपना सिर झुकाकर वह अशक्त सी हो रही। लज्जा और सकोच उसे रोक न पाये। अपनी दाहिनी बांह से वेष्ठित करके उसके शिथिल शरीर को मैंने सहारा दिया और कहा—बिट्टो, क्यों कैसा लग रहा है?

लिए हट गया। विट्टो का म्लान मुख परन्तु ज्यों का त्यों घटाच्छादित बना रहा।

अपना प्रयत्न विफल होते देखकर मैं चुप होरहा। मुझे समझ में नहीं आने लगा कि कैसे अपनी बाल्य सहचरी को मैं उस अवस्था से बाहर निकालूँ।

मैंने उसके कान के समीप अपना मुंह करके आश्वासन के तौर पर कहा—अपनी गाड़ी के पहिए की ही भांति जीवन का चक्र भी घूम रहा है। इस दुनिया में जो कुछ है वह सभी ऊंचा-नीचा होता रहता है। किसी एक अवस्था पर विश्वास करके उसे स्थायी मान लेना भूल है। जीवन की यह सबसे बड़ी विडंबना है।

निरुत्तर खामोशी में मेरी शब्दावली लीन होगई। कौशल्या यह देखकर व्यथित हो उठी। उसने विट्टो के कंधे पर हाथ रखकर मृदु कंठ से कहा—बहिन, चिन्ता क्यों कर रही हो? इस तरह हमारी जिंदगी कैसे कटेगी?

विट्टो जैसे सोते से जाग पड़ी। वह कौशल्या के मुंह की ओर स्थिर दृष्टि से अवलोकन करती रही। उसकी इस समय की मुद्रा को देखकर मुझे भय होने लगा।

तेजी से चलती हुई हमारी गाड़ी बांई ओर मुड़ गई। अचानक सामने से आता हुआ शीतल हवा का झोंका हम सबको झकझोर गया। विट्टो में भी जैसे जीवन का स्पंदन आया। उसने एक बार गाड़ी में बैठी सब मूर्तियों पर दृष्टि डाली, फिर मेरे म्लान मुख की ओर देखा, उसका अन्तर जैसे आहत होगया। विगत जीवन की रुद्ध वेदना से उन्मथित उसका मन काबू में न रह सका। उसने अपनी देह को अवश छोड़ दिया। मेरे कंधे पर अपना सिर झुकाकर वह अशक्त सी हो रही। लज्जा और संकोच उसे रोक न पाये। अपनी दाहिनी बांह से वेष्ठित करके उसके शिथिल शरीर को मैंने सहारा दिया और कहा—विट्टो, क्यों कैसा लग रहा है?

बत्तीस

समाज का राक्षस कितना कठोर और भयावह है ! वह किसी पर दया नहीं करता। वह लोहे के हाथों से अपने बनाये नियमों का पालन कराता है। दुर्बल मानव-हृदय संस्कारों के पाश में बुरी तरह जकड़ा है। वह मुक्ति की चाह तो करता है पर समाज की दासता से छूट नहीं पाता। उसके फौलादी पंजे से न उसका तन मुक्त हो पाता है न मन। मैंने कितना यत्न किया। कितना बिट्टो को समझाया। इतिहास,पुराण, शास्त्र, वेद से कितने हवाले दिये। लेकिन मैं उसे यह विश्वास न करा सका कि जो काम उसने इच्छा से नहीं किया, बलात् उससे लिया गया है, उसके लिए पाप और पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता। उसका फल उसे छू भी नहीं सकता। संस्कार विजड़ित उसके मन में यह बात जम गई थी कि उसका लोक-परलोक सब कुछ नष्ट हो गये हैं। आततायियों के अत्याचार की शिकार होने से उसकी सहज पवित्रता कलंकित हो चुकी है। अब इस शरीर से कोई पवित्र कार्य कर सकने का उसका अधिकार इस जीवन में लुट चुका है। नया जीवन, नया शरीर, पाये बिना उसकी यह काया अकारथ है।

खाना, पीना, सोना, हँसना, बोलना जैसे उसका सब कुछ खोगया हो। विभ्रांत-सी, व्याकुल-सी, व्यथित-सी, उन्मन-सी एक उदास काली छाया में ढकी उसकी आकृति घोर घटाच्छादित सी प्रतीत होती थी। मुरझाई हुई जुही की तरह वह म्लान हो रही थी। आकाश की ओर

फिर वो अश्रुविगलित वाणी से बोली—मैं कैसी अभागिन हूँ। सदा ही तुम्हें दुख में डालती रही हूँ। आज भी मेरे दुर्दिन ने भाग्य ने तुम्हें मेरे समीप ला दिया है।

मैं—छि, ऐसा क्या सोचती हो?

"तो क्या सोचूँ? जीवन का पथ चारों ओर से अवरुद्ध होगया है। सांस लेने को अवकाश नहीं है। मेरा उद्धार करके अब क्या ले जाओगे?"

"कुछ भी अवरुद्ध नहीं हुआ है। तुम व्यर्थ दुखी होती हो।"

"मेरा मन किन्तु आश्वस्त नहीं हो पाता।"

"उसे आश्वस्त करो। मेरे ऊपर भरोसा करो। उस ईश्वर पर भरोसा करो जो सब कुछ सहने की शक्ति देता है।"

"यही तो कठिन है। ईश्वर के निकट पहुंचने की पवित्रता अब कहां पाऊंगी? यह कलंकित काया ... "

"काया कलंकित नहीं होती। मन्दिर अपवित्र नहीं होता। मन रूपी देवता जिसमें प्रतिष्ठित है उसे कौन अपवित्र कर सकता है? तुम इस धारणा को ही हृदय से निकाल दो। बोलो, कर सकोगी?"

"प्रयत्न करूंगी। तुम कहते हो तो करके देखूंगी। तुम पर अविश्वास कैसे कर सकूंगी?"

इतना कहकर वह चुप होगई किन्तु उसका हृदय उमड़ता रहा और भीतर तरल अश्रुप्रवाह अविरल गति से बहता रहा। मेरे कंधे पर ढुलढुल करके मानस मोती गिरते और मुझे भिगोते रहे। अकथनीय आनन्द की वेगवती सरिता में मैं न जाने कितनी देर तक स्नान करता रहा। हमारे साथी और साथिनें स्तब्ध होकर इस दृश्य को देखते रहे।

o

बत्तीस

समाज का राक्षस कितना कठोर और भयावह है ! वह किसी पर दया नहीं करता। वह लोहे के हाथों से अपने बनाये नियमों का पालन कराता है। दुर्बल मानव-हृदय संस्कारों के पाश में बुरी तरह जकड़ा है। वह मुक्ति की चाह तो करता है पर समाज की दासता से छूट नहीं पाता। उसके फौलादी पंजे से न उसका तन मुक्त हो पाता है न मन। मैंने कितना यत्न किया। कितना बिट्टो को समझाया। इतिहास, पुराण, शास्त्र, वेद से कितने हवाले दिये। लेकिन मैं उसे यह विश्वास न करा सका कि जो काम उसने इच्छा से नहीं किया, बलात् उससे लिया गया है, उसके लिए पाप और पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता। उसका फल उसे छू भी नहीं सकता। संस्कार विजड़ित उसके मन में यह बात जम गई थी कि उसका लोक-परलोक सब कुछ नष्ट हो गये हैं। आततायियों के अत्याचार की शिकार होने से उसकी सहज पवित्रता कलंकित हो चुकी है। अब इस शरीर से कोई पवित्र कार्य कर सकने का उसका अधिकार इस जीवन में लुट चुका है। नया जीवन, नया शरीर, पाये बिना उसकी यह काया अकारथ है।

खाना, पीना, सोना, हँसना, बोलना जैसे उसका सब कुछ खोगया हो। विभ्रांत-सी, व्याकुल-सी, व्यथित-सी, उन्मन-सी एक उदास काली छाया में ढकी उसकी आकृति घोर घटाच्छादित सी प्रतीत होती थी। मुरझाई हुई जुही की तरह वह म्लान हो रही थी। आकाश की ओर

रही।

इस बीच मैंने सोहनपुर पत्र देकर बुआ का समाचार मंगाया। उत्तर उन्होंने बैलगाड़ी भेज दी। अब मेरे लिए वहां और अधिक रुकना न हो गया। मैंने बिट्टो से कहा—आज रात को ही हम लोगों को पड़ना है।

उसने मेरे मुंह की ओर देखा और ठंडी सांस खींचकर चुप हो रही, प्रकार जैसे अब उसे किसी से सरोकार न हो।

मैंने उसकी परवाह किये बिना ही फिर कहा—बुआ अशक्त होरही उनके पाँव में फोड़ा निकला है। वे चलने फिरने से मोहताज हैं। वैसे वह खुद ही आ जातीं। हम दोनों को अपना आशीर्वाद भेजकर उन्होंने व बुलाया है।

आशीर्वाद भेजा है बुआ ने, हम दोनों के लिए। काश उनका शीर्वाद मेरे लिए वरदान हो पाता—वह बड़बड़ाई।

मैंने कहा—बड़ों का आशीर्वाद सब समय ही कल्याणकर है। वह वरदान ही है।

वह अचल प्रस्तर-प्रतिमा सी बैठी सुनती रही।

उसकी अनुमति की अपेक्षा न करके मैंने चलने की तैयारी करदी। को जब आग्रहपूर्वक उसे गाड़ी पर चढ़ाया तो वह केवल इतना ती—तुम मुझे ले तो चल रहे हो पर मैं वहां पहुँचू गी भी? सोहनपुर कलङ्कित शरीर लेकर मुझ से रहना हो सकेगा?

मैंने कहा—पागलपन छोड़ो। वे सपने की बातें अँधेरी रात के बीत गईं। जीवन का नया सवेरा हमें बुला रहा है।

उसकी साथिनों ने अश्रुपूरित नेत्रों से हमें विदा किया और कहा—जा रही हो? जाओ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे। हम लोगों का ठौर-ठिकाना देखें कहां किया जाता है?

बिट्टो ने हाथ जोड़कर और होठों में कुछ धीरेधीरे कहकर उनसे विदा ली। उसकी आंखें बराबर आंसू गिरा रही थीं और गला हिचकियों

से भरा था।

गाड़ी चल पड़ी। मैं अपनी चिर अभिलषित निधि को अपने पार्श्व में लिए अनेक कल्पनाओं के बोझ से बोझिल मन के साथ गाड़ी में लेटा चला जारहा था। मेरा सिर गाड़ीवान के कंधे के पास रक्खा था। मेरे पांव गाड़ी के दूसरे पार्श्व पर टिके थे। उनके समीप ही मेरी बाल सहचरी अस्तव्यस्त दशा में बैठी थी। वह दाहिने हाथ की हथेली पर अपना माथा टेके गाड़ी के धचकों के साथ झोंके खा रही थी। उसकी पलकों से आंसू थमते नहीं थे। मेरा विचार था कि उसे अच्छी तरह रो लेने दिया जाय ताकि घर पहुंचने से पहले उसका मन हलका हो जाय।

कच्चे ऊबड़-खाबड़ पथ पर पहुंच जाने पर गाड़ी में हचकोले इतने जोर जोर से लगने लगे कि वह स्थिर बैठी न रह सकी। बारबार मेरे पैरों पर वह झुक झुक पड़ती थी और उसका माथा उनसे छू जाता था। उसके आंसुओं से आर्द्र अंचल का स्पर्श शीतल रात्रि में मुझे रहरहकर कंपा देता था। पास में पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। ठंढी हवा के झोंके सामने सीधे गाड़ी के भीतर चले आरहे थे। मुझे लग रहा था कि बिट्टो की दुर्बल काया हिम की तरह शीतल हुई जा रही है। उसकी चिन्ता किये बिना ही वह बैठी थी। शरीर के प्रति और जीवन के प्रति भी घोर उपेक्षा का भाव लिए वह कब तक इस प्रकार बैठी रहेगी यही सोचता सोचता मैं आखिर सो गया।

गाड़ी चली जा रही थी। मैं निद्रालोक में दूर जा पहुंचा था। स्वप्नों की वह दुनियां कैसी सुहावनी थी! आनंद और प्रकाश से घिरी बुआ मेरे सामने खड़ी थीं। मैं अपनी सहेली का हाथ अपने हाथ में लिए उनके चरणों में झुक रहा था। वे हम दोनों को प्यार से अपनी गोद में ले लेने के लिए हाथ बढ़ा रही थीं और कह रही थीं—आज चिर दिन की मेरी साध पूरी हुई है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अब तुम्हें इस जीवन में कोई अलग न कर सकेगा। तुम साथ साथ रहो। सुखी रहो। वियोग की छाया तुम्हें छूने न पाये।

बैठी रही।

इस बीच मैंने सोहनपुर पत्र देकर बुआ का समाचार मंगाया। उत्तर में उन्होंने बैलगाड़ी भेज दी। अब मेरे लिए वहां और अधिक रुकना कठिन हो गया। मैंने बिट्टो से कहा—आज रात को ही हम लोगों को चल पड़ना है।

उसने मेरे मुंह की ओर देखा और बड़ी सांस खींचकर चुप हो रही, इस प्रकार जैसे अब उसे किसी से सरोकार न हो।

मैंने उसकी परवाह किये बिना ही फिर कहा—बुआ अशक्त होरही हैं। उनके पाँव में फोड़ा निकला है। वे चलने फिरने से मोहताज हैं। वैसे शायद खुद ही आ जातीं। हम दोनों को अपना आशीर्वाद भेजकर उन्होंने तुरन्त बुलाया है।

आशीर्वाद भेजा है बुआ ने, हम दोनों के लिए। काश उनका आशीर्वाद मेरे लिए वरदान हो पाता—वह बड़बड़ाई।

मैंने कहा—बड़ों का आशीर्वाद सब समय ही कल्याणकर है। वह एक वरदान ही है।

वह अचल प्रस्तर-प्रतिमा सी बैठी सुनती रही।

उसकी अनुमति की अपेक्षा न करके मैंने चलने की तैयारी करदी। रात को जब आग्रहपूर्वक उसे गाड़ी पर चढ़ाया तो वह केवल इतना बोली—तुम मुझे ले तो चल रहे हो पर मैं वहां पहुँचूंगी भी? सोहनपुर में कलंकित शरीर लेकर मुझ से रहना हो सकेगा?

मैंने कहा—पागलपन छोड़ो। वे सपने की बातें अँधेरी रात के साथ बीत गईं। जीवन का नया सवेरा हमें बुला रहा है।

उसकी साथिनों ने अश्रुपूरित नेत्रों से हमें विदा किया और कहा—तुम जा रही हो? जाओ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे। हम लोगों का ठौर-ठिकाना देखें कहां किया जाता है?

बिट्टो ने हाथ जोड़कर और होठों में कुछ धीरेधीरे कहकर उनसे विदा ली। उसकी आखें बराबर आंसू गिरा रही थीं और गला हिचकियों

से भरा था।

गाड़ी चल पड़ी। मैं अपनी चिर अभिलषित निधि को अपने पार्श्व में लिए अनेक कल्पनाओं के बोझ से बोझिल मन के साथ गाड़ी में लेटा चला जारहा था। मेरा सिर गाड़ीवान के कंधे के पास रक्खा था। मेरे पांव गाड़ी के दूसरे पार्श्व पर टिके थे। उनके समीप ही मेरी बाल-सहचरी अस्तव्यस्त दशा में बैठी थी। वह दाहिने हाथ की हथेली पर अपना माथा टेके गाड़ी के धचकों के साथ झोंके खा रही थी। उसकी पलकों से आंसू थमते नहीं थे। मेरा विचार था कि उसे अच्छी तरह रो लेने दिया जाय ताकि घर पहुंचने से पहले उसका मन हलका हो जाय।

कच्चे ऊबड़-खाबड़ पथ पर पहुंच जाने पर गाड़ी में हचकोले इतने जोर जोर से लगने लगे कि वह स्थिर बैठी न रह सकी। बारबार मेरे पैरों पर वह झुक झुक पड़ती थी और उसका माथा उनसे छू जाता था। उसके आंसुओं से आर्द्र अंचल का स्पर्श शीतल रात्रि में मुझे रहरहकर कंपा देता था। पास में पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। ठंडी हवा के झोंके सामने सीधे गाड़ी के भीतर चले आरहे थे। मुझे लग रहा था कि बिट्टो की दुर्बल काया हिम की तरह शीतल हुई जा रही है। उसकी चिन्ता किये बिना ही वह बैठी थी। शरीर के प्रति और जीवन के प्रति भी घोर उपेक्षा का भाव लिए वह कब तक इस प्रकार बैठी रहेगी यही सोचता सोचता मैं आखिर सो गया।

गाड़ी चली जा रही थी। मैं निद्रालोक में दूर जा पहुंचा था। स्वप्नो की वह दुनियां कैसी सुहावनी थी। आनंद और प्रकाश से घिरी बुआ मेरे सामने खड़ी थीं। मैं अपनी सहेली का हाथ अपने हाथ में लिए उनके चरणों में झुक रहा था। वे हम दोनों को प्यार से अपनी गोद में ले लेने के लिए हाथ बढ़ा रही थीं और कह रही थीं—आज चिर दिन की मेरी साध पूरी हुई है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अब तुम्हें इस जीवन में कोई अलग न कर सकेगा। तुम साथ साथ रहो। सुखी रहो। वियोग की छाया तुम्हें छूने न पाये।

ताकने लगती तो उधर ही देखती रह जाती। धरा पर दृष्टि गड़ा देती तो उसी ओर लीन हो जाती। शून्य स्थिर दृष्टि से दिशाओं की अनन्तता में डूब जाती तो मैं तकता ही रहता। मेरे मुख से निकला हुआ एक भी शब्द उसके कानों में न पहुँचता। उसके साथ जो दूसरी लड़कियाँ आई थीं। उनका दुर्भाग्य भी उससे मिलता जुलता ही था। उनके सामने भी उदास और निराश जीवन था। कोई उनकी जीवन-नौका पार लगाने वाला न था। वे कहाँ जा रही हैं, कौन उन्हें आश्रय देगा, इससे वे पूर्णतया अनभिज्ञ थीं। इसके विपरीत विट्टो को तत्काल सहारा देने के लिए भगवान ने मुझे उसके पास भेज दिया था। उन बेचारियों के सामने तो इतना भी अवलम्ब न था। वे निरुद्देश्य यात्रा के लिए चल पड़ी थीं। फिर भी वे शांत थीं। उनके चेहरों पर इस प्रकार की निरन्तर उदासी न थी। हँसती थीं, बोलती थीं, रोती थीं और कलपती थीं, पर उनमें जीवन के प्रति एकदम उपेक्षा न थी।

मैंने उनकी ओर संकेत करके विट्टो से कहा—क्या तुम इनकी तरह अपने जी को धीरज नहीं दे सकतीं? इन्होंने भी तो तुम्हारा सा ही दुख-दर्द सहा है। ये भी दुनिया की हिंसा और प्रतारणा को भोग चुकी हैं। परन्तु इनमें इतनी समझ है कि ये उसे अपने सकल्पित कर्मों के साथ नहीं जोड़तीं।

मेरी बातों को वह सुनते हुए भी समझती नहीं थी। अपने साथ की उन लड़कियों को अपनी आँखों से देखती पर उनसे कुछ ग्रहण नहीं कर पाती। उसकी दशा क्षीण और दुर्बलतर होती जा रही थी। उसके मुख को देखने से प्रतीत होता कि वह निचोड़े हुए वस्त्र की भाँति सत्वहीन हो गया है। उसकी नैसर्गिक शोभा न जाने कहाँ चली गई है।

अन्त में मैंने उसे बहुत सीधी तरह समझाया—देखो विट्टो, जिस भाग्य ने हम दोनों को ऐसे समय और ऐसी परिस्थिति में इतने अर्से बाद अचानक ला मिलाया उसका कुछ उद्देश्य होना चाहिए। अकारण इतनी बड़ी घटना नहीं घट सकती। तुम इसे निश्चय मानो कि यह विधि का

निश्चित विधान है। उसने यातनाओं की शृंखला में गुजार कर इस बात की परीक्षा ले ली है कि हम दोनों का भाग्य एक सूत्र में बँधने के लिए ही है। तुम यदि ऐसे समय अपने शरीर और जीवन के प्रति इस प्रकार उदास हो जाओगी और उनकी रक्षा न करोगी तो तुम अपने साथ ही मेरा भी अनिष्ट कर बैठोगी। इससे पहले मैंने अपनी स्वाभाविक भूलों से तुम्हें बहुत दुरदुराया है। उसी अभिशाप के फल स्वरूप मुझे इतना भटकना पड़ा। कहीं भी जीवन में मैं सुख,शांति और विश्राम नहीं पासका। तुम्हारी अम्मा ने एक दिन जो विधना से चाहा था, हमारी बुआ ने आँचल पसारकर अनेक बार जिसकी याचना की थी, उसे मेरे कर्मों ने नष्ट कर दिया। आज विधि-विधान ने उसी संजोग को उपस्थित किया है। आज मैंने अपने खोये हुए स्वर्ग को फिर से पाया है। आज मैं उस रत्न का मोल आंकने के लिए सहज बुद्धि बटोर पाया हूँ। तुम उसे अपनी स्वीकृति देकर सार्थक करो। मेरे समर्पण को अंगीकार करने में तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं है। तुम पूर्ववत निष्कलंक हो, पूर्ववत् शुद्ध हो। उठो, चलो। हम दोनों अपनी नई दुनियां का निर्माण कर उन सबको सुखी करें जो हमें उस रूप में देखने की अभिलाषा करते रहे हैं।

मैंने समझा मेरे इस लंबे और भावुक वक्तव्य से उसका हृदय बदल जायगा। वह अपने निश्चय को छोड़ देगी और शेष जीवन भर मेरा साथ देने के लिए उत्साह प्रदर्शित करेगी। परन्तु उसका तो वही उत्तर था। वह बोली—तुम समझते हो कि तुम मुझे अप्रिय हो? क्या इस जीवन के प्रति मेरे मन में मोह नहीं है? मेरे जीवन व्यापी स्वप्नों की दुनिया सत्य हो रही है तब मैं अभागी उससे विमुख रहना चाहूंगी?

मैं—तो फिर उदासी छोड़ो। यों खोई खोई न रहो। मेरी ओर देखो। मुझे बल दो, स्थिरता दो, सहारा दो। मुझे उठाकर ले चलो। आओ—आओ उठो।

उत्तर में उसने रो दिया। उसकी कमलायत आंखें बह चलीं। उसके श्रीहीन कपोलों पर आंसू की लड़ियां ढुलक पड़ीं। वह मुंह नीचा किये

ताकने लगती तो उधर ही देखती रह जाती। धरती पर दृष्टि गड़ा देती तो उसी ओर लीन हो जाती। शून्य स्थिर दृष्टि से दिशाओं की अनन्तता में डूब जाती तो मैं तकता ही रहता। मेरे मुख से निकला हुआ एक भी शब्द उसके कानों में न पहुँचता। उसके साथ जो दूसरी लड़कियां आई थीं। उनका दुर्भाग्य भी उससे मिलता जुलता ही था। उनके सामने भी उदास और निराश जीवन था। कोई उनकी जीवन-नौका पार लगाने वाला न था। वे कहां जा रही हैं, कौन उन्हें आश्रय देगा, इससे वे पूर्णतया अनभिज्ञ थीं। इसके विपरीत विट्टो को तत्काल सहारा देने के लिए भगवान ने मुझे उसके पास भेज दिया था। उन बेचारियों के सामने तो इतना भी अवलम्ब न था। वे निरुद्देश्य यात्रा के लिए चल पड़ी थीं। फिर भी वे शांत थीं। उनके चेहरों पर इस प्रकार की निरन्तर उदासी न थी। हँसती थीं, बोलती थीं, रोती थीं और कलपती थीं, पर उनमें जीवन के प्रति एकदम उपेक्षा न थी।

मैंने उनकी ओर संकेत करके विट्टो से कहा—क्या तुम इनकी तरह अपने जी को धीरज नहीं दे सकती? इन्होंने भी तो तुम्हारा सा ही दुख-दर्द सहा है। ये भी दुनिया की हिंसा और प्रतारणा को भोग चुकी हैं। परन्तु इनमें इतनी समझ है कि ये उसे अपने सञ्चरित कर्मों के साथ नहीं जोड़तीं।

मेरी बातों को वह सुनते हुए भी समझती नहीं थी। अपने साथ की उन लड़कियों को अपनी आंखों से देखती पर उनसे कुछ ग्रहण नहीं कर पाती। उसकी दशा क्षीण और दुर्बलतर होती जा रही थी। उसके मुख को देखने से प्रतीत होता कि वह निचोड़े हुए वस्त्र की भांति सत्वहीन हो गया है। उसकी नैसर्गिक शोभा न जाने कहां चली गई है।

अन्त में मैंने उसे बहुत सीधी तरह समझाया—देखो विट्टो, जिस भाग्य ने हम दोनों को ऐसे समय और ऐसी परिस्थिति में इतने अर्से बाद अचानक ला मिलाया उसका कुछ उद्देश्य होना चाहिए। अकारण इतनी बड़ी घटना नहीं घट सकती। तुम इसे निश्चय मानो कि यह विधि का

निश्चित विधान है। उसने यातनाओं की शृंखला में गुजार कर इस बात की परीक्षा ले ली है कि हम दोनों का भाग्य एक सूत्र में बँधने के लिए ही है। तुम यदि ऐसे समय अपने शरीर और जीवन के प्रति इस प्रकार उदास हो जाओगी और उनकी रक्षा न करोगी तो तुम अपने साथ ही मेरा भी अनिष्ट कर बैठोगी। इससे पहले मैंने अपनी स्वाभाविक भूलों से तुम्हें बहुत दुरदुराया है। उसी अभिशाप के फल स्वरूप मुझे इतना भटकना पड़ा। कहीं भी जीवन में मैं सुख,शांति और विश्राम नहीं पा सका। तुम्हारी अम्मा ने एक दिन जो विधना से चाहा था, हमारी बुआ ने आंचल पसारकर अनेक बार जिसकी याचना की थी, उसे मेरे कर्मों ने नष्ट कर दिया। आज विधि-विधान ने उसी संजोग को उपस्थित किया है। आज मैंने अपने खोये हुए स्वर्ग को फिर से पाया है। आज मैं उस रत्न का मोल आंकने के लिए सहज बुद्धि बटोर पाया हूँ। तुम उसे अपनी स्वीकृति देकर सार्थक करो। मेरे समर्पण को अंगीकार करने में तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं है। तुम पूर्ववत निष्कलंक हो, पूर्ववत् शुद्ध हो। उठो, चलो। हम दोनों अपनी नई दुनियां का निर्माण कर उन सबको सुखी करें जो हमें उस रूप में देखने की अभिलाषा करते रहे हैं।

मैंने समझा मेरे इस लंबे और भावुक वक्तव्य से उसका हृदय बदल जायगा। वह अपने निश्चय को छोड़ देगी और शेष जीवन भर मेरा साथ देने के लिए उत्साह प्रदर्शित करेगी। परन्तु उसका तो वही उत्तर था। वह बोली—तुम समझते हो कि तुम मुझे अप्रिय हो? क्या इस जीवन के प्रति मेरे मन में मोह नहीं है? मेरे जीवन व्यापी स्वप्नों की दुनिया सत्य हो रही है तब मैं अभागी उससे विमुख रहना चाहूंगी?

मैं—तो फिर उदासी छोड़ो। यों खोई खोई न रहो। मेरी ओर देखो। मुझे बल दो, स्थिरता दो, सहारा दो। मुझे उठाकर ले चलो। आओ—आओ उठो।

उत्तर में उसने रो दिया। उसकी कमखायत आंखें बह चलीं। उसके श्रीहीन कपोलों पर आंसू की लड़ियां ढुलक पड़ीं। वह मुंह नीचा किये

बैठी रही।

इस बीच मैंने सोहनपुर पत्र देकर बुआ का समाचार मँगाया। उत्तर में उन्होंने बैलगाड़ी भेज दी। अब मेरे लिए यहाँ और अधिक रुकना कठिन हो गया। मैंने बिट्टो से कहा—आज रात को ही हम लोगों को चल पड़ना है।

उसने मेरे मुंह की ओर देखा और बड़ी सांस खींचकर चुप हो रही, इस प्रकार जैसे अब उसे किसी से सरोकार न हो।

मैंने उसकी परवाह किये बिना ही फिर कहा—बुआ अशक्त होरही हैं। उनके पाँव में फोड़ा निकला है। वे चलने फिरने से मोहताज हैं। वैसे शायद खुद ही आ जातीं। हम दोनों को अपना आशीर्वाद भेजकर उन्होंने तुरन्त बुलाया है।

आशीर्वाद भेजा है बुआ ने, हम दोनों के लिए। काश उनका आशीर्वाद मेरे लिए वरदान हो पाता—वह बड़बड़ाई।

मैंने कहा—बड़ों का आशीर्वाद सब समय ही कल्याणकर है। वह एक वरदान ही है।

वह अचल प्रस्तर-प्रतिमा सी बैठी सुनती रही।

उसकी अनुमति की अपेक्षा न करके मैंने चलने की तैयारी करदी। रात को जब आग्रहपूर्वक उसे गाड़ी पर चढ़ाया तो वह केवल इतना बोली—तुम मुझे ले तो चल रहे हो पर मैं वहां पहुँचूंगी भी? सोहनपुर में कलङ्कित शरीर लेकर मुझ से रहना हो सकेगा?

मैंने कहा—पागलपन छोड़ो। वे सपने की बातें अँधेरी रात के साथ बीत गईं। जीवन का नया सवेरा हमें बुला रहा है।

उसकी साथिनों ने अश्रुपूरित नेत्रों से हमें बिदा किया और कहा—तुम जा रही हो? जाओ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे। हम लोगों का ठौर-ठिकाना देखें कहां किया जाता है?

बिट्टो ने हाथ जोड़कर और होठों में कुछ धीरेधीरे कहकर उनसे बिदा ली। उसकी आखें बराबर आंसू गिरा रही थीं और गला हिचकियों

से भरा था।

गाड़ी चल पड़ी। मैं अपनी चिर अभिलषित निधि को अपने पार्श्व में लिए अनेक कल्पनाओं के बोझ से बोझिल मन के साथ गाड़ी में लेटा चला जारहा था। मेरा सिर गाड़ीवान के कंधे के पास रक्खा था। मेरे पांव गाड़ी के दूसरे पार्श्व पर टिके थे। उनके समीप ही मेरी बाल-सहचरी अस्तव्यस्त दशा में बैठी थी। वह दाहिने हाथ की हथेली पर अपना माथा टेके गाड़ी के धचकों के साथ झोंके खा रही थी। उसकी पलकों से आंसू थमते नहीं थे। मेरा विचार था कि उसे अच्छी तरह रो लेने दिया जाय ताकि घर पहुंचने से पहले उसका मन हलका हो जाय।

कच्चे ऊबड़-खाबड़ पथ पर पहुच जाने पर गाड़ी में हचकोले इतने जोर जोर से लगने लगे कि वह स्थिर बैठी न रह सकी। बारबार मेरे पैरों पर वह झुक झुक पड़ती थी और उसका माथा उनसे छू जाता था। उसके आंसुओं से आर्द्र अंचल का स्पर्श शीतल रात्रि में मुझे रहरहकर कंपा देता था। पास में पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। ठंडी हवा के झोंके सामने सीधे गाड़ी के भीतर चले आरहे थे। मुझे लग रहा था कि बिट्टो की दुर्बल काया हिम की तरह शीतल हुई जा रही है। उसकी चिन्ता किये बिना ही वह बैठी थी। शरीर के प्रति और जीवन के प्रति भी घोर उपेक्षा का भाव लिए वह कब तक इस प्रकार बैठी रहेगी यही सोचता सोचता मैं आखिर सो गया।

गाड़ी चली जा रही थी। मैं निद्रालोक में दूर जा पहुंचा था। स्वप्नों की वह दुनियां कैसी सुहावनी थी! आनंद और प्रकाश से घिरी बुआ मेरे सामने खड़ी थीं। मैं अपनी सहेली का हाथ अपने हाथ में लिए उनके चरणों में झुक रहा था। वे हम दोनों को प्यार से अपनी गोद में ले लेने के लिए हाथ बढ़ा रही थीं और कह रही थीं—आज चिर दिन की मेरी साध पूरी हुई है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अब तुम्हें इस जीवन में कोई अलग न कर सकेगा। तुम साथ साथ रहो। सुखी रहो। वियोग की छाया तुम्हें छूने न पाये।

उनके वरदान की वाणी अभी समाप्त भी न हुई थी कि गाड़ीवान के कोहराम से मेरी नींद खुल गई। मैं चौंककर उछल पड़ा। देखा, गाड़ी गगा के पुल पर खड़ी है और एक नारी की धुंधली आकृति पुल के किनारे फीकी चांदनी में जलधारा में कूद पड़ने को तैयार खड़ी है। मैं गाड़ी से उछलकर नीचे गया और वायुवेग से उसकी ओर झपटा पर मेरे पहुचने से पहले ही उसने छलांग लगा दी। उसके साथ साथ मैं भी नदी मे कूद पड़ा। हहराती हुई अनत जलराशि मे वह कहा गिरी और मैं कहा गिरा तथा कितनी देर तक मैं उसे खोजता रहा, नहीं कह सकता। चेत होने पर मैंने अपने आपको बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया। मेरे सिरहाने अश्रुपूरित नेत्रों के साथ बुआ बैठी थीं। मुझे आखें खोलते देखकर वे प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते फेरते बोलीं—रमेश बच्चा, हाय तुझे इस जीवन में अकेले रहना ही बदा है क्या ?

कुछ विशिष्ट अवसरों पर ही द्रवित होने वाली मेरी आंखें वह चलीं और मैं उनके चरणों को अश्रुजल से चुपचाप न जाने कब तक अभिषिक्त करता रहा। सुदूर बचपन से लेकर अबतक की अगणित सुखदुख की स्मृतियां एक एक करके मेरे सामने सजीव हो उठीं। उनसे एक ही बात मेरे मन में आती है कि यह जीवन पाप और पुण्य का, हार और जीत का, अद्भुत परिणाम है। इसके प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता, मोड भी नहीं सकता।—और उसमें वह मगरमच्छ हर कदम पर बैठा हुआ अपने ग्रास की प्रतीक्षा कर रहा है। मेरी सखी, मेरी सहेली, मेरी रानी उसी की मुख कन्दरा में चिरविश्राम पाने को चली गई प्रतीत होती है ?—मेरे भाल के शिलालेख पर अंकित है मेरा एकाकी जीवन, और वह अमिट है—उसे मिटाने वाली इस दुनिया में कोई जन्मी भी है या नहीं कौन जाने ?

समाप्त